Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दिव्यध्वनि सार

भाग-2

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ॐ

(भगवान महावीर 26 सौ वाँ जन्म-जयन्ती वर्ष)

दिव्यध्वनिसार

(ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन)

भाग-२

प्रवचनसार गाथा 53 से 92 तक
श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्य विरचित प्रवचनसार एवं उनकी
श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्य विरचित तत्त्वप्रदीपिका टीका पर
पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी के प्रवचन

अनुवादक :
विनोद जैन, एम० कॉम
छिन्दवाड़ा (म०प्र०)

प्रकाशक :
श्रीमती कंचनबाई सौभागमल पाटनी,
रवीन्द्र पाटनी फैमिली चैरिटेबल ट्रस्ट, मुम्बई
एवं
पंडित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट
ए-4, बापूनगर, जयपुर-302015 (राज.)

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रथम संस्मरण : 3 हजार
(27 मई 2001, श्रुतपंचमी)

मूल्य : अट्ठाईस रुपए

टाइपसैटिंग :
श्री ऑफसैट प्रिंटर्स
सिवनीरोड़, छिन्दवाड़ा (म॰प्र॰)

मुद्रक :
प्रिन्टो 'ओ' लैण्ड
22 गोदाम, जयपुर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Thanks & Our Request

This shastra has been kindly donated by Dakshaben Sanghvi, Geneva, Switzerland who has paid for it to be "electronised" and made available on the internet.

Our request to you:

1) Great care has been taken to ensure this electronic version of DivyaDwaniSar Part 2 is a faithful copy of the paper version. However if you find any errors please inform us on rajesh@AtmaDharma.com so that we can make this beautiful work even more accurate.

2) Keep checking the version number of the on-line shastra so that if corrections have been made you can replace your copy with the corrected one.

Version History

Version Number	Date	Changes
001	15 February 2008	First electronic version

प्रकाशकीय

आचार्य कुन्दकुन्द के पंचपरमागमों में समयसार ग्रन्थाधिराज के साथ-साथ प्रवचनसार ग्रन्थ भी आत्मकल्याण के लिये उत्कृष्ट परमागम है। उसके गूढ व गंभीर तथ्यों को स्पष्ट करने वाले पूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामी के प्रवचन प्रकाशित होने की महती आवश्यकता मुझे बहुत खटकती थी। उक्त संदर्भ में एक बार पं॰ प्रबोधचन्दजी एडवोकेट छिन्दवाड़ा वालों से चर्चा हुई तो उन्होंने मुझसे कहा पू॰ स्वामीजी के पांचों परमागमों पर जो प्रवचन हुये थे वे सब "श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद" नामक दैनिक बुलेटिन में प्रकाशित हो चुके हैं। उक्त दैनिक बुलेटिन का संपादन स्व॰ श्री अमृतलाल नरसीभाई महता, सोनगढ़ में रहकर करते थे। उनके इस संकेत से मुझे भी वह पूरा प्रसंग स्मृति में आ गया। मैं स्वयं इस बुलेटिन का सदस्य रहा था तथा सोनगढ़ में मैंने स्वयं प्रत्यक्ष देखा था कि कितने श्रम से वे बुलेटिन तैयार करते थे और उसको स्व॰ विद्वान श्री खीमचन्दभाई जेठालाल सेठ के पास बैठकर उनसे शब्दशः जांच एवं पास कराकर पूज्य स्वामीजी को भेंट करने के पश्चात् सदस्यों को भेजते थे। इससे उस बुलेटिन की प्रामाणिकता सिद्ध हो जाती है। साथ ही श्री प्रबोधचन्दजी ने यह भी कहा कि उक्त प्रवचनों में प्रवचनसार पर हुये प्रवचनों की पूरी व्यवस्थित फ़ाइल मेरे पास है, अगर आप प्रकाशन करावें तो मैं आपको उपलब्ध करा सकता हूँ। उक्त चर्चा से मेरी भावना को बहुत प्रोत्साहन मिला। मैंने उनसे पूरी फाइल की फोटोस्टेट कापी भेजने को कहा तथा यह भी निवेदन किया कि अगर कोई हिन्दी में अनुवाद करनेवाला मिल जावे तो तलाश करें। अनुवाद कराने में जो कुछ भी खर्चा होगा उसकी आप चिन्ता न करें।

इसी बीच पं॰ प्रबोधचंदजी का शुभ सन्देश मिला कि आपकी भावना को साकार करने के लिये हमारे छिन्दवाड़ा निवासी भाई श्री विनोदचन्दजी जो कि पूज्य गुरुदेवश्री के तत्त्व के पूर्ण श्रद्धानी हैं और पू॰ गुरुदेव का समागम भी प्राप्त कर चुके हैं, उन्होंने इस महती कार्य को बिना किसी प्रकार का पारिश्रमिक लिए जिनवाणी की भक्ति से प्रेरित होकर करने की स्वीकृति दे दी है। यकायक मुझे विश्वास नहीं हुआ मैंने उनसे बहुत आग्रह किया कि बिना पारिश्रमिक के यह कार्य बीच में अधूरा रह जावेगा आदि-आदि लेकिन उन्होंने श्री विनोदजी से बात करके मुझे आश्वस्त किया कि वे कोई पारिश्रमिक लेने के लिये तैयार नहीं हैं, लेकिन विश्वास दिलाते हैं कि वे किसी भी हालत में कार्य को सम्पन्न करेंगे, बीच

में नहीं छोड़ेंगे।

मुझे बहुत प्रसन्नता हुई – मैंने डॉक्टर हुकमचन्दजी से चर्चा की उनको भी बहुत प्रसन्नता हुई लेकिन उन्होंने समस्या उपस्थित की कि उनका अनुवाद प्रमाणित हुआ है या नहीं इसकी प्रामाणिकता कैसे होगी, मुझे भी इसकी आवश्यकता अनुभव हुई। प्रमाणीकरण करनेवाला विद्वान भी ऐसा होना चाहिये जिसपर समाज को विश्वास हो।

उक्त खोज में तो मैं था ही, एक समारोह के अवसर पर मेरी डॉक्टर उत्तमचन्दजी साहब सिवनीवालों से भेंट हुई। बहुत संकोच के साथ उपरोक्त कार्य के लिये मैंने उनसे निवेदन किया, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। उनकी स्वीकृति प्राप्त होते ही यह महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हुआ तथा गत वर्ष दिव्यध्वनिसार भाग-1 और अब यह भाग-2 कृति के रूप में आपके स्वाध्यायार्थ उपलब्ध है।

उपरोक्त कार्य के संपादन में सर्वप्रथम मैं श्री विनोदचन्दजी जैन छिन्दवाड़ा निवासी को धन्यवाद दूँगा कि उन्होंने इस पावन कार्य को दिन रात श्रम करके अनुवाद किया एवं समय-समय पर स्वयं सिवनी जाकर डॉ॰ उत्तमचन्दजी से जांच कराते रहे।

डॉ॰ उत्तमचन्दजी सिवनी वालों का भी मैं अत्यन्त आभारी हूँ कि उन्होंने अपना अमूल्य समय इस अनुवाद को पास कराने में दिया। आपकी इस सेवा द्वारा इस अनुवाद की प्रामाणिकता हो गई है। पं॰ प्रबोधचंदजी एडवोकेट का भी मैं आभारी हूँ जिन्होंने प्रामाणिक व्यवस्थित प्रवचन उपलब्ध कराकर इस ग्रंथ को प्रकाशन योग्य बनाया।

प्रस्तुत प्रकाशन का मूल्य कम करने में जिन महानुभावों ने आर्थिक सहयोग दिया है, उनका मैं हृदय से आभारी हूँ। अंत में इस ग्रंथराज की मुद्रण व्यवस्था एवं आकर्षक कलेवर से सजाने के लिये प्रकाशन विभाग के प्रभारी श्री अखिल बंसल को भी धन्यवाद देता हूँ।

आप सभी आत्मार्थी बन्धु इस "दिव्यध्वनिसार" ग्रंथ का पूर्ण मनोयोग से स्वाध्याय कर आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त करें इसी भावना के साथ –

सौभागमल पाटनी	**नेमीचन्द पाटनी**
अध्यक्ष	**महामंत्री**
रवीन्द्र पाटनी फैमिली चैरिटेबल ट्रस्ट, मुम्बई	**पण्डित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट, जयपुर**

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दो शब्द

जिनेन्द्रभगवान के प्रवचन (दिव्यध्वनि) का सार कालजयी प्रवचनसार परमागम आचार्य कुन्दकुन्द की सर्वाधिक प्रचलित सशक्त संरचना है। समस्त जगत को ज्ञानतत्त्व और ज्ञेयतत्त्व (स्व-पर) के रूप में प्रस्तुत करनेवाली यह अमर कृति विगत दो हजार वर्षों से निरन्तर पठन-पाठन में रही है। आज भी विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में इसे स्थान प्राप्त है।

प्रमाण और प्रमेय व्यवस्था का प्रतिपादक यह ग्रन्थराज आचार्य कुन्दकुन्द की ऐसी प्रौढ़तम कृति है कि जिसमें वे आध्यात्मिक सन्त के साथ-साथ गुरु गम्भीर दार्शनिक के रूप में प्रस्फुटित हुए हैं, प्रतिष्ठित हुए हैं।

यद्यपि आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थाधिराज समयसार के समान इस पर भी आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी ने प्रवचन किये हैं; तथापि मुमुक्षु समाज में यह उतना अधिक प्रचलित नहीं हो पाया, जितना कि समयसार प्रचलित है। इसका एक कारण यह भी है कि समयसार पर हुए स्वामीजी के प्रवचन तो प्रवचनरत्नाकर नाम से प्रकाशित हो चुके हैं, पर प्रवचनसार पर हुए प्रवचन अभी तक हिन्दी भाषा में अप्रकाशित ही रहे।

चि. विनोदकुमार ने यह साहस किया और लगातार वर्षों तक अथक श्रम करके यह महान कार्य सम्पन्न किया है। इसके लिए उन्हें ज़ितना भी धन्यवाद दिया जाय, कम है। उन्होंने इस कार्य में इस बात का ध्यान रखा है कि स्वामजी के प्रवचन हूबहू अनुवादित हों।

डॉ. उत्तमचन्दजी सिवनी ने उन्हें आद्योपान्त मिलान करके देखा है। अत: अब इनकी प्रामाणिकता के बारे में कोई विकल्प करने की आवश्यकता नहीं है।

प्रथम भाग का प्रकाशन तो जून १९९९ में किया ही गया था, अब यह द्वितीय भाग भी आपके हाथों में है। मैं चाहता हूँ चि. विनोदकुमार इस कार्य को शीघ्रता से पूरा करें और फिर अन्य परमागमों पर हुए पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों को भी प्रकाश में लावें। मेरी मंगल कामनाएँ उनके साथ हैं –

२ मई २००१ ई. **डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल**

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्राक्कथन

भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य प्रणीत 'पवयणसारु' – प्रवचनसार ग्रन्थ पर आचार्य अमृतचन्द्रसूरि कृत अत्यन्त गम्भीर, अद्वितीय टीका तत्त्वप्रदीपिका है। इसमें जिनेन्द्र की दिव्यध्वनि का सार संगृहीत है। उक्त ग्रन्थ एवं टीका पर आध्यात्मिक संत श्री कानजीस्वामी के अतिशय सुगम एवं मर्मस्पर्शी प्रवचन गुजराती में हुए थे। उक्त प्रवचन 'श्री सद्गुरु प्रवचन प्रसाद' (सन् १९५५ में सोनगढ़ में प्रकाशित दैनिक पत्रिका, सम्पादक – श्री अमृतलाल नरशीभाई शेठ) में गुजराती भाषा में तो उपलब्ध थे किन्तु उनका हिन्दी अनुवाद आज तक नहीं हुआ था। छिन्दवाड़ा (म.प्र.) निवासी उत्साही युवक श्री विनोदकुमारजी जैन ने उक्त प्रवचनों का हिन्दी भाषान्तरण करके निश्चित ही एक अति महत्त्वपूर्ण, स्व-पर हितकारी एवं सराहनीय कार्य किया है।

आचार्य कुन्दकुन्द ने जहाँ एक ओर समयसार रचकर अध्यात्म की गंगा बहाई है, वहीं दूसरी ओर प्रवचनसार बनाकर आगम सागर के सैद्धान्तिक तत्त्वों का मंथन किया है। टीकाकार आचार्य अमृतचन्द्र तथा प्रवचनकार पू. गुरुदेव कानजी स्वामी ने प्रवचनसार के ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन, ज्ञेयतत्त्व प्रज्ञापन तथा चरणानुयोग सूचक चूलिका द्वारा मानों अध्यात्म, आगम तथा आचार-चरणानुयोग की त्रिवेणी प्रवाहित की है जिसमें अवगाहन करके भव्यजीव चिरकालीन संताप को मिटाकर अविनाशी अतीन्द्रिय आनन्द को प्राप्त कर सकते हैं।

उक्त अनुवाद का 'दिव्यध्वनिसार' शीर्षक के साथ प्रथम बार प्रकाशन होना अपने आप में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य है। श्री विनोदकुमारजी ने उक्त कार्य का सम्पादन बड़ी लगन, आस्था एवं सफलतापूर्वक किया है। इसके अनुवाद कार्य में उन्होंने अनुभवी विद्वानों से सम्पर्क कर मार्गदर्शन प्राप्त किया है तथा ग्रन्थ के भाषानुवाद को मूलभावानुगामी बनाने का सफल प्रयास किया है। मैंने भी उनके द्वारा कृत अनुवाद का शब्दशः अवलोकन एवं निरीक्षण किया है एवं आवश्यक संशोधन व सुझाव दिये, जिसे अनुवादक ने स्वीकार कर ग्रन्थकार, टीकाकार एवं गुजराती प्रवचनकार के द्वारा उद्घाटित तत्त्व का यथासम्भव यथावत् प्रकाशन करने

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

का प्रयास किया है।

श्री विनोदकुमाजी ने उक्त कार्य अत्यन्त निष्पृहभाव से आगम भक्ति से प्रेरित होकर, दिन-रात एक करके पूर्ण किया है। अनुवादक ने बिना कांट-छांट किए प्रवचनों के मूल भावों को यथावत् अनुवादित किया है। यह उनका प्रथम प्रयास है। छायानुवाद होने के कारण साहित्य की दृष्टि से किंचित् कमियाँ होने की सम्भावना है तथापि ग्रन्थ की उपयोगिता में कोई कमी नहीं आई है।

आदरणीय श्रीमान पं. नेमीचन्द पाटनी, जयपुर के बहुमूल्य मार्गदर्शन का अनुवादक ने पूरा-पूरा ध्यान रखा है। इसतरह हम निःसंकोच कह सकते हैं कि उक्त कृति का प्रकाशन परमानन्दस्वरूप अमृतरस के पिपासु भव्यजनों के हितार्थ तत्त्व स्वरूप प्रकट करने वाली साबित होगा। यही ग्रन्थकर्ता टीकाकार की टीका तथा प्रवचनकार के प्रवचनों का मूल अभिप्राय रहा है। अंत में पुनः अनुवादकजी को उक्त सफलता हेतु बधाई देता हुआ लेखनी को विराम देता हूँ।

'इति अलम्' *– डॉ. उत्तमचन्द जैन, प्राचार्य, सिवनी (म.प्र.)*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

जैनं जयतु शासनम्

देवाधिदेव श्री सीमंधर परमात्मा की दिव्यध्वनिं, जिसे परमोपकारी श्री कुन्दकुन्द आचार्यदेव द्वारा साक्षात् श्रवणकर, अपने और पर के मोक्ष के नाश के लिये पंचपरमागम में अवतरित किया तथा जिनपर श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव आदि द्वारा अमृतमयी टीका रची गई।

परमकृपालु पूज्य श्री कानजीस्वामी ने सनातन शाश्वत् सत्य दिगम्बर जैन धर्म के चारों अनुयोगों के शास्त्रों के मंथन से प्राप्त अमृतरस पान से कृतार्थ हो, परमसौख्यमयी मुक्तिदशा के स्वयं पथिक बन, दिग्भ्रांत जगत को निष्पृह करुणाभाव के वशीभूत हो अपनी चमत्कारी दिव्य-वाणी द्वारा सन्मार्ग प्ररूपणाकर अनगिनत जीवों को सही अर्थों में मुमुक्षु बनाया व मुक्तिपथ पर अग्रसर किया।

जीवन में अमृततुल्य चेतना का संचार करनेवाले जीवन शिल्पी परम आदरणीय बाबू श्री जुगल किशोरजी 'युगल' कोटावालों की अध्यात्म प्रेरणा व मार्गदर्शन इस कृति की नींव है। जिनके असीम उपकार का वर्णन करने के लिए शब्दसागर में शब्द नहीं है। यही भावना है कि सदा ही उनके इस निर्मल ज्ञान व प्रकाश से यह मुमुक्षु जगत आलोकित रहे।

पूज्य गुरुदेवश्री के मांगलिक समागम का सौभाग्य अनेक बार प्राप्त हुआ। उनकी वाणी सुनकर ऐसा प्रतीत होता था मानों जैसे कोई कर्ण-द्वार से अमृतरस पिला रहा हो – प्रत्येक आत्मप्रदेश में एक मस्ती सी भर जाती थी। सचमुच उनकी अध्यात्म देशना ने तीर्थंकर का विरह भुला दिया है। कहा भी है –

इस दुखम काल विकराल में, तेरो धर्म जहाँ चले।
हे नाथ काल चौथो तहाँ, ईति भीति सब ही टलै।।

पूज्य गुरुदेवश्री की आत्महितकारी वाणी समझकर ऐसा लगा मानो – मात्र यही मेरी ही नहीं वरन् प्राणीमात्र की अनादि की तलाश है। अतः सर्वत्र ही इसका प्रचार हो।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गुरु की महिमा वरणी न जाय।
गुरु नाम जपो मन-वचन-काय।।

श्रीमद्भगवतकुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत 'श्री प्रवचनसार' शास्त्र एवं उसकी परमपूज्य श्रीमद् अमृतचंद्राचार्यदेव विरचित तत्त्वप्रदीपिका टीका पर 'श्री सद्गुरु प्रवचन प्रसाद' वर्ष 1955 में प्रकाशित परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के गुजराती प्रवचनों के हिन्दी अनुवाद का यह दूसरा भाग आत्मार्थियों के करकमलों में समर्पित है।

प्रस्तुत प्रकाशन में सजग पाठकों के सुझावों को ध्यान में रखकर हर संभव सुधारों को अपनाने का प्रयास किया गया है। आगे भी मार्गदर्शन मिलता रहे इस विश्वास के साथ पाठकों द्वारा दिए गए सुझावों के लिए आभारी हूँ।

अनुवाद की प्रत्येक पंक्ति आदरणीय डॉ॰ उत्तमचंदजी जैन, सिवनी द्वारा काफी परिश्रम से मूल प्रति से मिलान किया गया है। जिसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। मैं विशेषरूप से आदरणीय श्री प्रकाशचंदजी जैन, बड़ा मंदिर छिन्दवाड़ा, आदरणीय पं॰ श्री अभयकुमारजी शास्त्री, छिन्दवाड़ा, श्री नीमेष भाई शाह, श्री हितेनभाई शाह, मुम्बई व अन्य साधर्मियों का हृदय से आभार स्वीकार करता हूँ कि जिन्होंने अनुवाद को लिखने, जाँचने आदि के काफी श्रमसाध्य कार्य में प्रत्यक्ष एवं परोक्षरूप से सहयोग दिया है।

आदरणीय श्री नेमीचंदजी पाटनी की तीव्र भावना एवं परमआदरणीय बाबूश्री जुगलकिशोरजी युगल, कोटा की प्रेरणा से निर्मित प्रस्तुत प्रति प्राणीमात्र के कल्याण में निमित्त बने इस भावना के साथ –

अनुवादक
विनोद जैन
जैन टेलिकॉम, पालिका बाजार
छिन्दवाड़ा (म॰प्र॰)

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनुक्रमणिका

क्रमांक	गाथा	पृष्ठ	क्रमांक	गाथा	पृष्ठ
	(सुख अधिकार)				
१.	५३	१	२२.	७४	१५२
२.	५४	२२	२३.	७५	१५६
३.	५५	३०	२४.	७६	१६३
४.	५६	३९	२५.	७७	१७०
५.	५७	४६	२६.	७८	१७७
६.	५८	५०	२७.	७९	१८४
७.	५९	५५	२८.	८०	१८७
८.	६०	६६	२९.	८१	२०५
९.	६१	८०	३०.	८२	२१०
१०.	६२	८८	३१.	८३	२२२
११.	६३	९८	३२.	८४	२३२
१२.	६४	१०२	३३.	८५	२३८
१३.	६५	१०८	३४.	८६	२५५
१४.	६६	११४	३५.	८७	२६४
१५.	६७	११८	३६.	८८	२८७
१६.	६८	१२१	३७.	८९	३००
	(शुभपरिणाम अधिकार)		३८.	९०	३०४
१७.	६९	१३२	३९.	९१	३१३
१८.	७०	१३६	४०.	९२	३१८
१९.	७१	१३९	४१.	श्लोक ५	३३१
२०.	७२	१४३	४२.	श्लोक ६	३३३
२१.	७३	१४८	४३.	परिशिष्ट	३३४

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हमारे महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

ग्रंथ का नाम	मूल्य(रु.)
मोक्षशास्त्र	60
चौबीस तीर्थंकर महापुराण	50
बृहद जिनवाणी संग्रह	45
रत्नकरण्डश्रावकाचार/समयसार	40
मोक्षमार्ग प्रवचन भाग-1	35
प्रवचनसार/सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका भाग 2(उत्तरार्ध)	30
समयसार नाटक/मोक्षमार्गप्रकाशक	25
सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका भाग 2 (पूर्वार्द्ध) एवं भाग 3 /बृहद द्रव्यसंग्रह	25
जिनेन्द्र अर्चना/दिव्यध्वनिसार प्रवचन/नियमसार	25
योगसार प्रवचन/तीनलोकमंडल विधान/समयसार कलश/चन्तन की गहराईयाँ	20
प्रवचनरत्नाकर भाग 3,4,8,9/नयप्रज्ञापन/समाधितंत्र प्रवचन	20
पं. टोडरमल व्यक्तित्व और कर्तृत्व/समयसार अनुशीलन भाग 1,2,3,4	20
आचार्य अमृतचन्द्र : व्यक्तित्व और कर्तृत्व	20
पंचास्तिकाय संग्रह/सिद्धचक्र विधान/ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	18
भावदीपिका/कार्तिकेयानुप्रेक्षा/प्रवचनरत्नाकर भाग 6	16
परमभावप्रकाशक नयचक्र/पुरुषार्थसिद्ध्युपाय/ज्ञानगोष्ठी	16
सूक्तिसुधा/आत्मा ही है शरण/आत्मानुशासन/संस्कार/इन भावों का फल क्या होगा	15
इन्द्रध्वज विधान/धवलासार/प्रवचनरत्नाकर भाग 2/रामकहानी/गुणस्थान विवेचन	15
सुखी जीवन	14
सर्वोदय तीर्थ/प्रवचनरत्नाकर भाग 7/सत्य की खोज/निर्विकल्प आत्मानुभूति के पूर्व	12
बिखरे मोती/तीर्थंकर भगवान महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ	12
श्रावकधर्मप्रकाश/कल्पद्रुम विधान	11
वी.वि. पाठमाला भाग 1,2,3/वी.वि. प्रवचन भाग 4/चौबीस तीर्थंकर पूजा	10
तत्त्वज्ञान तरंगणी/रत्नत्रय विधान/भक्तामर प्रवचन/बारह भावना : एक अनुशीलन	10
धर्म के दशलक्षण/विदाई की बेला /पंचमेरु नंदीश्वर विधान/सुखी होने का उपाय भाग 6,7	10
जैनतत्त्व परिचय/करणानुयोग परिचय/आ. कुन्दकुन्द और उनके टीकाकार	10
कालजयी बनारसीदास	10
बालबोध भाग 1,2,3/तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग 1,2/छहढाला(सचित्र)/भ. ऋषभदेव	8
शीलवान सुदर्शन /सुखी होने का उपाय भाग 2,3/प्रशिक्षण निर्देशिका/जैन विधि-विधान	8
क्रमबद्धपर्याय/बारसाणुवेक्खा	8
गागर में सागर/आप कुछ भी कहो/बीस तीर्थंकर विधान/170 तीर्थ. विधान	7
चौबीस तीर्थंकर विधान/सुखी होने का उपाय भाग 1 से 4	7
पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव/जैनधर्म की कहानियाँ भाग 1 से 13 तक/अहिंसा के पथ पर	6
जिनवरस्य नयचक्रम्/णमोकार महामंत्र/कारणशुद्धपर्याय/वीतराग-विज्ञान प्रवचन भाग-5	6
चौसठ ऋद्धि विधान/दशलक्षण विधान/आचार्य कुन्दकुन्ददेव/पंचपरमेष्ठी विधान	6
विचार के पत्र विकार के नाम	6
आचार्य कुन्दकुन्द और उनके पंच परमागम/परीक्षामुख/मुक्ति का मार्ग/रत्नत्रय विधान	5
युगपुरुष कानजीस्वामी/सामान्य श्रावकाचार/अलिंगग्रहण प्रवचन/जिनधर्म प्रवेशिका	5
मैं कौन हूँ/सत्तास्वरूप/वीर हिमाचलतैं निकसी/समयसार : मनीषियों की दृष्टि में	4
व्रती की ग्यारह प्रतिमाएँ/पदार्थ-विज्ञान/मैं ज्ञानानन्दस्वभावी हूँ/महावीर वंदना (कैलेण्डर)	3
वस्तुस्वातंत्र्य/भरत-बाहुबली नाटक/शास्त्रों के अर्थ समझने की पद्धति	3

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचनसार गाथा ५३

अथ ज्ञानादभिन्नस्य सौख्यस्य स्वरूपं प्रपञ्चयन् ज्ञानसौख्ययोः हेयोपादेयत्वं चिन्तयति-

अत्थि अमुत्तं मुत्तं अदिंदियं इंदियं च अत्थेसु ।
णाणं च तहा सोक्खं जं तेसु परं च तं णेयं ॥५३॥

अब, ज्ञान से अभिन्न सुख का स्वरूप विस्तारपूर्वक वर्णन करते हुए ज्ञान और सुख की हेयोपादेयता का (अर्थात् कौन सा ज्ञान तथा सुख हेय है और कौनसा उपादेय है वह) विचार करते हैं :-

अनमूर्त मूर्त तथा अतीन्द्रिय इन्द्रियज सुख ज्ञान जो।
है अर्थ सम्बन्धी उन्हीं में ग्राह्य जानो मुख्य जो ॥५३॥

अन्वयार्थ :- (अर्थेषु ज्ञानं) पदार्थ सम्बन्धी ज्ञान **(अमूर्त मूर्त)** अमूर्त या मूर्त, **(अतीन्द्रियं ऐन्द्रियं च अस्ति)** अतीन्द्रिय या ऐन्द्रिय होता है; **(च तथा सौख्यं)** और इसीप्रकार (अमूर्त या मूर्त, अतीन्द्रिय या ऐन्द्रिय) सुख होता है। **(तेषु च यत् परं)** उसमें जो प्रधान - उत्कृष्ट है **(तत् ज्ञेयं)** वह उपादेयरूप जानना।

टीका :- यहाँ, (ज्ञान तथा सुख दो प्रकार का है-) एक ज्ञान तथा सुख मूर्त और [१]इन्द्रियज है; और दूसरा (ज्ञान तथा सुख) अमूर्त और अतीन्द्रिय है। उसमें जो अमूर्त और अतीन्द्रिय है वह प्रधान होने से उपादेयरूप जानना।

वहाँ, पहला ज्ञान तथा सुख मूर्तरूप - ऐसी क्षायोपशमिक उपयोगशक्तियों से उस-उस प्रकार की इन्द्रियों के द्वारा उत्पन्न होता हुआ पराधीन होने से [२]कादाचित्क, क्रमशः [३]प्रवृत्त होनेवाला, [४]सप्रतिपक्ष और [५]सहानिवृद्धि है इसलिये

---

[१]इन्द्रियज = इन्द्रियों द्वारा उत्पन्न होनेवाला; ऐन्द्रिय। [२]कादाचित्क = कदाचित्, कभी-कभी होनेवाला; अनित्य। [३]मूर्तिक इन्द्रियज ज्ञान क्रम से प्रवृत्त होता है; युगपत् नहीं होता; तथा मूर्तिक इन्द्रियज सुख भी क्रमशः होता है, एक ही साथ सर्व इन्द्रियों के द्वारा या सर्व प्रकार से नहीं होता। [४]सप्रतिपक्ष=प्रतिपक्ष-विरोधी सहित। (मूर्त इन्द्रियज्ञान अपने प्रतिपक्ष अज्ञान सहित ही होता है, और मूर्त इन्द्रियज सुख उसके प्रतिपक्षभूत दुःख सहित ही होता है।) [५]सहानिवृद्धि = हानिवृद्धि सहित।

गौण है - ऐसा समझकर वह हेय है अर्थात् छोड़ने योग्य है; और दूसरा ज्ञान तथा सुख अमूर्तरूप - ऐसी [१]चैतन्यानुविधायी एकाकी आत्मपरिणामशक्तियों से तथाविध अतीन्द्रिय स्वाभाविक-चिदाकार-परिणामों के द्वारा उत्पन्न होता हुआ अत्यंत आत्माधीन होने से नित्य युगपत् प्रवर्तमान, निःप्रतिपक्ष और हानिवृद्धि से रहित है, इसलिए मुख्य है - ऐसा समझकर वह (ज्ञान और सुख) उपादेय अर्थात् ग्रहण करने योग्य है ॥५३॥

गाथा ५३ पर प्रवचन

यह अधिकार ज्ञानस्वभाव का है। इसमें स्वाभाविक ज्ञान को आदरणीय और इन्द्रियज्ञान को हेय बताया गया है। ज्ञान के साथ आनन्द होता है इसीलिये अब, यहाँ आनन्द की बात करते हैं। जैसे आत्मा ज्ञानस्वरूप है वैसे ही आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द स्वरूप है। उसमें दो भाग पड़ेंगे जिसमें इन्द्रियज्ञान व इन्द्रियसुख छोड़ने लायक है और अतीन्द्रियज्ञान व अतीन्द्रिय आनन्द ग्रहण करने लायक है तथा संयोग तो जानने लायक है।

संयोग और पर की रुचि छोड़ना चाहिये। पुण्य-पाप की तो रुचि छोड़ने योग्य है ही किन्तु इन्द्रिय के अवलम्बन से सापेक्ष ज्ञान करे वह भी छोड़ने योग्य है - ऐसा यहाँ कहते हैं। जिसे सुखी होना हो अथवा धर्म करके शान्ति चाहिये हो उसे पुण्य-पाप के विकल्प का व इन्द्रियों का तो आश्रय करने लायक नहीं है किन्तु इन्द्रियज्ञान जो प्रगट है उस ज्ञान का भी आश्रय करने योग्य नहीं है अपितु अतीन्द्रियज्ञान आदरणीय है।

राग की मंदता करके जो ज्ञान का विकास दिखाई देता है वह इन्द्रिय सापेक्ष है; यह ज्ञान पराधीन है-दुःखदायक है। यहाँ, ऐसे निमित्तों को लाऊँ और यह विकल्प करूँ यह बात तो है ही नहीं किन्तु प्रगटरूप ज्ञान का लक्षण जो इन्द्रिय तरफ जाता है, वह इन्द्रियज्ञान भी आदरणीय नहीं है अपितु स्वभाव तरफ का ज्ञान आदरणीय है।

---

[१] *चैतन्यानुविधायी = चैतन्य के अनुसार वर्तनेवाली; चैतन्य के अनुकूलरूप से-विरुद्धरूप से नहीं वर्तनेवाली।*

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रश्न :- यदि हमारे क्रमबद्ध में इन्द्रियज्ञान आनेवाला होगा तो ?

समाधान :- जो ऐसा माने उसे क्रमबद्ध का निर्णय नहीं है। यदि क्रमबद्ध का निर्णय किया हो तो अंतर में झुकाव हुए बिना नहीं रहता। इन्द्रिय ऊपर लक्ष्यवाले को क्रमबद्ध पर्याय का निर्णय नहीं है। ज्ञानपर्याय क्रमबद्ध किसकी है ? पर्याय, ज्ञानस्वभाव की है - ऐसा निर्णय होनेपर वह इन्द्रियज्ञान को हेयरूप जानता है।

मिथ्यादृष्टि का ग्यारह अंग का क्षयोपशमज्ञान, बबूल के फूल के समान किसी भी काम का नहीं है।

जो ज्ञान, स्वभाव की तरफ झुका है वह आदरणीय है। कर्म के उदय की बात तो एक तरफ रही, यहाँ तो कहते हैं कि जो ज्ञानपर्याय जड़ तरफ झुकती है वह ज्ञान (पर्याय) भी मिथ्या है-हेय है। स्वभाव तरफ झुकनेवाले ज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहते हैं। अल्प इन्द्रियज्ञान ज्ञेयरूप रहता है। इन्द्रियज्ञान आदरणीय नहीं अपितु हेय है। क्षयोपशमज्ञान निमित्त का अवलम्बन लेता है। जो उसे हितरूप माने उसे क्षयोपशम सम्यक्त्व नहीं होता। ज्ञातास्वभाव का अवलम्बन लेकर अतीन्द्रियज्ञान प्रगट हो वही सच्चा ज्ञान है।

ज्ञानपर्याय स्वभाव का अवलम्बन लेकर सम्यक्दर्शन हो उस जीव को क्षयोपशम सम्यक्त्व होता है। जो ज्ञान निमित्त का अवलम्बन लेता है वह ज्ञान मिथ्या है उसे मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र है। इन्द्रिय के क्षयोपशमज्ञान की यहाँ कोई कीमत नहीं है। मिथ्यादृष्टि का ज्ञान ग्यारह अंग नौ पूर्व का होता है तो भी उस ज्ञान की यहाँ कोई कीमत नहीं है।

बबूल का फूल सुगंध रहित होता है और देखने में पीला होता है किन्तु सुगन्ध रहित फूल की कोई कीमत नहीं होती। आत्मा ज्ञानस्वभावी है। ध्रुवस्वभाव का अवलम्बन लेकर जो ज्ञान होता है वह आदरणीय है किन्तु निमित्त का अवलम्बन लेकर जो प्रगट होता है वह हेय है। वह बबूल के फूल जैसा किसी काम का नहीं है। दया-दान-व्रत में सम्यक्त्व नहीं है। संयोग से सम्यक्त्व नहीं होता और ना ही राग मंद करके प्रगट हुए क्षयोपशमज्ञान से सम्यक्त्व होता है; अपितु आत्मा के आश्रय से सम्यक्त्व होता है।

अब, ज्ञान से अभिन्न ऐसे सुख का स्वरूप विस्तार पूर्वक वर्णन करते हुए

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञान और सुख की हेयोपादेयता का अर्थात् कौन सा ज्ञान तथा सुख हेय है और कौन सा उपादेय है वह विचार करते हैं।

जहाँ अतीन्द्रियज्ञान प्रधान हुआ वहाँ इन्द्रियज्ञान गौण हो जाता है। मिथ्यादृष्टि इन्द्रियज्ञान को प्रधानता देता है। जड़ के अवलम्बन से होनेवाले ज्ञान को मुख्यता देनेवाला सम्यक्दृष्टि नहीं होता। इसीलिये अतीन्द्रियज्ञान और सुख की उपादेयता जानना तथा इन्द्रियज्ञान और इन्द्रियसुख को हेय जानना।

यहाँ पूर्णज्ञान और पूर्णसुख की बात है। सर्वज्ञ का अतीन्द्रियज्ञान और सुख पूर्ण है - ऐसा निर्णय करनेवाले की दृष्टि स्वभाव सन्मुख होती है; उसे अतीन्द्रियज्ञान और सुख आंशिक प्रगट होता है वह सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। जैसे अतीन्द्रियज्ञान और इन्द्रियज्ञान - ऐसे दो प्रकार हैं; वैसे ही अतीन्द्रियसुख और इन्द्रियसुख - ये दो प्रकार हैं। उसमें अतीन्द्रियज्ञान और सुख उत्कृष्ट है। इसप्रकार उसकी उपादेयता जानना।

इन्द्रियज्ञान और सुख इन्द्रिय का अवलम्बन लेता है इसलिये उसे मूर्त कहते हैं। जैसे ज्ञान दो प्रकार का है; वैसे ही सुख भी दो प्रकार का है। जैसे एक ज्ञान मूर्त और इन्द्रिय ही है; वैसे ही एक सुख भी मूर्त और इन्द्रिय ही है। अज्ञानी का ज्ञान और सुख तो वास्तव में अमूर्त है किन्तु वह मूर्त इन्द्रिय का अवलम्बन लेता है इसीलिये उसे मूर्त कहा है।

आत्मा व्यवहार से मूर्त है - ऐसा जो शास्त्र में कथन आता है वह निमित्तता बताने के लिये है। आत्मा हर्ष करे अथवा राग करे वह पाँच इन्द्रियों के निमित्त से होनेवाली आत्मा की सुख अथवा आनन्द की अमूर्त विपरीत अवस्था है; और उससमय का इन्द्रियज्ञान अमूर्त है किन्तु वह इन्द्रिय का अवलम्बन करती है इसलिये उसे मूर्त कहा है।

इन्द्रिय सम्बन्धी सुख और हर्ष इन्द्रिय का अवलम्बन लेता है इसलिये उसे मूर्त कहा है और वह इन्द्रिय से उत्पन्न हुआ कहा जाता है; किन्तु इन्द्रियां कुछ भी सुख नहीं देती लेकिन जब वह जड़ इन्द्रिय के सम्बन्ध से राग करके उनकी तरफ झुकता है तब वह ज्ञान और सुख स्वयं से उत्पन्न होता है। इसप्रकार वह निमित्त की सापेक्षता से उत्पन्न हुआ है इसीलिये उसे मूर्त कहा है। जड़ पदार्थ उसे अपनी ओर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

झुकाव नहीं कराता अपितु वह स्वयं उस तरफ का झुकाव करता है।

शंका :- यहाँ उसे मूर्त कहा है तो क्या उसमें स्पर्श, रस, गंध वर्ण आ गए हैं?

समाधान :- नहीं। क्योंकि दोनों के बीच में अत्यन्त अभाव है। विषयों में जो कौतुहलता-हास्य होता है वह आनन्द की विपरीत अवस्था है किन्तु वहां निमित्त के ऊपर लक्ष्य जाता है इसीलिये उसे मूर्त और इन्द्रिय ही कहा है।

आत्मा के आश्रय से प्रगट होनेवाला पूर्ण अतीन्द्रियज्ञान और सुख, उपादेय है। यह ज्ञान और सुख,अमूर्त और अतीन्द्रिय है। यह अमूर्त और अतीन्द्रिय ज्ञान और सुख है; जो प्रधान होने से उपादेयपने जानना। अर्थात् पूर्ण अतीन्द्रियज्ञान और पूर्ण अतीन्द्रिय सुख उपादेय है - ऐसा जाननेवाले की दृष्टि संयोग और राग के ऊपर नहीं जाती किन्तु स्वभाव की तरफ जाती है।

'पूर्णता के लक्ष्य से शुरुवात होती है।'

तेरी प्रभुता कहाँ पर सुरक्षित है और वह कहाँ पर लुट जाती है यह निश्चित कर। यह आत्मा वस्तु है, जो ज्ञान और आनन्द का भंडार है। जो वर्तमान प्रगट हुई पर्याय है, वह तो स्वभाव का अंश है लेकिन वह अंश, जड़ का अवलम्बन लेता है - यह भावइन्द्रिय खण्ड-खण्ड है।

तथा जो सुख की कल्पना होती है वह अरूपी है किन्तु रूपी पदार्थ की तरफ के झुकाव के कारण उसे रूपी कहा है। जैसे राग-द्वेष अपनी पर्याय में होते हैं किन्तु निमित्त के लक्ष्य से होते हैं, वे स्वभावभावरूप नहीं है। जिस भाव से तीर्थंकर नाम कर्म बन्धता है वह भाव भी पर द्रव्य है और मूर्त है; उसीप्रकार इन्द्रियज्ञान भी मूर्त है-पर द्रव्य है। ज्ञान की पर्याय इन्द्रिय के अवलम्बन से विविधतारूप होती है और आनन्द की विपरीत अवस्था इन्द्रिय के अवलम्बन से होती है इसलिये वे सभी मूर्त हैं।

यह बात वाद-विवाद से समझ में आए - ऐसी नहीं है; कहा भी है - 'खोजी जीवे, वादी मरे'। इसीलिये सच्ची बात को खोजना (शोध करना) चाहिये। अज्ञानी अपनी मानी हुई इज्जत के लिये मर जाता है तो भी कोई सहायता करने नहीं आता। अपनी परमेश्वरता अपने में है, वह किसी का कारण और कार्य नहीं होती।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

इन्द्रिय के निमित्त से जो ज्ञान होता है और कौतुहल होता है वह मूर्त है - दु:खरूप है। श्रीखण्ड, पूड़ी अथवा शरीर में सुख नहीं है। यह सुख तो अपनी धारणा के अनुसार होता है और वह भी मात्र कल्पना है।

आत्मा बड़ा प्रभु है; उसके साथ तो बात न करे और निमित्त के साथ जुड़े तो वह ज्ञान और सुख मूर्त है। यह बात सूक्ष्म है इसीलिये इसकी चर्चा जहाँ-तहाँ करने जैसी (करने लायक) है। आत्मा ज्ञानस्वभाव है, उसकी प्रगट हुई ज्ञानपर्याय - क्षयोपशम मूर्त है।

कितने ही जीव दया-दान अथवा यात्रा करने से धर्म मानते हैं। कोई तो पर्वत के ऊपर डोली पर बैठकर जाते हैं किन्तु भगवान पर्वत में नहीं रहते। तेरा भगवान अंतर में पड़ा है जब तक उसका निरीक्षण (पहचान) नहीं करे तबतक प्रभु का पता नहीं लगता।

अज्ञानी ९९ यात्रा करने से कल्याण मानता है; किन्तु अनन्तबार यात्रा करे तो भी एक भव भी घट (कम हो) जावे - ऐसा नहीं होता। अज्ञानी को यात्रा की कीमत है किन्तु ज्ञानस्वभाव की नहीं। शुभराग के काल में राग होता है किन्तु उसमें सर्वस्व मानना वह- अधर्म है। तथा कोई सिद्ध गिरी (सिद्धक्षेत्र) में धर्म मानता है किन्तु वह तो निमित्तमात्र है।

यहाँ कहते हैं कि राग की मंदता से प्रगट हुई ज्ञानपर्याय हेय है इसीलिये जो उसे आदरणीय माने वह मिथ्यादृष्टि है - पर्यायबुद्धि है। उसे खबर ही नहीं है कि धर्म की शुरुवात कैसे होती है। इस आत्मा में शांतरस विद्यमान है किन्तु जो अंतर में तो झुकाव नहीं करे और राग की मंदता करे तो उसे ज्ञान अथवा सुख नहीं होता।

इन्द्रियाँ, ज्ञान और सुख को पराधीन नहीं करती अपितु आत्मा स्वयं पराधीन होता है। यहाँ पहला इन्द्रियज्ञान और सुख मूर्त है - ऐसा कहा क्योंकि वह इन्द्रिय के झुकाववाला है इसीलिये उसे मूर्त कह दिया है।

आत्मा पूर्ण ज्ञान और आनन्दस्वरूप है; उसकी पर्याय में जो ज्ञान का विकास है उसका झुकाव संयोग, इन्द्रियों और मन में जाता है। इसीलिये यह कहा कि वह इन्द्रियों द्वारा उत्पन्न होता है; किन्तु 'निमित्त उसे पराधीन करता है' - ऐसा इसका अर्थ नहीं है। वास्तव में इन्द्रियों की तरफ स्वयं झुकता है इसीलिये पराधीन

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होता है। निमित्त तरफ झुकाव करेगा तो संसार है और स्वभाव तरफ झुकाव करेगा तो - धर्म है। यह तेरे हाथ में है कि तू इनमें से किसी के भी तरफ जुड़े।

यहाँ पहले ज्ञान का अर्थ अनादि से समझना क्योंकि अनादि से ज्ञान का झुकाव इन्द्रिय तरफ है। उन-उन प्रकार की इन्द्रियों द्वारा उत्पन्न होनेवाला ज्ञान पराधीन होता है। ज्ञान की पर्याय अंशी ऐसे आत्मा की तरफ झुकाव करने के बदले निमित्त ऊपर झुकती है इसीलिये उसे पराधीन कहा है। सुख भी इसी तरह पराधीन है। इसप्रकार ज्ञान और सुख को पर वस्तुएं आधीन नहीं करती किन्तु स्वयं पराधीन होता है। ज्ञान का सामान्यस्वभाव तरफ झुकना अथवा निमित्त तरफ झुकना वह अपने अधिकार की बात है। परवश होता है वह भी स्वयं के कारण है।

इन्द्रियज्ञान और सुख अनित्य, क्रमिक और सप्रतिपक्ष है इसलिये छोड़ने योग्य है। इन्द्रियज्ञान और सुख दोनों पराधीन है। क्षयोपशमज्ञान का झुकाव इन्द्रिय तरफ जाता है और राग करके सुख मानता है किन्तु वह विषयों का सुख पराधीन है किसी समय उत्पन्न होता है इसीलिये अनित्य है - अनित्य कल्पना है जो बदलती जाती है।

तथा जैसे इन्द्रियज्ञान क्रम से प्रवर्तता है - युगपद् नहीं होता; वैसे ही इन्द्रिय सुख भी क्रम से प्रवर्तता है किन्तु युगपद् नहीं होता। अर्थात् जब रूप के सुख की कल्पना होती है तब स्पर्श के सुख की कल्पना नहीं होती। पर्याय बुद्धिवाला अंश का अवलम्बन करता है इसीलिये उसे रस खाते समय जब रस का हर्ष होता है, उस समय उसे रूप का हर्ष नहीं होता और रूप के समय कमाई का हर्ष नहीं होता। इसप्रकार वह दु:ख का ही अनुभव करता है।

पर तरफ का झुकाव वह एकान्त दु:ख है और स्व तरफ का झुकाव वह एकान्त सुख है। पर तरफ में एकान्त पराधीनता है किञ्चित भी सुख अथवा स्वाधीनता नहीं है।

इन्द्रियज्ञान और इन्द्रियसुख प्रतिपक्ष सहित है। मूर्त इन्द्रियज्ञान इसके प्रतिपक्ष अज्ञान सहित है और मूर्त इन्द्रियसुख उसके प्रतिपक्षभूत दु:ख सहित होता है; क्योंकि शरीर अनुकूल हो (अच्छा हो) किन्तु यदि उसे पूछने (मान-सम्मान प्राप्त करने) की व्याधी हो और कोई नहीं पूछे तो दु:ख मानता है। यह इन्द्रिय तरफ के

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

झुकाव की पीड़ा है किन्तु यह संयोग की पीड़ा नहीं है। जिस क्षण सुख मानता था उस क्षण के बाद ही दु:ख मानने लगता है; इसतरह सुख की कल्पना बदलती है।

जिसे आत्मा का काम अथवा हित करना हो उसी के लिये यह बात है। कारण परमात्मा स्वयं ध्रुव है उसके अवलम्बन से सम्यग्ज्ञान और आनन्द होता है और इन्द्रिय के अवलम्बन से होनेवाला ज्ञान और सुख दु:खदायक है।

इन्द्रियज्ञान और सुख हानि-वृद्धिवाला है इसीलिये उससे दृष्टि फेरकर स्वभाव की तरफ देख। चारों तरफ से अग्नि लगी हो और उसमें कोई मनुष्य घिर जाय तब वह बचने के लिये छटपटाता है किन्तु एक समय में सम्पूर्ण आत्मा पड़ा है उसे नहीं देखता।

'नजर नी आळसे न देखा नारायण हरि'

स्वयं आत्मा नारायण है उसे नहीं देखता किन्तु इन्द्रियाधीन ज्ञान में कल्पना करके सुख मानता है। इन्द्रियसुख और ज्ञान हानि-वृद्धि सहित है।

देखों ! प्रथम पाँच लाख की कमाई हो लड़का-लड़की, बहू आदि संयोग हो किन्तु मृत्यु होने पर हानि दिखाई देती है; इसीलिये पर में सुख नहीं है। सत् ज्ञान और आनन्द अंतर में भरा है उसे देख। इन्द्रियसुख अर्थात् आकुलता। लड़का पाँच हजार की तनखा (पगार) लाता हो और समधी सम्बंधी अच्छे हों तो वहाँ अज्ञानी हर्ष मानता है किन्तु वे तो बदल जाते हैं। एक करोड़ का आसामी हो वह भी भूकम्प आने पर गरीब हो जाता है। कदाचित् पुण्य हो और बच जाय तो भी उसे भाग्यवान नहीं कहते; क्योंकि **चैतन्य प्रभु के अवलम्बन बिना भाग्यवान नहीं होता।**

परमात्मा को अतीन्द्रिय सुख है - ऐसा निर्णय करने जाय तो आनन्द स्वभाव अन्तर में है - ऐसा ख्याल आवे तो आनन्द प्रगट हो और स्वभाव के ऊपर लक्ष्य जाय। अहो ! भगवान आनन्द स्वरूप है और मैं भी उन्ही की जाति का हूँ - ऐसे स्वभाव तरफ झुकाव होनेपर पूर्ण ज्ञान और आनन्द की प्रतीति आती है और फिर पूर्ण होता है। इसीलिये यहाँ कहा है कि - इन्द्रिय तरफ के झुकाव का ज्ञान और सुख हेय अर्थात् छोड़न योग्य है; इसीप्रकार दया-दानादि के परिणाम हेय अर्थात् छोड़ने योग्य हैं; मात्र ज्ञानस्वभाव तरफ का झुकाव उपादेय है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा में ज्ञान और आनन्द भरा है, उसमें से ज्ञान और आनन्द की प्राप्ति होती है। इस देह में रहा हुआ आत्मा देह से पृथक है। देह दृश्य पदार्थ है। इसका दृष्टा-ज्ञाता आत्मा है वह अनादि अनन्त है। जो है उसकी उत्पत्ति नहीं होती, और जो है उसका नाश होकर (वह) दूसरे में नहीं मिलता।

आत्मा का अस्तित्त्व क्या है ?

देह से आत्मा भिन्न है क्योंकि देह छूट जाती है और आत्मा रह जाता है। जो चीज होती है वह नई नहीं होती; और जो होती है वह सर्वथा नहीं जाती। जो है उसका रूपान्तर-देशान्तर होता है। प्रत्येक आत्मा देह से भिन्न है...है...है - ऐसा अनादि-अनन्त है। आत्मा किसी संयोग से उत्पन्न नहीं हुआ है; वैसे ही उसका नाश होकर वह किसी में मिल जाय - ऐसा भी वह नहीं है। जो 'है' उसकी आदि नहीं होती अर्थात् वह अनादि है; और जो 'है' उसका नाश नहीं होता इसलिये वह अनन्त है। आत्मा है...है...है - ऐसा अनादि -अनन्त है। इसका अन्तरंग स्वभाव क्या है ? इसे जीव ने अनन्त काल में जाना नहीं। ज्ञान और आनन्द उसका स्वरूप है।

जैसे प्रत्येक लेंडीपीपर के दाने में चौंसठपुटी ताकत (तिखास) भरी है। तो क्या वह तिखास पत्थर में से आती है ? नहीं, यदि पत्थर से आती हो तो चूहे की लेड़ी में से भी तिखास आना चाहिये किन्तु ऐसा नहीं होता। लेंडीपीपर में प्राप्त की प्राप्ति है। जो है वह बाहर प्रगट होता है। चौंसठपुटी अर्थात् सोलह आने-चौंसठ पैसा अर्थात् रुपया; इसतरह पूर्णता बताते हैं। उसमें जो चौंसठपुटी ताकत भरी है; यदि उस स्वभाव की व्यक्तता संयोग के कारण होती हो तो चूहे की लेंडी में से भी तिखास आना चाहिये। इसीलिये जिसके अन्दर शक्तिरूप तिखास है वह प्राप्त होती है।

लेंड़ीपीपर का सत्त्व तिखास से भरा है और उसका रंग बाहर से काला है किन्तु अन्दर में हरा होने की ताकत है। पूर्ण तिखास प्रगट होनेपर उसके साथ हरापन सम्पूर्ण प्रगट होता है, इसीलिये पीपर में तिखास और हरापन दोनों भरी है वह बाहर प्रगटरूप होती है। जैसे लाखों पीपर हो तो उनमें तिखास और हरेपन की शक्ति है जो उनमें से प्रगट होती है। वैसे ही देह सहित आत्मा, भिन्न-भिन्न है। जैसे डब्बे में रखी हुई शक्कर डब्बेरूप नहीं होती और डिब्बा शक्कररूप नहीं होता; वैसे ही शरीर आत्मारूप नहीं होता और आत्मा शरीररूप नहीं होता। आत्मा में अंतर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

में ज्ञान और आनन्द शक्तिरूप से भरा हुआ है वह प्रगट होता है।

जैसे दियासलाई के ऊपरी ज्वलनशील भाग (रोगन) में जो अग्नि भरी है वह प्रगट होती है। उसमें से लपट होती है किन्तु अन्य किसी तृण-लकड़ी को घिसने से अग्नि प्रगट नहीं होती; इसलिये जिसमें होता है उसमें से आता है और जिसमें नहीं होता उसमें से नहीं आता; वैसे ही आत्मा 'ज्ञ' स्वभावी है उसमें से ज्ञान प्रगट होता है।

पर में सुख की कल्पना करके अज्ञानी जीव आकुलता में सुख मानता है।

जो ज्ञानपर्याय इन्द्रिय का अवलम्बन करती है वह ज्ञानपर्याय अपूर्ण है, क्योंकि वर्तमान अल्पज्ञता इन्द्रिय का अवलम्बन लेकर काम करती है इसलिये वह पराधीन है। अज्ञानी अनुकूल-प्रतिकूल संयोगों में सुख-दुःख की कल्पना करता है किन्तु पर पदार्थ में सुख दुःख नहीं है।

आत्मा में सुख और सर्वज्ञ शक्ति भरी है। कोई भी पुरुष त्रिकालवेत्ता होता है वह अंतर 'ज्ञ' स्वभाव भरा पड़ा है उसमें से प्रगट होता है; किन्तु यदि ज्ञान, इन्द्रिय का अवलम्बन ले तो वह ज्ञान दुःखदायक है और यदि, 'मेरा स्वभाव पूर्ण ज्ञान से भरा हुआ है और मेरा ज्ञान मेरे से होता है' - ऐसा निर्णय करे तो सुख प्रगट होता है। सुख मेरे अंतर में है - ऐसा नहीं माननेवाला लड्डू खाने से बहुत सुख प्रगट होता है यह मानता है किन्तु ऐसा नहीं होता।

अज्ञानी आबरू (इज्जत-प्रतिष्ठा) में सुख मानता है। अब यदि इसमें सुख हो तो किसी आदमी को नौकरी रखकर उसके द्वारा अपनी महिमा का बखान कराता रहे तो ऐसा करने पर उसको कंटाला नहीं आना चाहिये। किन्तु इतने समय से अधिक नहीं बोले तो ही ठीक है - ऐसा मानता है। इस तरह वहाँ मर्यादा आ जाती है किन्तु आनन्द में मर्यादा नहीं होती। तथा स्पर्श-रस-गंध -वर्ण के भोग में अज्ञानी सुख की कल्पना करता है किन्तु उसमें सुख नहीं है क्योंकि सुख तो अंतर में भरा है।

ज्ञान और आनन्द अंतर में भरा है किन्तु देहादि पर पदार्थों में नहीं।

देखो! कच्चे चने को सीधे खाने से तुरास लगेगी और बोया जाय तो वह फिर से ऊगेगा। उस चने को सेकने से भी मिठास आती है वह कहाँ से आती है? यदि सेकने से आती हो तो कंकर को सेकने से भी मिठास आना चाहिये किन्तु ऐसा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं होता। कच्चे चने में जो मिठास भरी पड़ी है वह व्यक्त दशारूप होती है। मिठास प्रगट होनेपर, तुराश का नाश होता है और वह बोने पर फिर नहीं ऊगता। उसीप्रकार आत्मा में ज्ञान और आनन्द भरे पड़े हैं , उसकी अंतर श्रद्धा-ज्ञान और रमणता करने पर ज्ञान और आनन्द प्रगट होता है।

इन्द्रिय तरफ का ज्ञान और सुख पराधीन है। जिसे सुखी होना हो अथवा धर्म करना हो उसकी यह बात चलती है। जैसे आत्मा का ज्ञानस्वभाव है; वैसे ही आनन्द भी उसका स्वभाव है। जैसे लेंड़ीपीपर में पूर्ण तिखास है और चने में पूर्ण मिठास है; वैसे ही आत्मा में ज्ञान और आनन्द पूर्ण है किन्तु अज्ञानी जीव उन्हें बाहर में मानता है। लड्डू (मिठाई) में, प्रतिष्ठा में सुख मानता है किन्तु वहाँ तो मात्र आकुलता है।

जो दु:ख है वह विकृतपना बताता है; तह वास्तविक सुख नहीं है। जीव अनुकूल प्रतिकूल संयोगों में सुख-दु:ख की कल्पना करता है जबकि वह तो आत्मा में जो आनन्द भरा है उसकी विपरीतदशा है।

धर्म करने के लिये क्या करना चाहिये ? वह यहाँ कहते हैं। प्रथम, पर पदार्थो की रुचि छोड़ना चाहिये क्योंकि पर पदार्थों में सुख-दु:ख नहीं है और अज्ञानता जितना आत्मा नहीं है। आत्मा में पूर्ण ज्ञान और आनन्द भरा पड़ा है - ऐसा मेरा स्वभाव है। अल्पज्ञता दु:खरूप है। संयोगों का मेरे में अभाव है क्योंकि वे दो वस्तुएं अर्थात् वे दो स्वतंत्र भिन्न चीजें हैं।

देखो ! जैसे ये दो ऊँगली कहने पर दोनों के कार्य भिन्न-भिन्न हैं; वैसे ही देह और आत्मा भिन्न-भिन्न है; क्योंकि देह का स्वभाव भिन्न है और आत्मा का स्वभाव भिन्न है - दोनों भिन्न-भिन्न है। पूर्व के शुभभाव के कारण प्रारब्ध (भविष्य) बन्धता है उसके फल में संयोगादि मिलते हैं। बहुत होशियारी होनेपर भी कमाई नहीं दिखती और बुद्धिरहित (मूर्ख) जीवों को कमाई दिखाई देती है; इसीलिये पैसे का मिलना वर्तमान की होशियारी का फल नहीं है अपितु पूर्व पुण्य के अनुसार ही पैसा मिलता है।

धर्म अर्थात् दु:ख की दशा का नाश करना और सुख उत्पन्न करना। वर्तमान में अल्पज्ञता है किन्तु स्वभाव में जो पूर्ण ज्ञान और आनन्द भरा है वह अनादि से है - ऐसे आत्मा की एक समय मात्र भी रुचि और विश्वास नहीं किया। अज्ञानी पर पदार्थ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

में सुख मानता है। स्त्री, कुटुम्ब, शब्द, स्पर्श, और भोगने की विचित्रता में सुख मानता है किन्तु जिनमें सुख की कल्पना करता है उनमें सुख नहीं है।

आत्मा में ज्ञान और आनन्द स्वभाव भरा है उसे भूलकर पर में सुख माननेरूप भ्रांति, शांति नहीं देती। आत्मा में ज्ञान और आनन्द विद्यमान है फिर भी अज्ञानी वर्तमान अल्पज्ञता की, संयोग की, विकार की रुचि करता है किन्तु स्वभाव की रुचि नहीं करता। यदि अल्पज्ञता आदि की रुचि छोड़कर, स्वभाव की रुचि करे तो वर्तमान में ही थोड़ा आनन्द आवे और पूर्णता होनेपर पूर्ण आनन्द आवे।

आत्मा का स्वभाव इन्द्रिय द्वारा गम्य (जानने में आए - ऐसा) नहीं है किन्तु वह ज्ञान द्वारा गम्य है। प्रत्येक आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूप है। मेंहदी के पत्ते का रंग बाहर से हरा दिखता है। स्पर्शन, नाक, जीभ, आंख, अथवा कान से उसके लाल रंग का ख्याल नहीं आता किन्तु ज्ञानस्वभाव निश्चित करता है कि - मेंहदी का स्वभाव लाल है। स्वभाव, ज्ञान द्वारा निश्चित होता है।

जैसे पानी का स्वभाव ठंडा है। वर्तमान में उष्णता के समय जो ठंडा स्वभाव है वह इन्द्रिय द्वारा निश्चित नहीं होता। गरम पानी में हाथ डालोगे तो उसका ठंडा स्वभाव नहीं दिखाई देगा किन्तु ज्ञान निश्चित करता है कि यह पदार्थ पानी है और इसका ठंडा स्वभाव है; वैसे ही आत्मा को अंतरज्ञान द्वारा निश्चित करना कि वह शरीर से पृथक है, विकार उसका स्वरूप नहीं, दया-दान की वृत्ति विभाव है जो उसका (आत्मा का) मूल स्वरूप नहीं है वह निरुपाधि स्वभाव की उल्टी दशा है। पानी बाहर में गरम है और अंदर स्वभाव ठंडा है।

जैसे लेंड़ीपीपर के बाहर (प्रगट पर्याय) में अल्प तिखास है किन्तु अंदर पूर्ण तिखास है; वैसे ही मेरा स्वभाव ज्ञान और आनन्द है; बाहर में जो अल्पज्ञता और विकार दिखाई देता है वह हेय है-छोड़ने योग्य है और ज्ञानस्वभाव आदरणीय है। मेरा स्वभाव ज्ञान और आनन्द है। जैसे नींबू खटासवाला है, नमक खारा है वैसे ही मैं ज्ञानानन्दस्वभावी हूँ। वस्तु हो और स्वभाव न हो - ऐसा नहीं होता वैसे ही आत्मा का स्वभाव ज्ञान और आनन्द है, वह अनादि का स्वभाव है; उसे भूलकर अज्ञानी संसार में रखड़ता है।

मूर्त पदार्थ का अवलम्बन लेकर होनेवाले ज्ञान और सुख की

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कल्पना दु:खदायक है। पहला ज्ञान अर्थात् इन्द्रियज्ञान और सुख आदरणीय नहीं है क्योंकि वह अधर्म है। चैतन्यस्वरूप आत्मा, जड़ के झुकाव में रुके वह सभी अधर्म हैं। यदि सुख चाहिये हो तो चैतन्य के अनुसरण करने से जो ज्ञान और आनन्द प्रगट होता है वही सुख है - ऐसा निर्णय करना चाहिये।

भगवान आत्मा चेतन है उसका स्वभाव ज्ञानानन्द है। अंतर स्वभाव का अनुशरण करके जो ज्ञान और आनन्द आता है। वह अमूर्त है और वही धर्म है। यह धर्म कहलाता है। यहाँ ''नमों अरहंताणम्'' की बात चलती है। जिसने आत्मा के स्वभाव से विकार के बैरी भाव का नाश किया है वह अरिहंत है।

यह गुणवाचक नाम है। आत्मा पूर्ण सच्चिदानन्द है किन्तु 'शरीर मेरा है अथवा मैं अल्पज्ञता जितना हूँ- ऐसी मान्यतावाला स्वभाव का बैरी है। जिनके आत्मा के भान द्वारा - ऐसी विपरीत मान्यता का नाश हुआ है और स्थिरता के द्वारा राग का नाश किया है इसप्रकार विकार का नाश करके जिन्होंने अविकारीदशा प्रगट किया है वे अर्हंत हैं और यही अर्हंत होने की विधि है।

ज्ञान और सुख अमूर्त है। मूर्त इन्द्रिय का अवलम्बन लेकर प्रवर्तित होनेवाला ज्ञान और सुख पर की अपेक्षा रखता है इसीलिये वह मूर्त है। लोग कहते हैं कि - 'पराधीन सपने सुख नाही' इसका अर्थ भी वे नहीं समझते भगवान आत्मा ज्ञानानन्द है इसे छोड़कर संयोग का अवलम्बन लेना ही अल्पज्ञता जितना अपने को मानना है।

जिसे सुखी होना हो उसे क्या करना चाहिये ?

वर्तमान में जो ज्ञान का उघाड़ वकालत आदि का दिखाई देता है वह पर तरफ के झुकाववाला-पराधीन है। अब, जिसे सुखी होना हो उसे रास्ता बताते हैं। पुण्य-पाप व संयोग की रुचि छोड़ना और स्वभाव में सुख है - ऐसी रुचि करना; इसप्रकार रुचि और लीनता होनेपर वीतरागता होती है। जिसप्रकार पका हुआ चना बोने पर नहीं ऊगता उसी प्रकार पूर्ण हुआ आत्मा फिर से संसार में नहीं आता।

कोई दूसरा अथवा भगवान तुझे तार दे - ऐसा नहीं है। कोई कहता है कि हे नाथ! अब हमें उबारो। तो क्या इसके रखड़ने में भगवान कारण हैं? नहीं, अपितु स्वयं अपने कारण संसार में रखड़ता है। अपने में ज्ञान और आनन्द भरा है - उसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भूलता है तो हैरान होता है - अन्य कोई दूसरा हैरान नहीं कराता अपितु यह स्वयं विपरीतता करता है। ज्ञान और आनन्द स्वभाव है उसकी प्रतीति स्वयं करना चाहे तो कर सकता है।

इस जगत में सर्वज्ञ जीव हैं वे फिर संसार में (वापिस) नहीं आते। जैसे लेंड़ीपीपर में त्रेसठपुटी तिखास में से चौंसठपुटी होती है किन्तु चौंसठ में से त्रेसठपुटी नहीं होती; वैसे ही अल्पज्ञता में से पूर्णदशा होती है किन्तु पूर्णदशा होनेपर फिर संसार में नहीं आते।

'संयोग को नहीं बदल सकता इसलिये अपनी दृष्टिबदल'

यह आत्मा ज्ञान से पूर्ण है। यह जीव पर का कुछ भी नहीं कर सकता। शरीर की स्थिति रखना चाहता है और डॉक्टर को उसका रक्षक मानता है जबकि डॉक्टर के घर में भी स्त्री मर जाती है; यदि उसकी ताकत पर को बचाने की हो तो अपनी स्त्री को बचा लेना चाहिये ? किन्तु भाई ! उन शरीरादि पदार्थों का रूपान्तर स्वयं उनके कारण होता है - ऐसा नहीं मानकर आत्मा के कारण वह रूपान्तरण होता है - ऐसा मानना अभिमान है। वस्तु स्वयं सिद्ध स्वतंत्र है; अनादि -अनन्त पदार्थ भिन्न-भिन्न हैं, वे रूपान्तर करके परिणमित होते हैं किन्तु अन्य से रूपान्तरित नहीं होते।

यह धर्म की बात है। अनादि से एक सैकेंड मात्र भी धर्म नहीं किया। एक सैकेंड भी धर्म करे, तो यह जन्म-मरण नहीं रहता। यहाँ तो कहते हैं कि जो भी बहिरंग कार्य होनेवाले होते हैं वही होते हैं, उन्हें कौन बदल सकता है ? इसलिये तू अपनी दृष्टि बदल क्योंकि पर तरफ सुख-दु:ख की कल्पना करना वह अधर्म है और सच्ची दृष्टि में धर्म है।

संसार बाहर में नहीं है क्योंकि मृत्यु होनेपर जीव स्त्री-पुत्र, धनादि को छोड़कर चला जाता है; यदि ये संसार होते तो मरने पर तो सभी की मुक्ति हो जाना चाहिये किन्तु - ऐसा नहीं होता। अत: **'संसरणम् इति संसार:'** अर्थात् स्वयं आनन्द और ज्ञानस्वरूप है इसे छोड़कर पुण्य-पाप जितना मैं हूँ - ऐसी मान्यता करता है वह संसार है। पूर्ण आनन्द और ज्ञान तरफ उसका झुकाव नहीं है किन्तु पर तरफ और बाहर में झुकाव है। मैं पर को सुखी करूँ और पर से सुखी होऊँ - ऐसी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मान्यता विभाव और संसार है अर्थात् ममता ही संसार है।

कोई कहता है कि मुझे दोष दूर करना है, इसमें यह निश्चित हुआ कि वर्तमान अवस्था में दोष है, वह दूर हो सकता है तथा दोष दूर होनेपर द्रव्य कायम रह सकता है। अब वह निर्दोषता कहाँ से आयेगी ? अंतर में जो निर्दोष स्वभाव भरा है उसके अवलम्बन से निर्दोषता आती है और दोष दूर हो जाते हैं। दोष के समय मैं था और दोष चले जाने पर निर्दोषता प्रगट होती है अर्थात् भगवान होता है - ऐसा मैं हूँ।

'णमो अरिहंताणम्' बोलनेमात्र से जैनपना नहीं होता। जैन अर्थात् जीतना। आत्मा का भान करके भ्रांति, राग-द्वेष को जीते और पूर्णदशा प्रगट करे - वे अरिहंत और सिद्ध हैं; ऐसी शक्ति प्रत्येक आत्मा में है। देह से आत्मा भिन्न है। शरीर जीर्ण हो तो भी ज्ञान विशेष होता है और शरीर मोटा हो और ज्ञान कम दिखाई देता है। यदि शरीर, आत्मा होता तो - ऐसी विविधता नहीं होना चाहिये; इसीलिये शरीर से आत्मा की पृथक जाति है। ऐसा आत्मा है उसका भान करना वह धर्म है।

अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द प्रगट करने में अपूर्वता है किन्तु अन्य में अपूर्वता नहीं। जैसे अंतर का ज्ञान प्रगट होनेपर अंतर के अवलम्बन से पूर्ण आनन्द प्रगट करके अनन्त-परमात्मा हुए हैं; वैसे ही मैं भी मेरे में से ज्ञान और आनन्द प्रगट करूँगा। मैं हूँ - ऐसी प्रतीति करना चाहिये। - ऐसी दृष्टि बिना, बाह्य क्रिया से चारित्र नहीं आता। जिन्हें ज्ञान और आनन्द पूर्ण रूप से प्रगट हुए हैं उन्हें परमात्मा कहते हैं। जो ऐसी प्रतीति करता है वह साधक अंतरात्मा है; और जो अंतर में अपने को सुखरूप नहीं मानता और बाहर में सुख मानता है वह बहिरात्मा है।

इन्द्रियसुख और इन्द्रियज्ञान छोड़ने योग्य है। सेठाई और धन में सुख नहीं है; - ऐसे संयोग अनन्तबार मिल चुके हैं इसलिये वे अपूर्व नहीं किन्तु पूर्व में कभी प्रगट नहीं हुआ - ऐसे ज्ञान और आनन्द को प्रगट करना वह अपूर्वता है। मेरा स्वभाव ज्ञान और आनन्द है - ऐसी प्रतीति करना वह धर्म है।

देखो ! यह अंतर आत्मा की शक्तियों द्वारा बात करते हैं। अंतर में अतीन्द्रिय स्वभाव भरा है; उसके आश्रय से जो ज्ञान अवस्था प्रगट होती है वह आत्मा के आधीन होती है। हिंसा, झूठ, चोरी, क्रोध, मान, माया, लोभ, पाप है और दया-दान, व्रत-तप, पुण्य हैं; वृत्ति का उत्थान है, पर लक्ष्य से वृत्ति का

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उत्थान होता है इसीलिये पुण्य-पाप दोनों विकृत है और विकार रहित आत्मा के आश्रय से जो व्यक्तदशा होती है उस निर्मलता को धर्म कहते हैं। स्वयं ज्ञानानन्द स्वरूप है - ऐसा उत्साह आए बिना धर्म नहीं होता।

जिसे धर्म की विधि की ही खबर नहीं - उसे धर्म कहाँ से होगा ? मेरे से संयोगों की पृथकता क्या है ? पुण्य-पाप की विपरीतता क्या है ? और स्वभाव की सामर्थ्यता क्या है ? इनके भान बिना बाह्यक्रियाएं करने लग जाय तो भी धर्म नहीं होता। वर्तमान अल्पज्ञता और विकार की रुचि छोड़कर स्वभाव की रुचि करके स्थिरता करे तो धर्म होगा - ऐसा है। उसके बदले अज्ञानी यात्रा में और उपवास में धर्म मानता है किन्तु लाखोंबार पर्वत के ऊपर चढ़े तो भी धर्म नहीं है।

आत्मा वस्तु है उसमें अनन्त शक्ति, ज्ञान और आनन्द का वास है उसे जाने बिना उसका उत्साह आये बिना राग की मंदता वास्तव में नहीं होती। तथा कोई कहता है कि -'अभी वैराग्य करो तो स्वर्ग में जाओगे।' तो क्या वहाँ धर्म है ? नहीं। शरीर और विकार की रुचि छोड़कर स्वभाव की रुचि करने पर जो आंशिक, अतीन्द्रिय आनन्द आता है वह धर्म है। अंतर स्थिरता करने पर चारित्र बढ़ता है। पूर्णदशा होनेपर पूर्णज्ञान और आनन्द प्रगट होता है वह मोक्ष है। अतीन्द्रियज्ञान और सुख नित्य रहता है, इसलिये वह उपादेय है।

अंतर में ज्ञान और आनन्द भरा पड़ा है। इसकी पूर्ण व्यक्तदशा वह मोक्ष है; बाहर की क्रिया में धर्म नहीं है। यह आत्मा अनादि का है उसकी मुक्तदशा होने के बाद संसार परिभ्रमण नहीं रहता। अज्ञानी मुक्ति को नहीं समझता। तेरा स्वरूप ज्ञान और आनन्द है; उसके आधार से पूर्णज्ञान और पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट करे वह उपादेय है और नित्य है।

संसार का सुख तो बदल जाता है। घड़ी (पल) में राजा तो घड़ी में रंक होता है। आत्मा में पूर्ण आनन्द प्रगट होता है वह नित्य है,अक्रम है और युगपद् प्रवर्तता है। अतीन्द्रिय सुख सापेक्ष नहीं है जबकि सांसारिक सुख तो सापेक्ष है। पैसा हो, स्त्री हो, मिठाई हो और उस समय कोई बिच्छू काट ले तो वहाँ दुःख मानता है। इसलिये बाह्य पदार्थ सुख के साधन नहीं है अपितु सुख तेरे अंतर में है, ऐसा सत् समागम में निर्णय करना चाहिये। अतीन्द्रियज्ञान और सुख उपादेय है -

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ऐसा निर्णय करनेवाला अपने स्वभाव सन्मुख झुकता है।

इन्द्रियज्ञान तथा इन्द्रियसुख गौण है इसीलिये हेय है। अतीन्द्रियज्ञान और सुख मुख्य है इसीलिये वह उपादेय है-आदरणीय है। पहला ज्ञान और सुख, मूर्त ऐसी क्षयोपशमिक उपयोग शक्तियों द्वारा तथा उस तरह की उन इन्द्रियों द्वारा उत्पन्न होता हुआ पराधीन होने से अनित्य, क्रमशः प्रवृत्त होनेवाला, सप्रतिपक्ष और हानि-वृद्धि सहित है; इसीलिये वह गौण है अर्थात् छोड़ने योग्य है। और दूसरा ज्ञान और सुख अमूर्त - ऐसे चैतन्य का अनुसरण करके होता है इसलिये वह आदरणीय है।

यह पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द की बात चलती है अर्थात् चैतन्य के अनुकूलपने वर्तन करनेवाले की बात चलती है। इन्द्रिय का अवलम्बन लेकर होनेवाला ज्ञान और सुख अनित्य, क्रमशः प्रवर्तित होता हुआ, सप्रतिपक्ष और हानि-वृद्धि सहित है इसीलिये वह छोड़ने योग्य है।

यहाँ एक मात्र चैतन्य परिणति का ही ज्ञान कहा है; अर्थात् आत्मा का ज्ञान और आनन्द स्वभाव है, वह अकेले (मात्र) आत्मा की परिणामशक्ति द्वारा होता है - ऐसा कहकर ज्ञानपर्याय को अतीन्द्रिय आत्मा की तरफ झुकाने पर, अतीन्द्रियज्ञान और सुख उपादेय है - ऐसा निर्णय होता है। इसमें सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है।

आत्मा की पूर्णदशा होनेपर जानने में कुछ भी शेष (बाकी) नहीं रहता। अपूर्णदशा में स्पर्श, रस आदि में क्या होगा ? - ऐसी देखने की आकुलता होती है; अपूर्णदशा में ऐसा होता है किन्तु पूर्णज्ञान होनेपर आकुलता नहीं रहती। इसप्रकार अतीन्द्रियज्ञान और सुख उपादेय है - ऐसा निर्णय होनेपर अपनी रुचि स्वभाव तरफ झुकती है। इस आत्मा का ज्ञानस्वभाव कायमी है। उसकी पूर्णदशा अतीन्द्रियज्ञान और सुख अंगीकार करने लायक है - ऐसा निर्णय करने जाय तो इन्द्रिय ज्ञान, इन्द्रिय सुख और इन्द्रियों के निमित्त की रुचि छूटकर स्वभाव तरफ का झुकाव होता है।

आत्मा वस्तु है; उसका ज्ञान और आनन्द जिनकी पर्याय में पूर्ण प्रगट हुआ है - ऐसे केवली भगवान परिपूर्ण हैं - ऐसा निर्णय करने पर ज्ञानस्वभाव की उपादेयबुद्धि होती है तथा इन्द्रियज्ञान और विकार में सहज ही हेयबुद्धि हो जाती है। और अतीन्द्रियज्ञान चैतन्य का अनुसरण करके एकाकी आत्मपरिणाम शक्तियों

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

द्वारा तत्त्व तथाविध अतीन्द्रिय स्वाभाविक-चिदाकार परिणामों के द्वारा उत्पन्न होता है इसलिये यह आत्माधीन है।

अहो ! इस जगत में आत्मा है, वह आत्मा परमात्मपद को प्राप्त करता है। इसका ज्ञान और आनन्द इसी में है। इसप्रकार अतीन्द्रियज्ञान और आनन्द उपादेय है - ऐसा निर्णय करे वहाँ बुद्धि, स्वभाव का माप करती है। बुद्धि, बुद्धि का माप नहीं करती किन्तु बुद्धि स्वभाव का उपयोग करती है। पूर्णज्ञान और पूर्ण आनन्द प्रगट हुआ है, वह स्वभाव से प्रगट होता है - ऐसा निर्णय करनेपर पर में सुख-दु:ख की कल्पना की रुचि छूट जाती है; उसे केवली भगवान तरफ की रुचि नहीं होती; किन्तु स्वभाव की रुचि होती है।

प्राप्त की प्राप्ति होती है। क्षयोपशमज्ञान स्वभाव तरफ झुका अर्थात् अतीन्द्रियज्ञान और आनन्द उपादेय हुआ और इन्द्रियज्ञान और सुख हेय हुआ। यह सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। वर्तमान पर्याय में केवलज्ञान नहीं है इसलिये केवलज्ञान का निर्णय करने जाय तो स्वभाव तरफ झुकता है। इसमें केवली की प्रतीति और साततत्त्व की रुचि अर्थात् निमित्त, राग-द्वेष और अल्पज्ञता का आदरभाव नहीं रहा अर्थात् वे हेय हो जाते हैं। आत्मा चैतन्य वस्तु है, उसकी प्रगटदशा ऐसी है कि उसमें से अनन्त ज्ञान और आनन्द हो - ऐसी है - ऐसा निर्णय करने गया अर्थात् स्वभाव सन्मुख हुआ।

अतीन्द्रिज्ञान और सुख नित्य युगपद् प्रर्वतमान नि:प्रतिपक्ष और हानिवृद्धि से रहित है इसीलिये उपादेय है। केवलज्ञानी भगवान का ज्ञान और आनन्द नित्य है, क्योंकि वह सदृश रहता है इसलिये उसे नित्य कहते हैं। वह बदलता तो है किन्तु सदृश की अपेक्षा से उसे नित्य कहा है। इन्द्रियआनन्द में एक के बाद एक कल्पना होती है क्योंकि प्रतिष्ठा (आबरू) की और खाने की इच्छा क्रम-क्रम से होती है। भगवान पूर्णज्ञान और पूर्णसुखको एक साथ अनुभवते हैं।

इन्द्रियज्ञान अज्ञान सहित है। इन्द्रियसुख में दु:ख प्रतिपक्ष है। लाखों रुपये, पुत्र-पुत्री हो किन्तु एकाएक हार्टफेल हो जाय (तो वह इन्द्रियसुख चला जाता है) - इसलिये वह प्रतिपक्ष सहित है, किन्तु भगवान के सुख का प्रतिपक्ष नहीं है। इन्द्रियसुख और ज्ञान हानि-वृद्धि सहित है जबकि अतीन्द्रियज्ञान और सुख

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हानि-वृद्धि रहित है इसलिये मुख्य है। इन्द्रिय तरफ का ज्ञान और सुख गौण है अर्थात् छोड़ने योग्य है इसलिये अतीन्द्रियज्ञान और सुख प्रगट करने का प्रयत्न कर; जो स्वभाव तरफ झुकने से होता है। ज्ञानस्वभाव का निर्णय होनेपर उस तरफ झुकने में संवर निर्जरा आती है; उसमें आश्रव, बंध का अभाव आता है - इत्यादि प्रकार से इसमें साततत्त्व की श्रद्धा आती है।

अब, राग-द्वेष तो हेय ही है परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि - इन्द्रिय ज्ञान और सुख भी हेय है। अनुकूल प्रतिकूल पदार्थों में सुख-दुःख नहीं है। अतीन्द्रियज्ञान और आनन्दवाले आत्मा की अस्ति के स्वीकार में, पूर्ण ज्ञान और आनन्द की स्वीकारता आती है। यह एक ही मार्ग है; शांत होकर सुन ! इन्द्रिय रहित ज्ञान और सुखस्वभाव के स्वीकार में केवलज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द का स्वीकार होता है।

वास्तविक समझ के बिना सभी साधन बन्धनरूप हुए.

वास्तविक समझ लक्ष्य में लिये बिना कहाँ जाएगा। जैसे यदि रास्ते में तीन मोड़ पड़ते हों तो सही मोड़ की जानकारी के बिना चलने लग जाय तो जबतक सही रास्ता नहीं मिलता, तबतक गांव (गंतव्य) नहीं आता; वैसे ही इन्द्रियज्ञान और इन्द्रियसुख तथा अतीन्द्रियसुख दोनों में से किसे अंगीकार करना है ? उसकी समझ करना चाहिये। अतीन्द्रियज्ञान और सुख आदरणीय है बाकी (शेष) सभी हेय हैं। ज्ञानस्वभाव उपादेयपने आया उसमें इन्द्रियज्ञान तथा इन्द्रियसुख हेय पने आना चाहिये किन्तु अज्ञानी जीव क्रिया-काण्ड में रुक जाता है। श्रीमद् रामचन्द्र जी ने कहा है -

सौ साधन बन्धन थया, रह्यो न कोई उपाय।
सत् साधन समज्यो नहीं, त्यां बन्धन शुं जाय ॥

बाहर के साधन बन्धनरूप हुए, सच्चा साधन समझा नहीं और क्रिया-काण्ड में रुक गया। सुबह, दोपहर और शाम को समझ रहित सामायिक करने लगता है किन्तु स्वाध्याय नहीं करता।

अहो ! जिस आत्मा के स्वभाव को मैं प्रगट करना चाहता हूँ वह अंतर में - स्वभाव में ही है। बहिर्मुख विकल्प वह मैं नहीं, तो फिर बाहर की क्रिया की बात तो दूर रही। अतीन्द्रियज्ञान और सुख मुख्य है और इन्द्रियज्ञान और सुख गौण है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पुण्य से लाभ होगा - ऐसी मान्यतावाले को अतीन्द्रियज्ञान नहीं होता।

इन्द्रियज्ञान मदद करेगा और पर का ज्ञान करूँगा तो उसमें से लाभ होगा - ऐसा माननेवाले की बुद्धि इन्द्रियज्ञान के लाभ में रुक गई है किन्तु स्वभाव तरफ नहीं झुकती। मूर्तज्ञान और मूर्तसुख इन्द्रिय द्वारा होता है इसीलिये वह हेय है; और अतीन्द्रियज्ञान और सुख आत्मा द्वारा होता है इसलिय यह उपादेय है - ऐसा जानने पर इन्द्रियज्ञान हेय हो जाता है। यह धार्मिकक्रिया है और यही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है।

आत्मभान होने के पश्चात् अल्प इन्द्रिय ज्ञान और सुख ज्ञेय हो जाता है और स्व ज्ञान और स्व आनंद ज्ञेय अर्थात् उपादेय करने लायक है - ऐसा निर्णय करनेवाले की यह बात है। सच्ची समझ करने का अवसर आया है अतः अब इन्द्रियज्ञान से लाभ होगा - ऐसा रोना छोड़ दे।

परमात्मा पूर्ण होते हैं, वे त्रिकाल को जानते हैं और पूर्ण आनन्द भोगते हैं। परमात्मा भूत-वर्तमान और भविष्य तीनोंकाल को जानते हैं, इसलिये भूतकाल में परमात्मा ने किसी को बनाया है यह बात असत्य है। वर्तमान में अथवा भविष्य में वे किसी को मदद करते हों - ऐसा नहीं होता; इसलिये ईश्वर जगत् के कर्ता नहीं है।

अज्ञानी जीव कर्म के कारण अपने परिणाम मानते हैं, किन्तु ऐसा नहीं है। दर्शनावरणीय कर्म के कारण निद्रा नहीं होती अर्थात् स्वयं निद्रा का परिणाम करता है तो कर्म निमित्त कहलाता है। अज्ञानी जीव पर को ध्येय करके कषाय में रहता है किन्तु स्व-ध्येय में रहकर सच्ची दृष्टि नहीं करता। राग-द्वेष आदि पर्याय चारित्रगुण का अंश है वह निमित्त का अंश नहीं है - ऐसा जिसे निर्णय करना नहीं आता वह अतीन्द्रियज्ञान और आनन्द का निर्णय नहीं कर सकता।

एक हीजड़े (नपुंसक) ने घर का उद्घाटन किया, वहाँ दूसरे हीजड़े हाय-हाय करते हुए आए क्योंकि उन्होंने निर्णय किया था कि अपने को जगत से उल्टी (विरुद्ध) रीति से चलाना चाहिये, अतः वे सब रोते-रोते बाजार में निकले और उसके घर गए। जिस हीजड़े के घर का उद्घाटन था वह भी उनके साथ रोने लग गया। इसप्रकार उद्घाटन के दिन सभी रोने लग गए। यह तो दृष्टांत है वैसे ही पुण्य से धर्म माननेवाला नपुंसक आत्मा के स्वभाव का गाना नहीं गाता किन्तु शुभराग

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

का गाना गाता है। कर्म के कारण विकार होता है, शुभराग से धर्म होता है, क्षयोपशम से क्षायिक होगा इसप्रकार रुदन करता है उसे आत्मा का उद्घाटन लेना नहीं रुचता। जबकि धर्मात्मा का उद्घाटन पृथक होता है। आत्मा के भान पूर्वक, राग रहित दशा होती है वह उद्घाटन का दिन है। जो चैतन्य का पूर्ण ज्ञान और आनन्द लेने निकला है उसे इन्द्रियज्ञान और राग का रोना नहीं होता। इसलिय स्वभाव का भरोसा कर।

पहले व्यवहार करूँगा तो निश्चय होगा - पहले शास्त्र ज्ञान करूँगा तो आनन्द आयेगा - ऐसा रोना छोड़ दे। दरिया की भर्ती अन्दर समुद्र से आती है। एक इंच भी बरसात न हो और ११८ डिग्री का तापमान हो तो फिर भी समुद्र भर्ती के काल में मध्य बिन्दु में से उछलता है। वैस ही चैतन्य का मध्य दरिया आनन्द और सुख से भरा हुआ है। उसकी एकाग्रता से पूर्ण ज्ञान होता है और यही धर्म का उपाय कहलाता है।

-कोटि कोटि वंदन-

हे परम कृपालु गुरुदेव! आपके गुणकी महिमा क्या करूँ! आपके उपकारों का क्या करूँ! वास्तविक स्वरूप का ज्ञान देनेवाले अपूर्व महिमावन्त श्री गुरूदेवके चरणकमल की सेवा भक्ति निरन्तर हृदय में विद्यमान रहे। परम-परम उपकारी श्री गुरुदेव के चरणकमल में इस सेवक का बारम्बार भावपूर्ण भक्ति से कोटि कोटि वन्दन हो, नमस्कार हो।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचनसार गाथा ५४

अथातीन्द्रियसौख्यसाधनीभूतमतीन्द्रियज्ञानमुपादेयमभिष्टौति-

जं पेच्छदो अमुत्तं मुत्तेसु अदिंदियं च पच्छण्णं।
सयलं सगं च इदरं तं णाणं हवदि पच्चक्खं ॥५४॥

अब, अतीन्द्रिय सुखका साधनभूत (-कारणरूप) अतीन्द्रियज्ञान उपादेय है-इसप्रकार उसकी प्रशंसा करते हैं:-

जो हैं अमूर्त तथा अतीन्द्रिय मूर्त व्यवहित सर्व को।
जो जानता है स्वपर को प्रत्यक्ष होता ज्ञान वो ॥५४॥

अन्वयार्थ :- **(प्रेक्षमाणस्य यत्)** देखनेवाले का जो ज्ञान **(अमूर्तं)** अमूर्त को, **(मूर्तेषु)** मूर्त पदार्थों में भी **(अतीन्द्रियं)** अतीन्द्रिय को, **(च प्रच्छन्नं)** और प्रच्छन्न को, **(सकलं)** इन सबको - **(स्वकं च इतरत्)** स्व तथा पर को देखता है, **(तद् ज्ञानं)** वह ज्ञान **(प्रत्यक्षं भवति)** प्रत्यक्ष है।

टीका :- जो अमूर्त है, जो मूर्त पदार्थों में भी अतीन्द्रिय है, और जो [१]प्रच्छन्न है, उन सबको - जो कि स्व और पर इन दो भेदों में समा जाता है उसे अतीन्द्रियज्ञान अवश्य देखता है। अमूर्त धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय इत्यादि, मूर्त पदार्थों में भी अतीन्द्रिय परमाणु इत्यादि, तथा द्रव्य में प्रच्छन्न काल इत्यादि (-द्रव्य अपेक्षासे गुप्त - ऐसे जो काल, धर्मास्तिकाय इत्यादि), क्षेत्रमें प्रच्छन्न अलोकाकाश के प्रदेश इत्यादि, कालमें प्रच्छन्न असाम्प्रतिक (अतीत-अनागत) पर्यायें तथा भाव-प्रच्छन्न स्थूल पर्यायों में [२]अन्तर्लीन सूक्ष्म पर्यायें हैं, उन सबका - जो कि स्व और पर के भेद से विभक्त हैं उनका वास्तव में उस अतीन्द्रियज्ञान के द्रष्टापन है; (अर्थात् उन सबको वह अतीन्द्रियज्ञान देखता है) क्योंकि वह (अतीन्द्रियज्ञान) प्रत्यक्ष है।

जिसे अनन्त शुद्धि का सद्भाव प्रगट हुआ है - ऐसे चैतन्यसामान्य के साथ

---

[१] प्रच्छन्न = गुप्त; अन्तरित; ढंका हुआ। [२] अन्तर्लीन = अन्दर लीन हुए; अन्तर्मग्न।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनादिसिद्धि सम्बन्धवाले एक ही [१]'अक्ष' नामक आत्मा के प्रति जो नियत है (अर्थात् जो ज्ञान आत्मा के साथ ही लगा हुआ है-आत्माके द्वारा सीधा प्रवृत्ति करता है), जो (इन्द्रियादिक) अन्य सामग्री को नहीं ढूँढता और जो अनन्तशक्ति के सद्भाव के कारण अनन्तता को (-बेहदता को) प्राप्त है - ऐसे उस प्रत्यक्ष ज्ञान को-जैसे दाह्याकार दहन का अतिक्रमण नहीं करते उसीप्रकार ज्ञेयाकार ज्ञान का अतिक्रमण (उल्लंघन) न करने से यथोक्त प्रभाव का अनुभव करते हुए (-उपर्युक्त पदार्थों को जानते हुए) कौन रोक सकता है ? (अर्थात् कोई नहीं रोक सकता।) इसलिये वह (अतीन्द्रिय ज्ञान) उपादेय है ॥५४॥

गाथा ५४ पर प्रवचन

अब, अतीन्द्रिय सुख का साधनभूत (कारणरूप), अतीन्द्रियज्ञान उपादेय है-इसप्रकार उसकी प्रशंसा करते हैं :-

यहाँ क्या सिद्ध करना है ? पूर्ण आनन्द का कारण केवलज्ञान है, दूसरी वस्तु नहीं, क्योंकि यहाँ ज्ञान के साथ आनन्द सिद्ध करना है। केवलज्ञान अमूर्त पदार्थ तथा अतीन्द्रिय मूर्त पदार्थ को देखता है। धर्मास्तिकाय आदि अमूर्त वस्तु को केवलज्ञानी जानते है और जो अप्रगट पदार्थ हैं उन्हें भी जानते हैं- इन सभी को अतीन्द्रियज्ञान अवश्य देखता है।

यहाँ कोई कहता है कि - केवलज्ञानी भगवान पर को जानते हैं वह अभूतार्थ है तो यह बात असत्य है। पर सम्बंधी अपना ज्ञान-भूतार्थ है। ज्ञान पर में प्रवेश किये बिना जानता है इसलिये व्यवहारनय से लोकालोक को जानते हैं - ऐसा शास्त्रमें कहा है।

अज्ञानी कहता है कि - लोकालोक का जानपना अभूतार्थ है किन्तु यह बात असत्य है। स्व-पर प्रकाशक ज्ञान की जाति है। मेरी सम्पदा ही ऐसी है - ऐसे स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान करना वह धर्म है। द्रव्य कृतकृत्य है - ऐसा जानते ही बाहर

---

[१] *अक्ष = आत्मा का नाम 'अक्ष' भी है। (इन्द्रियज्ञान अक्ष = अर्थात् इन्द्रियों के द्वारा जानता है; अतीन्द्रिय प्रत्यक्षज्ञान अक्ष अर्थात् आत्मा के द्वारा ही जानता है।)*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

में कुछ भी करना नहीं रहा। अज्ञानी को अपने ज्ञानस्वभाव की दशा पूर्ण करने का बहुमान नहीं आता।

केवलज्ञान द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव सहित सूक्ष्मता से जानता है। अमूर्त - ऐसे जो धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय इत्यादि और मूर्त पदार्थों में एक, दो, तीन, चार पृथक सूक्ष्म परमाणु को भगवान जानते हैं। जीव की पर्याय कहाँ और कैसी होगी उसे जानते हैं तथा किस पुद्गल की कौन सी पर्याय कैसी होगी उसे भी भगवान जानते हैं। 'भगवान देख रहे हैं' - ऐसा अज्ञानी बोलता है किन्तु इसके भाव की उसे खबर नहीं है। निमित्त और राग से निष्प्रह हुए बिना, निष्पृह नहीं कहलाता।

केवलज्ञानी का ज्ञान द्रव्य अपेक्षा से गुप्त - ऐसे जो काल, धर्मास्तिकाय आदि को जानता है तथा क्षेत्र से अप्रगट अलोकाकाश में प्रदेशों को वह जानता है। काल से अप्रगट - ऐसे जो अतीत, अनागत (भूत व भविष्य की) पर्यायों को केवलज्ञान साक्षात् जानता है वे ज्ञानप्रत्यक्ष हैं।

पैसा, शरीर, पुत्र, मिठाई आदि सुख के साधन नहीं है। सभी सामग्री होनेपर भी यदि कोई कुत्ता काट ले तो दुःखी होता है। सुख तो अन्तर में है उसे तो नहीं देखता इसके बदले बाहर में नजर डालता है। पर की एकता-बुद्धि से बेहाल हुआ है और चैतन्य स्वरूप को नहीं देखता। ज्ञान अपनी चीज है और वह पर को जानती है ! आनन्द अपने में है और पर में आनन्द मानता है ! इसप्रकार उसे एकत्वबुद्धि का दुःख है। अल्पज्ञान, आनन्द का कारण नहीं है अपितु आनन्द का कारण तो पूर्णज्ञान है। उसे प्रगट करने के लिये अतीन्द्रियज्ञानस्वभाव की तरफ देख।

भगवान का ज्ञान, भूत और भविष्य की पर्याय को जानता है। अहो ! प्रथम, ज्ञान का निर्णय करे कि पूर्णज्ञान को सभी पर्यायें प्रत्यक्ष हो गई है तथा भाव से प्रच्छन्न - ऐसी जो स्थूल पर्यायों में अन्तर्लीन सूक्ष्म पर्यायों को केवलज्ञान देखता है। एक समय की पर्याय में अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद पड़ते हैं उसे केवलज्ञान जानता है। यह लकड़ी स्थूलऋजुसूत्रनय से स्थूल है - ऐसा जानता है अब सूक्ष्मऋजुसूत्रनय से एक-एक पर्याय भिन्न-भिन्न है उसे केवलज्ञान प्रत्यक्ष जानता है। इसप्रकार स्व-पर और भेदों से विभक्त है, उनका वास्तव में उस अतीन्द्रियज्ञान को दृष्टापना है। इसप्रकार अतीन्द्रियज्ञान का निर्णय करे तो सभी निर्णय हो जाय।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

श्री अमृतचन्द्र आचार्य कहते हैं कि - एक समय की केवलज्ञान पयार्य द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को सूक्ष्मता से जानती है; यदि नहीं जाने तो त्रिकाल ज्ञान कैसा ? और त्रिकाल ज्ञान न हो तो आत्मज्ञान कैसा ? इसप्रकार केवलज्ञान प्रत्यक्ष है वह सुखका कारण है - ऐसा निर्णय करे उसे ज्ञानस्वभाव उपादेय होता है और इन्द्रियज्ञान आदि का हेयपना होता है।

ज्ञान जिसके साथ तन्मय नहीं है फिर भी यदि वह उनकी अपेक्षा रखे तो वह ज्ञान दुःखदायक और अधर्म है। यह आत्मा देह से भिन्न वस्तु है। आत्मा का स्वभाव जानना है। पांचों इन्द्रियों को अवलम्बन लेकर जो ज्ञान होता है वह पराधीन ज्ञान है जो सुखरूप नहीं है। इन्द्रिय की सापेक्षता से होनेवाला ज्ञान और सुख पराधीन हैं।

धर्म कैसे होता है और कैसे नहीं होता ? उसकी यहाँ व्याख्या करते हैं यह आत्मा अनादि-अनन्त वस्तु है। उसका ज्ञानस्वभाव है उसकी वर्तमानदशा इन्द्रियों को निमित्त करके ज्ञान करे वह पराधीन ज्ञान है। अनुकूल-प्रतिकूल संयोग आने पर उनमें सुख-दुःख की कल्पना करे वह दुःख है; जबकि आत्मा तो उनसे भिन्न वस्तु है; भिन्न वस्तु की अपेक्षा रखकर, सुख की कल्पना करना वही पराधीन दशा है।

जिसे स्वतंत्र ज्ञान और आनन्ददशा प्रगट करना हो - उसे क्या करना चाहिये ?

आत्मा का स्वभाव ज्ञान और आनन्द है; यह त्रिकाल रहनेवाला ज्ञान और आनन्द स्वरूप है, यह पर का अवलम्बन छोड़कर, अंतर का अवलम्बन करे कि - 'मैं ज्ञानस्वभाव हूँ' - ऐसा अंतर की ओर झुके तो पूर्णज्ञान की प्राप्ति होती है; यह पूर्णज्ञान, आनन्द का साधन है; किन्तु स्त्री-पुत्र, पैसा, मकान आदि आनन्द के साधन नहीं है। भगवान आत्मा का स्वभाव, ज्ञान है जो उसके साथ तन्मय है, उसका ज्ञान इन्द्रियों के साथ तन्मय नहीं होता।

अब, जो ज्ञान जिसके साथ तन्मय है उसकी अपेक्षा तो नहीं रखता किन्तु जिसके साथ तन्मय नहीं उनकी अपेक्षा रखता है। इसलिये वह पराधीन व दुःखरूप है। जिसके साथ तन्मय है - ऐसे आत्मा की अपेक्षा रखकर तन्मय होता है तो पूर्ण ज्ञान प्रगट होनेपर, पूर्ण आनन्द प्रगट होता है। - ऐसा कहकर निचली दशावाले को

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कहते हैं कि - आत्मा के साथ ज्ञान तन्मय नहीं करता और इन्द्रियों के साथ तन्मय करता है - वही दुःख है; अत: अब उसकी रुचि छोड़।

वस्तु का स्वभाव धर्म है। आत्मा वस्तु है-तत्त्व है, उसे सुख क्यों नहीं होता क्योंकि वह अपने साथ तन्मय नहीं होता, किन्तु इन्द्रियों के साथ तन्मय होता है इसीलिये दु:खी है। अब, सही समझ करना चाहिये कि - जिसका ज्ञान है वह उसके साथ तन्मय नहीं होकर पर-इन्द्रियों के साथ काम ले तो वह पराधीन है। पुण्य हो अथवा दया-दान के परिणाम हों - तो भी वे दुश्मन है। जो स्वभाव से अत्यन्त अभावरूप जड़-इन्द्रिय की अपेक्षा रखे, वह दुश्मन की अपेक्षा रखता है,वह दु:खमय भाव है। पर्याय जिसके साथ तन्मय है उसकी अपेक्षा रखता है तो वह सुखमय और स्वाधीन भाव है।

आत्मा का स्वभाव - ज्ञान है। चैतन्य बिम्ब का अंश, निमित्त और राग की अपेक्षा रखे वह दु:खदायक है-भ्रम है। वह ज्ञान जिसका अंश है - जिसका परिणमन है उस स्वभाव के साथ तन्मय होता है तो सम्यग्ज्ञान होता है और यही सुखी होने का उपाय है।

प्रत्यक्ष ज्ञान, पूर्ण आनन्द का कारण है इसलिये यदि तुझे प्रत्यक्ष ज्ञान और पूर्ण आनन्द चाहिये हो तो इन्द्रिय और पर की रुचि छोड़। आत्मा समस्वभावी ज्ञान सूर्य है; उसके प्रकाश के लिये इन्द्रिय, निमित्त और राग की अपेक्षा रखने से स्वाधीनता का नाश होता है और पराधीनता होती है।

जवाहरात का ज्ञान अथवा वैद्य (डॉक्टरी) का ज्ञान दु:खदायक है। जो ज्ञान अपना है उसे अपने साथ तन्मय नहीं करे और वह जगत के पदार्थों में जुड़े तो वह दु:खदायक है-अधर्म है और यह ज्ञान का स्वभाव भी नहीं है। अपना स्वभाव अपने साथ जोड़े तो वह धर्म है और वर्तमान ज्ञान-दशा निमित्त और राग के साथ जुड़े वह अधर्म है।

यह न्याय से समझ में आवे - ऐसी बात है। जो ज्ञानदशा पर में जुड़ती है वह आनन्द का कारण नहीं है, अपितु जो ज्ञान परिपूर्ण प्रत्यक्ष होता है वह आनन्द का कारण है किन्तु जो पर का अवलम्बन ले वह दु:ख का कारण है।

जैसे सोना होता है उसकी अवस्था कुण्डल आदि होती हैं वैसे ही आत्मा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होता है और उसकी ज्ञानादि अवस्थाएँ होती हैं; उसकी अवस्था पर का अवलम्बन ले वह दु:ख है। अवस्था न हो - ऐसा नहीं होता किन्तु यदि वह निमित्त और राग का अवलम्बन लेकर काम करे तो वह अस्वभाव और दु:ख है। इसलिये यहाँ प्रत्यक्ष ज्ञान की व्याख्या करते हैं।

ज्ञान का उघाड़ (क्षयोपशम) यदि सांसारिक कला में रुकता है तो वह सब दु:ख है - सुख नहीं।

प्रश्न:- पर का अवलम्बन लेने पर दु:ख नहीं लगता (सुख लगता है) तो क्या करें ?

समाधान:- जैसे हर्ष-सन्निपातवाला (रोगी) दाँत निकालता (हंसता दिखता) है -उसके इस लक्षण को देखकर बड़े (समझदार) लोग समझ लेते हैं कि- इसकी आयु पूर्ण होनेवाली है वह कोई सही हर्ष नहीं है। अतः सन्निपात में हँसनेवाला क्या सुखी है ? नहीं, वह तो दुःखी ही है; वैसे ही विषय-भोग, आबरू(इज्जत), डॉक्टरी ज्ञान अथवा वैद्य के ज्ञान में हर्ष मानता है वह हर्ष-सन्निपात है। जगत जो कि अनुकूलता में हर्ष मनाता है उसे तो हर्ष-सन्निपात लागू पड़ता है। भले ही उसे लाखों का ब्याज आता हो तो भी वह दुःखी ही है; क्योंकि वह आनन्द प्राप्त करना चाहता है किन्तु आत्मा का मूल-स्वभाव आनन्द है वह बाहर में से नहीं आता। आनन्द की विपरीत अवस्था वह दुःख है।

ज्ञान का उघाड़ - बाहर की होशियारी (चतुराई) में रुक जाय वह दुःख है, फिर भी उसमें सुख माने तो वह हर्ष-सन्निपात के रोगी के समान दुःखी है। जिसका जो अंग है वह अंगी के साथ सम्बंध नहीं करता किन्तु राग और निमित्त के साथ सम्बन्ध करता है तो वह हर्ष-सन्निपातवाले के समान पर में हर्ष मानकर दुःखी होता है।

यहाँ प्रत्यक्ष ज्ञान की बात करते हैं। आत्मा का मूल, ज्ञानस्वभाव है- उसका पूर्णरूप से अवलम्बन लेकर जो ज्ञानदशा होती है वह किसे नहीं जाने ? अर्थात् वह सभी को जानती है। यह ज्ञान, आनन्द का कारण है इसलिये जगत के जीवों को जो प्रत्यक्ष ज्ञान प्रगट करना है, वह कहाँ से प्रगट होता है ? आत्मा का ज्ञानस्वभाव है उसके आधार से वह प्रगट होता है। पैसा तो पूर्व पुण्य के कारण मिलता है किन्तु चतुराई के कारण नहीं मिलता। बैरीस्टर(जज) होनेपर भी यदि

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पुण्य नहीं हो तो पैसा नहीं मिलता।

यहाँ कहते हैं कि - पर तरफ का झुकाव, चैतन्य के साथ सम्बन्ध छोड़कर पर के साथ सम्बन्ध रखता है यह अधर्म दशा है। जिसके ज्ञान की वर्तमानदशा शुभराग के साथ एकाकार करे वह ज़हर की रोटी खाता है। ज्ञान को, एकरूप ज्ञानस्वभाव के साथ नहीं जोड़कर व्रत और भक्ति में जोड़े और इन्द्रिय सापेक्ष ज्ञान करे तो वह ज़हर की रोटी खाता है; यदि इस ज़हर की रोटी को छोड़ना हो तो क्या करना ? ज्ञानपर्याय को निमित्त और राग के साथ नहीं जोड़कर, स्वभाव के साथ जोड़े तो उसने ज़हर की रोटी छोड़ी है यह कहा जाएगा। इसप्रकार उसने मिथ्यात्व और राग छोड़ा है यह कहा जाता है। जैसे कपास के व्यापारी को-कपास का कचरा पेट में जाय तो-क्षयरोग (टी.बी) हो जाता है। वैसे ही ज्ञान की पर्याय - निमित्त के साथ जुड़ी तो उसे स्वभाव का क्षय लागू पड़ता है।

प्रत्यक्ष-ज्ञान इन्द्रिय से निर्पेक्ष रहकर, सभी पदार्थों को जानता है, इसलिये वह उपादेय है। यहाँ प्रत्यक्ष ज्ञान आनन्द का कारण है यह बताते हैं। आत्मा वस्तु है उसकी पर्याय में अनन्त शुद्धि का सद्भाव प्रगट होता है। चैतन्य सामान्य के साथ, अनादि सिद्ध सम्बन्धवाला एक ही आत्मा के प्रति नित्य है अर्थात् जो ज्ञान आत्मा से ही जुड़ा हुआ है युगपद् प्रवर्तता है। निःप्रतिपक्ष है अर्थात् वह ज्ञान इन्द्रियों की अपेक्षा नहीं रखता। आत्मा का नाम अक्ष है और इन्द्रिय का नाम भी अक्ष है। इन्द्रिय द्वारा जाने वह दुःख है; इन्द्रिय का लक्ष्य छोड़कर, आत्मा का सम्बन्ध रखे वह सुखरूप है। जो सामान्यज्ञान के साथ सम्बन्ध रखे वह प्रत्यक्ष-ज्ञान, सुख का कारण है।

जिसप्रकार चौंसठ-पुटी तिखास, लेड़ीपीपर में से आती है। उसके दाने-दाने में शक्ति भरी है। उस तिखास का पीपर के साथ सम्बंध है; इसीप्रकार ज्ञान का आत्मा के साथ सम्बंध है। केवलज्ञान पर्याय आत्मा के साथ सम्बंध रखती है किन्तु इन्द्रिय के साथ सम्बंध नहीं रखती। भगवान का ज्ञान बेहदपने को प्राप्त हुआ है। जैसे जलने योग्य पदार्थ अग्नि का उलंघन नहीं करते वैसे ही जगत के जानने योग्य पदार्थ पूर्ण ज्ञानदशा में ज्ञात हो जाते हैं। केवलज्ञान सभी को जान लेता है। जो ज्ञान पर्याय आत्मा के साथ जुड़कर पूर्णदशारूप हुई है उसके प्रभाव को कौन रोक सकता है ?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इसप्रकार केवलज्ञान अतीन्द्रिय आनन्द का कारण है, इसलिये वह उपादेय है। अतः इन्द्रिय बुद्धि, निमित्त बुद्धि और राग बुद्धि को छोड़कर स्वभाव बुद्धि कर। सर्वज्ञदेव तथा अकेले उनकी प्रतिमा को जो ज्ञान पर्याय देखती है वह निमित्त की अपेक्षा रखती है इसलिये वह दुःखदायक है। स्व के जाननेपर पर जानने में आ जाते हैं किन्तु अकेले पर को जानने पर स्व नहीं जाना जाता। चैतन्य स्वभाव को अपने साथ जोड़े वह धर्म है।

प्रश्न:- इसमें सामायिक आदि तो नहीं आई ?

समाधान:- तू जिसे सामायिक मानता है ऐसे चोविहार (रात्रि जल-पान-त्याग) आदि, सामायिक नहीं हैं।

तो फिर सच्ची सामायिक किसे कहना ?

निमित्त और राग के बिना नहीं चलता - ऐसी रुचि से जो मिथ्यात्व की खुराक खाता था (मिथ्यात्व पुष्ट करता था) अब उसने स्वभाव की रुचि करके आत्मा का भान किया सो इस ज्ञानक्रिया को सच्ची सामायिक कहते हैं। असत् क्रियाएँ तो अनन्त बार की। अतीन्द्रिय स्वरूप की दृष्टि करना वह सम्यक्‌दर्शन है और उसमें लीनता करना वह चारित्र है। उसके फलरूप से पूर्णदशा प्रगट हुई वह केवलज्ञान है। आत्मा चैतन्य मूर्ती है। उसके चैतन्य प्रकाश को स्वयं के साथ जोड़े वह धर्म है। सम्यक्‌दर्शन-ज्ञान-चारित्र के अंश धर्म है। इसके सिवाय धर्म कोई दूसरी चीज नहीं है।

अतीन्द्रियज्ञान की प्रशंसा कौन करता है ?

जो इन्द्रियज्ञान को हेय माने वह अतीन्द्रियज्ञान की प्रशंसा करता है। इसप्रकार निर्णय करने से धनादि की कीमत निकल गई है। जिस प्रकार पचास बन्दरों में से बड़े बन्दर को बताते हैं कि - यह बन्दर का मुखिया है किन्तु उसे मनुष्यों का मुखिया नहीं कहा जाता, उसीप्रकार लौकिक में मूर्ख लोग जिसे बड़ा मनवावे वह धर्म का मुखिया नहीं होता। इसलिये इन्द्रियज्ञान की रुचि छोड़कर स्वभाव की रुचि करना। लोगों ने दूसरे प्रकार से धर्म मान लिया है। कुछ तो बाहर की क्रिया में धर्म मानते हैं (जबकि) वह अधर्म है। देशब्रति, आराधक - ऐसा उन्हें समाज नाम रखती हैं इससे वह कोई श्रावक नहीं हो जाता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचनसार गाथा ५५

अथेन्द्रियसौख्यसाधनीभूतमिन्द्रियज्ञानं हेयं प्रणिन्दति-

जीवो सयं अमुत्तो मुत्तिगदो तेण मुत्तिणा मुत्तं ।
ओगेण्हित्ता जोग्गं जाणदि वा तं ण जाणादि ।।५५।।

अब, इन्द्रियसुख का साधनभूत (-कारणरूप) इन्द्रियज्ञान हेय है - इसप्रकार उसकी निन्दा करते हैं -

है जीव स्वयं अमूर्त मूर्तीगत स्वोचित मूर्त को ।
पा मूर्त से जाने न जाने कर अवग्रह ज्ञान को ।।५५।।

अन्वयार्थ :- **(स्वयं अमूर्तः)** स्वयं अमूर्त - ऐसा **(जीवः)** जीव **(मूर्तिगतः)** मूर्त शरीर को प्राप्त होता हुआ **(तेन मूर्तेन)** उस मूर्त शरीर के द्वारा **(योग्यं मूर्त)** योग्य मूर्त पदार्थ को **(अवगृह्य)** [१]अवग्रह करके (-इन्द्रियग्रहणयोग्य मूर्त पदार्थ का अवग्रह करके) **(तत्)** उसे **(जानाति)** जानता है **(वा न जानाति)** अथवा नहीं जानता (-कभी जानता है और कभी नहीं जानता)

टीका :- इन्द्रियज्ञान को [२]उपलम्भक भी मूर्त है और [३]उपलभ्य भी मूर्त है। वह इन्द्रियज्ञानवाला जीव स्वयं अमूर्त होनेपर भी मूर्त-पंचेन्द्रियात्मक शरीर को प्राप्त होता हुआ, ज्ञप्ति उत्पन्न करने में बल-धारण का निमित्त होने से जो उपलम्भक है - ऐसे उस मूर्त (शरीर) के द्वारा मूर्त - ऐसी [४]स्पर्शादिप्रधान वस्तु को - जो कि योग्य हो अर्थात् जो (इन्द्रियोंके द्वारा) उपलभ्य हो उसे - अवग्रह करके, कदाचित् उससे आगे-आगेकी शुद्धिके सद्भावके कारण उसे जानता है और कदाचित् अवग्रह से आगे-आगेकी शुद्धिके असद्भावके कारण नहीं जानता, क्योंकि वह (इन्द्रियज्ञान) परोक्ष है । परोक्ष ज्ञान, चैतन्यसामान्यके साथ

---

[१] अवग्रह = मतिज्ञान से किसी पदार्थ को जानने का प्रारम्भ होनेपर पहले ही अवग्रह होता है क्योंकि मतिज्ञान अवग्रह, ईहा, अवाय, और धारणा - इस क्रम से जानता है । [२] उपलम्भक = बतानेवाला, जानने में निमित्तभूत । (इन्द्रियज्ञान को पदार्थों के जानने में निमित्तभूत मूर्त पंचेन्द्रियात्मक शरीर है) । [३] उपलभ्य = जनानेयोग्य । [४]स्पर्शादिप्रधान = जिसमें स्पर्श, रस, गंध और वर्ण मुख्य हैं - ऐसी ।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(आत्माका) अनादिसिद्ध सम्बन्ध होनेपर भी जो अति दृढ़तर अज्ञानरूप तमोग्रन्थि (अन्धकारसमूह) द्वारा आवृत्त हो गया है, - ऐसा आत्मा पदार्थको स्वयं जाननेके लिए असमर्थ होनेसे [१] उपात्त और [२] अनुपात्त परपदार्थरूप सामग्री को ढूँढनेकी व्यग्रतासे अत्यंत चंचल-तरल-अस्थिर वर्तता हुआ, अनन्तशक्तिसे च्युत होनेसे अत्यन्त [३] विक्लव वर्तता हुआ, महामोह-मल्लके जीवित होनेसे परपरिणतिका (-पर को परिणमित करनेका) अभिप्राय करनेपर भी पद-पद पर ठगाता हुआ, परमार्थतः अज्ञानमें गिने जाने योग्य है। इसलिये वह हेय है।

भावार्थ :- इन्द्रियज्ञान इन्द्रियोंके निमित्तसे मूर्त स्थूल इन्द्रियगोचर पदार्थोंको ही क्षायोपशमिक ज्ञानके अनुसार जान सकता है। परोक्षभूत वह इन्द्रियज्ञान इन्द्रिय, प्रकाश, आदि बाह्य सामग्रीको ढूँढने की व्यग्रता के (-अस्थिरता के) कारण अतिशय चंचल-क्षुब्ध है, अल्प शक्तिवान होनेसे खेद खिन्न है, पर पदार्थोंको परिणमित करानेका अभिप्राय होनेपर भी पद-पद पर ठगा जाता है (क्योंकि पर पदार्थ आत्माके अधीन परिणमित नहीं होते) इसलिये परमार्थसे वह ज्ञान 'अज्ञान' नाम के ही योग्य है। इसलिये वह हेय है ॥५५॥

गाथा ५५ पर प्रवचन

त्रिकालवेत्ता भगवान तीनकाल को जाननेवाले हैं किन्तु करनेवाले नहीं है। इस जगत् में तीनकाल-तीनलोक को जाननेवाले हैं - ऐसा स्वीकार करने पर जाननहार में करनार नहीं रहा। प्रत्यक्ष ज्ञान त्रिकाल है। उसमें भूतकाल का ज्ञान आया किन्तु करनार नहीं आया। यदि कर्तापना रहे तो जानना नहीं रहा, इसलिये जो वस्तु थी उसे जाना है और भविष्य में होगा - उसे जानते हैं। इसप्रकार तीनकाल के जाननेवाले है किन्तु बनानेवाले नहीं है।

आत्मा अखण्ड वस्तु है। वह परमाणु में नहीं मिल गई है। लोग कहते हैं कि - "जीव गया," अतः जो पृथक है वह पृथक होता है। इसलिये आत्मा का तो ज्ञानस्वभाव है और वह आत्मा के साथ सम्बन्ध रखता है। उसकी पूर्ण दशा आनन्द का कारण है। इसप्रकार त्रिकालवेत्ता का निर्णय अंतर दृष्टि बिना नहीं होगा।

---

[१] *उपात्त=प्राप्त (इन्द्रिय, मन इत्यादि उपात्त पर पदार्थ हैं)* [२] *अनुपात्त=अप्राप्त (प्रकाश इत्यादि अनुपात्त पर पदार्थ हैं)* [३] *विक्लव=खिन्न; दुःखी, घबराया हुआ।*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अतीन्द्रियज्ञान को सुख का कारण कहा। अब, इन्द्रियसुख का कारणरूप इन्द्रियज्ञान हेय है ऐसा कहकर उसकी निन्दा करते हैं।

आत्मा को स्पर्श, रस, गंध, वर्ण नहीं है। जीव को मूर्त शरीर प्राप्त हुआ है। मतिज्ञान से किसी पदार्थ को जानने की शुरुवात होनेपर प्रथम अवग्रह होता है क्योंकि मतिज्ञान अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा - ऐसे क्रम से जानता है। प्रथम साधारण जानना होता है फिर विचार करता है। फिर निर्णय होता है बाद में धारणा होती है। इसप्रकार मतिज्ञान क्रमपूर्वक जानता है। इन्द्रियों से आत्मा को नहीं जान सकता इसलिये इन्द्रियज्ञान छोड़ने योग्य है। राग तो छोड़ने योग्य है ही परन्तु इन्द्रियज्ञान भी छोड़ने योग्य है।

इन्द्रियज्ञान मूर्त इन्द्रिय के निमित्त से मूर्त पदार्थ को जानता है। इन्द्रियज्ञान को जानने में पाँच इन्द्रियाँ निमित्त हैं। इन्द्रियज्ञान को पदार्थ जानने में निमित्तभूत मूर्त पंचेन्द्रियात्मक शरीर है। इन्द्रियज्ञान अनादि का है। एकेन्द्रिय से लेकर कीड़ा, कौए रूप अवतार हुआ वहाँ ज्ञान को इन्द्रिय तरफ ढालता (झुकाता) है किन्तु स्वभाव (की) तरफ नहीं ढालता इसलिये दुःखी है। ज्ञान की दशा जो निमित्त और राग के झुकाव में है वह दुःखदायक है। इसप्रकार निमित्त और राग तो कहीं दूर रह गए किन्तु यदि ज्ञान को पर तरफ झुकाए तो वह भी दःखदायक है।

पूर्व के उघाड़ (क्षयोपशम) के कारण लौकिक ज्ञान होता है किन्तु वर्तमान राग के कारण वह उघाड़ नहीं होता। डॉक्टरी विद्या सीखतेहुए देह को चीरते हैं तो क्या देह को मारने से ज्ञान का उघाड़ खिलता (होता) है ? नहीं। पूर्व के उघाड़ के कारण ज्ञान आया है वह दिखाई देता है। पढ़ने का राग पाप है। पाप से उघाड़ होता है अथवा अन्तराय ? इसलिये मैट्रिक आदि का उघाड़ पाप के कारण नहीं अपितु पूर्व के कारण है। पूर्व का उघाड़ लेकर आया वह तो पराधीन है किन्तु वर्तमान ज्ञान को पर तरफ झुकाएं वह भी दुःखदायक है। वर्तमान पर्याय का पूर्व में अभाव है किन्तु वर्तमान पर्याय में - संस्कार लेकर आया है। इन्द्रियज्ञान होने में मूर्त पदार्थ निमित्त है और मूर्त पदार्थ को वह जानता है इसलिये इन्द्रियज्ञान मूर्त है। भगवान आत्मा की अमूर्त अवस्था - मूर्त का अवलम्बन लेती है इसलिये उसे मूर्त कहा है।

ज्ञान, अपनी पूंजी होनेपर भी मूर्त इन्द्रियों की सापेक्षता रखकर क्रम से

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जानता है अतः वह पराधीन है। इन्द्रियज्ञानवाला जीव स्वयं अमूर्त है फिर भी मूर्त पंचेन्द्रियात्मक शरीर की प्राप्ति हुई है। स्वयं के कारण ज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है। उसमें शरीर निमित्त है। जानने की क्रिया में - धारणा में शरीर निमित्त है - ऐसे मूर्त द्वारा मूर्त - ऐसी स्पर्श आदि प्रधान वस्तु को जानता है वह पराधीन है; उस ज्ञान को मूर्त कहते हैं।

ज्ञानसामान्य अमूर्त है। अमूर्त पर्याय अमूर्त का अवलम्बन ले तो अमूर्त को जाने और मूर्त का अवलम्बन ले तो मूर्त को जाने। आत्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों अमूर्त हैं किन्तु ज्ञानपर्याय निमित्त द्वारा मूर्त पदार्थ को जानती है और फिर बाद में भूल जाती है। अथवा आम लाने के लिये कहे, बाद में भूल जाय इसप्रकार अवग्रह, ईहा, अवाय धारणा की सिद्धि के कारण कदाचित् जाने।

ज्ञान तो अमूर्त है, निमित्त मूर्त है और जानने योग्य पदार्थ मूर्त है तथा सामने सभी पदार्थों को नहीं जाने; वैसे ही स्वयं क्रम-क्रम से जानता है। इसप्रकार दोनों तरफ से पराधीनता है।

कोई कहता है कि इसमें क्या धर्म आया ? उससे कहते हैं कि स्वयं का ज्ञान अमूर्त है, वह मूर्त के निमित्त और कितने ही मूर्त को क्रम से जानता है जो दुःख का कारण है लेकिन सुख का कारण नहीं। ज्ञानस्वभाव तेरा है और वह इन्द्रिय की अपेक्षा रखे ! यह तो पराधीनता है। वैसे ही ज्ञान अपनी पूंजी, मूर्त के निमित्त से अमुक मूर्त पदार्थों को क्रम से जानती है वह पराधीन है - दुःखरूप है इसलिये अतीन्द्रिय स्वभाव की रुचि करके अतीन्द्रियज्ञान प्रगट करना वह सुख का कारण है।

यह आत्मा ज्ञानस्वभावी है। वह त्रिकाली स्वभावसामान्य के साथ ज्ञान प्रतिबद्ध होकर, निश्चल होकर लीन होकर पूर्ण होता है उसे अतीन्द्रियज्ञान कहते हैं। अतीन्द्रियज्ञान उपादेय है वस्तु का त्रिकाल जो ज्ञानस्वभाव है वह सामान्य स्वभाव है। ज्ञान तो विशेष गुण है किन्तु यहां त्रिकाल शक्ति अपेक्षा से ज्ञान को सामान्य स्वभाव कहा है। उस ज्ञानस्वभाव के आश्रय से जो अतीन्द्रियज्ञान प्रगट होता है वह ज्ञान उपादेय है।

इन्द्रियज्ञान परोक्ष है। ज्ञान का चैतन्य स्वभाव के साथ अनादिसिद्ध सम्बंध है उसके बदले इन्द्रियज्ञान इद्रिय और मन को अवलम्बता है इसलिये वह

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इन्द्रियज्ञान दुःख का कारण है और हेय है। जो ज्ञान इन्द्रिय तरफ ढलता है उसे स्वभाव का कुछ भी भान नहीं रहता। उस ज्ञान का परिणमन हीन होकर अज्ञानरूप होता है।

अब कहते हैं कि - इन्द्रियज्ञान अतिदृढ़तर अज्ञानरूप तमोग्रंथि द्वारा (अंधकार समूह द्वारा) ढक जाने से आवृत्त हो गया है। पर पदार्थों को जानने की अभिलाषा करने पर इन्द्रियज्ञान आवृत्त हो गया है निमित्त का अवलम्बन लेनेपर और निमित्त को व्यवस्थित रखने की इच्छा रखने पर तथा निमित्त में फेरफार करने की इच्छा रखने पर ज्ञान आवृत्त हो गया है ढक गया है; पराधीन हैं इसलिये वह ज्ञान हेय है।

आत्मा का जो ज्ञान सामान्य स्वभाव है; उसके साथ ज्ञान का सम्बंध है - गुण का गुणी के साथ सम्बंध है; उसके साथ ज्ञान सम्बंध नहीं करता और इन्द्रियाँ और निमित्तों के साथ जो ज्ञान को जोड़ता है और उनके साथ सम्बंध रखता है वह ज्ञान आवृत्त हो गया है। वह ज्ञान का हीन परिणमन है इन्द्रियों को अनुकूल रखकर जिस ज्ञान का परिणमन होता है वह ज्ञान पराधीन है। ज्ञानपर्याय को आत्मस्वभाव के साथ जोड़ना चाहिये, उसके बदले निमित्त और इन्द्रियों के साथ जोड़ता है वह पराधीनता है और वह दुःख का कारण है।

इन्द्रियज्ञान इन्द्रिय और प्रकाश आदि को अनुकूल रखना चाहता है। इन्द्रिय पुष्ट हो, प्रकाश हो तो ज्ञान होता है - ऐसी परसामग्री को ढूँढने की व्यग्रता से अत्यंत चंचल-तरल अस्थिर वर्तता हुआ अनंत शक्ति से च्युत होने से अत्यंत विक्लव वर्तता हुआ महामोहमल्ल के जीवित होने से पर परणति का (पर को परिणमित करने का) अभिप्राय करने पर भी पद-पद पर ठगाता हुआ परमार्थतः अज्ञान में ही गिने जाने योग्य है; इसलिये वह हेय है।

ज्ञान आत्मा का धर्म है वह धर्म, धर्मी - ऐसे आत्मा के साथ सम्बंध नहीं करता और इन्द्रियों के अनुकूल पदार्थों को रखना चाहता है और प्रतिकूल पदार्थों को दूर करना चाहता है; इसलिये वह ज्ञान अज्ञानरूप से परिणमित हो गया है। आँख, नाक, कान, जीभ, चमड़ी में विकृति होनेपर मुझे पांचों इन्द्रियों सम्बंधी ज्ञान नहीं होता इसलिये मैं उनको अनुकूल रखूँ इसप्रकार ज्ञान पर का आश्रय करता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है किन्तु परद्रव्य अनुकूल नहीं होते जिससे वह ज्ञान अत्यंत आकुलित होकर अज्ञानरूप परिणमित होता है। इन्द्रियज्ञान कम हो और उघाड़ कम हो उसके साथ धर्म का सम्बंध नहीं है।

यदि ज्ञान की पर्याय इन्द्रिय, मन आदि जड़ पदार्थों के साथ सम्बंध करे और चैतन्य ज्ञानस्वभाव के साथ सम्बंध न करे तो वह ज्ञान पराधीन है। अज्ञानी-मूढ़ जीव, स्त्री, पुत्रादि को प्रसन्न रखने का प्रयत्न करता है किन्तु चैतन्य ज्ञानानंद आत्मा को प्रसन्न रखने का एक समय भी प्रयत्न नहीं करता। अज्ञानी जीव पर को प्रसन्न रखने में मुफ्त में (व्यर्थ ही) राग करके ठगाता है; अतः इन्द्रियज्ञान की दृष्टि छोड़ और अतीन्द्रियज्ञान तरफ दृष्टि कर! क्योंकि संयोग बदलेंगे नहीं इसलिये तू अपनी दृष्टि बदल, क्योंकि दृष्टि अविपरीत (सही) होनेपर ही शांति की प्राप्ति होती है।

जिसप्रकार फूल का सुन्दर आकृतिवाला गजरा हो, कोई उसे हाथ में लेकर मसल दे तो उसकी कोई कीमत नहीं रहती; उसीप्रकार इन्द्रियज्ञान को महामोहमल्ल अर्थात् मिथ्यात्व ने मसल डाला है, उसने स्वाभाविक ज्ञान की कोई कीमत नहीं रहने दी। इन्द्रियज्ञान अनुकूलता को ढूँढने का प्रयत्न करता है जो मिथ्यात्व है। यह ज्ञान पद-पद पर पर्याय-पर्याय में ठगाता है। आत्मा वस्तु है जिसके साथ ज्ञान का सम्बंध है उसके साथ सम्बंध न जोड़कर परइन्द्रियों और मन के साथ सम्बंध जोड़ता है और इन्द्रियों को अनुकूल रखना चाहता है - ऐसा ज्ञान स्वयं ठगाता है। महामोहमल्ल जीवित होने से वह इन्द्रियज्ञान को मसल डालता है; इसप्रकार इन्द्रियज्ञान स्वभाव से च्युत होकर अज्ञानरूप से परिणमित होता है।

इन्द्रियज्ञान - इन्द्रिय, मन, प्रकाश आदि के साथ सम्बंध रखकर पर में फेरफार करना चाहता है वह अज्ञान है - हेय है। प्रकाश बाहर में विधिवत् हो तो आँख को अनुकूल हो, ब्राह्मी आँवला तेल, बादाम आदि ठंडे पदार्थ मिलें तो मन को ठंडक होती है और उससे ज्ञान होता है, इस मान्यता में पर पदार्थ को अनुकूल करने की बुद्धि है इसलिए इन्द्रियज्ञान पर को परिणमित करना चाहता है। पर के साथ सम्बंध करने पर आवृत्त हो जाता है और अज्ञान रूप से परिणमित होता है।

शास्त्रादि का अवलम्बन लेकर ज्ञान करना चाहे वह ज्ञान भी मिथ्या है। बादाम, पिस्ता, दूध आदि अनुकूल मिले तो ज्ञान का विकास होता है यह बुद्धि भी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अज्ञान है, क्योंकि ज्ञान का आत्मा के साथ सम्बंध है, उसके बदले निमित्त के साथ सम्बंध करता है वह मिथ्या है-अज्ञान है वह अज्ञानी जीव पद-पद पर पर्याय-पर्याय में ठगाता है ज्ञान के विकास के लिये चैतन्य सामान्य स्वभाव के साथ सम्बंध नहीं करता और इन्द्रिय, मन, प्रकाश, शास्त्रादि के साथ सम्बंध करके उनके आश्रय से ज्ञान का विकास करना चाहता है इसलिये वह अज्ञान है,इसमें ज्ञान आवृत्त हो जाता है, जिससे ज्ञानदशा पर्याय-पर्याय में ठगाती है।

पर्यटन करने से,देशांतर करने से, बहुत शास्त्रों को पढ़ने से तो ज्ञान का विकास होता है। शब्दों का झंकार चालू रहे तो ज्ञान का संस्कार रहे और वे शब्द याद रहें - ऐसी मान्यता में ज्ञान पद-पद पर ठगाता है। ज्ञान का सम्बंध अमूर्त आत्मा के साथ है उसके बदले मूर्त इन्द्रियाँ आदि के साथ सम्बंध करे वह दुश्मन के बोल को मस्तक चढ़ाने जैसा है। उसमें चैतन्य सामान्यस्वभाव पद-पद पर ठगाता है।

स्नान करने से शरीर में स्फूर्ति आती है, ज्ञान में ताजगी आती है,ज्ञान विकसित होता है - ऐसी मान्यता में पर पदार्थ की अनुकूता के आधीन ज्ञान होता है इसलिये - ऐसी मान्यता मूढ़ मिथ्यादृष्टि की होती है। क्षण-क्षण में ज्ञानस्वभावी आत्मा के साथ सम्बंध रखनेवाला ज्ञान स्वाधीन है और वह सुख का कारण है और वह ज्ञान पद-पद पर नहीं ठगाता, अपितु पद-पद पर डग भरता हुआ (आगे बढ़ता हुआ) शांति का कारण होता है।

इन्द्रियाँ एक सी (व्यवस्थित) रहें तो अनुकूल हो और एक सी नहीं हो तो ज्ञान का विकास नहीं होगा; इसप्रकार पर में फेरफार करने की बुद्धि वह अज्ञान है। इस अज्ञान का कारण स्वयं का अपराध है, क्योंकि स्वयं सही दृष्टि नहीं करता इसलिये इन्द्रियज्ञान ठगा जाता है, किन्तु किसी कर्म के कारण वह ज्ञान नहीं ठगाता।

हे प्रभु ! तेरी अन्तर निधि ज्ञान और आनंद से भरपूर है; इसे न देखकर वह मानता है कि यदि मैं इन्द्रियाँ, मन, और प्रकाश आदि को अनुकूल रखूँ तो ज्ञान का विकास होता है, जिससे वह पर को देखने में निरन्तर सावधानी रखता है - जिसमें स्वाधीनता लुट जाती है। मैं चैतन्य स्वभावी आत्मा हूँ उसे भूलकर क्षेत्र अनुकूल हो तो ज्ञान का विकास होता है, इन्द्रियाँ बराबर (ठीक) रहें तो अच्छा हो - ऐसा मूढ़ मिथ्यादृष्टि मानता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चैतन्य आत्मा ज्ञानानन्द से छलाछल भरा हुआ है, उसके सामने दृष्टि करे तो ज्ञानप्रकाश का उघाड़ (प्रगट) होता है - विकास होता है किन्तु इन्द्रियों को अनुकूल रखने का तथा पर में फेरफार करने का प्रयत्न करे और उनकी तरफ ज्ञान को झुकाये तो ज्ञान का विकास नहीं होता - अतीन्द्रिय ज्ञान प्रगट नहीं होता अर्थात् शांति नहीं होती।

स्वभाव का माहात्म्य करे और इन्द्रियाँ, मन, प्रकाशादि के साथ सम्बंध रखनेवाले मूर्त ज्ञान का महात्म्य छोड़े तो शांति होती है पर्यायवान की पर्याय है वह ज्ञान की पर्याय ज्ञानवान आत्मा में से आती है - प्रगट होती है। उसके बदले निमित्त में से ज्ञान पर्याय प्रगट करना चाहे तो वह मिथ्यात्व - अज्ञान है। स्वभाव कि जो ज्ञान आनंद स्वरूप है, उसमें जुड़े बिना सच्चा योग नहीं होता। स्वभाव में जुड़ने पर शांत अमृतरस पर्याय-पर्याय में प्रगट होता है;यह योग है और वह शांति का उपाय है - ऐसा जानकर जो इन्द्रियाँ, मन, प्रकाश आदि की दृष्टि छोड़कर, इन्द्रियों को जीतकर - स्वभाव तरफ दृष्टि करे - स्वभाव को अधिक करे वह जैन है।

पर पदार्थ चाहे जैसे परिणमित हों उनके साथ ज्ञान और आनंद का सम्बंध नहीं है। चैतन्य के साथ ज्ञान जुड़े और उसमें एकाकार हो - उसीमें संतोष और सुख है।

भावार्थ पर प्रवचन :- इन्द्रियज्ञान इन्द्रियों के निमित्त से मूर्त स्थूल इन्द्रिय गोचर पदार्थ को अपने विकास जितना ही जान सकता है क्षयोपशम अनुसार जान सकता है। परोक्ष भूत - ऐसा वह इन्द्रियज्ञान इन्द्रियप्रकाश आदि बाह्य सामग्री को ढूँढने की व्यग्रता (अस्थिरता) के कारण अतिशय चंचल-क्षुब्ध है तथा अल्पशक्तिवान होने से खेद खिन्न है। पर पदार्थों को परिणमित कराने का अभिप्राय होने से वह पद-पद पर ठगा जाता है (क्योंकि पर पदार्थ आत्मा के आधीन परिणमित नहीं होते) इसीलिये परमार्थ से तो वह ज्ञान, अज्ञान नाम के ही योग्य है इसलिये वह हेय है।

प्रदर्शन में यह देखना रह गया-इतना जानना बाकी रह गया - इसप्रकार पर को ढूँढने जानने में इन्द्रियज्ञान व्यग्र है - आकुलित है यह इन्द्रियज्ञान पद-पद पर ठगा जाता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जो ऐसा मानता है कि एकांत में रहें, सिद्ध क्षेत्र में रहें, प्रकाश में रहें तो ध्यान होगा अथवा बााहर की आकुलता से धर्मध्यान होगा, तो उसे स्वभाव की रुचि ही नहीं है-उसे तो धर्म होगा ही नहीं। धर्म के लिये किसकी जरूरत है -उसका निर्णय नहीं करे तो - धर्म नहीं होता। धर्म के लिये स्वभाव सन्मुख दृष्टि करने की जरुरत है - उसके बदले इन्द्रिय, मन, प्रकाश वनस्पति आदि की धर्म के लिये अथवा अतीन्द्रिय ज्ञान के लिये जरूरत है यदि - ऐसा माने तो उसे धर्म नहीं होता। जैसे बाहर का डिब्बा बहुत ही सुन्दर हो तो उससे उसमें रखा हुआ पत्थर हीरा नहीं हो जाता वैसे ही संयोगी ज्ञान चाहे जितना हो तो भी वह ज्ञान, सुख का कारण - ऐसे अतीन्द्रिय ज्ञान सुखरूप नहीं होता।

अब, इन्द्रियाँ मात्र अपने विषयों में भी युगपद् प्रवृत्त नहीं होती इसलिये इन्द्रियज्ञान हेय है - ऐसा निश्चय करते हैं।

-आत्म आराधना-

अरे रे! ऐसा दुलर्भ मनुष्यभव चला जा रहा है, सिर पर मौत नाच रही है। मौत का समय आते ही देह एकदम छूट जायेगा। उस समय मरण की वेदना भी कितनी होगी? 'मुझे कोई बचावो' ऐसा तेरा हृदय पुकारेगा, परन्तु क्या तुझे कोई बचा सकेगा? तु भले धन के ढेर करे, वैद्य-डॉक्टर चाहे जितना प्रयत्न करे, इकट्ठे होकर खड़े हुये सगे-सम्बन्धी तरफ तु भले दीनता से एक टक देखता रहे, तो भी क्या कोई तुझे शरणभूत हो ऐसा है? तूने यदि शाश्वत् स्वयं रक्षित ज्ञानानंदस्वरूप आत्मा की प्रतीति अनुभूति करके आत्म-आराधना की होगी, आत्मा में से शांति प्रगट की होगी, तो वह एक तुझे शरण देगी, इसलिये अभी से ही वह प्रयत्न कर।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचनसार गाथा ५६

अथेन्द्रियाणां स्वविषयमात्रेऽपि युगपत्प्रवृत्त्यसंभवाद्धेय-मेवेन्द्रियज्ञानमित्यवधारयति –

फासो रसो य गंधो–वण्णो सद्दो य पोग्गला होंति।
अक्खाणं ते अक्खा जुगवं ते णेव गेण्हंति ॥५६॥

अब, इन्द्रियाँ मात्र अपने विषयों में भी युगपत् प्रवृत्त नहीं होती, इसलिये इन्द्रियज्ञान हेय ही है – ऐसा निश्चय करते हैं :-

स्पर्श रस वा गंध वर्ण व शब्द पुद्गलमय कहे ।
वे इन्द्रियों के विषय इन्द्रिय एक साथ नहीं ग्रहे ॥५६॥

अन्वयार्थ :- **(स्पर्शः)** स्पर्श, **(रसः च)** रस, **(गंधः)** गंध, **(वर्णः)** वर्ण **(शब्दः च)** और शब्द **(पुद्गलाः)** पुद्गल हैं, वे **(अक्षाणां भवन्ति)** इन्द्रियों के विषय हैं **(तानि अक्षाणि)** (परन्तु) वे इन्द्रियाँ **(तान्)** उन्हें (भी) **(युगपत्)** एक साथ **(न एव गृह्णन्ति)** ग्रहण नहीं करती (नहीं जान सकतीं)।

टीका :- मुख्य स्पर्श, रस, गंध और वर्ण – ये पुद्गल के मुख्य गुण हैं। मुख्य ऐसे स्पर्श-रस-गंध-वर्ण तथा शब्द-जो कि पुद्गल हैं वे इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण होनेयोग्य (-ज्ञात होनेयोग्य), हैं। (किन्तु) इन्द्रियों के द्वारा वे भी युगपद् (एक साथ) ग्रहण नहीं होते (-जानने में नहीं आते), क्योंकि क्षयोपशम की उसप्रकार की शक्ति नहीं है।

इन्द्रियों के जो क्षयोपशम नाम की अन्तरंग ज्ञातृशक्ति है वह कौवे की आँख की पुतली की भाँति क्रमिक प्रवृत्तिवाली होने से अनेकतः प्रकाश के लिये (-एक ही साथ अनेक विषयों को जानने के लिये) असमर्थ है, इसलिये द्रव्येन्द्रियद्वारों के विद्यमान होनेपर भी समस्त इन्द्रियों के विषयों का (-विषयभूत पदार्थों का) ज्ञान एक ही साथ नहीं होता, क्योंकि इन्द्रियज्ञान परोक्ष है।

भावार्थ :- कौवे की दो आँखें होती हैं किन्तु पुतली एक ही होती है। कौवे को जिस आँखसे देखना हो उस आँख में पुतली आ जाती है; उस समय वह

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दूसरी आँख से नहीं देख सकता। ऐसा होनेपर भी वह पुतली इतनी जल्दी दोनों आँखों में आती-जाती है कि लोगों को ऐसा मालूम होता है कि दोनों आँखों में दो भिन्न-भिन्न पुतलियाँ हैं; किन्तु वास्तव में वह एक ही होती है; ऐसी ही दशा क्षायोपशमिक ज्ञान की है; द्रव्य-इन्द्रियरूपी द्वार तो पाँच हैं किन्तु क्षायोपशमिक ज्ञान एक समय एक इन्द्रिय द्वारा ही जाना जा सकता है; उससमय दूसरी इन्द्रियों के द्वारा कार्य नहीं होता।

जब क्षायोपशमिक ज्ञान नेत्र के द्वारा वर्ण को देखने का कार्य करता है तब वह शब्द, गंध, रस या स्पर्श को नहीं जान सकता; अर्थात् जब उस ज्ञान का उपयोग नेत्र के द्वारा वर्ण के देखने में लगा होता है तब कान में कौन से शब्द पड़ते हैं या नाक में कैसी गन्ध आती है इत्यादि ख्याल नहीं रहता। यद्यपि ज्ञान का उपयोग एक विषयमें से दूसरे में अत्यंत शीघ्रता से बदलता है, इसलिये स्थूलदृष्टि से देखने में ऐसा लगता है कि मानों सभी विषय एक ही साथ ज्ञात होते हों, तथापि सूक्ष्मदृष्टि से देखनेपर क्षायोपशमिक ज्ञान एक समय में एक ही इन्द्रिय के द्वारा प्रवर्तमान होता हुआ स्पष्टतया भासित होता है।

इसप्रकार इन्द्रियाँ अपने विषयों में भी क्रमशः प्रवर्तमान होने से परोक्षभूत इन्द्रियज्ञान हेय है ॥५६॥

ॐ ॐ ॐ

गाथा ५६ पर प्रवचन

स्पर्श, रस, गंध, वर्ण तथा शब्द जो कि युगपद् हैं वे इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण होने योग्य हैं, परन्तु इन्द्रियों के द्वारा वे युगपद् ग्रहण नहीं होते-जानने में नहीं आते क्योंकि क्षयोपशम की इसप्रकार की शक्ति नहीं है। इन्द्रियज्ञान एक ही पदार्थ के इन्द्रियगम्य अनेक विषयों को एक ही साथ नहीं जान सकता अर्थात् जब वह रंग को जानता है तब गंध को नहीं जानता तथा जब काले रंग को जानता है तब वह सफेद रंग को नहीं जानता ऐसी ही इस क्षयोपशम की इस प्रकार की शक्ति है। इसीलिये वह खण्ड-खण्ड ज्ञान पराधीन है-हेय है।

इसप्रकार जब खण्ड-खण्डज्ञान-मूर्तज्ञान इन्द्रियज्ञान का अवलम्बन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

छोड़कर ज्ञान सामान्यस्वभावी आत्मा का अवलम्बन ले तो शांति होगी। पांचों इन्द्रियाँ आत्मा से पृथक हैं इसलिये उनको साथ करके होनेवाला ज्ञान दुःखदायक है।

भगवान तीर्थंकर देव ने आत्मा का ज्ञानस्वभाव पूर्णरूप से देखकर प्रगट किया है आत्मा का स्वभाव ज्ञान है। भगवान ने इन्द्रिय का अवलम्बन लेकर होनेवाले ज्ञान को हेय जानकर अतीन्द्रियज्ञान प्रगट करके आनंद प्रगट किया है इसलिये इन्द्रियज्ञान हेय है। शरीर-मन-वाणी परवस्तु है इसलिये आत्मा उनका क्या करे? इन्द्रियज्ञान जो कि पर है उनको लक्ष्य में लेकर होनेवाला ज्ञान हेय है। पांचों इन्द्रियां पृथक हैं। पृथक के साथ सम्बंध करके जो ज्ञान होता है वह दुःखदायक है। केवली भगवान ने अंतर ज्ञानस्वभाव की प्रतीति करके अतीन्द्रियज्ञान और आनन्द प्राप्त किया है।

'ज्ञान, ज्ञान को जानता है' इसप्रकार अंतर में एकाग्र होना यह धार्मिक क्रिया है किन्तु शरीर से अथवा पर से धार्मिक क्रिया नहीं होती। दया-दानादि पुण्य है और आत्मा का ज्ञानस्वभाव धर्म है।

इन्द्रियज्ञान स्पर्श आदि पदार्थ को क्रम से जानता है। मुख्य ऐसे स्पर्श, रस, गध, वर्ण तथा शब्द और उनके अन्तर्गर्भित अनेक भेद हैं; जैसे ठंडा-गर्म लगता है वह स्पर्श है, खट्टा-मीठा लगता है वह रस है, सुगन्ध-दुर्गन्ध वह गंध है, लाल-पीला वर्ण है तथा जो शब्द हैं, उन्हें जड़ इन्द्रियों द्वारा जान सकता है किन्तु इन्द्रियों द्वारा उन पदार्थों को एक साथ नहीं जान सकता; क्योंकि जब स्वाद के ऊपर लक्ष्य होता है तब रूप के ऊपर लक्ष्य नहीं होता और जब रूप के ऊपर लक्ष्य होता है तब शब्द के ऊपर लक्ष्य नहीं होता; इसप्रकार इन्द्रियज्ञान खण्ड-खण्ड ज्ञान है।

ज्ञान का विकास होनेपर भी वह एक ही साथ पाँचों इन्द्रियों के विषयों को नहीं जान सकता। जब रूप की तरफ ख्याल (लक्ष्य) जाता है तब शब्द के ऊपर लक्ष्य नहीं जाता और शब्द का ख्याल करने जाय वहाँ रूप को भूल जाता है। इसप्रकार इन्द्रियज्ञान खण्ड-खण्ड ज्ञान है वह आत्मा का स्वभाव नहीं है। आत्मा का स्वभाव जाननहार है। इन्द्रिय का लक्ष्य करके जानने जाए वहाँ एक ही साथ नहीं जानता। मेरा तो ज्ञान और आनन्द स्वभाव है - ऐसी दृष्टि करे तो धर्म होता है। खण्ड-खण्ड ज्ञान वास्तव में धर्म नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पाँचों द्रव्येन्द्रियों की विद्यमानता होनेपर भी, अधूरा ज्ञान एक इन्द्रिय द्वारा क्रम से ज्ञान कर सकता है। जिस ज्ञान का विकास दिखाई देता है वह पाँचों इन्द्रियों के विषयों को एक ही साथ नहीं जान सकता है अर्थात् जब देखने जाए तब वहाँ सुन नहीं सकता; इसप्रकार कर्म के आधीन हुआ ज्ञान सच्चाज्ञान नहीं है। उस क्षयोपशम की शक्ति ही - ऐसी है। जैसे कौए को आँख दो होती है किन्तु पुतली एक होती है, वह फिरा करती है; वैसे ही ज्ञान का क्षयोपशम पाँचों इन्द्रियों में फिरा करता है।

पाँचों इन्द्रियों के द्वार हैं उनमें अन्दर जो ज्ञान का उपयोग जब एक तरफ जाता है तब शेष चार इन्द्रियों से काम नहीं होता। द्रव्य इन्द्रिय का द्वार होनेपर भी एक ही का काम करती है और चार का काम नहीं करती; इसप्रकार इन्द्रियज्ञान क्रम से प्रवर्तता है, इसलिये वह ज्ञान पाँचों इन्द्रियों के विषयों को एक साथ जानने में समर्थ नहीं है, इसलिये द्रव्य इन्द्रियों के द्वार विद्यमान होनेपर भी समस्त इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थों का ज्ञान एक साथ नहीं होता। इसप्रकार इन्द्रियज्ञान परोक्ष है इसलिये वह छोड़नेयोग्य है। अज्ञानी अखण्ड-ज्ञानमूर्ती आत्मा को भूलकर, इन्द्रियज्ञान के विषय में रुककर दुःखी हो रहा है।

भावार्थ पर प्रवचन :- कौए की दो आँख होती है किन्तु पुतली एक ही होती है। कौए को जिस आँख से देखना होता है उस आँख में पुतली आ जाती है। उस समय वह दूसरी आँख से नहीं देख सकता; ऐसा होनेपर भी वह पुतली इतनी जल्दी दोनों आँख में आती-जाती है कि लोगों को - ऐसा मालूम होता है कि दोनों आँखों में दो भिन्न पुतलियाँ है किन्तु वास्तव में वह एक ही होती है; - ऐसी ही दशा क्षयोपशम ज्ञान में है।

द्रव्य-इन्द्रियरूपी द्वार तो पाँच हैं किन्तु क्षायोपशमिक ज्ञान एक समय एक इन्द्रियद्वार ही जाना जा सकता है। एक साथ पाँचों इन्द्रियों द्वारा ज्ञान कार्य नहीं करता। यदि उपयोग रस के स्वाद में हो तो पास से सर्प भी चला जाए तो खबर नहीं होती। राय बहादुर का खिताब मिला हो उस समय बिच्छु भी काट जाय तो ख्याल नहीं आता। एक व्यक्ति को मरने की तैयारी के समय राय बहादुर का खिताब मिला उस समय उपयोग कहाँ है ?

सम्पूर्ण जिन्दगी में जिसने कभी आत्मा की बात सुनी भी न हो उसे मृत्यु के

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

समय किसकी याद आएगी ? मृत्यु की तकलीफ (टीस) होती हो तो कौन समाधान करेगा ? तेरा आत्मा अखण्ड ज्ञान की मूर्ती है वह इन्द्रिय द्वारा रुक गया है। खाने की पच्चीस चीजें हैं, उसमें से एक तरफ उपयोग रहता है और शेष चीजों की तरफ उपयोग काम नहीं करता।

इसप्रकार इस ज्ञान की अवस्था अनन्त काल से पराधीन है। मेरी सत्ता में ज्ञान और आनन्द है - ऐसी ही नजर किये बिना धर्म नहीं होता। आत्मा ज्ञानानन्द पूर्ण पवित्र है। शरीर, हड्डी, इत्यादि चली जाती है। अपने प्रभु की सम्हाल तो नहीं की और दूसरे की सम्हाल रखता है।

देखो ! भगवान केवली कहाँ से हुए ? अंतर स्वरूप में एकाग्र हुए हैं जिसमें से केवलज्ञान प्राप्त हुआ है - ऐसी दृष्टि बिना इन्द्रियज्ञान भी जब दुःखदायक है तो फिर दूसरी कौन सी चीज सुखदायक हो सकती है। चैतन्यमय प्रभु आनन्द से भरा है उसकी श्रद्धा के बिना धर्म नहीं होता। भिन्न-भिन्न प्रकार की मिठाई खाते रहते हैं उस समय अनेक प्रकार की मिठाई खाने की इच्छा है किन्तु वह सभी मिठाईयों का स्वाद एक ही साथ नहीं लिया जा सकता।

जैसे गरीब आदमीको किसी दिन शक्कर मिले तो वह उसे बार-बार चाहता है; वैसे ही अज्ञानी स्पर्श का अनुभव करूँ, रस को चखूँ इसप्रकार पाँचों इन्द्रियों के विषयों की तरफ झपटता है इसलिये उसमें सुख नहीं है।

पाँचों इन्द्रियों के विषय पर हैं उनकी रुचि छोड़कर आत्मा जो कि जानने की सत्तावाला है उसकी रुचिकर। इन्द्रियज्ञान की महिमा छोड़ दे। शरीर से अथवा पैसे से धर्म नहीं होता। यदि पैसे से धर्म होता तो गरीब को रोना पड़े। शरीर का अवलम्बन लेकर जो ज्ञान काम करता है वह छोड़ने योग्य है; इसलिये जो अंतर प्रभुता भरी है वह देखनेयोग्य है। पृथक को एक मानना वह संसार है और पृथक को पृथक मानना वह धर्म है।

क्षायोपशमिक ज्ञान जब नेत्र द्वारा वर्ण को देखने का कार्य करता है, तब वह शब्द, गंध, रस अथवा स्पर्श को नहीं जान सकता। ज्ञान की दशा जब रूप को देखने में रुकी है तब उसे स्पर्श, रस की खबर नहीं होती। अतः वह ज्ञान आदरणीय नहीं फिर भी हमारी आँख अच्छी है, हमारी जीभ धारावाही बोल सकती है - ऐसा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अज्ञानी मानता है किन्तु ये आत्मा को साधन नहीं है।

इच्छा होनेपर भी कई बार नहीं बोल सकता। इन्द्रियाँ तो नहीं किन्तु इन्द्रियों का लक्ष्य करके फिरनेवाला ज्ञान-अधर्म है। ज्ञानपर्याय जड़ द्वारा काम करे वह अधर्मरूप से परिणमित होता है किन्तु स्वभावरूप से परिणमित नहीं होता इसलिये दुःख है।

उपवास और यात्रा अनन्त बार किया किन्तु संयोग, विभाव और स्वभाव के भेदज्ञान बिना धर्म नहीं हुआ। जो पृथक हैं उन्हें एक मानना वह संसार का कारण है और पृथक को पृथक जानना - उसमें भेदज्ञान करना वह धर्म का कारण है। तेरी इच्छा के कारण शरीर की भी पीड़ा दूर नहीं हो सकती तो फिर तू अन्य किसकी पर्याय को करेगा ?

शरीर में रोग उसके अपने समय में आता है तेरा कार्य मात्र जानने का है। खण्ड-खण्ड ज्ञान का अभिमान छोड़ दे। केवलज्ञान का क्या हिसाब है ? ऐसे केवलज्ञान की शक्ति आत्मा में है - ऐसी महिमा आने पर खण्ड-खण्ड ज्ञान की महिमा नहीं आती। इन्द्रियाँ आत्मा से विजातीय हैं इसलिये इन्द्रियों के साथ सम्बन्ध करता हुआ ज्ञान दुःखदायक है।

ज्ञान का विषय एक के बाद एक जल्दी से फिरता है। उपयोग एक है और द्वार पाँच हैं; जब वह एक द्वार से काम करता है तब वह दूसरे में काम नहीं करता। एक राजा खाते समय वाद्य बजवाना इत्यादि करवाता था और मानता था कि मैं पाँचों इन्द्रियों के विषयों को एक ही साथ ग्रहण करता हूँ।

रूप, शब्द, प्रशंसा का शौकीन होनेपर भी एक साथ में एक ही विषय का ज्ञान काम करता है इसलिये अज्ञानी उनमें झपट्टा मारता है। स्थूलदृष्टि से देखनेपर एक ही साथ जानता है - ऐसा लगता है किन्तु सूक्ष्मदृष्टि से देखने पर क्षायोपशमिक ज्ञान एक समय में एक ही इन्द्रिय द्वारा प्रवर्तित होता हुआ स्पष्टरूप से भाषित होता है, इसलिये निमित्त की अपेक्षा रखकर होनेवाला ज्ञान आदरणीय नहीं है, क्योंकि बोलना जड़ की क्रिया है।

खण्ड-खण्ड ज्ञान का उपयोग तेरा स्वभाव नहीं है। इन्द्रियज्ञान पराधीन है इसलिये वह आदरणीय नहीं है। इन्द्रियाँ दुश्मन हैं-वे जड़ हैं आत्मा चेतन है। शरीर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पुद्गल-रूपी है और आत्मा अरूपी है, शरीर अपवित्र है और आत्मा पवित्र है; इसप्रकार समझकर उनके साथ नाता तोड़कर आत्मा के साथ नाता करना चाहिये। इन्द्रियज्ञान परोक्ष है इसलिये हेय है।

आत्मा अनादि-अनन्त है उसका स्वभाव जानना देखना होनेपर भी उसका निमित्तों के साथ सम्बंध जोड़ना वह ज्ञान का रूप नहीं अपितु यह तो अधर्म है। अल्पज्ञान निमित्त की अपेक्षा रखता है इसलिये वह अज्ञान है-हेय है-अधर्म है; यह बात शांति से समझना चाहिये।

अज्ञानी देश, समाज आदि, पर का कार्य करना चाहता है किन्तु उसे अपनी ज्ञान की सेवा करना अच्छा नहीं लगता और वह इन्द्रिय की सेवा करना चाहता है। इन्द्रियाँ अच्छी हो तो ठीक रहे - ऐसा मानकर वह अधर्म का सेवन करता है, किन्तु पर का तो कुछ भी नहीं कर सकता; वह एक भी परमाणु को बदल नहीं सकता। इस बात की अज्ञानी को खबर नहीं होती।

भगवान ने छह द्रव्य देखे हैं। शरीर पुद्गल है, वह उसके कारण परिणमित होता है किन्तु आत्मा से परिणमित नहीं होता। इन्द्रियज्ञान परोक्ष है इसलिये वह छोड़ने योग्य है। आत्मवस्तु अनादि-अनन्त है उसे किसी ने नहीं बनाया है और वह किसी में मिल जाय - ऐसा भी नहीं है।

आत्मा का स्वभाव ज्ञान और आनन्द है उसकी वर्तमान दशा को स्वभाव में नहीं जोड़ता और उसे पर में जोड़कर राग-द्वेष करता है, इसलिये वह ज्ञान अधर्मरूप से परिणमित होता है; अतः वह छोड़ने योग्य है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचनसार गाथा ५७

अथेन्द्रियज्ञानं न प्रत्यक्षं भवतीति निश्चिनोति-

परदव्वं ते अक्खा णेव सहावो त्ति अप्पणो भणिदा।
उवलद्धं तेहि कधं पच्चक्खं अप्पणो होदि ॥५७॥

अब, यह निश्चय करते हैं कि इन्द्रियज्ञान प्रत्यक्ष नहीं है :-

वे इन्द्रियाँ परद्रव्य, आत्मा के स्वभाव नहीं कही।
हों कैसे उनसे प्राप्त जो प्रत्यक्ष आत्मा के कभी ? ॥५७॥

अन्वयार्थ :- **(तानि अक्षाणि)** वे इन्द्रियां **(परद्रव्यं)** पर द्रव्य हैं **(आत्मन स्वभावः इति)** उन्हें आत्म स्वभावरूप **(न एव भणितानि)** नहीं कहा है, **(तैः)** उनके द्वारा **(उपलब्धं)** ज्ञात **(आत्मनः)** आत्मा का **(प्रत्यक्षं)** प्रत्यक्ष **(कथं भवति)** कैसे हो सकता है ?

टीका :- जो केवल आत्मा के प्रति ही नियत हो वह (ज्ञान) वास्तव में प्रत्यक्ष है। यह (इन्द्रियज्ञान) तो, जो भिन्न अस्तित्ववाली होने से परद्रव्यत्व को प्राप्त हुई हैं, और आत्मस्वभावत्व को किंचित्मात्र स्पर्श नहीं करती (आत्मस्वभावरूप किञ्चित्मात्र भी नहीं हैं) ऐसी इन्द्रियों के द्वारा उपलब्धि करके (ऐसी इन्द्रियों के निमित्त से पदार्थों को जानकर) उत्पन्न होता है, इसलिये वह (इन्द्रियज्ञान) आत्मा के लिये प्रत्यक्ष नहीं हो सकता।

भावार्थ :- जो सीधा आत्मा के द्वारा ही जानता है वह ज्ञान प्रत्यक्ष है। इन्द्रियज्ञान परद्रव्यरूप इन्द्रियों के द्वारा जानता है इसलिये वह प्रत्यक्ष नहीं है ॥५७॥

ॐ ॐ ॐ

गाथा ५७ पर प्रवचन

इन्द्रियां भिन्न सत्तावाली हैं वे आत्मस्वभाव को किंचित्मात्र भी स्पर्श नहीं करती। जो केवल आत्मा के प्रति ही नियत हो वह ज्ञान वास्तव में प्रत्यक्ष है; अर्थात्

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जो आत्मा के प्रति समर्पित (झुका) है वह ज्ञान प्रत्यक्ष है। जो ज्ञान की दशा निमित्त का अवलम्बन लेती है वह परोक्ष है। जो इन्द्रिय-मन अथवा पुण्य-पाप में नहीं अपितु एक मात्र आत्मा के साथ एकाकार होकर प्रवर्तता है वह ज्ञान प्रत्यक्ष है। इन्द्रियाँ भिन्न अस्तित्ववाली हैं; जो रोटी, दाल, भात, साग (सब्जी) आदि से बनती हैं। जन्म के समय छोटा शरीर था फिर रोटी-दाल-भात से बड़ा बनता है।

शरीर का अस्तित्व भिन्न है और आत्मा का अस्तित्व भिन्न है - वर्तमान में (अभी) भिन्न है। पाँचों इन्द्रियाँ परद्रव्य हैं। वे इन्द्रियाँ आत्मा के स्वभाव को स्पर्श नहीं करती। भगवान आत्मा अपने स्वभाव से भरा है। इन्द्रियों में आत्म स्वभाव बिल्कुल भी नहीं है। यह ज्ञानतत्त्व अधिकार अलौकिक है। इसमें धर्म-अधर्म की बात आ जाती है। पुण्य-पाप में धर्म नहीं है। आत्मा का स्वभाव ज्ञान है। ज्ञान में ज्ञान को एकाग्र करे वह धर्म है।

इन्द्रिय के साथ सम्बंध करता हुआ ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। इन इन्द्रियों में आत्म-स्वभाव नहीं है। जाननहार (जाननेवाला) मात्र जानता है। मृत्यु के समय आत्मा चला जाता है फिर यदि शरीर को पूछा जाय तो वह कुछ जानेगा ? और वह जवाब देगा ? नहीं। क्योंकि जाननेवाला तो चला गया है। यह ज्ञान की पर्याय इन्द्रिय का अवलम्बन लेकर काम करे तो वह ज्ञान किसी भी प्रकार से प्रत्यक्ष नहीं हो सकता; इसलिये वह सुखरूप भी नहीं हो सकता।

यह क्रिया करो, शुद्ध आहार खाओ, शद्ध पानी पीयो - ऐसा अज्ञानी कहता है किन्तु इन्द्रिय द्वारा होनेवाला ज्ञान परोक्ष है; उसमें स्वभाव का अभाव है। कोई कहता है कि गर्म पानी पीने तथा हरितकाय को नहीं खानेआदि की बात तो यहाँ कहने में नहीं आती ? किन्तु भाई ! ऐसी प्रतिज्ञा लो कि जो ज्ञान अंतर स्वभाव के अवलम्बन से काम करे वही ज्ञान सच्चा है और जो पर का अवलम्बन लेकर काम करे वह खोटा (झूठा) है।

इन्द्रिय का अस्तित्त्व पर है इसलिये उनके आधार से होनेवाला ज्ञान छोड़ने योग्य है - ऐसा निर्णय करना वह मिथ्यात्व का प्रत्याख्यान है। देखो ! यहाँ इस विधि से प्रत्याख्यान करने की बात चलती है। पहले कुछ दिन शान्ति से धीरज रखकर बात सुनना चाहिये। यदि पूर्व में सही बात को समझा होता तो संसार का नाश हुए

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बिना नहीं रहता।

इन्द्रियाँ जड़ हैं जो एक समय में बदल जाएगी। अचानक आग लग जाती है और लोग मर जाते हैं। एक समय पहले अनेक प्रकार की आशाएं होती हैं और एक समय बाद ही यह पर (दूसरे) भव में चला जाता है। बी.ए. की पढ़ाई का ज्ञान तो खोटा है, किन्तु यह बात अज्ञानी को स्वीकार नहीं होती। पढ़ने से पैसा नहीं मिलता अपितु पुण्य के कारण मिलता है।

पूर्व के उघाड़ से बी.ए. होता है किन्तु वर्तमान में तो पाप का भाव है उससे ज्ञान नहीं खिलता (विकसित नहीं होता)। इसलिये जो पूर्व पुण्य के उघाड़ के कारण ज्ञान दिखता है; उस पूर्व ज्ञान के उघाड़ की तो बात नहीं किन्तु वर्तमान ज्ञानपर्याय को जड़ के साथ जोड़े तो वह भी दुःखदायक है।

एक बार सत्य को सुन कि चैतन्य को दुःख किसका है ? क्या संयोग की पीड़ा है ? नहीं, अपितु आनन्द-स्वरूप को भूलकर विकार परिणति का दुःख है; वह विकार जिस स्वभाव में नहीं है - ऐसे स्वभाव की श्रद्धा के बिना दुःख दूर नहीं होता, किन्तु अज्ञानी संयोगों को बदलना चाहता है।

यहाँ कहते हैं कि वर्तमान ज्ञान जब वर्तमान निमित्त के साथ सम्बंध करता है तब इससे त्रिकाली द्रव्यस्वभाव के साथ सम्बंध टूट जाता है। इसप्रकार इन्द्रियज्ञान हेय है-छोड़ने योग्य है।

खंड-खंड ज्ञान दुःखदायक है इसलिये उसकी रुचि छोड़। आत्मा आनन्दस्वरूप है इसमें रति कर, इससे तृप्त हो - ऐसी बात सुनकर अज्ञानी भड़कता है। आत्मा आनन्दकन्द है उसकी रुचि और प्रेम कर। देव-गुरु-शास्त्र का प्रेम भले हो किन्तु वह धर्म नहीं है।

यहाँ तो कहते हैं कि ज्ञानपर्याय त्रिकाली द्रव्यस्वभाव के साथ सम्बंध करे तो धर्म है और निमित्त के साथ सम्बंध करें तो वह अधर्म है। तेरी पर्याय, निमित्त के साथ सम्बंध जोड़कर, भगवान को देखे तो राग होता है। समवशरण में भगवान को देखे तो भी वह इन्द्रियज्ञान है-हेय है। बुद्धिमान को निर्णय करना चाहिए। अनंत काल में एक सेकेंड मात्र के लिये भी इसने धर्म को ग्रहण नहीं किया।

निमित्त पाकर होनेवाला ज्ञान, प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। उस ज्ञान का विकास

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

खण्ड-खण्ड है इसलिये दुःखदायक है। जीवों को वस्तुस्थिति कान में सुनने को भी नहीं मिलती अतः वे किसी को भी धर्म मान लेते हैं। तीर्थंकर देव कहते हैं कि तेरा आत्मा शरीर से पृथक है, तो क्या तुझे पृथक के साथ भाई-बंधी करके धर्म करना है? - रूपी के साथ मेल करके मिलना है ? तो उनका कभी भी मेल नहीं होगा।

पाँच इन्द्रियों का उघाड़ होनेपर भी, एक इन्द्रिय का उघाड़ ही काम करता है; इसलिये निर्णय कर कि आत्मा का ज्ञानस्वभाव है - ऐसी अंतर श्रद्धा, ज्ञान और लीनता से केवलज्ञानी होता है।

मैंट्रिक में पहले नम्बर पास होता है तो वहाँ अभिमान करता है और ऐसा मानता है कि मानों मैंने जग को जीत लिया है, किन्तु पूर्व में राग मन्द किया था इसलिये (क्षयोपशम) उघाड़ लेकर आया था वह वर्तमान का फल नहीं है। यहाँ उसकी बात नहीं क्योंकि वह उघाड़ लेकर आया उससे आत्मा को क्या ? आत्मा का - वस्तु स्वभाव का तो भान नहीं हुआ। इसप्रकार ज्ञान के बिना सभी कुछ व्यर्थ है।

भावार्थ पर प्रवचन :- जो सीधा आत्मा के द्वारा ही जानता है वह ज्ञान प्रत्यक्ष है। इन्द्रिज्ञान तो परद्रव्यरूप इन्द्रियों के द्वारा जानता है इसलिये वह प्रत्यक्ष नहीं है। अखण्ड ज्ञान आदरणीय है। ज्ञानानन्द स्वभाव पूर्ण है उसकी तरफ लक्ष्य करना हितकर है। स्वभाव तरफ लक्ष्य करने से ज्ञान प्रत्यक्ष होता है, इसलिये आदरणीय है और इन्द्रिय तरफ लक्ष्य करने से ज्ञान परोक्ष होता है इसलिये वह दुःखदायक है।

यह ज्ञान अधिकार है इन्द्रिय के अवलम्बन से जो कार्य होता है वह दुःखरूप और पराधीन है। इन्द्रिय के निमित्त से जो ज्ञान का कार्य होता है वह परोक्ष है और जो आत्म सापेक्ष ज्ञान होता है वह प्रत्यक्ष है - यह बात यहाँ चलती है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचनसार गाथा ५८

अथ परोक्षप्रत्यक्षलक्षणमुपलक्षयति-

जं परदो विण्णाणं तं तु परोक्खं ति भणिदमट्ठेसु।
जदि केवलेण णादं हवदि हि जीवेण पच्चक्खं ॥५८॥

अब, परोक्ष और प्रत्यक्ष के लक्षण बताते हैं :-

हो अर्थ का जो ज्ञान पर से है परोक्ष कहा गया।
यदि ज्ञात होता जीव से ही तो प्रत्यक्ष कहा गया ॥५८॥

अन्वयार्थ :- **(परतः)** पर के द्वारा होनेवाला **(यत्)** जो **(अर्थेषु विज्ञानं)** पदार्थ सम्बन्धी विज्ञान है **(तत् तु)** वह तो **(परोक्षं इति भणितं)** परोक्ष कहा गया है, **(यदि)** यदि **(केवलेन जीवेण)** मात्र जीव के द्वारा ही **(ज्ञातं भवति हि)** जाना जाये तो **(प्रत्यक्षं)** वह ज्ञान प्रत्यक्ष है।

टीका :- निमित्तता को प्राप्त (निमित्तरूप बने हुए) - ऐसे जो परद्रव्यभूत अंतःकरण (मन), इन्द्रिय, परोपदेश, [१]उपलब्धि, संस्कार या प्रकाशादिक हैं उनके द्वारा होनेवाला जो स्वविषयभूत पदार्थका ज्ञान, वह पर के द्वारा [२]प्रादुर्भाव को प्राप्त होने से 'परोक्ष'-के रूप में जाना जाता है, और अंतःकरण, इन्द्रिय, परोपदेश, उपलब्धि [३] संस्कार या [४]प्रकाशादिक सब परद्रव्यकी अपेक्षा रखे बिना एकमात्र आत्मस्वभाव को ही कारणरूप से ग्रहण करके सर्व द्रव्य-पर्यायों के समूह में एक समय ही व्याप्त होकर प्रवर्तमान ज्ञान वह केवल आत्मा के द्वारा ही उत्पन्न होने से 'प्रत्यक्ष' के रूप में जाना जाता है।

इस (गाथा में) सहज सुखका साधनभूत - ऐसा यही महाप्रत्यक्ष ज्ञान इच्छनीय माना गया है-उपादेय माना गया है (- ऐसा आशय समझना) ॥५८॥

ॐ ॐ ॐ

---

[१] उपलब्धि = ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम के निमित्त से उत्पन्न पदार्थों को जानने की शक्ति। (यह 'लब्ध' शक्ति जब 'उपयुक्त' होती है, तभी पदार्थ ज्ञात होता है।) [२] प्रादुर्भावको प्राप्त = प्रगट, उत्पन्न। [३] संस्कार = पूर्व ज्ञात पदार्थकी धारणा। [४] चक्षुइन्द्रिय द्वारा रूपी पदार्थको देखनेमें प्रकाश भी निमित्तरूप होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गाथा ५८ पर प्रवचन

पाँच इन्द्रिय और मन के निमित्त से होनेवाले ज्ञान में दो भाग पड़ जाते हैं। छद्मस्थ आत्मा को क्षयोपशम अल्प है इसलिये उसमें इन्द्रिय की अपेक्षा आती है। ज्ञान की पर्याय इन्द्रिय तरफ लक्ष्य करती है वह परोक्ष है और मन द्वारा जो ज्ञान होता है उसमें दो भाग पड़ते हैं। पूर्व की स्मृति का विकल्प और वर्तमान का चिंतन इसप्रकार उसमें दो भाग होते हैं। प्रत्येक इन्द्रिय में दो खण्ड होते हैं। स्पर्शेन्द्रिय, जननेन्द्रिय का विषय और ठंडे गरम का ज्ञान- ऐसे दो भाग होते हैं, इसप्रकार वह खण्ड ज्ञान होता है।

रसनेन्द्रिय में चखने व बोलने का, नाक में दो छेद द्वारा सूँघने का काम खण्ड-खण्ड होता है; इसीप्रकार दो आँख द्वारा देखने के काम में दो खण्ड होते हैं, सुनने में दो कान द्वारा दो खण्ड होते हैं इसलिये उसमें एक इन्द्रिय चली जाने पर दूसरी नहीं रहती - ऐसा नहीं होता इसलिये इसमें दो भाग होते हैं।

आत्मा अनन्त गुणों का पिण्ड है उसकी अखण्ड दृष्टि करने पर एकपना रहता है। इद्रिय में दो भाग पड़तें है किन्तु आत्मा पूर्ण स्वभाव है उसकी श्रद्धा करनेपर एकरूप होता है। अनंत गुणों की एक ही साथ सभी अवस्थायें होती है किन्तु मन में और इन्द्रिय में खण्ड-खण्ड होता है।

तथा राग-द्वेष के दो प्रकार होते हैं। आत्मा ज्ञानस्वभावी वस्तु है पूर्ण अतीन्द्रियज्ञान में खण्ड की-भेद की अपेक्षा नहीं रहती। अतीन्द्रियज्ञान की प्रतीति करनेवाला खण्ड-खण्ड की रुचि छोड़ता है और स्वभाव की रुचि करता है। मन के निमित्त से अवग्रह-ईहा-अवाय आदि क्रमपूर्वक जानता है अथवा पूर्व का याद करता है; इसप्रकार इसमें वर्तमान और पूर्व ये दो खण्ड पड़ जाते हैं।

क्षयोपशम, संस्कार आदि ज्ञान पर के निमित्त से होता है इसलिये परोक्ष है। ज्ञान की वर्तमान पर्याय निमित्त का लक्ष्य करके खण्ड-खण्ड काम करती है और राग-द्वेष करता है यह जो परोक्ष ज्ञान हैजब, है,वह भी तो फिर दया दानादि के विकल्प आदरणीय नहीं हो सकते। चैतन्य सामान्य सदृश्य स्वभाव त्रिकाल है। उसकी रुचि कर। देह की अवस्था अवस्थित होती है अर्थात् जिस काल में जो अवस्था होने वाली होगी वही होती है जो नहीं बदल सकती और जो नहीं होनेवाली

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अवस्था है वह कभी भी नहीं होगी; अतः किसलिये अधीर होता है ? इसलिये जानने की क्रिया कर। इन्द्र-नरेन्द्र कोई भी तुझे बदलने में समर्थ नहीं, किसी भी समय तुझे बदलने की ताकत उनमें नहीं है।

तू ज्ञान स्वभाव में देख। चैतन्य ज्ञाता है, उसे देखना और उसकी श्रद्धा करना वही धर्म है। द्रव्य तरफ ज्ञान एकरूप होता है और मन तथा इन्द्रिय तरफ देखे तो ज्ञान में खण्ड-खण्ड पड़ता है। भूतकाल की याददाश्त खण्ड ज्ञान है। वर्तमान अवग्रह आदि का विचार करे तो उसमे मन निमित्त है इसलिये वह स्मरण ज्ञान परोक्ष है।

तथा पाँच इन्द्रिय तरफ का झुकाव करके जो ज्ञान होता है उसमें पर का उपदेश निमित्त होता है इसलिये वह ज्ञान हेय है। सुनने के समय शब्द के निमित्त से होनेवाला ज्ञान आदरणीय नहीं है।

तथा ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम के निमित्त से उत्पन्न हुई, पदार्थों को जानने की शक्ति उपलब्धि है वह भी वास्तव में स्व पदार्थ नहीं है। यहाँ उस उपलब्धि को परद्रव्य में डाल दिया है। पूर्व में जाने हुए पदार्थ की धारणा परद्रव्य है। उसमें संस्कार का निमित्तपना आता है तथा प्रकाश आदि निमित्त हैं। जब ज्ञान इसकी ओर झुकता है तब उसे निमित्त कहा जाता है।

ज्ञानस्वभाव तेरा है वह पर का अवलम्बन लेकर कार्य करे वह आदरणीय नहीं है। भाई ! शांत हो चैतन्य की ज्ञान पर्याय इतने अवलम्बन लेकर काम करे यह तेरा स्वभाव नहीं है। मन, इन्द्रिय, स्मृति आदि का जितना विषय है - उन पदार्थों का ज्ञान वह पर द्वारा प्रगट होता है, इसलिय परोक्ष रूप से पहचाना जाता है।

किसी के साथ वाद-विवाद करने जैसा नहीं है। आत्मा शुद्ध आनंदकंद है उसकी तरफ झुके बिना इन्द्रियज्ञान छोड़ने लायक है - ऐसा नहीं कहा जा सकता। उपलब्धि धारणा आदि मन के निमित्त से होती है इसलिये उसे परद्रव्य कहा है। स्वाभाविक ज्ञान की अपेक्षा से क्षयोपशमज्ञान स्वभाव नहीं है। क्षयोपशम ज्ञान खण्ड-खण्ड है।

समयसार गाथा ४९ में कहा है कि - अपने स्वभावकी दृष्टि से देखा जाये तो क्षायोपशमिक भाव का भी तुझमें अभाव होने से वह (तू) भावेन्द्रिय के

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अवलम्बन द्वारा भी रस को नहीं चखता इसलिये अरस है। भावेन्द्रिय खंड-खंड है। पर तरफ लक्ष्य जाता है वह वस्तु का स्वभाव नहीं है अपितु स्वभाव को देखना वह तेरा स्वरूप है। स्वभाव की मुख्यता में एक स्वभाव रहता है।

ज्ञानस्वभावी आत्मा है और यह ज्ञानभाव आत्मा का है। उपदेश आदि द्वारा होनेवाला ज्ञान परोक्ष है। गणधरादि व्याख्यान सुनते हैं किन्तु उन्हें परोक्ष ज्ञान का आदर नहीं होता; इसलिये परोक्ष ज्ञान हेय है-छोड़ने योग्य है। स्वभाव को ही कारणपने ग्रहण करके प्रगट होनेवाला ज्ञान, प्रत्यक्षज्ञान है।

अंतःकरण, इन्द्रिय, परोपदेश, उपलब्धि, संस्कार अथवा प्रकाशादि सब परद्रव्यों की अपेक्षा रखे बिना एकमात्र स्वभाव को ही कारणपने से ग्रहण करता है। अर्थात् 'मैं' ज्ञायक चैतन्य हूँ - ऐसा कारणपने ग्रहण करता है। निमित्त कारण का अवलम्बन लेकर होनेवाला ज्ञान - परोक्ष है। वह ज्ञान स्वयं से होता है किन्तु निमित्त ऊपर लक्ष्य जाता है। अपने पर्याय स्वभाव से प्रगट नहीं हुआ है और निमित्त द्वारा स्वयं प्रगट करता है वहाँ पर के ऊपर लक्ष्य जाता है; वहाँ भी निमित्त पराधीन नहीं करता, किन्तु स्वयं पराधीन होता है।

आत्म स्वभाव को कारणपने ग्रहण करके अर्थात् शुद्ध उपादान को ग्रहण करके, सर्व द्रव्य पर्यायों के समूह में एक समय ही व्याप्त होकर प्रवर्तमान ज्ञान वह केवलज्ञान है। सर्वद्रव्य पर्याय में व्याप्त होकर अर्थात् सर्व द्रव्यों को जानता है। अपनी ज्ञान पर्याय में उनको जान लेता है। यह केवल आत्मा द्वारा ही उत्पन्न हुआ होने से प्रत्यक्ष के रूप में जाना जाता है। यह ज्ञान, आनंद का कारण है। पूर्ण प्रत्यक्ष ज्ञान अतीन्द्रियआनंद का साधन है इसलिये वह उपादेय है।

यहाँ इस गाथा में स्वाभाविक सुख का साधन केवलज्ञान कहा है। निमित्त संहनन, मनुष्य देह, पुण्य, व्यवहार अथवा चार ज्ञान आनन्द का साधन नहीं है। यहाँ पूर्ण प्रत्यक्षज्ञान वह आनन्द का साधन है - ऐसा कहा है। अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान अंशप्रत्यक्ष है। केवलज्ञान महाप्रत्यक्ष है उसका फल सुख है। केवलज्ञान होनेपर पूर्ण सुख प्रगट होता है। अंतर्शक्ति केवलज्ञान स्वरूप है - ऐसी श्रद्धा, ज्ञान करे तो आनन्द का साधन हो। जहाँ व्यवहार आदि साधन कहे गए हों वहाँ निमित्त बताया है - ऐसा समझना।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

छै द्रव्य, नौ तत्त्व के विचार आदि निमित्त होते हैं, किन्तु अन्य विचार निमित्त नहीं होते। पर की रुचिवाले को स्व की रुचि नहीं होती। जिसे समझने की जिज्ञासा है उसे इस बात में आनन्द आता है। जो ज्ञान निमित्त के लक्ष्य से उत्पन्न होता है वह ज्ञान परोक्ष है। निमित्त है इसलिये ज्ञान होता है - ऐसा यहाँ सिद्ध नहीं करना है अपितु तेरा लक्ष्य पर में जाता है - यह बताते हैं।

उपलब्धि, संस्कार आदि पराधीन है - स्वभाव एकरूप आदरणीय है। अतीन्द्रिय आनन्द का साधन केवलज्ञान है। इसप्रकार निचली दशा में कोई निर्णय करने जाए तो स्वभाव आनन्द का साधन होता है; इसलिये केवलज्ञान अंगीकार करने योग्य है - ऐसा आशय समझना।

अज्ञानी जीव क्रिया-काण्ड में उलझ गया है। दया से धर्म होता है, चौविहार से धर्म होता है, द्वितीय, पंचमी, अष्टमी आदि दिन हरियाली नहीं खाना- इसमें रुक गया है। पूर्ण आनन्द का साधन केवलज्ञान है। निचली दशा में विकल्प आता है वह धर्म का साधन नहीं हैं। वहाँ परोक्ष ज्ञान होता है किन्तु वह स्वाभाविक ज्ञान नहीं है।

अपने स्वभाव की महिमा को भूलकर परद्रव्य या परभाव में कहीं भी किंचित् मात्र माहात्म्य आयेगा तब तक माहात्म्यवाला निज आत्मा प्राप्त नहीं होगा।

- पूज्य गुरुदेवश्री

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचनसार गाथा ५९

अथैतदेव प्रत्यक्षं पारमार्थिकसौख्यत्वेनोपक्षिपति-

जादं सयं समंतं णाणमणंतत्थवित्थडं विमलं ।
रहिदं तु ओग्गहादिहिं सुहं ति एगंतियं भणिदं ।।५९।।

अब, इसी प्रत्यक्षज्ञान को पारमार्थिक सुखरूप बतलाते हैं :-

स्वोत्पन्न निर्मल पूर्ण विस्तृतनंत अर्थों में तथा ।
जो अवग्रहादी से रहित वह ज्ञान ही सुखमय कहा ।।५९।।

अन्वयार्थ :- **(स्वयं जातं)** अपने आप ही उत्पन्न **(समंतं)** समंत (सर्व प्रदेशों से जानता हुआ) **(अनन्तार्थविस्तृतं)** अनन्त पदार्थों में विस्तृत **(विमलं)** विमल **(तु)** और **(अवग्रहादिभिः रहितं)** अवग्रहादि से रहित- **(ज्ञानं)** - ऐसा ज्ञान **(ऐकान्तिकं सुखं)** ऐकान्तिक सुख है **(इति भणितं)** ऐसा (सर्वज्ञदेव ने) कहा है।

टीका :- (१) 'स्वयं उत्पन्न' होने से, (२) [१]'समंत' होने से, (३) 'अनन्तपदार्थों में विस्तृत' होने से, (४) 'विमल' होने से और (५) 'अवग्रहादि रहित' होने से, प्रत्यक्षज्ञान [२]ऐकान्तिक सुख है यह निश्चित होता है, क्योंकि एकमात्र अनाकुलता ही सुख का लक्षण है।

(इसी बात को विस्तारपूर्वक समझाते हैं :-)

(१) 'पर के द्वारा उत्पन्न' होता हुआ पराधीनता के कारण,

(२) [३]'असमंत' होने से [४]इतर द्वारों के आवरण के कारण,

(३) 'मात्र कुछ पदार्थों में प्रवर्तमान' होता हुआ अन्य पदार्थों को जानने

---

[१] *समन्त = चारों ओर-सर्व भागों में वर्तमान; सर्व आत्मप्रदेशों से जानता हुआ; समस्त; सम्पूर्ण; अखण्ड।*

[२] *ऐकान्तिक = परिपूर्ण; अन्तिम; अकेला; सर्वथा।*

[३] *परोक्ष ज्ञान खण्डित है अर्थात् वह अमुक प्रदेशों के द्वारा ही जानता है; जैसे-वर्ण आँख जितने प्रदेशों के द्वारा ही (इन्द्रियज्ञान से) ज्ञात होता है; अन्य द्वार बन्द हैं।*

[४] *इतर = दूसरे; अन्य; उसके सिवाय के।*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

की इच्छा के कारण,

(४) 'समल' होने से असम्यक् अवबोध के कारण (-कर्ममलयुक्त होने से संशय-विमोह-विभ्रम सहित जानने के कारण), और

(५) 'अवग्रहादि सहित' होने से क्रमशः होनेवाले [१]पदार्थग्रहणके खेदके कारण (-इन कारणों को लेकर), परोक्ष ज्ञान अत्यंत आकुल है; इसलिये वह परमार्थ से सुख नहीं है।

और यह प्रत्यक्ष ज्ञान तो अनाकुल है, क्योंकि -

(१) अनादि ज्ञानसामान्यरूप स्वभाव पर महा विकास से व्याप्त होकर स्वतः ही रहने से स्वयं उत्पन्न होता है, इसलिये आत्माधीन है, (और आत्माधीन होने से आकुलता नहीं होती);

(२) समस्त आत्मप्रदेशों में परम [२]समक्ष ज्ञानोपयोगरूप होकर, व्याप्त होने से 'समंत है', इसलिये अशेष द्वार खुले हुए हैं (और इसप्रकार कोई द्वार बन्द न होने से आकुलता नहीं होती);

(३) समस्त वस्तुओं के ज्ञेयाकारों को सर्वथा पी जाने से [३]परम विविधता में व्याप्त होकर रहने से 'अनन्त पदार्थों में विस्तृत है', इसलिये सर्व पदार्थों को जानने की इच्छा का अभाव है (और इसप्रकार किसी पदार्थ को जाननेकी इच्छा न होने से आकुलता नहीं होती);

(४) सकल शक्ति को रोकनेवाला कर्मसामान्य (ज्ञान में से) निकल जाने से (ज्ञान) अत्यन्त स्पष्ट प्रकाश के द्वारा प्रकाशमान (-तेजस्वी) स्वभाव में व्याप्त होकर रहने से 'विमल है' इसलिये सम्यक्रूप से (-बराबर) जानता है (और इसप्रकार संशयादि रहितता से जानने के कारण आकुलता नहीं होती); तथा

(५) जिनने त्रिकालका अपना स्वरूप युगपत् समर्पित किया है (-एक ही समय बताया है) ऐसे लोकालोक में व्याप्त होकर रहने से 'अवग्रहादि रहित है' इसलिये क्रमशः होनेवाले पदार्थ ग्रहण के खेद का अभाव है।

इसप्रकार (उपरोक्त पाँच कारणों से) प्रत्यक्षज्ञान अनाकुल है। इसलिये

---

[१]पदार्थग्रहण अर्थात् पदार्थ का बोध एक ही साथ न होनेपर अवग्रह, ईहा इत्यादि क्रमपूर्वक होने से खेद होता है। [२] समक्ष = प्रत्यक्ष। [३] परमविविधता = समस्त पदार्थसमूह जो कि अनन्त विविधतामय है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वास्तव में वह पारमार्थिक सुख है।

भावार्थ :- क्षायिकज्ञान - केवलज्ञान एकान्त सुखस्वरूप है ॥५९॥

ॐ ॐ ॐ

गाथा ५९ पर प्रवचन

यहाँ केवलज्ञान की व्याख्या करते हैं। केवलज्ञान अनन्त पदार्थों को अक्रम जानता है इसलिये वह सुखरूप है। पहले इसकी व्याख्या आ गई थी किन्तु यहाँ आनन्द की व्याख्या में आनन्द का साधन केवलज्ञान है - यह बात करते हैं। केवली भगवान का विचार करने जाए तो विकल्प है, किन्तु वह पर्याय ज्ञान सामान्यस्वभाव में से आई है, वह पर्याय पूर्ण ज्ञानपने प्रगट होती है; वह स्वयं उत्पन्न होती है किन्तु किसी संहनन के कारण अथवा राग के कारण अथवा चार ज्ञान के कारण उत्पन्न नहीं होती, अपितु स्वयं उत्पन्न होती है।

इन्द्रियज्ञान अमुक आत्म प्रदेश के निमित्त से जानता है। उघाड़ बहुत होता है किन्तु अमुक प्रदेश की रचना द्वारा ही जानता है। तथा खण्ड-खण्ड जानता है उसमें ज्ञान की एकरूपता नहीं रहती। केवलज्ञान असंख्य प्रदेश से जानता है तथा केवलज्ञान अनन्त पदार्थ को जानता है - बेहद जानता है तथा विषम है अर्थात् उसमें अवग्रह-ईहा-अवाय आदि का क्रम नहीं होता।

इसप्रकार प्रत्यक्षज्ञान एकान्तिक सुख है यह निश्चित होता है, क्योंकि सुख का अनाकुलता ही एकमात्र लक्षण है। तथा परोक्षज्ञान प्रमाण का भेद होनेपर भी इन्द्रिय की अपेक्षा रखता है इसलिये छोड़ने लायक है।

यह ज्ञानतत्त्व अधिकार है। आत्मा ज्ञानस्वभावी है वह इन्द्रिय और मन का अवलम्बन लेकर काम करता है, इसलिये दुःखदायक है छोड़ने लायक है। परोक्ष और प्रत्यक्षज्ञान दोनों ही प्रमाणज्ञान हैं। इसमें प्रत्यक्षज्ञान आदरणीय है और परोक्ष ज्ञान आदरकरने लायक नहीं। व्यवहार का विषय है - यह बात सही है किन्तु वह आदर करने लायक नहीं है किन्तु जानने लायक है; वैसे ही परोक्षज्ञान है वह सच्चा ज्ञान है किन्तु आदरणीय नहीं क्योंकि इसमें इन्द्रिय की अपेक्षा आती है और उसमें आकुलता होती है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा का अपना ज्ञानस्वभाव है, इसकी पर्याय अपना अवलम्बन ले तो पूर्णज्ञान होता है। अतीन्द्रियज्ञान अंतर स्वभाव अंतर्मुख होकर होता है वह केवलज्ञान का कारण है, बीच में परोक्ष ज्ञान आता है, प्रमाण के भेद में आता है किन्तु वह आदरणीय नहीं। आत्मा आदि और अन्त रहित है। उसका ज्ञान सार है; उसका अवलम्बन लेकर प्रगट होनेवाला पूर्ण अतीन्द्रियज्ञान सुख का कारण है। दया-दानादि आरदणीय नहीं, निमित्त आदरणीय नहीं किन्तु जो ज्ञान निमित्त की सापेक्षता रखता है वह ज्ञान भी आदरणीय नहीं है।

यह ज्ञान का अधिकार है। शरीर की क्रिया और दया की बात तो कहीं दूर ही रह गई। दया-दानादि का भाव है- यह बात सही है किन्तु वह जानने लायक है। व्यवहारनय का विषय है वैसे ही इन्द्रिय के निमित्त से होनेवाला ज्ञान है किन्तु वह आदर करने लायक नहीं है।

यह ज्ञान निधान है। देवाधिदेव परमेश्वर ने ज्ञान की पूर्ण पर्याय प्रगट की है और संतो ने जो स्वरूप कहा है; उसमें क्या निधि है ? वह बताते हैं। आत्मा ज्ञान स्वभावी वस्तु है वह पर की अपेक्षा रखे तो उसमें राग-द्वेष हुए बिना नहीं रहता। पर तरफ के झुकाव में राग-द्वेष होता है क्योंकि वह एक-एक विषय को खंड-खंड जानता है, इसलिये वह ज्ञान जानने लायक है किन्तु आदर करने लायक नहीं।

सही ज्ञान को प्रमाण कहते हैं उसमें दो भाग क्या है ? - ऐसा कोई प्रश्न पूछे तो उसका समाधान:- दोनों ज्ञान सही हैं किन्तु आत्मा ज्ञानस्वभावी है - ऐसा स्व-तरफ झुका हुआ ज्ञान आदरणीय है और ज्ञान इन्द्रिय द्वारा अर्थात् दुश्मन द्वारा होता है वह परोक्ष है और जो छोड़ने लायक है। यहाँ तो इन्द्रियज्ञान को मोहवाला-आकुलतावाला-संशयवाला कहा है। परतरफ के लक्ष्यवाला ज्ञान भेदवाला है इसलिये वह आदरणीय नहीं है - ऐसा कहा है। इन्द्रियज्ञान पराधीन, क्रमिक और मलिन होने से दुःखदायक है इसलिये वह हेय है।

इसी बात को विस्तार पूर्वक समझाते हैं -

१. इन्द्रिय द्वारा होनेवाला ज्ञान पराधीन है-छोड़ने लायक है इसलिये परमार्थ से वह सुख नहीं है। ज्ञान की वर्तमानदशा इन्द्रिय और मन के साथ सापेक्षता रखे वह आकुलता है - परमार्थ से वह सुखरूप नहीं है। धनादि में सुख नहीं, इन्द्रियों में सुख

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं, भावेन्द्रिय जो खण्ड-खण्ड है उसमें भी सुख नहीं अर्थात धर्म नहीं है क्योंकि वह पर द्वारा उत्पन्न हुआ होने से पराधीनता के कारण वह सुखरूप नहीं है।

२. तथा परोक्ष ज्ञान पांच इन्द्रिय और मन द्वारा होता है। जब रूप देखना हो तब वह आंख के प्रदेशों द्वारा होता है किन्तु अन्य चार इन्द्रियों के प्रदेशों द्वारा देखने का काम नहीं होता रूप को देखने के लिये शेष चार इन्द्रियों के प्रदेश द्वारा काम नहीं होता। इन्द्रियज्ञान असंख्य प्रदेश द्वारा नहीं जानता इसलिये वह ज्ञान आकुलतामय होने से सुखरूप नहीं है। एक द्वार का लक्ष्य करे वहाँ दूसरे द्वार का लक्ष्य न करे। जैसे एक मकान के आठ द्वार हैं, उसमें से एक द्वार से ही निकला जा सकता है किन्तु दूसरे से नहीं निकल सकता; वैसे ही इन्द्रियज्ञान एक-एक इन्द्रिय द्वारा ही जानने का काम करता है।

३. तथा इन्द्रियज्ञान कितने ही पदार्थों में प्रवर्तता है; उनमें वह किन्हीं पदार्थों को जान सकता है। वर्तमान ज्ञान अवस्था किन्हीं को तो जानती है और जितने जानने में नहीं आते उनको जानने की इच्छा रहा करती है; इसलिये यह परोक्षज्ञान आदरणीय नहीं है। लोग तो बाहर की क्रिया को आदरणीय मानते हैं। वहाँ यदि राग मंद हो तो वह शुभभाव है उसकी यहाँ बात नहीं है किन्तु यहाँ तो कहते हैं कि - इन्द्रियज्ञान आकुलतावाला है और अतीन्द्रियज्ञान निराकुलतावाला है।

४. इन्द्रियज्ञान समल होने से संशय, विमोह, विभ्रम सहित है इसलिये हेय है अर्थात् छोड़ने योग्य है।

५. इन्द्रियज्ञान अवग्रह-ईहा-अवाय और धारणा पूर्वक है। एक ही साथ सबका ज्ञान नहीं होता उसमें क्रम होता है इसलिये वह भेदवाला ज्ञान है; अतः परोक्षज्ञान अत्यंत आकुलतावाला है इसलिये वह परमार्थ से सुखरूप नहीं है। जैसे लड्डू खाते समय आकुलता होती है वह दुःख है किन्तु अज्ञानी सुख मानता है। ऐसे ही इन्द्रियज्ञान के समय आकुलता ही है किन्तु अज्ञानी सुख मानता है। गर्मी में प्यास लगी हो उस समय मुसम्बी का रस मिलने पर सुख मानता है, किन्तु इन्द्रियज्ञान के समय आकुलता है। कोई प्रशंसा करे तो वहाँ जीव को सुख (अच्छा) लगता है।

जैसे हर्ष सन्निपातवाला रोगी बुखार में हंसता है और अपने को सुखी मानता है किन्तु वह दुःखी ही है; वैसे ही आत्मा का अकषाय शांत स्वभाव है उसकी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दृष्टि और रुचि के बिना अज्ञानी पर में खेद करता है रूप देखने में अशुभराग होता है वह दुःख है किन्त उसे दुःख नहीं लगता। ठण्डी हवा आए तो वहाँ मजा (अच्छा) मानता है वह तो पापराग है किन्तु मिथ्यात्व के कारण सुख मानता है। अनेक प्रकार के रस को अच्छा मानता है और इन्द्रिय से सुख मानता है। खारी वस्तु, तीखी वस्तु, मीठी वस्तु के रस तरफ का लक्ष्य वह पाप राग है इसलिये वह दुःखरूप है।

परोक्षज्ञान आकुलतावाला है-दुःखरूप है, फिर भी आनंद मानना वह मिथ्यात्व भाव है। गर्मी में पतला वस्त्र पहनने में और ठण्डी हवा आए तो उसमें मजा (आनंद) मानता है जबकि आत्मा से तो उसकी जाति ही पृथक है। वह इन्द्रियज्ञान आदरणीय नहीं है, अपितु चैतन्य द्रव्यस्वभाव एक ही आदरणीय है इसके अलावा अन्य कुछ भी आदरणीय नहीं है।

अब, केवलज्ञान जो कि पूर्ण प्रत्यक्ष है उसकी बात करते हैं। देवाधिदेव परमेश्वर को जो पूर्णदशा प्रगट हुई है वह सुखरूप है, उसकी बात करते हैं। उसकी श्रद्धा करे तो वह भव्य है और श्रद्धा नहीं करे तो वह अभव्य है - यह बात आगे कहेंगे।

आत्मा वस्तु है, ज्ञानस्वभाव है उसके आश्रय से पूर्ण प्रगट हुआ ज्ञान आकुलता रहित है क्योंकि उसे इच्छा नहीं है। जिसमें कोई भी पदार्थ को जानना शेष नहीं रहा; ऐसा अतीन्द्रियज्ञान सुखमय है - ऐसी भव्य जीव को श्रद्धा करना चाहिये। लोग कहते हैं कि - शरीर आदि सभी को व्यवस्थित रखना चाहिये। भाई ! शरीर की अवस्था को ज्ञानी हो अथवा अज्ञानी कोई भी कर सकता ही नहीं; अतः पांच इन्द्रिय और मन के अवलम्बन से होनेवाला ज्ञान हेय है - ऐसा निर्णय कर।

१. जो केवली को मानता है उसको दया-दानादि का परिणाम हेय हो जाता है।
२. जो केवली को मानता है उसे परोक्ष ज्ञान हेय हो जाता है।
३. जो केवली को मानता है उसे संयोग मिलाने और छोड़ने (दूर करने) की बुद्धि नहीं रहती।

केवलज्ञान आत्माधीन है इसलिये वह सुखरूप है

१. स्वयमेवजात (स्वयं उत्पन्न होता है) :- अनन्त काल से क्या कर रहा है और क्या करना बाकी रहा है, इसकी खबर हुए बिना जीवन किस काम का ? जैसा अरहंत का ज्ञान है वैसा ही इस आत्मा को केवलज्ञान प्रगट होगा। अनादि

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

ज्ञानसामान्य स्वभाव है; त्रिकाल ध्रुव को सामान्य कहते हैं। आत्मवस्तु अनादि-अनन्त है इसके गुणों को अनादि-अनंत सामान्य कहते हैं; इस स्वभाव के ऊपर महाविकास से व्याप्त होकर केवलज्ञान रहा है। जैसे लेंड़ीपीपर में चौंसठ पुटी तिखास शक्ति सामान्य है उसमें से तिखास एक पुटी, दो पुटी, चौंसठ पुटी व्यक्त होती है वह उसका विशेष है वह सामान्य ऊपर विशेष होकर रही है वैसे ही केवलज्ञान पूर्णज्ञान है। सर्वज्ञता वह पूर्णदशा है वह कहाँ से हुई है और किसके ऊपर वर्तती है ? वह कहते हैं।

आत्मा में सामान्य स्वभाव है जो एकरूप रहनेवाला है। पर्याय बदल जाती है केवलज्ञान अर्थात् विशेष ज्ञान बदल जाता है वह स्वभाव महाविकास से व्याप्त होता है। अन्दर सामान्य है वह ऊपर अर्थात् विशेषरूप रहता है। स्वभाव में संकोच-विकास नहीं होता, अपितु पर्याय में जो संकोच था उसका विकास होता है। मतिज्ञानादि चारज्ञान का विकास होता है, किन्तु वह महाविकास नहीं है; केवलज्ञान महाविकास है। केवलज्ञान अर्थात् पूर्णज्ञान अथवा महाविकासरूप ज्ञान अर्थात् जितना विकास हो सकता था उतना पूरा हो गया है।

जैसे चन्द्रमा की सोलह कला खिलने पर पूर्ण प्रगट हो जाती है वैसे ही केवलज्ञान में पूर्ण विकास है; यह केवलज्ञान महाविकास से व्याप्त होकर स्वतः अपने से ही रहने से स्वतः सिद्ध है। संहनन के कारण से वह नहीं रहा है, स्वंय उत्पन्न होता है इसलिये आत्माधीन है इन्द्रिय के निमित्त से होनेवाला ज्ञान पराधीन है अज्ञानी लौकिक ज्ञान का अभिमान करता है अथवा धर्म के नाम से जीव की जाति, संख्या आदि जान ले, किन्तु इन्द्रियज्ञान दुःखरूप है। पूर्णज्ञान स्वयं से उत्पन्न होता है। इसलिये वह सुखरूप है वह स्वयंजात - ऐसा मूलगाथा में लिखा है; इसप्रकार भगवान के ज्ञान को आकुलता नहीं होती।

२. समंत :- कैसा है केवलज्ञान ? अर्थात् भगवान का ज्ञान कैसा है ? वह यहाँ बताते हैं। मात्र जैन सम्प्रदाय में जन्म लेने से भगवान की पहचान नहीं होती। जैन परमेश्वर सभी को जाननेवाले हैं किन्तु किसी के करनेवाले तथा करानेवाले नहीं। असंख्यात आत्म प्रदेश में ज्ञान उपयोग रूप हो रहा है इसलिये समंत है। इसलिये अशेष(सभी) द्वार खुले हुए हैं (और इसप्रकार कोई द्वार बन्द न होने से आकुलता नहीं

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होती)। इन्द्रिय ज्ञान में कुछ ही द्वार खुले थे। यहाँ सभी द्वार खुल गए है। केवलज्ञान असंख्य प्रदेशों से जानता है इसलिये वह आकुलता रहित सुखरूप है।

परोक्षज्ञान है यह बात सही है किन्तु वह आश्रय करने योग्य नहीं है। कोई परोक्षज्ञान, इन्द्रिय आदि का निषेध करे तो भी भूल है। इन्द्रिय और इन्द्रियज्ञान है यह बात सही है किन्तु वह आदरणीय नहीं है। आत्मा और परद्रव्य के बीच अत्यंत अभाव है। आत्मा शरीर, मन, वाणी और कर्म को स्पर्श भी नहीं करता और शरीर, मन, वाणी, कर्म-आत्मा को स्पर्श नहीं करते क्योंकि आत्मा पर से अत्यंत अभाववाला द्रव्य है।

इस वस्तु के बिना नहीं चलता - ऐसी कल्पना के बिना मिथ्यादृष्टि का काम नहीं चलता। मैं सभी का जाननेवाला हूँ, पुण्य-पाप मेरे नहीं है, खण्ड-खण्ड ज्ञान जितना भी मैं नहीं हूँ अपितु मैं तो अतीन्द्रियज्ञान स्वभावी हूँ - ऐसा निर्णय करे तो अतीन्द्रियज्ञान की शुरुवात हो।

पूर्णदशा होनेपर जो पूर्णज्ञान प्रगट हुआ है वह संहनन के कारण अथवा चार ज्ञान के कारण उत्पन्न नहीं हुआ है, अपितु आत्मा के स्वभाव के आश्रय से उत्पन्न हुआ है। यह पर्याय पूर्ण है और क्षेत्र से भी पूर्ण है। सभी असंख्य प्रदेशों से जान लेते हैं। निचलीदशा में कुछ प्रदेशों द्वारा ही जानता था किन्तु पूर्णदशा होनेपर सभी से जानता है इसलिये आकुलता नहीं रही।

३. अनन्त पदार्थों में विस्तृत है :- इन्द्रियज्ञान मात्र कुछ ही पदार्थ को जानता था इसलिये कितने ही पदार्थों की जानने की इच्छा रहती थी किन्तु पूर्णज्ञान होनेपर कुछ भी जानना शेष नहीं रहता। केवलज्ञान सर्वपदार्थों को जानता है इसलिये वह आकुलता रहित सुखरूप है। यह अकेले अरहंत के केवलज्ञान की बात नहीं अपितु तेरे ज्ञान का स्वभाव पूर्ण विकास को प्राप्त हो - ऐसी दशा को प्रगट करने की बात है।

इन्द्रियज्ञान निमित्त का सहारा लेता है। जैसे अंधे आदमी के लिये लकड़ी के सहारे की जरूरत पड़ती है इसलिये वह पराधीन है किन्तु देखनेवाले आदमी को लकड़ी के सहारे की जरूरत नहीं पड़ती। वैसे ही इन्द्रियज्ञान, इन्द्रिय की अपेक्षा रखता है इसलिये वह पराधीन है और अतीन्द्रियज्ञान को दूसरे के सहारे की जरूरत

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं होती इसलिये वह पराधीन नहीं है। वह ज्ञान पूर्ण विकासवाला है जो लोकालोक को पी जाता है। जैसे पेट तो बड़ा है और पानी कम पड़ता हो; वैसे ही केवलज्ञान सभी को जान लेनेपर भी यदि उनसे (लोकालोक से) अनन्तगुणा अधिक पदार्थ भी हों तो उन्हें भी केवलज्ञान जान लेवे - ऐसी ताकत एक समय की केवलज्ञान पर्याय की है।

जड़-चेतनमयी इस विश्व में प्रत्येक आत्माएं और प्रत्येक परमाणु भिन्न-भिन्न हैं, इन सभी को केवलज्ञान जानता है किन्तु ज्ञान उनमें प्रविष्टि नहीं होता किन्तु सभी जानने में आ जाते हैं इसलिये केवलज्ञान लोकालोक में विस्तृत हो (फैल) गया है - ऐसा कहा है। कोई भी पदार्थ जानने से बाकी नहीं रहता इसलिये किसी भी पदार्थ को जानने की इच्छा नहीं है। अज्ञानी को कहीं भी सुख नहीं होता; यदि उसे पांच लाख रुपये मिले हों तो दस लाख प्राप्त करके सुखी होना चाहता है जबकि यह तो भ्रांति है। केवलज्ञान में कोई भी पदार्थ जानने से बाकी नहीं रहा इसलिये आकुलता नहीं है। निचली दशा में नहीं जाने हुए पदार्थों को जानने की आकुलता होती है।

बोलना और लिखना जड़की पयार्य है। आत्मा तीनकाल व तीनलोक में उसे नहीं करता-उसमें तन्मय होकर ज्ञान नहीं करता। निचली दशा में इच्छा भी रहती है - पढ़ने का खेद, शास्त्र पढ़ने का खेद भी हुआ करता है यह अलग बात है। अपनी समझ सही न करे और अकेले बाहर के ज्ञान में रुक जाए तो वह दुःखरूप ही है।

प्रत्यक्षज्ञान परमार्थतः सुखरूप है। आत्मा का ज्ञानस्वभाव त्रिकाल है, उसकी पर्याय इन्द्रिय की सापेक्षता करके ज्ञान करे वह परोक्षज्ञान प्रमाण होनेपर भी आदर करनेलायक नहीं है। ज्ञान सामान्यस्वभाव के ऊपर तैरनेवाला केवलज्ञान अंगीकार करने योग्य है; यह बात यहाँ चलती है।

आत्मा का स्वभाव जानना-देखना है। इन्द्रिय और मन से जो ज्ञान होता है वह ज्ञान पराधीन और दुःखदायक है - वास्तविक स्वभाव नहीं है। अंतर में पूर्णस्वभाव है उसकी अंतर एकाग्रता करना वह धर्म है और यही मोक्षमार्ग की क्रिया है। तू आत्मा है आत्मा का स्थायी स्वभाव ज्ञान और आनन्द है , उसके आश्रय से जो ज्ञान पूर्ण प्रगट होता है वह आनन्द का कारण है।

४. विमल :- केवलज्ञान होनेपर ज्ञानावरणीकर्म सर्वथा नाश को प्राप्त

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होता है। अतीन्द्रियज्ञान, त्रिकाली स्वभाव में से प्रगट हुआ है; उसे रोकनेवाला कर्मसामान्य निकल गया है निचलीदशा में उघाड़ था अर्थात् कर्म विशेषपने घटे थे किन्तु सामान्यरूप से घटे नहीं थे। केवलज्ञान में पूर्ण कर्म का नाश हुआ है। ज्ञानावरणीय का एक अंश भी बाकी नहीं रहा; सभी कर्म निकल गए है इसलिये अतीन्द्रियज्ञान आदरणीय है।

देह की क्रिया आत्मा नहीं कर सकता। जो वस्तु रहनेवाली है, उसका बदलना (परिणमन) उसी वस्तु के कारण होता है। रोटी, दाल-भात आदि पुद्गल पदार्थ अपने सामान्यपने रहकर विशेष अवस्थारूप करते हैं; उनका कर्ता आत्मा नहीं है। आत्मा शरीर-मन-वाणी का किंचित्मात्र भी नहीं कर सकता। पुण्य-पाप, दया-दानादि के भाव विकार हैं; वे विकार आत्मा का मूल स्वरूप नहीं है।

अब, ज्ञान के अंश की बात करते हैं। आत्मा अनादि-अनन्त है अर्थात् उसकी आदि और अंत नहीं है; इसलिये उसका ज्ञान स्वभाव भी अनादि-अनन्त है। उसकी वर्तमान पर्याय निमित्त का अवलम्बन लेकर काम करे वह पराधीन ज्ञान है इसलिये ऐसा निर्णय कर कि अतीन्द्रियज्ञान उपादेय है।

अब, अतीन्द्रियज्ञान वर्तमान पर्याय में नहीं है। स्वभाव तरफ झुकने पर वह ज्ञान प्रगट होता है। यह ज्ञानलक्ष्मी है-ज्ञान सम्पदा है। उसकी वर्तमानअंश-दशा को इन्द्रिय और मन से जोड़ना वह दुश्मन से जोड़ने (सम्बन्ध करने) जैसा है; आत्मा सामान्य एकरूप है उसकी वर्तमानदशा निमित्त के साथ जुड़ती है, वह दुःखदायक है इसलिये अतीन्द्रियज्ञान सुखदायक है।

आत्मा का सामान्यस्वभाव अतीन्द्रिय है, यदि उसकी रुचि करे तो अतीन्द्रियज्ञान उपादेय कहलाए। धर्म अर्थात् वस्तु का स्वभाव। आत्मा का ज्ञानस्वभाव अतीन्द्रिय है उसकी दृष्टि-ज्ञान-रमणता मोक्षमार्ग है; वह मोक्षमार्ग अतीन्द्रिय ज्ञान का व्यवहार कारण है और सामान्यस्वभाव अतीन्द्रियज्ञान का निश्चय कारण है। चैतन्य स्वभाव का अवलम्बन किये बिना जो पर्याय, राग के साथ जुड़ती है वह आदरणीय नहीं है।

केवलज्ञान सभी को स्पष्ट जानता है अतः वह संशयादि रहित होने से अनाकुल है। आत्मा के अतीन्द्रिय ध्रुव स्वभाव का अवलम्बन लेने से जो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

केवलज्ञान प्रगट हुआ, उसमें ज्ञानावरणी कर्म का नाश हुआ है। कर्म ज्ञान को रोकता था - यह निमित्त का कथन है अपना ज्ञान रुका है तो कर्म को निमित्त कहा जाता है। आत्मा ज्ञानस्वभावी है उसे ग्रहण करके अनुभव करना वह धर्म है। कर्म तो पर पदार्थ हैं वे ज्ञान को नहीं रोकते, किन्तु जब आत्मा स्वयं अपनी हीन दशारूप से परिणमित होता है तो, कर्म रोकते हैं - ऐसा कहा जाता है।

इसप्रकार केवलज्ञान होनेपर सर्व ज्ञानावरणी कर्म का नाश हुआ है इसलिये वे अत्यन्त स्पष्ट प्रकाश द्वारा तेजस्वी स्वभाव में व्याप्त होकर रहते हैं। वे सम्यक् प्रकार से बराबर जानते हैं। केवलज्ञान में संशय, विभ्रम, विमोह नहीं है इसलिये आकुलता नहीं होती; अतः जिसे सुखी होना हो उसे अतीन्द्रियज्ञान प्रगट करना चाहिये।

स्त्री-पुरुष अथवा जगत की पंचायत में सुख नहीं और दया-दानादि के भाव में भी सुख नहीं है और ज्ञान की वर्तमानदशा जो इन्द्रियों का अवलम्बन ले वह भी दुःखरूप ही है क्योंकि ज्ञान स्वभाव अपना है; उसकी जो दशा पर का लक्ष्य करे वह आश्रय करने योग्य नहीं है। अतीन्द्रिय ज्ञानस्वभाव के आश्रय से प्रगट होनेवाले अतीन्द्रियज्ञान में संशयादि नहीं होते।

५. अवग्रहादि रहित :- केवलज्ञान अक्रम जानता है इसलिये उसमें क्रमशः जानने के खेद का अभाव है। केवलज्ञान की एक समय की पर्याय भूत, भविष्य और वर्तमान की अवस्था को जानती है। जो पर्याय जहाँ होनेवाली है वह होती है यह निश्चित है। केवलज्ञान लोकालोक में व्याप्त है अर्थात् लोकालोक को जानता है। वह अवग्रहादि से रहित है; पहले थोड़ा जानना फिर थोड़ा जानना - ऐसा अतीन्द्रियज्ञान में नहीं होता अर्थात् पदार्थ को क्रम-क्रम से जानने का केवलज्ञान में अभाव है इसलिये प्रत्यक्षज्ञान अनाकुल है।

वह किस विधि से प्रगट होता है ?

अतीन्द्रिय ज्ञानस्वभाव के आश्रय से केवलज्ञान प्रगट होता है। केवलज्ञान में लोकालोक अर्पित हो गया है अर्थात् कुछ भी जानना बाकी नहीं रहा।

भावार्थ पर प्रवचन :- केवलज्ञानदशा पूर्ण हो गई है और कर्म का अभाव हुआ है। केवलज्ञान में क्रम से जानना मिट गया है; इसलिये केवलज्ञान एकान्त सुखस्वरूप है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचनसार गाथा ६०

अथ केवलस्यापि परिणामद्वारेण खेदस्य संभवादैकान्तिक-सुखत्वं नास्तीति प्रत्याचष्टे-

जं केवलं ति णाणं तं सोक्खं परिणमं च सो चेव।
खेदो तस्स ण भणिदो जम्हा घादी खयं जादा ॥६०॥

अब, ऐसे अभिप्राय का खण्डन करते हैं कि केवलज्ञान को भी परिणाम के द्वारा [1]खेद का सम्भव होने से केवलज्ञान ऐकान्तिक सुख नहीं है :-

जो ज्ञान 'केवल' वही सुख है परिणमन भी है वही।
व घाति रहित कहा इसी से खेद उसमें है नहीं ॥६०॥

अन्वयार्थ :- **(यत्)** जो **(केवलं इति ज्ञानं)** 'केवल' नाम का ज्ञान है **(तत् सौख्यं)** वह सुख है **(परिणामः च)** परिणाम भी **(सः च एव)** वही है **(तस्य खेदः न भणितः)** उसे खेद नहीं कहा है (अर्थात् केवलज्ञान में सर्वज्ञदेव ने खेद नहीं कहा) **(यस्मात्)** क्योंकि **(घातीनि)** घातिकर्म **(क्षयं जातानि)** क्षय को प्राप्त हुए हैं।

टीका :- यहाँ (केवलज्ञान के सम्बन्ध में) (१) खेद क्या, (२) परिणाम क्या तथा (३) केवलज्ञान और सुख का व्यतिरेक (-भेद) क्या कि जिससे केवलज्ञान को ऐकान्तिक सुखत्व न हो ?

(१) खेद के आयतन (-स्थान) घातिकर्म हैं, केवल परिणाममात्र नहीं। घातिकर्म महा मोह के उत्पादक होने से धतूरे की भाँति [2]अतत् में तत्बुद्धि धारण करवाकर आत्मा को ज्ञेयपदार्थ के प्रति परिणमन कराते हैं; इसलिये वे घातिकर्म, प्रत्येक पदार्थ के प्रति परिणमित हो-होकर थकनेवाले आत्मा के लिये खेद के कारण होते हैं। उनका (घातिकर्मों का) अभाव होन से केवलज्ञान में खेद कहाँ से प्रगट होगा?

---

[1] खेद = थकावट; सन्ताप; दुःख।

[2] अतत् में तत्बुद्धि = वस्तु जिसस्वरूप न होय उसस्वरूप होने की मान्यता; जैसे कि - जड़ में चेतनबुद्धि (अर्थात् जड़ में चेतन की मान्यता) दुःख में सुखबुद्धि वगैरह।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(२) और तीनकालरूप तीन भेद जिसमें किये जाते हैं - ऐसे समस्त पदार्थों की ज्ञेयाकाररूप विविधता को प्रकाशित करने का स्थानभूत केवलज्ञान, (चित्रित् दीवार की भाँति) स्वयं ही अनन्तस्वरूप स्वयमेव परिणमित होने से केवलज्ञान ही परिणाम है। इसलिये अन्य परिणाम कहाँ है कि जिनसे खेद की उत्पत्ति हो ?

(३) और, केवलज्ञान समस्त स्वभाव [१]प्रतिघात के अभाव के कारण निरंकुश अनन्त शक्ति के उल्लसित होने से समस्त त्रैकालिक लोकालोक के आकार में व्याप्त होकर [२]कूटस्थतया अत्यन्त निष्कम्प है, इसलिये आत्मा से अभिन्न - ऐसा सुख-लक्षणभूत अनाकुलता को धारण करता हुआ केवलज्ञान ही सुख है, इसलिये केवलज्ञान और सुख का व्यतिरेक कहाँ है ?

इससे, यह सर्वथा अनुमोदन करनेयोग्य है (-आनन्द से संमत करने योग्य है) कि 'केवलज्ञान ऐकान्तिक सुख है'।

भावार्थ :- केवलज्ञान में भी परिणाम होते रहने से वहाँ भी थकान लगेगी और इसलिये दुःख होगा अतः केवलज्ञान ऐकान्तिक सुख कैसे हो सकता है ? ऐसी शंका का समाधान यहाँ किया गया है :-

(१) परिणाममात्र थकावट या दुःख का कारण नहीं है किन्तु घातिकर्मों के निमित्त से होनेवाला परोन्मुख परिणाम थकावट या दुःख का कारण है, केवलज्ञान में घातिकर्म अविद्यमान होने से वहाँ थकावट या दुःख नहीं है।

(२) केवलज्ञान स्वयं ही परिणमनशील है; परिणमन केवलज्ञान का स्वरूप ही है उपाधि नहीं। यदि परिणाम का नाश हो जाये तो केवलज्ञान का ही नाश हो जाये। इसप्रकार परिणाम केवलज्ञान का सहज स्वरूप होने से केवलज्ञान को परिणाम के द्वारा खेद नहीं हो सकता - नहीं होता।

(३) केवलज्ञान समस्त त्रैकालिक लोकालोक के आकार को (-समस्त पदार्थों के त्रैकालिक ज्ञेयाकार समूह को) सर्वदा अडोलरूप से जानता हुआ अत्यन्त निष्कम्प-स्थिर-अक्षुब्ध-अनाकुल है; और अनाकुल होने से सुखी है-

[१] प्रतिघात = विघ्न; रुकावट; हनन; घात।

[२] कूटस्थ = सदा एकरूप रहनेवाला; अचल (केवलज्ञान सर्वथा अपरिणामी नहीं है किन्तु वह एक ज्ञेय से दूसरे ज्ञेय के प्रति नहीं बदलता - सर्वथा तीनोंकाल के समस्त ज्ञेयाकारों को जानता रहता है, इसलिये उसे कूटस्थ कहा है)

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सुखस्वरूप है, क्योंकि अनाकुलता सुख का ही लक्षण है। इसप्रकार केवलज्ञान और अक्षुब्धता-अनाकुलता भिन्न नहीं होने से केवलज्ञान और सुख भिन्न नहीं है।

इसप्रकार (१) घातिकर्मों के अभाव के कारण, (२) परिणमन कोई उपाधि न होने से और (३) केवलज्ञान निष्कंप-स्थिर-अनाकुल होने से केवलज्ञान सुखस्वरूप ही है ॥६०॥

ॐ ॐ ॐ

गाथा ६० पर प्रवचन

अब, केवलज्ञान पर्याय है इसलिये वह समय-समय परिणमित होती है। आत्मा वस्तु है, उसका त्रिकाल ज्ञानस्वभाव है उसके आश्रय से केवलज्ञान प्रगट होता है। उस केवलज्ञान का काल एक समय का है। दूसरे समय (वह) नाश को प्राप्त हो जाता है और नया उत्पन्न होता है। इसप्रकार परिणमित होना खेद का कारण नहीं है।

केवलज्ञान को बारम्बार बदलना पड़ता है। इसलिये खेद होता होगा - ऐसा कोई पूछता है तो उसका समाधान करने के लिये कहते हैं कि केवलज्ञान- ज्ञान विकल्प से जानता है किन्तु राग के विकल्प से नहीं जानता। केवलज्ञान का स्वभाव स्व-पर प्रकाशक है, भेद करके जानता है इसलिये विकल्प है। विशेषरूप स्व-पर प्रकाशक आकार रूप है किन्तु राग के विकल्प रहित है। द्रव्य-गुण-पर्याय आदि के भेद करके जानता है वह सविकल्प है फिर भी राग नहीं है।

तथा कोई कहे कि ज्ञान साकार है इसलिये वह रूपी है तो यह बात भी खोटी (असत्य) है क्योंकि आत्मा के सभी गुण अरूपी हैं। केवली भगवान को स्व-पर प्रकाशक ज्ञान है वहाँ भी ज्ञान का परिणन होता है किन्तु वह खेददायक नहीं है। निचलीदशा में क्रम से पलटना होता था इसलिये वह खेददायक है। केवली भगवान को अतीन्द्रिय आनन्दवाला ज्ञान है, उसमें खेद नहीं होता।

वेदान्त कहता है कि - "ज्ञान नहीं बदलता" वह कूटस्थ है - जानने को वे उपाधि कहते हैं, परवस्तु है ही नहीं, लोकालोक को जानना वह तो बहुत उपाधि है - ऐसा वे मानते हैं; जबकि ऐसा माननेवाले को ज्ञानस्वभाव की खबर ही नहीं है। पदार्थ उत्पाद-व्यय-ध्रुव युक्तम् सत् है। पूर्व अवस्था का व्यय हो, नवीन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अवस्थारूप उत्पन्न हो और वह स्वयं कायम ध्रुव रहता है। लेड़ीपीपर में समय-समय तिखास और हरापना बदलने पर भी तिखास और हरापन नहीं जाता वैसे ही आत्मा की केवलज्ञान पर्याय समय-समय बदलने पर भी ज्ञान में खेद नहीं होता; इसलिये यदि तुझे सुखी होना हो तो अतीन्द्रियज्ञान को लक्ष्य में ले; स्वभाव को लक्ष्य में लेनेपर ही मोक्षमार्ग होता है।

केवलज्ञान के सम्बन्ध में खेद क या ? खेद का परिणाम क्या ? तथा केवलज्ञान और आनन्द का भेद क्या ? कि जिससे केवलज्ञान को एकांतिक सुखत्त्व न हो ? केवलज्ञान प्रगट होनेपर सुख साथ ही प्रगट होता है तथा कोई कहता है कि केवलज्ञान प्रगट होता है किन्तु सुख प्रगट नहीं होता - तो यह बात सही नहीं है। सुख प्रगट होता है वह भी नई-नई अवस्था बदला करता है।

१. घाति कर्म खेद नहीं कराते किन्तु जब स्वयं खेद करें तो घाति कर्म निमित्त कहलाते हैं। खेद का स्थान घाति कर्म है - यह व्यवहारनय का कथन है। **'स्वाश्रित निश्चय है और पराश्रित व्यवहार है।'** अज्ञानी कहता है कि - घाति कर्मों को दूर करो तो केवलज्ञान होगा और घाति कर्मो को दूर करने के लिये तपश्चर्या करो किन्तु यह सच्चा उपाय नहीं है क्योंकि शुभराग में भी घातिकर्म बन्धते हैं। आत्मा ज्ञानस्वभावी है उसकी दृष्टि और स्थिरता होनेपर वीतरागता और केवलज्ञानदशा होती है और कर्म स्वयं दूर हो जाते हैं।

घातिकर्म दुःख के स्थान है - यह व्यवहार का कथन है अर्थात् वास्तव में - ऐसा नहीं है। घाति कर्म दुःख के स्थान नहीं किन्तु स्वयं दुःख उत्पन्न करता है तो घातिकर्म निमित्त कहे जाते हैं। यदि कर्म के कारण दुःख होता हो तो तुझे कुछ भी करना नहीं रहता। ऐसा पूजा में भी आता है कि -

'कर्म बिचारे कौन, भूल मेरी अधिकाई।'

आत्मा ज्ञान, दर्शन, आनन्द और वीर्य की दशा हीन करे तो घातिकर्म निमित्त कहलाये। जो अपने स्वभाव से दूर हो जाता है उसे विभाव का ज्ञान करांने के लिए व्यवहार से कथन करते हैं। प्रवचनसार गाथा ४५ में कहा था कि - द्रव्य, मोहकर्म का उदय होनेपर भी जीव अपने स्वभाव के बल से मिथ्यात्व और राग-द्वेषरूप परिणमित नहीं हो तो उसे नया द्रव्य बन्ध नहीं होता; तू तेरे स्वभाव को भूले तो कर्म वहाँ निमित्त

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कहलाते हैं और यदि स्वभाव में स्थिर रहे तो कर्म छूट जाते हैं। इसलिये यह किस नय का कथन है यह जानना चाहिये। घातिकर्म नुकसान करते हैं यह व्यवहारनय का कथन है क्योंकि घातिकर्म परद्रव्य है वह जीव को स्पर्श भी नहीं करता।

तथा केवल परिणाममात्र खेद का कारण नहीं होता क्योंकि सिद्ध को परिणमन है किन्तु खेद नहीं है। तथा एकमात्र घातिकर्म खेद का कारण नहीं है और अकेला परिणमन होना भी खेद का कारण नहीं है अपितु स्वयं राग-द्वेष, अज्ञान करे तो खेद का कारण हो और कर्म निमित्त कहलाए। तथा घाति कर्म तो जड़ हैं; जगत में हम कर्म है - ऐसी कर्मों को खबर नहीं है; उसकी सभी पर्यायें क्रमबद्ध के अनुसार ही होती हैं। यदि स्वभाव में एकता हो तो यह बन्ध का कारण नहीं। **''व्यवहारनय जैसा कहता है वैसा ही स्वरूप मान लेना वह मिथ्यात्व है।''**

घातिकर्म केनिमित्त में जुड़े तो - घात किया कहा जाता है और (यदि) न जुड़े तो अपना विकास किया कहा जाता है।

'निमित्त, नैमित्तिक की प्रसिद्धि करता है।'

जीव स्वयं परिणमित होनेवाला हो तो दूसरी वस्तु को निमित्त कहा जाता है, किन्तु अज्ञानी जीव को यह बात नहीं बैठती (स्वीकार होती) हरितकाय नहीं खाना, सामायिक करना, मंदिर बनाना अथवा पुण्य करो आदि बातें बैठ (स्वीकार हो) जाती है किन्तु आत्मा को समझे बिना थोड़ा भी धर्म नहीं होता। चैतन्य की जात समझे बिना भात पड़े (कल्याण हो जाए) - ऐसा नहीं होता।

घाति कर्म के दो प्रकार हैं :-

१. भावघाति :- ये जीव के अरूपी विकारी परिणाम हैं जो दोष के कारण हैं।

२. द्रव्यघाति :- यह कर्म की रूपी अवस्था हैं तथा कर्म की अनुभाग शक्ति, यह कर्म का भावघाति है; ये दोनों ही बन्ध के कारण नहीं होते किन्तु जब आत्मा स्वयं विकारी परिणाम करता है तो द्रव्यघाति निमित्त कहे जाते हैं। घातिकर्म, महामोह का उत्पाद है - यह व्यवहारनय का कथन है।

''व्यवहारनय, स्वद्रव्य-परद्रव्य को व उसके भावों को व कारण कार्यादि को किसी को किसी में मिलाकर निरूपण करता है इसलिये -

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

ऐसा ही मान लेना वह मिथ्यात्व है।''

यदि कर्म का उदय हो तब तक मिथ्यात्व करना पड़े तो कभी भी संसार का अंत नहीं आएगा (होगा)। जीव स्वयं ज्ञानानन्द स्वभाव को भूलता है तो कर्म निमित्त कहलाते हैं। जिस स्वरूप वस्तु नहीं है उस स्वरूप वस्तु को मानने का मोहभाव अज्ञानी स्वयं करता है।

जैसे, जिसने धतूरा पिया हो उसे सफेद पदार्थ पीला लगता है; वैसे ही घाति कर्म के निमित्त से जीव अतत् में तत् बुद्धि करता है। वस्तु, जिस स्वरूप नहीं होती वैसी मान्यता करता है और पुण्य-पाप के भाव जो दुःखरूप हैं, उसमें सुखबुद्धि करता है, जो मिथ्यात्व का कारण है।

जड़ पदार्थ की सन्मुखता करना अथवा ज्ञानस्वभाव की सन्मुखता करना यह आत्मा का स्वतंत्र कार्य है। वस्तु क्या है ? और वह कैसी होती है ? इसके निर्णय का जिसे ठिकाना नहीं है उसे घातिकर्म अतत् में तत्बुद्धि धारण कराता है - ऐसा कहते हैं, जो व्यवहारनय का कथन है। नय, ज्ञान का अंश है वह अंश पर को बताता है, विकार को बताता है अथवा स्वभाव को बताता है ? यह सर्वप्रथम जानना चाहिये।

'व्यवहारनय कारण में कार्य का उपचार बताता है।'

आचार्य निमित्त का ज्ञान कराते हैं और अनेकांत बताते हैं कि :-

स्व से कार्य होता है और पर से नहीं होता इसका नाम अनेकांत है। एक वस्तु में वस्तुपने को निपजाने (सिद्ध करने)वाली परस्पर विरुद्ध दो शक्तियों का प्रकाशित होना वह अनेकांत है। वस्तु स्वपने है और परपने (पररूप से) नहीं - यह अनेकांत है।

किसी समय जीव विकार करे और किसी समय कर्म विकार कराए - यह अनेकांत नहीं है। जीव बलवान है किन्तु कर्म नहीं। निमित्त की निमित्तता कब रहती है ? कि जब निमित्त, निमित्त तरीके (रूप से) तटस्थ रहे तब, किन्तु यदि निमित्त से उपादान में काम हो जाय तो निमित्तपना नहीं रहता। घातिकर्म का आश्रय करने पर आत्मा स्वयं, भिन्न-भिन्नरूप परिणमित होता है जो खेद का कारण है।

यहाँ केवलज्ञान की व्याख्या है। केवलज्ञान अतीन्द्रिय है वह सुख का कारण है। आत्मा का ज्ञान और आनन्द स्वभाव है - ऐसी प्रतीति जिसे होगी उसे

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

धर्म की शुरूवात होती है। केवलज्ञान अनन्त आनन्द का कारण है - यह उपादेय है इसका अर्थ यह है कि - देह, मन, वाणी, पुण्य-पाप अंगीकार करने योग्य नहीं है, वर्तमान ज्ञान के उघाड़ की रुचि लाभदायक नहीं अपितु अंदर एक, अतीन्द्रिय ज्ञानस्वभाव लाभदायक है। **ज्ञानस्वभाव तत्स्वरूप है उसे छोड़कर रागादि में लाभ मानने की अतत्बुद्धि करके जीव मिथ्यात्व भाव का सेवन करता है।**

(१) आत्मा में खेद होता है उसमें घाति कर्म का निमित्त है। स्वभाव आनन्द स्वरूप है उसका आश्रय नहीं लेकर कर्म की सन्मुखता करे वह दुःख है। एकमात्र परिणमित होना वह दुःख नहीं है, क्योंकि केवलज्ञान भी समय-समय बदलता (परिणमित होता) है; दूसरे समय दूसरा होता है वहाँ परिणमन होनेपर भी वह दुःख का कारण नहीं है किन्तु घातिकर्म सन्मुख होकर रागद्वेष करना वह दुःख का कारण है।

जड़कर्म की सन्मुखता महामोह की उत्पादक है किन्तु जड़कर्म, मोह का उत्पाद नहीं है। अज्ञानी जीव स्वभाव को छोड़कर पर ऊपर दृष्टि करता है; स्वयं मोह करता है तो कर्म निमित्त कहलाते हैं। ज्ञानानन्द स्वभाव को भूलकर पर में सावधानी करता है। जैसे धतूरा पिये हुए मनुष्य को सफेद वस्तु पीली दिखती है; वैसे ही अज्ञानी मोह करता है।

कर्म सन्मुखता का भाव, राग-द्वेष कराता है। यहाँ ज्ञेय अर्थात् राग-द्वेष समझना। आत्मा ज्ञानस्वभाव है, उसकी सन्मुखता नहीं करता और शुभाशुभरूप परिणमित होता है और उसमें हितरूप मानता है इसलिये मिथ्यात्वरूप से परिणमित होता है।

आत्मा, ज्ञानरूप से परिणमित नहीं होता ज्ञेय रूप से परिणमित होता है - इसका क्या अर्थ है ? आत्मा ज्ञानस्वभावी है उसकी रुचि करके ज्ञानरूप परिणमित होना चाहिये उसके बदले दया-दानादिरूप परिणमित होना मानकर भ्रांति करता है। ज्ञान सन्मुख होकर ज्ञान की अवस्थारूप हुआ वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी धर्मरूप परिणाम हैं। वह नहीं करके जो दया-दानादि के परिणाम जो ज्ञान के ज्ञेय हैं उसे करता है। जबकि व्रत, भक्ति, जाप आत्मा का स्वरूप नहीं फिर भी आत्मा के ज्ञेय में परिणमित होते हैं वह मिथ्यात्व भावरूपपरिणमित होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यह ज्ञानतत्त्व का अधिकार है। ज्ञान भावरूप है-ज्ञान सत्व है, उसके अंदर दृष्टि करके ज्ञानरूप होता है तो मिथ्याभाव नहीं होता। ज्ञानस्वभाववान ऊपर दृष्टि नहीं डालने पर दया-दानादिरूप परिणमित होता है वह मिथ्याभावरूप परिणमित होता है। उसे स्वभाव-दृष्टि नहीं है।

"मैं जानने-देखनेवाला हूँ" - ऐसी दृष्टि नहीं करने पर कर्म तरफ का झुकावरूपभाव-मिथ्यात्वभाव दया-दान, व्रत की ओर परिणमित कराता है। पुण्य-पाप का भाव आत्मा का स्वरूप नहीं है। आत्मा का ज्ञान और आनन्द तत्स्वरूप है; उसकी रुचि नहीं करने पर राग की सन्मुखता करता है। राग को, ज्ञान में ज्ञेय नहीं बनाता किन्तु मिथ्यात्वभाव रागरूप परिणमित कराता है।

ज्ञानत्व अर्थात् ज्ञानस्वभाव। आत्मा का ज्ञानत्व सार है - ऐसे ज्ञान की रुचि करे तो दया-दानादि के राग-द्वेष को ज्ञेयरूप जाने और ज्ञानगुण की वर्तमान पर्याय सामान्य त्रिकाल तत्त्व के साथ में एकत्व होकर हुई; अर्थात् ज्ञान ने, ज्ञान को ज्ञेयरूप परिणमित किया यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। उसके बदले मैं पर की सेवा कर सकता हूँ, पर की दया पाल सकता हूँ - ऐसा मिथ्यात्व भाव पुण्यरूप से अथवा विकाररूप से परिणमित करता है और सम्यक्भाव ज्ञानरूप परिणमित होता है। सम्यक्भाव होनेपर ज्ञानरूप परिणमन होता है।

जानना-देखना यह सामान्यभाव मेरा स्व है, उसकी सन्मुखता होनेपर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है - ऐसा नहीं करके दया-दानादि के परिणाम जो कि अतत् स्वरूप है उसमें मिथ्याभाव तत्बुद्धि कराता है - द्रव्यदृष्टि नहीं करता और कर्म की सन्मुखता करता है, इसलिये कर्म परिणमित कराते हैं - ऐसा कहा जाता है। अनन्तकाल में एक समयमात्र में धर्म कैसे होता है ? इस बात की खबर इसे नहीं हुई। यह क्रिया करूंगा तो धर्म होगा; इसतरह अज्ञानी मिथ्यात्व भाव का सेवन करता है।

पुण्य-पाप के परिणाम आश्रवतत्त्व हैं। देह, मन; वाणी जड़ (अजीव) तत्त्व है आत्मा ज्ञायक तत्त्व है, राग की मंदता का शुभराग आश्रवतत्त्व है, किन्तु अज्ञानी ज्ञानतत्त्ववाले आत्मा की तो रुचि नहीं करता और आश्रव से लाभ मानकर रागरूप परिणमित होता है। जबकि राग-द्वेष आत्मा के तत्त्व नहीं हैं। पुण्य-पाप और निमित्त की क्रिया मेरे से होती है - ऐसा वह मानता है। यह मिथ्यात्वरूप संसार है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

केवली भगवान को-घाति कर्म का अभाव है, इसलिये उन्हें खेद नहीं है। यह पदार्थ ठीक लगता है यह ठीक नहीं लगता, यह मेरे से किया जा सकता है - यह मेरे से नहीं किया जा सकता और इसप्रकार परिणमित हो होकर थकता है। अतः राग-द्वेष थकावट का कारण है। आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उसकी रुचि करे तो थकावट नहीं होती।

घातिकर्म दुःख के स्थान कहे वह निमित्त का कथन है क्योंकि जड़ पदार्थ दुःख का स्थान नहीं है। तथा जहाँ घातिकर्मों को महामोह का उत्पादक कहा हो वहाँ घातिकर्म मोह के उत्पादक नहीं है - ऐसा समझना चाहिये। वास्तव में, स्वयं मोह करता है तो घाति कर्म निमित्त कहे जाते हैं तथा घाति कर्म खेद के कारण होते हैं; वहाँ भी स्वयं ज्ञेयों के प्रति परिणमित होकर स्वयं खेद करता है तो घातिकर्म निमित्त होते हैं।

भगवान को घातिकर्म का अभाव है; कर्म की अवस्था का बदलना वह पुद्गल का धर्म है। केवली भगवान को घाति कर्म का निमित्त नहीं है, वैसे ही नैमित्तिकदशा विकाररूप नहीं रही इसलिये उनको खेद नहीं होता। क्योंकि घातिकर्मों का अभाव हुआ है इसलिये उनको खेद नहीं है यह निमित्त का कथन है-व्यवहारनय का कथन है।

प्रत्येक गाथा का पाँच प्रकार से अर्थ करना चाहिये :-

१. गाथा के शब्द का अर्थ करना चाहिये वह-**शब्दार्थ** है,

२. कौन सा आगम क्या कहता है वह-**आगमार्थ** है,

३. किस नय का वाक्य है वह-**नयार्थ** है,

४. अन्यमत अर्थात् विपरीत मत क्या कहते हैं वह-**मतार्थ** है और

५. उसका सार क्या है ? वह **भावार्थ** है।

इसप्रकार पाँच प्रकार से गाथा समझना चाहिये। उसमें -

१. प्रथम शब्दार्थ समझना,

२. आगम कहता है कि तेरे दुःख की पर्याय तेरे से हुई है,

३. ईश्वर दुःख देता है अथवा आत्मा सर्वथा शुद्ध है - ऐसा अन्य मत कहते हैं वह बात खोटी (असत्य) है,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

४. घाति कर्म पर द्रव्य हैं वे दुःख के कारण नहीं है - ऐसा नयार्थ कहता है,

५. पर का लक्ष्य छोड़कर स्व की रुचि करके स्व का आश्रय कर यह भावार्थ है। इसप्रकार पाँच प्रकार से अर्थ करना चाहिये।

केवलज्ञान समय-समय पूर्ण परिणमित होता है इसलिये वहाँ खेद नहीं है।

(२) तथा भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यकाल - ऐसे तीनकालरूप भेद हैं और समस्त पदार्थों के ज्ञेयाकारोंरूप विविधता को प्रकाशित करने का स्थानभूत केवलज्ञान है। जैसे दीवार चित्रित् होती है वैसे ही केवलज्ञान में सभी चित्रित हो गया है। इसप्रकार अनन्त स्वरूप स्वयमेव परिणमित होने से केवलज्ञान ही परिणाम है। केवलज्ञान दूसरी (अन्य) वस्तु नहीं है। जैसे केवली भगवान को राग-द्वेष नहीं है वैसे ही उन्हें अल्पज्ञता भी नहीं है।

प्रत्येक समय परिपूर्ण परिणमन है इसलिये खेद नहीं है। बदलना (परिणमन) उसका स्वभाव है। 'उत्पाद-व्यय-ध्रुव युक्त सत्' और 'सत् द्रव्य लक्षणम्' तीन प्रकार से है। गुणरूप सदृश रहना और उत्पाद-व्यय विसदृशरूप रहना ऐसा द्रव्य का स्वभाव है।

जहाँ पूर्णदशा होती है वहाँ अन्य रागादि के परिणाम नहीं होते इसलिये खेद भी नहीं होता। केवलज्ञान समस्त पदार्थों को जानता है, ज्ञेय के प्रति पलटता नहीं, इसलिये केवलज्ञान ही सुख है।

(३) केवलज्ञान समस्त विघ्नों का अभाव है। आत्मा में जो शक्ति थी वह पूर्णतः प्रगट हुई है उसे विघ्नों का अभाव है। सकल त्रैकालिक लोकालोक के आकार में व्याप्त होकर कूटस्थतपने अत्यंत निष्कम्प रहा है।

केवलज्ञान सर्वथा अपरिणामी नहीं परंतु वह एक ज्ञेय से अन्य ज्ञेय की तरफ़ पलटता नहीं। सर्वज्ञ तीनोंकाल के ज्ञेयाकारों को जानते हैं तथा ऐसे के ऐसे परिणमन किया करते हैं।

यह केवलज्ञान आत्मा से अभिन्न है इसलिये सुख का लक्षणभूत अनाकुलता को धारण करने से केवलज्ञान को ही सुख कहा है। ज्ञान और सुख दोनों ही जुदा-जुदा गुण है। ज्ञान सुखरूप नहीं होता किन्तु केवलज्ञान प्रगट होनेपर अविनाभावरूप से सुख प्रगट होता है इसलिये केवलज्ञान में ही सुख कहा है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इसप्रकार केवलज्ञान और सुख को व्यतिरेक कहाँ है ? अर्थात् उनमें भिन्नता नहीं है।

केवलज्ञान ही एकांतिक सुख है - ऐसा सर्वथा अनुमोदन करना चाहिये। अर्हंत और सिद्ध को केवलज्ञान एकांतिक सुख है - ऐसा आनन्द से संमत करना योग्य है - ऐसा निर्णय करे तो वहाँ निमित्त, पुण्य-पाप और वर्तमान पर्याय की रुचि छूट जाती है और अतीन्द्रिय ज्ञानस्वभाव की रुचि हो जाती है।

यहाँ केवलज्ञान को सर्वथा अनुमोदन करने योग्य कहा है। इसमें सर्वथा शब्द का प्रयोग किया है इसका अर्थ यह है कि केवलज्ञान प्रशंसनीय है और अन्य कुछ भी प्रशंसनीय नहीं है - यह एकांत है। केवलज्ञान सम्पूर्ण (परिपूर्ण) परिणमन है इसलिये आनन्द साथ में प्रगट होता है; इसप्रकार वह समंत करने योग्य है।

पुण्य-पाप की रुचि छोड़कर, सामान्य स्वभाव की रुचि करने पर - आत्मा के आंशिक आनन्द सहित केवलज्ञान की प्रतीति होती है। जो पहले सही समझ नहीं करता वह स्थिरता भी नहीं कर सकता। सम्यग्दर्शन की भूमिका के बिना चारित्र नहीं होता।

यहाँ कहते हैं कि केवलज्ञान एकांतिक सुख है, यह सर्वथा अनुमोदन करने योग्य है किन्तु चारज्ञान मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान अनुमोदन करने योग्य नहीं है क्योंकि ये चारों ज्ञान अपूर्ण पर्यायें हैं। आत्मा ज्ञानस्वभावस्वरूप है, उसकी वर्तमान पर्याय को स्वभाव सन्मुख करके एकाग्रता करने का प्रयत्न चालू रहता है इसमें पूर्ण की प्रतीति आ जाती है। निमित्त, अल्पज्ञता, राग-द्वेष जानने योग्य है किन्तु आश्रय करने योग्य नहीं है; यह धार्मिक क्रिया है। अतः जो जीव अपने अतीन्द्रिय स्वभाव सन्मुख होता है उसने केवलज्ञान की अनुमोदना की।

आत्मा वस्तु है। वस्तु हो और उसका स्वभाव न हो - ऐसा नहीं होता; उसका स्वभाव ज्ञान है। अज्ञानी जीव पर्याय को ज्ञानस्वभाव सन्मुख नहीं झुकाकर निमित्त और पुण्य-पाप की तरफ झुकाता है वह भ्रांति है। ज्ञान की पर्याय जिसकी है उसकी तरफ न झुके और निमित्त, पुण्य-पाप की तरफ झुके तो उसने केवलज्ञान को अनुमोदन नहीं दिया किन्तु निमित्त व राग-द्वेष को अनुमोदन दिया है यह मिथ्यात्व भाव है।

ज्ञान की पर्याय विशेष है; जिसका विशेष है उसके तरफ न झुके और

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अल्पज्ञान निमित्त, राग-द्वेष और अपूर्ण ज्ञान की प्रशंसा करे यह मिथ्याभाव है। अतीन्द्रिय ज्ञानस्वभाव सन्मुख हो तो केवलज्ञान प्रगट होगा इसप्रकार केवलज्ञान की अनुमोदना आती है। धर्म का स्वरूप क्या है ? इसका अलौकिक विधि से गाथाबद्ध वर्णन करते हैं।

भावार्थ पर प्रवचन :- केवलज्ञान दशा है - दशा पलटे (परिणमन) बिना नहीं रहती। अब, परिणमन से तो थकान लगेगी और उससे दुःख होगा अतः केवलज्ञान एकांतिक सुखरूप कैसे हो सकता है ? - ऐसी शंका का यहाँ समाधान किया गया है।

१. परिणमित होना, अवस्थान्तर होना, भावान्तर होना, वह दुःख का कारण नहीं है, किन्तु घाति कर्मों के निमित्त में जुड़े तो दुःख होता है। निमित्त और नैमित्तिक का काल भेद नहीं है। स्वयं विकार करे तो सामनेवाला पदार्थ निमित्त कहा जाता है। ज्ञान मेरा स्वरूप है, उसके सन्मुख तो नहीं होता किन्तु परसन्मुख होता है वह दुःख है। इसलिये अवस्था बदला करती हैं और आत्मा के विचार भी बदलते हैं वह दुःख का कारण नहीं है, अपितु परसन्मुखता करना वह दुःख का कारण है।

आत्मा ज्ञानानन्द स्वरूप है, आदि अंत रहित ज्ञानस्वभाव है - ऐसे ज्ञानस्वभाव सन्मुख होकर बदले-परिणमन करे तो वह दुःख का कारण नहीं होता। किन्तु इसके बदले परसन्मुख होकर शुभाशुभभाव में रहकर अटके वह थकान है तथा वह दुःख का कारण है।

खाने-पीने की इच्छा वह पाप वासना है और दया-दान पुण्य वासना है आत्मा उसमें रुककर परिणमन करता है वह दुःख का कारण है और आत्मा के स्वभाव में रहे वह सुख का कारण है।

आत्मा का चिदानन्द स्वभाव आदि-अन्त रहित है, उसकी दृष्टि करके भावान्तर अथवा रूपान्तर होता है वह आनन्द का कारण है। उसके बदले पुण्य-पाप में रुककर परिणमन करता है वह दुःख का कारण है।

कमाने का भाव होता है - ब्याज कमाने का भाव आता है, वह दुःख का कारण है। यदि पर में आनंद हो तो किसलिये इन्कार करता है ? तीन लड्डू में सुख हो तो छह लड्डू खाने में डबल (दुगना) सुख होना चाहिये किन्तु ऐसा नहीं होता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भगवान आत्मा अखण्ड आनन्द स्वरूप है उसकी दृष्टि तो नहीं करता किन्तु राग-द्वेष में अटकता है वह दुःख का कारण है। सर्वज्ञ परमात्मा तीनकाल तीनलोक को जानते हैं फिर भी उन्हें राग-द्वेष नहीं होता और निमित्तरूप से घातिकर्म नहीं है इसलिये उनको थकान नहीं होती।

परिणाम केवलज्ञान का स्वरूप है इसलिये केवलज्ञान को परिणाम द्वारा खेद नहीं होता। तथा आत्मा की ज्ञानदशा अंतर स्वभाव के अवलम्बन से पूर्णरूप हुई है। उस केवलज्ञान का परिणमन स्वभाव है।

जैसे सोने के ज़ेवर (गहने) में परमाणु कायम (ध्रुव) रहकर रूपांतरित होते हैं वैसे ही परमात्मा का त्रिकालज्ञान स्वयं ही परिणमन स्वरूप है - वह उपाधि नहीं है। शक्कर भी बदलती है - शक्कर की पर्याय निर्मल होनेपर भी बदला (परिणमन) करती है वह उसका स्वरूप है आत्मा की पूर्ण अवस्था केवलज्ञान की होती है वह बदलती है।

जैसे चौंसठपुटी तिखास, लेंड़ीपीपर में व्यक्तरूप अवस्था होने के बाद और हरापन प्रगट होने के बाद वह समय-समय बदलती है वह फिर से कम तिखासरूप नहीं होती; वैसे ही केवलज्ञान पूर्णरूप से बदला करता है वहाँ उपाधि नहीं है। यदि परिणाम का नाश हो जायगा तो केवलज्ञान का भी नाश हो जाएगा किन्तु ऐसा नहीं होता।

जैसे बालपना, युवापना अथवा वृद्ध अवस्था - ऐसी कोई न कोई अवस्था होती है। यदि कोई अवस्था न हो तो वस्तु (मनुष्य) का नाश हो जाएगा वैसे ही केवलज्ञान नहीं बदले - ऐसा केवलज्ञानी का आत्मा नहीं होता। इसप्रकार परिणमन केवलज्ञान का सहज स्वरूप होने से केवलज्ञान को परिणमन द्वारा खेद नहीं हो सकता।

२. तथा परमात्मा भूत-भविष्य और वर्तमान - ऐसे तीनोंकाल के पदार्थों को जानते हैं। भगवान तीनलोक के जाननेवाले हैं, किन्तु करनेवाले (कर्ता) नहीं है - ऐसा निर्णय स्वभाव सन्मुख होनेपर होता है।

प्रश्न:- यदि केवलज्ञान में सब जानने में आता है तो - करनेवाले के हाथ में कुछ नहीं रहा ?

समाधान :- भाई! इस जगत में तीनकाल-तीनलोक को जाननेवाले हैं -

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ऐसी सत्ता को स्वीकार करने जाए, तो दृष्टि स्वभाव सन्मुख होती है। त्रिकालवेत्ता त्रिकाल के जाननेवाले हैं; भूतकाल में वस्तु थी - ऐसा ज्ञान ने जाना है अर्थात् भूतकाल में पदार्थ को जाननेवाला तो हुआ है किन्तु पदार्थ का कर्ता नहीं हुआ।

भूतकाल में वस्तु थी, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगी - ऐसा जाना इसतरह त्रिकालवेत्ता का महानपना अल्पज्ञ पर्याय में स्वीकार हुआ है तो वहाँ स्वभाव सन्मुख दृष्टि होती है। इसप्रकार स्वभाव सन्मुख दृष्टि हुए बिना केवलज्ञान की महिमा नहीं आती। मेरा स्वभाव सर्वज्ञ होने का है - ऐसा अल्पज्ञ पर्याय में निर्णय किया वह ही पुरुषार्थ है और वही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है।

आत्मा का स्वभाव जानना है; सामान्यस्वभाव का अवलम्बन लेकर जो विशेषदशा होती है वह ज्ञान का पूर्णरूप है जैसा शक्तिरूप है वैसा पर्याय में प्रगट होना वह केवलज्ञान का स्वरूप है - ऐसी प्रतीति करके अपनी सर्वज्ञशक्ति तरफ झुके वह सम्यग्दर्शन है। केवलज्ञानी को आनन्द है किन्तु उन्हें खेद नहीं है। इसप्रकार केवलज्ञान एकांत सुखरूप है इसलिये वह प्रशंसा करने योग्य है।

३. तथा केवलज्ञान समस्त पदार्थों के त्रैकालिक ज्ञेयाकार समूह को सर्वथा-निष्कम्पपने अस्थिर हुए बिना जानते हैं। ज्ञानगुण अनादि-अनंत है उसका अवलम्बन लेकर हुई पूर्णदशा अत्यंत निष्कम्प, स्थिर, अक्षुब्ध और अनाकुल है; उसमें क्षोभ नहीं तथा वह आनन्दरूप है। अनाकुल होने से सुखी है क्योंकि अनाकुलता - सुख का ही लक्षण है।

इसप्रकार केवलज्ञान और अनाकुलता का अविनाभाव सम्बन्ध है इसलिये केवलज्ञान और सुख भिन्न नहीं है। तथा केवलज्ञान समय-समय बदलता है फिर भी उसमें उपाधि नहीं है। केवलज्ञान निष्कम्प, स्थिर, अनाकुल है इसलिये केवलज्ञान सुखस्वरूप ही है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचनसार गाथा ६१

अथ पुनरपि केवलस्य सुखस्वरूपतां निरूपयन्नुपसंहरति-

णाणं अत्थंतगयं लोयालोएसु वित्थडा दिट्ठी ।
णट्ठमणिट्ठं सव्वं इट्ठं पुण जं तु तं लद्धं ॥६१॥

अब, पुनः 'केवल (अर्थात् केवलज्ञान) सुखस्वरूप है' - ऐसा निरूपण करते हुए उपसंहार करते हैं :-

अर्थान्तगत है ज्ञान लोकालोक विस्तृत दृष्टि है ।
हैं नष्ट सर्व अनिष्ट वा सब इष्ट उनको प्राप्त हैं ॥६१॥

अन्वयार्थ :- (ज्ञानं) ज्ञान **(अर्थान्तगतं)** पदार्थों के पार को प्राप्त है **(दृष्टिः)** और दर्शन **(लोकालोकेषु विस्तृताः)** लोकालोक में विस्तृत है; **(सर्व अनिष्ट)** सर्व अनिष्ट **(नष्टं)** नष्ट हो चुका है **(पुनः)** और **(यत् तु)** जो **(इष्टं)** इष्ट है **(तत्)** वह सब **(लब्धं)** प्राप्त हुआ है। (इसलिये केवल (अर्थात् केवलज्ञान) सुखस्वरूप है)

टीका :- सुख का कारण स्वभावप्रतिघात का अभाव है। आत्मा का स्वभाव दर्शनज्ञान है; (केवलदशा में) उनके (-दर्शन-ज्ञानके) प्रतिघात का अभाव है, क्योंकि दर्शन लोकालोक में विस्तृत होने से और ज्ञान पदार्थों के पारको प्राप्त होने से वे (दर्शन-ज्ञान) स्वच्छन्दता पूर्वक (-स्वतंत्रता पूर्वक, बिना अंकुश, किसी से बिना दबे) विकसित हैं (इसप्रकार दर्शन-ज्ञानरूप स्वभाव के प्रतिघात का अभाव है) इसलिये स्वभाव के प्रतिघात का अभाव जिसका कारण है - ऐसा सुख अभेद विवक्षा से केवलज्ञान का स्वरूप है।

(प्रकारान्तर से केवलज्ञान की सुखस्वरूपता बतलाते हैं:-) और, केवल अर्थात् केवलज्ञान सुख ही है, क्योंकि सर्व अनिष्टों का नाश हो चुका है और सम्पूर्ण इष्ट की प्राप्ति हो चुकी है। केवल-अवस्था में, सुखोपलब्धि के विपक्षभूत दुःखों के साधनभूत अज्ञानका सम्पूर्णतया नाश हो जाता है और सुख का साधनभूत परिपूर्ण ज्ञान उत्पन्न होता है, इसलिये केवल ही सुख है। अधिक विस्तार से बस होओ॥६१॥

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गाथा ६१ पर प्रवचन

भगवान के केवलज्ञान में इष्टपना प्रगट हुआ है। केवलज्ञान इष्ट है और अज्ञान, राग-द्वेष अनिष्ट हैं जिनका उन्हें नाश हुआ है। कोई भी पर पदार्थ अथवा कर्म अनिष्ट नहीं हैं। कर्म तो जड़ हैं। पूर्ण ज्ञानपर्याय इष्ट है इसके सिवाय कोई दूसरा इष्ट है ही नहीं।

पंच-परमेष्ठि को जो इष्ट कहा है वह तो व्यवहार से इष्ट कहा है। अज्ञान, राग-द्वेष जो अनिष्ट हैं उनका नाश हो गया है, इसलिये भगवान के इष्टपना है। भगवान परमेष्टि (परम-इष्ट) देव व्यवहार से हैं। आत्मा की केवलज्ञान पर्याय इष्ट है। भगवान को अज्ञान और राग-द्वेष के अनिष्टपने का व्यय हुआ, केवलज्ञान के इष्टपने का उत्पाद हुआ और जीव ध्रुव रहा है। केवलज्ञान के निर्णय में अपने ज्ञानस्वभाव का निर्णय है - यही पुरुषार्थ है। केवलज्ञान अर्थात् मोक्षतत्त्व। भावमोक्ष केवलज्ञानी को है और द्रव्यमोक्ष सिद्ध को है इसलिये मोक्षतत्त्व के निर्णय में सिद्ध और अरिहंत का निर्णय आ जाता है।

केवलज्ञान एक समय में तीनकाल-तीनलोक को जानता है - ऐसा कहने पर कोई पूछता है कि - जगत के जिस पदार्थ की जो अवस्था जैसी होनेवाली है वही होगी तो फिर हमें क्या करना रहा ? इसप्रकार अज्ञानी भ्रमित होता है और कहता है कि - जिस पदार्थ में जिंस समय, जो अंश प्रगट होनेवाला होगा वही होगा, उसमें फेरफार नहीं होगा तो फिर हमारा पुरुषार्थ कहाँ रहा ?

समाधान :- जो होनेवाला होगा वही होगा इसका निर्णय ज्ञान करता है। 'मैं ज्ञान स्वरूप हूँ' - ऐसा निर्णय करनेवाला पर का ज्ञाता होता है।

अब, जाननेवाले ने केवली को जाना वह उनके पास रहा उससे तेरे में क्या आया ? मैं जाननेवाला हूँ और फेरफार करनेवाला नहीं - ऐसा निर्णय करना वही पुरुषार्थ है - ऐसा निर्णय करने में, निमित्त आए तो कार्य हो यह बात नहीं रहती। जड़ की पर्याय क्रमबद्ध होती है, मेरे में क्रमबद्धता होती है - ऐसा मेरा द्रव्य कैसा है? मेरा द्रव्य, ज्ञानस्वभावी है - ऐसा निर्णय करना वह सम्यग्दर्शन का पुरुषार्थ है और जो स्थिरता होती है वह चारित्र है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

केवलज्ञान ने सर्व पदार्थों के पार को पा लिया है और केवलदर्शन लोकालोक में विस्तृत है। केवली भगवान को सर्व अनष्टि अर्थात् अज्ञान और राग-द्वेष का नाश हुआ है और इष्ट अर्थात् पूर्णज्ञान प्राप्त हुआ है इसलिये केवलज्ञान सुखस्वरूप है। आत्मा का स्वभाव जानना-देखना है किन्तु पर पदार्थों में विशेष-अवस्था होनेपर वह मेरे से हुई है - ऐसा मानकर अज्ञानी भ्राँति का सेवन करता है।

अतीन्द्रिय आनन्द का कारण स्वभाव प्रतिघात का अभाव है। आत्मा का स्वभाव ज्ञान और दर्शन है। पुण्य-पाप, दया-दान उसका स्वभाव नहीं है। शरीर को भगवान केपास ले जाना - यह आत्मा का स्वभाव नहीं है किन्तु जानने-देखने का ही स्वभाव है। स्व-भाव अर्थात् अपना भाव।

'पर को तथा राग-द्वेष को जाने वह व्यवहार है और स्वयं को जानना वह निश्चय है।'

शरीर, मन, वाणी की अवस्था पुद्गल से होती है, मेरा स्वभाव मात्र जानने का है। हलना, चलना, बोलना वह सब पर से होता है, मेरा स्वभाव उसे करने का नहीं है। जड़ और पर (पदार्थ) में प्रतिक्षण विशेष परिणमन होता है उसे जानने का स्वभाव है किन्तु करने का स्वभाव नहीं है। आटे में से रोटी होगी किन्तु बालू (रेत) में से रोटी नहीं होती - ऐसा स्त्रियाँ पहले से ही जानती है किन्तु रोटी में से पतली और गोलरूप विशेषदशा होनेपर वहाँ अभिमान करती है कि यह मेरे से हुई है।

यह शरीर चलने के स्वभाववाला है। धर्म-अधर्म द्रव्य चलने के स्वभाववाले नहीं है किन्तु शरीर के परमाणु चलने के स्वभाववाले हैं यह उनका स्वभाव है। अब, उनके गत्यांतर (गति करने) के समय उनका **'व्यवहार से जाननेवाला रहना चाहिये'** - उसके बदले यह माने कि 'मैं हूँ तो शरीर चलता है' - यह भ्रांति है। आकाश के प्रदेश अनादि-अनन्त जहाँ हैं वहाँ स्थित हैं, शरीर का चलने का स्वभाव है किन्तु परिणमन (चलने) के समय आत्मा है तो शरीर चलता है - यह मान्यता मिथ्यात्व है।

आटे में से रोटी होगी - ऐसा सामान्यज्ञान है किन्तु जहाँ (जैसे ही) रोटी बनने लगी वहाँ (वैसे ही) मानता है कि 'रोटी मेरे से हुई है।' इसी तरह कुम्हार जानता है कि मिट्टी में से घड़ा होगा किन्तु दूसरी वस्तु में से नहीं होगा - ऐसा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सामान्यज्ञान है इसलिये मिट्टी लाने का विकल्प करता है। अब, मिट्टी में से घड़ा आदि होनेपर भी अज्ञानी कुम्हार मानता है कि - मेरे से घड़ा होता (बनता) है यह अभिमान है और मिथ्यात्व है।

मैं जाननेवाला हूँ (हूँ जाननार छूँ) पर द्रव्य की अवस्था उनके कारण होती है। यह लोहे का जो भारी खंभा है वह एक आदमी से नहीं उठता तब, अज्ञानी कहता है कि - यदि दस आदमी एक साथ मिल जावे तो वह उठता है। जबकि उन दस आदमियों का एक दूसरे में अभाव है, इसलिये दस आदमियों ने मिलकर एक होकर कार्य किया - यह बात सही नहीं है। यदि वह एक आदमी से ऊंचा नहीं हुआ है तो वह दूसरे से भी ऊंचा नहीं हुआ है अपितु जह वह खंभा स्वयं से ऊंचा हुआ है तब दूसरे को निमित्त कहा जाता है।

यह लकड़ी दो ऊंगली से उठी है - ऐसा दिखाई देता है किन्तु जब वह एक उंगली से नहीं उठी तो फिर दूसरे से भी नहीं उठी। दो में दोपना रखकर वे काम करती है किन्तु दोनों एक नहीं हो गई है। अतः लकड़ी किसी से भी ऊँची नहीं हुई है अपितु लकड़ी स्वयं अपने कारण से ऊँची होती है - ऐसा जानना चाहिये।

इसी काल में खंभे का ऊपर होने का स्वभाव है - तो वह ऊर्ध्व हुआ है। धर्म आदि द्रव्य के प्रदेश तो ऊँचे नहीं होते। खम्भे का ऊपर होने का काल है तो वह उर्ध्व होता है। अतः किसी को किसी का आधार नहीं होता।

जब एक के आधार से खंभा ऊँचा नहीं होता तब वह दस के आधार से भी ऊँचा नहीं हुआ है; क्योंकि दस आदमियों का बल (ताकत) एकमेक नहीं हुआ है तो फिर दस आदमियों ने क्या किया? एक आदमी ने भी उसे थोड़ा भी नहीं उठाया अर्थात् वह एक आदमी से थोड़ा भी ऊँचा नहीं हुआ है। उसका करना अथवा छोड़ना आत्मा का स्वभाव नहीं है।

आत्मा का स्वभाव जानना-देखना है, किन्तु अज्ञानी मानता है कि 'मैं था तो यह हुआ है' जबकि जैसा होता है, उसका ज्ञान करने के बदले यह मानता है कि - मैं हूँ तो उसका कार्य होता है। जबकि जीव स्वयं उसकी रचना करनेवाला नहीं है और सहारा देनेवाला भी नहीं है अपितु मात्र जानने-देखनेवाला है - ऐसा मानना वह धर्म है। दया-दान, व्रत-तप में कहीं थोड़ा भी धर्म नहीं है, क्योंकि विभाव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा के स्वभाव से विपक्ष-विपरीत हैं अर्थात् पुण्य-पाप विपरीत है और पर पदार्थ पृथक हैं।

आत्मा का स्वभाव जानना-देखना है। इसप्रकार स्वभाव सन्मुख होकर निर्णय कर - यही सम्यग्दर्शन है। एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य का प्रवेश नहीं है। एक पर्याय में दूसरी पर्याय का अभाव है। जो अभावरूप है वह क्या करे? अज्ञानी को भ्रम होता है कि - इसके कारण यह हुआ है किन्तु स्वयं जानने-देखनेवाला है - यह वह नहीं मानता।

केवलज्ञान में स्वभाव के प्रतिघात का अभाव है, इसलिये केवलज्ञान सुख स्वरूप है। आत्मा का स्वभाव ज्ञान-दर्शन है। केवलदशा में दर्शन-ज्ञान के प्रतिघात का अभाव है क्योंकि दर्शन लोकालोक में विस्तृत है और ज्ञान ने पदार्थों के पार को प्राप्त किया है।

प्रत्येक पदार्थ भिन्न-भिन्न हैं और प्रत्येक के द्रव्य-गुण-पर्याय भी भिन्न-भिन्न हैं। इसप्रकार दर्शन और ज्ञान स्वतंत्रता से विकसित है। जैसे गुलाब की कली में जो फूल होने की शक्ति है वह खिलती है; वैसे ही केवलज्ञान की शक्ति है वह खिली है।

स्वभाव की एकाग्रता करने से केवलज्ञान प्रगट होता है किन्तु बाह्य क्रिया-काण्ड से केवलज्ञान नहीं होता। अज्ञानी जीव चारित्र को दुःखदायक मानता है। मोम के दांत से लोहे के चने चबाने जैसा है - ऐसा कहकर चारित्र को दुःखदायक मानता है किन्तु चारित्र तो शान्ति देता है। स्वभाव में ज्ञाता-दृष्टारूप रहकर अतीन्द्रिय आनन्द आवे वह चारित्र है; फिर भी उसे दुःखदायक माने वह संवर, निर्जरा तत्त्व की भूल है।

मेरे से जड़ की अवस्था होती है - ऐसा मानने में जीव-अजीव तत्त्व की भूल है, इत्यादि प्रकार से वह नौ तत्त्वों में भूल करता है। केवलज्ञान मोक्ष तत्त्व है वह सुखरूप है - ऐसा निर्णय करे वह मोक्ष का निर्णय है, यह निर्णय मेरे स्वभाव के आश्रय से होता है, यह जीव का निर्णय है। स्वभाव सन्मुख हो वहाँ संवर, निर्जरा तत्त्व का निर्णय हुआ है। आश्रव, बन्ध दुःखदायक हैं उनसे दूर होता है तो उसे आश्रव, बंध तत्त्व का निर्णय हुआ है। अजीव तत्त्व का ज्ञाता है इत्यादि प्रकार से नौ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तत्त्वों का निर्णय होता है।

केवलज्ञान-केवलदर्शन पूर्ण विकसित हुए हैं। आत्मा के परम स्वभाव में ज्ञान था वह पर्याय में भी विकसित हो गया है इसलिये वहाँ स्वभाव के प्रतिघात का अभाव कारण है। पूर्णज्ञान होनेपर अनाकुलता जिसका लक्षण है वह सुख प्रगट होता है। यद्यपि ज्ञान और सुख पृथक गुण हैं - अभेद विवक्षा से ज्ञान वही सुख है। केवली लोकालोक को देखते हैं इसलिये उन्हें आनन्द है - ऐसा नहीं है, अपितु वे अपने को पूर्णरूप से जानते हैं उसमें विघ्न नहीं है इसलिये केवली को आनन्द है।

केवलज्ञान में अपूर्णता और विपरीतता का अभाव है और पूर्णता प्रगट हुई है, इसलिये वह सुख स्वरूप है। यहाँ केवली के सुख स्वरूपपने को दूसरे प्रकार से समझाते हैं। तथा केवलज्ञान सुख ही है क्योंकि सर्व अनिष्ट का नाश हुआ है और सर्व इष्ट की प्राप्ति हुई है। सुख उपलब्धि का विपक्षभूत तथा दुःख का साधनभूत जो विपरीत ज्ञान और अपूर्ण ज्ञान था वह सम्पूर्ण ही नाश को प्राप्त हो गया है और सुख का साधन केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है।

केवलज्ञान आनन्द का साधन है इसलिये केवल ही सुख है; उसमें से अपूर्णता और विपरीतता चली गई है और पूर्णज्ञान का विकास हुआ है इसलिये वह सुखरूप है। केवली भगवान को पूर्णज्ञान है इसलिये आनन्द है। आनन्द का कारण इन्द्रियाँ नहीं है, पुण्य-पाप और अपूर्णज्ञान भी आनन्द का कारण नहीं है अपितु पूर्णज्ञान आनन्द का कारण है और पूर्णज्ञान का कारण ज्ञानस्वभाव है; इसप्रकार त्रिकाली ज्ञानस्वभाव का विश्वास कर। शरीर अच्छा हो, चौथा काल हो, दिव्य-ध्वनि हो तो केवलज्ञान प्रगट होता है - ऐसा है ही नहीं अपितु अपने ज्ञानस्वभाव में प्रतीति, ज्ञान और लीनता हुई है वही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है और उससे केवलज्ञान प्रगट होता है।

प्रश्नः- तुम कहते हो कि केवलज्ञान आनन्द का कारण है किन्तु हमें वर्तमान में केवलज्ञान कहाँ है ? हमको धर्म करवा दो।

समाधानः- केवलज्ञान के निर्णय में धर्म आ जाता है। वहाँ स्वभाव सन्मुख हुआ वही धर्म है। अज्ञानी मानता है कि प्यास लगने पर पानी मिले तो इसमें इष्टपना है। इसकी तो यहाँ बात नहीं, किन्तु देव-गुरु-शास्त्र को भी यहाँ इष्ट नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कहा अपितु स्वभाव के आश्रय से जो निर्मलता प्रगट होती है उसे यहाँ इष्ट कहा है और राग-द्वेष को अनिष्ट कहा है। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का विकल्प केवलज्ञान का कारण नहीं है और वह आनन्द का साधन भी नहीं है। व्यवहार आता है किन्तु वह केवलज्ञान का कारण नहीं है, अपितु वह विघ्न का कारण है।

जैसे पानी पीने के पहले घर (जात) पूछना चाहिये वैसे ही पहले वस्तु का निर्णय करे तो धर्म होता है। समझे बिना ही धर्म करने लगता है और व्रत-तप से धर्म होता है - ऐसा वह मानता है तो पहले पूछ तो सही कि तेरा स्वभाव क्या है ? तू कौन है ? पूछे बिना ही धर्म करने लगता है ! ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव का निर्णय नहीं किया।

राग मेरे लाने से नहीं आता, मैं तो ज्ञाता हूँ - ऐसे निर्णय बिना धर्म नहीं होता। जैसे पानी पीने से पहले पूछना चाहिये कि किसका घर है ? वैसे ही आत्मा क्या है ? क्या प्रगट करना है ? किसका नाश करना है ? केवलज्ञान कहाँ से लायेगा? अन्तर में ज्ञानस्वभाव भरा हुआ है उसमें से ज्ञान और आनन्द प्रगट होगा और अनिष्ट का नाश होगा। वास्तव में ज्ञान में ही आनन्द है।

समाधान की ताकत पर में अथवा राग में नहीं किन्तु ज्ञान में है।

एक धनाढ्य के लड़के ने दस लाख रुपये सट्टे में गवां दिये (हार गया) अब उसका मित्र उसके लड़के के पिता को कहता है कि तेरे लड़के ने दस लाख रुपये गवां दिये हैं; यदि तुम रुपये नहीं दोगे तो तुम सुबह (लड़के का) मुंह नहीं देख सकोगे, वह आत्म-हत्या कर लेगा। तब लड़के का पिता स्वयं समाधान करता है कि - पच्चीस लाख की सम्पत्ति उसी की थी यदि वह कम होती है तो भी उसी की सम्पत्ति कम होती है-मुझे क्या ?

देखो संयोग वैसे के वैसे हैं किन्तु वह समाधान करता है कि पच्चीस लाख थे तो उसी के थे और दस लाख गए है तो भी उसी के गए है-मुझे तो दो साल ही जीना है, जो कुछ सम्पत्ति है वह उसी की है, इसप्रकार (पिता) पर लक्ष्य से समाधान कर लेता है। यदि पर लक्ष्य से समाधान करना आता है तो फिर क्या वह स्व-लक्ष्य से समाधान नहीं कर सकता ?

'जिस पदार्थ की जो अवस्था होनेवाली होगी वही होती है उसे बदलने में कोई भी समर्थ नहीं है। मैं तो जानने-देखनेवाला हूँ' - ऐसा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निर्णय करे तो समाधान होता है।

केवली भगवान को पूर्ण समाधान है। ज्ञान समाधान करता है किन्तु राग अथवा पुण्य समाधान नहीं करते और जड़ भी समाधान नहीं करता मात्र ज्ञान ही समाधान करता है।

ताड़के वृक्ष से टूटा हुआ फल नीचे पृथ्वी पर गिरते हुए बीच में कब तक रहेगा ? वैसे ही जन्म होने के पश्चतात् का जीवन आयु-स्थिति में कब तक रहेगा ? अति अल्पकाल और वह भी अनियत। इसलिये हे भव्य ! इन देहादिको क्षणभंगुर जानकर वास्तविक अविनाशी पद का साधन, अन्य सर्व कार्यों को छोड़कर भी त्वरा से कर लेना यही सुयोग्य है, क्योंकिं जीवन-काल अत्यन्त संकीर्ण है।

- श्री आत्मानुशासन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचनसार गाथा ६२

अथ केवलिनामेव पारमार्थिकसुखमिति श्रद्धापयति-

णो सद्दहंति सोक्खं सुहेसु परमं ति विगदघादीणं।
सुणिदूण ते अभव्वा भव्वा वा तं पडिच्छंति ॥६२॥

अब, ऐसी श्रद्धा कराते हैं कि केवलज्ञानियों को ही पारमार्थिक सुख होता है :-

सब सुखों में उत्कृष्ट सुख है घाति रहित जिनेश के।
माने नहीं सुन भव्य ना श्रद्धान होता भव्य के ॥६२॥

अन्वयार्थ :- '**(विगतघातिनां)** जिनके घातिकर्म नष्ट हो गए हैं उनका **(सौख्यं)** सुख **(सुखेषु परमं)** (सर्व) सुखों में परम अर्थात् उत्कृष्ट है' **(इति श्रुत्वा)** - ऐसा वचन सुनकर **(न श्रद्धति)** जो श्रद्धा नहीं करते **(ते अभव्याः)** वे अभव्य हैं; **(भव्याः वा)** और भव्य **(तत्)** उसे **(प्रतीच्छन्ति)** स्वीकार (आदर) करते हैं-उसकी श्रद्धा करते हैं।

टीका :- इस लोक में मोहनीय आदि कर्मजालवालों के स्वभाव प्रतिघात के कारण और आकुलता के कारण सुखाभास होनेपर भी उस सुखाभास को 'सुख' कहने की अपारमार्थिक रूढ़ि है; और जिनके घातिकर्म नष्ट हो चुके हैं - ऐसे केवली भगवान् के, स्वभाव-प्रतिघातके अभावके कारण और अनाकुलताके कारण सुख के यथोक्त [१]कारण का और [२]लक्षण का सद्भाव होनेसे पारमार्थिक सुख है - ऐसी श्रद्धा करने योग्य है। जिन्हें ऐसी श्रद्धा नहीं है वे - मोक्षसुख के सुधापान से दूर रहनेवाले अभव्य-मृगतृष्णा के जलसमूह को ही देखते (-अनुभव करते) हैं; और जो उस वचन को इसीसमय स्वीकार (-श्रद्धा) करते हैं वे शिवश्री के (-मोक्षलक्ष्मी के) भाजन-आसन्न भव्य हैं, और जो आगे जाकर स्वीकार करेंगे वे दूर भव्य हैं।

भावार्थ :- 'केवलीभगवान के ही पारमार्थिक सुख है' - ऐसा वचन

---

[१] *सुख का कारण स्वभाव प्रतिघात का अभाव है।*

[२] *सुख का लक्षण अनाकुलता है।*

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सुनकर जो कभी इसका स्वीकार-आदर-श्रद्धा नहीं करते वे कभी मोक्ष प्राप्त नहीं करते; जो उपरोक्त वचन सुनकर अंतरंग से उसकी श्रद्धा करते हैं वे ही मोक्ष को प्राप्त करते हैं। जो वर्तमान में श्रद्धा करते हैं वे आसन्न भव्य हैं और जो भविष्य में श्रद्धा करेंगे वे दूरभव्य है ॥६२॥

ॐ ॐ ॐ

गाथा ६२ पर प्रवचन

अब, ऐसी श्रद्धा कराते हैं कि केवलज्ञानियों को ही पारमार्थिक सुख होता है। आत्मा का ज्ञानस्वभाव है, उसकी शक्ति में से जिसे पूर्णज्ञान प्रगट होता है उसे आनन्द होता है। यहाँ पूर्णानन्द की अपेक्षा से बात है उसकी ही मुख्यता है। अज्ञानी जीव पर में सुख मानता है किन्तु वह सुख नहीं अपितु दुःख है।

इस लोक में मोहनीय आदि कर्मजालवालों के चारघातिया कर्म निमित्त हैं। आत्मा के ज्ञानदर्शन स्वभाव का वर्तमान पर्याय में घात होता है क्योंकि उन्हें कर्म तरफ का झुकाव है उसमें चारघाति कर्म निमित्त हैं और नैमित्तिक अपनी पर्याय है; उसके कारण आकुलता होती है वह सुख नहीं है, किन्तु वह सुख जैसा दिखाई देता है।

शब्द, रूप, रस, गंध में सुख ज्ञात होता है, वहाँ राग है वही आकुलता है। सुखाभास को सुख कहने की अपारमार्थिक रूढ़ी है। धनवान (सेठ), राजा आदि सुखी हैं - ऐसा व्यवहार में कहा जाता है। लड्डू, दाल-भात अच्छे मिलते हो, पांच लाख रुपयेकी सम्पत्ति हो, मान और प्रतिष्ठा हो,वहाँ मोही जीव आकुलता का वेदन करता है।

ज्ञेयों में इष्ट-अनिष्ट के दो विभाग नहीं हैं, किन्तु अज्ञानी दो भाग करके आकुलता को वेदता है, वह दुःख है-अधर्म है। अनुकूलता , पैसा, मकान आदि में ठीक मानकर राग करता है, इसलिये जानने-देखने के स्वभाव का घात होता है। यह मकान, स्त्री,पुत्र, ठंडी हवा आदि अनुकूल हैं - ऐसी कल्पना आकुलता है उसे सुख कहना वह मूर्ख लोगों की रूढ़ी (परम्परा) है।

पैसेवाले सुखी हैं और उनको सभी अनुकूलताएं है - ऐसी लोगों की झूठी मान्यताएं हैं। मोटर में और घोड़ा-गाड़ी में बैठने को मिले, भोजन के समय अच्छी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वस्तुएं मिलें, सोने के समय अच्छा पलंग मिले, प्रशंसा के शब्द सुनने को मिलें यथा - आपने बहुत दान दिया है - ऐसे शब्द सुनकर मूढ़ (मूर्ख) जीव सुख मानता है। लोग भी उसे सुखी मानते हैं। करोड़ों की सम्पत्ति हो, समधी-सम्बंधी अच्छे हों आदि अनुकूलताएं हो वहाँ क्या कमी ? किन्तु भाई ! वहाँ तो सारे ही सुख की कमी है और दुःख का भंडार है।

यह अनुकूल है - ऐसी कल्पना में अपने ज्ञान-दर्शन स्वभाव का घात होता है। अनुकूलताओं में अपारमार्थिक जीव अपने को सुखी मानता है कोई कहता है कि - 'पहला सुख निरोगी काया' - शरीर अच्छा हो तो चाहे जहाँ पड़े रहें - क्या दुःख ? सांड जैसे शरीर में सुख मानता है, जबकि वह तो झूठा सुख है, किन्तु दुनिया उसे बहुत सुखी कहती है और वह जीव भी - ऐसा मानता है।

पुत्र, बहुएं, अच्छी हों, अच्छी कमाई होती हो - इसमें सुख मानता है किन्तु वहाँ तो दुःख है-आकुलता है; हमारे सम्बंधी सुखी हैं - करोड़ों रुपये की आमदनी है, मोटर में आते-जाते हैं, हवाई जहाज में आते-जाते हैं; पैसेवाले क्या न करें ? इसप्रकार अज्ञानी वहाँ सुख मानता है लेकिन वह तो आकुलता का वेदन करता है; सचमुच वहाँ तो थोड़ा भी सुख नहीं है।

गाथा ६१ में कहा था कि आत्मा का स्वभाव दर्शन-ज्ञान है; जानना इतना मात्र ही आत्मा का कर्तव्य है। यह पदार्थ मुझे ठीक लगता है, यह आकुलता है उसे सुख कहने की जीव की बुरी आदत पड़ गई है। प्यास के समय मौसम्बी का रस मिले या बरफ डालकर ठंडा पानी मिले तो सुख तो होता है न ? नहीं, आत्मा ज्ञाता-दृष्टा रहकर अमृत चिदानंद का पान करने के बदले स्वभाव का घात करके दुःख का वेदन करता है।

भगवान अनाकुलता के कारण सुखी हैं - ऐसा होनेपर भी यदि कोई केवली को आहार मानता है तो वह केवली को नहीं समझता। जिनके घातिकर्म क्षय को प्राप्त हुए हैं ऐसे केवली भगवान को कर्म का निमित्त नहीं होता। स्वभाव का नाश नहीं होता क्योंकि भगवान को आकुलता नहीं है। एकमात्र ज्ञाता-दृष्टापना पूर्ण प्रगट हुआ है जिसका घात नहीं होता और वे अनाकुलता के कारण सुखी हैं। केवली भगवान जैनपरमेश्वर को सुख के कारण अनाकुल लक्षण का सद्भाव है फिर भी अर्हन्त

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भगवान को आहार-पानी होता है - ऐसा माननेवाला भगवान को नहीं मानता।

दया-दानादि परिणाम आकुलता है - ये धर्म के सहायक होते हैं - ऐसा माननेवाले को केवली की प्रतीति नहीं है। दया-दान के राग से सुख होगा - ऐसा माननेवाले को केवली की प्रतीति नहीं है। केवली को क्षुधा-तृषा माननेवाला केवली के पूर्ण आनन्द को नहीं मानता; उसे स्वभाव में से पूर्ण ज्ञान व आनंद कैसा प्रगट होता है, उसकी खबर ही नहीं है। भगवान को आहार पानी नहीं होता।

दया-दानादि से धर्म माननेवाला राग से सुख मानता है, इसलिये राग के अभाव स्वभाववाले केवली भगवान के पूर्ण सुख की उसे प्रतीति नहीं होती। साथ ही मेरा स्वभाव भी राग रहित सुखरूप है - ऐसी प्रतीति उसे नहीं होती। जो केवली भगवान को आहार-पानी होना मानता है और दया से धर्म मानता है वह भगवान के पारमार्थिकसुख को नहीं मानता।

केवली के आनन्द को माने और केवली को आहार-पानी भी माने तो उसने आनन्द को नहीं माना तथा जिसने निचली दशा में राग से धर्म माना है उसने आनन्द को नहीं माना निचली दशा में राग रहित स्वभाव की प्रतीति है - ऐसे जीव को पूर्ण दशावाले पूर्ण आनन्द की भी प्रतीति है। अरहंत को अनन्तवें भाग (कम)असाता है इसलिये वह क्षुधा-तृषा उत्पन्न करने में समर्थ नहीं है। भगवान को क्षुधा-तृषा मनानेवाला अभव्य है वह मोक्षरूपी सुख से दूर है।

आत्मा ज्ञान और आनन्द मूर्ति है उसके अवलम्बन से पूर्णदशा प्रगट हुई उनको पूर्णसुख होता है; फिर भी कोई ऐसा माने कि वे सुखी नहीं है तो वह अभव्य है। निचलीदशा में आत्मज्ञान सहित आंशिक अनाकुलता प्रगट होती है - ऐसे जीव को पूर्ण अनाकुलतावाले भगवान की प्रतीति होती ही है।

यदि तू केवली भगवान को आनन्द नहीं मानता तो तू अभव्य है - ऐसा श्री कुन्दकुन्द आचार्य कहते हैं। वहाँ स्वयं को वर्तमान में पुरुषार्थ का जोर है इसलिये - ऐसा कह दिया है कि तुझे मोक्षतत्त्व की खबर नहीं और देवतत्त्व की श्रद्धा की भी खबर नहीं है। हमारा पुरुषार्थ - ऐसा जगा है; और केवली के सुख से इन्कार करनेवाला तू कौन है? इसप्रकार कहकर उसे नालायक कह दिया है।

जिसने राग रहित स्वभाव की प्रतीति की है उसे भगवान की प्रतीति हुई है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भगवान को अनाकुलता होती है और उनको पुण्य भी बहुत होता है इसलिये उनको क्षुधा लगे - ऐसी असाता उन्हें नहीं होती - ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध है। भगवान को भूख लगे, दर्द हो फिर उसके लिये दवा लावे - ऐसा माननेवाला भगवान के स्वरूप को नहीं जानता।

केवली भगवान को पूर्णज्ञान प्रगट हो गया है और पूर्णज्ञेय ज्ञान में जानने में आ गए है, उन्हें आकुलता नहीं होती। भगवान का जन्म से ही परम औदारिक शरीर होता है। जन्म से ही तीर्थंकर को मल-मूत्र नहीं होते। छद्‌मस्थदशा में भी क्षुधा होती है, किन्तु निहार नहीं होता। भगवान को आहार-निहार नहीं होनेपर भी उन्हें आहार-निहार मानना, रोग मानना वह स्वरूप से ही विरुद्ध है।

यहाँ पहले असाता के कारण के ऊपर प्रहार किया है। जिनको साता का बंध हुआ है उनको भूख और राग नहीं होता क्योंकि वे महापुरुष हैं। जिनने स्वभाव का घोलन किया और राग के ऊपर प्रहार किया है उनको असाता हो - ऐसा नहीं होता।

परमात्मा को क्षुधा लगे और रोग आए - ऐसा माननेवाले को अरहंत के स्वरूप की खबर नहीं। जो मोक्षरूपी अमृत के सुधापान से दूर हैं वे मृगतृष्णा के जल समूह को ही देखते हैं अर्थात् कि राग का अनुभव करके आनन्द मान रहे हैं किन्तु सच्चे अमृत का पान नहीं करते।

केवलीभगवान पूर्ण सुखी हैं यह स्वीकार करनेवाले भव्य हैं। जो इस वचन को इसी समय स्वीकार करता है अर्थात् कि भगवान सुखी हैं - ऐसा स्वीकार करता है वह भव्य है। पूर्ण वीतराग विज्ञानता जिनको प्रगट हुई है, उन्हें स्वभाव प्रतिघात नहीं होता। जो इन वचनों के कान में पड़ते ही कि - भगवान पूर्ण सुखी है - ऐसा कहने पर हाँ कहता है वह भव्य है और जो इन्कार करता है वह अभव्य है।

यद्यपि भगवान को चार अघाति कर्म शेष हैं इसलिये कुछ प्रतिकूलताएं होती है तथापि पूर्ण जानने-देखने का स्वभाव प्रगट हुआ है इसलिये उन्हें आकुलता नहीं होती। जो पूर्ण की प्रतीति नहीं करता वह दूरवर्ती है और जो वचन को इसी समय स्वीकार करता है वह मोक्ष लक्ष्मी का भाजन आसन भव्य है।

भगवान को परम आनन्द है - ऐसा किस विधि से स्वीकार करें?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दया-दानादि के परिणाम मैं नहीं, मैं ज्ञान हूँ - ऐसी प्रतीति करे-स्वीकार करे और पूर्ण ज्ञानवाले जीव को दुःख नहीं होता - ऐसा स्वीकार करनेवाला आसन्न भव्य है और जो आगे जाकर स्वीकार करेंगे वे दूरभव्य हैं; इसप्रकार उनकी निकट मुक्ति है और वे जीव मोक्षलक्ष्मी के भाजन हैं।

सर्वज्ञ परमानन्द की मूर्ति है; उन्हें पर को उपदेश देने के लिये जाना पड़े और उनको आहार हो - ऐसा कभी नहीं होता। जो वर्तमान में तो यह स्वीकार नहीं करते किन्तु आगे जाकर इसे स्वीकार करेंगे - वे दूरभव्य हैं। तेरे कान में यह बात पड़ी और तूने इन्कार किया तो इसमें तो तेरी नालायकी है। दिव्यज्ञान और दिव्यआनन्द जिसे प्रगट हुआ है - ऐसे भगवान को जो नहीं पहिचनता उसे अपने आत्मा के स्वभाव की भी खबर नहीं होती।

केवलज्ञान एक समय में तीनकाल व तीनलोक को प्रतिघात रहित जानता है - ऐसी प्रतीति यदि तुझे नहीं है तो तू अभव्य है - ऐसा कुंदकुंद आचार्य कहते हैं इसलिये इसी समय स्वीकार कर। 'ज्ञानानन्द मेरा स्वरूप है' - ऐसा इसी समय स्वीकार करने में साध्य-साधक दोनों की प्रतीति आ जाती है।

व्यवहार से धर्म माननेवाले को केवली की प्रतीति (विश्वास) नहीं है। जिसने राग से आनन्द माना उसने राग रहित स्वभाव से आनन्द नहीं माना है। दया-दान, व्रत-तप जो शुभराग है उसे व्यवहार कहा, किन्तु वह तो दुःखदायक है अतः जो दुःखदायक को सुखदायक माने वह अभव्य है। केवलज्ञान पर्याय पूर्ण है और सामने लोकालोक एक समय में पूर्ण ज्ञेय है - ऐसा जो नहीं माने वह अभव्य है।

सातवें नरक के जीवों को प्रतिकूलताओं का ढेर है-अत्यधिक प्रतिकूलताएं हैं, भोजन-पानी नहीं मिलता तथा जन्म से ही रोग होते हैं, फिर भी उन्हें धर्म (सम्यग्दर्शन) हो जाता है; क्योंकि संयोग कम हों अथवा प्रतिकूलताएं बहुत हों तो भी उसके साथ पवित्रता का सम्बंध नहीं है; क्योंकि पुण्य का ढेर होनेपर भी आत्मा का भान न हो और दस हजार रुपये की कमाई होती हो और सभी अनुकूलताएं हों, पुण्य के कारण (संयोग) मिले हों फिर भी अज्ञानी जीव को - अंदर कौन प्रभु है ? उसकी क्या खबर पड़े ? खबर नहीं - अर्थात् वह पुण्य को ही प्रभु मानता है, उसे तो पवित्रता की खबर ही नहीं होती।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अंदर प्रभु की प्रभुता जगी हो - ऐसे ज्ञानियों को बाहर में संयोग के कम होनेपर भी दीनता नहीं होती; क्योंकि पैसा, कुटुम्ब, पुत्र का मिलना वह गुण नहीं है और प्रतिकूलता का होना अवगुण नहीं'। कम या अधिक संयोग अथवा पुण्य या पाप के संयोग मेरे स्वभाव में नहीं है; ''मैं तो ज्ञानस्वभावी हूँ'' जिसे - ऐसी प्रतीति नहीं है उसे केवली भगवान की भी प्रतीति नहीं है।

आत्मा का स्वभाव ज्ञान-दर्शन है। अनुकूल-प्रतिकूल संयोग ज्ञान में नहीं है। तेरा स्वभाव ही सचमुच तेरा ज्ञेय है और बाहर के पदार्थ व राग व्यवहार से ज्ञेय हैं - ऐसा भान होने के बाद केवलज्ञान प्रगट होता है और उस केवलज्ञान में लोकालोक एक समय में ज्ञेय होता है, शरीर भी ज्ञेय में होता है। ज्ञान की पर्याय पूर्ण प्रगट हुई है उसके सामने सम्पूर्ण ज्ञेय वर्तता है।

चार अघातिकर्म ज्ञान के ज्ञेय हैं। समय-समय अघातिकर्म का कैसा परिणमन होगा वह ज्ञान में ज्ञेय है इसप्रकार एक समय में लोकालोक ज्ञेय तरीके वर्तता है। समस्त ही पदार्थ ज्ञेयरूप हैं उसके बदले केवली अमुक समय आहार और पानी लेते हैं - ऐसा माने तो ज्ञान अखंड न रहकर खण्ड-खण्ड हो गया और ज्ञेय भी अखंड नहीं रहे जबकि भगवान को निमित्त में - ऐसी खंडता नहीं होती और उसके ज्ञान में भी ऐसी खण्डता नहीं होती। एक आहार का ग्रास लिया और फिर दूसरे को लेना है यह तो खण्डता हो गई ऐसा जो मानता है वह अखंड स्वभाव को नहीं माननेवाला अभव्य है।

भावार्थ पर प्रवचन :- 'केवली भगवान को ही पारमार्थिक सुख है' - ऐसा वचन सुनकर जो कभी इसको स्वीकार नहीं करते वे कभी मोक्ष प्राप्त नहीं करते। जो उपरोक्त वचन सुनकर अंतरंग से इसकी श्रद्धा करते हैं वे ही मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

यहाँ अंतरंग से कहा है अर्थात् मात्र सम्प्रदाय के लिये नहीं अर्थात् हमारे भगवान को आहार-पानी नहीं होता - ऐसा मात्र बोले और साथ ही कहे कि राग से स्वभाव प्रगट होता है अथवा संयोग से स्वभाव प्रगट होता है - ऐसा माननेवाला केवली भगवान को नहीं पहचानता; वह जगत के अभिप्राय को हृदय में रखकर बोलता है किन्तु ज्ञानी के अभिप्राय को रखकर नहीं बोलता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भगवान सुखी है; जो ऐसा स्वीकार करता है वह मोक्ष को प्राप्त करता है। इसे जो इसीसमय स्वीकार करता है वह आसन्न भव्य है और जो आगे जाकर स्वीकार करेगा वह दूर भव्य है।

आत्मार्थी हो !

हे भाई! पहले तू सच्चा आत्मार्थी हो! देह, राग, मान अथवा जगत की अन्य किसी चीज से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है, मुझे तो एक मेरे आत्मा का ही प्रयोजन है; किस तरह मैं मेरे आत्मा के आनन्द का अनुभव करूँ, एक यही मुझे चाहिए - इस प्रकार वास्तविक जिज्ञासा प्रगट करके जो जीव आत्मार्थी हुआ है उसे आत्मा का अनुभव होता ही है। उसका उद्यम आत्मा की तरफ झुकता है। परन्तु जिसके हृदय में आत्मा के सिवाय अन्य कोई भी शल्य होती है वह जीव कहीं न कहीं (देह में, राग में, पुण्य में, मान में अथवा मात्र शास्त्र के जानपने में) अटक जाता है, अर्थात् आत्मा को साधने के लिए वह उद्यम नहीं कर सकता। जो जीव आत्मा का अर्थी होता है वह आत्मज्ञ संतों का समागम और उनकी उपासना करके बारम्बार परिचय पूर्वक उनके पास से आत्मा का स्वरुप जानकर उसका निर्णय करता है और अंतर के उद्यम द्वारा अनुभव पूर्वक उसकी श्रद्धा करता है। यही आत्मार्थ साधने की अर्थात् सम्यग्दर्शन प्रगट करने की रीति है।

- पूज्य गुरुदेवश्री

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचनसार गाथा ६३

अथ परोक्षज्ञानिनामपारमार्थिकमिन्द्रियसुखं विचारयति-

मणुआसुरामरिंदा अहिद्दुदा इन्दिएहिं सहजेहिं।
असहंता तं दुक्खं रमंति विसएसु रम्मेसु ॥६३॥

अब, परोक्षज्ञानवालों के अपारमार्थिक इन्द्रियसुख का विचार करते हैं:-

सुर असुर नरपति सहज इन्द्रिय दुःख से पीड़ित सभी।
सहनीय ना दुःख अतः रमते रम्य विषयों में सभी ॥६३॥

अन्वयार्थ :- (मनुजासुरामरेन्द्राः) मनुष्येंद्र (चक्रवर्ती) असुरेन्द्र और सुरेन्द्र **(सहजैः इन्द्रियैः)** स्वाभाविक (परोक्षज्ञानवालों को जो स्वाभाविक है - ऐसी) इन्द्रियों से **(अभिद्रुताः)** पीड़ित वर्तते हुए **(तद् दुःखं)**उस दुःख को **(असहमानाः)** सहन न कर सकने से **(रम्येषु विषयेषु)** रम्य विषयों में **(रमन्ते)** रमण करते हैं।

टीका:- प्रत्यक्षज्ञान के अभाव के कारण परोक्ष ज्ञान का आश्रय लेनेवाले इन प्राणियों को उसकी (-परोक्ष ज्ञानकी) सामग्रीरूप इन्द्रियों के प्रति निजरस से ही (-स्वभाव से ही) मैत्री प्रवर्तती है। अब इन्द्रियों के प्रति मैत्री को प्राप्त उन प्राणियों को उदयप्राप्त महामोहरूपी कालाग्नि ने ग्रास बना लिया है, इसलिये तप्त लोह के गोले की भाँति (-जैसे गरम किया हुआ लोहे का गोला पानी को शीघ्र ही सोख लेता है) अत्यन्त तृष्णा उत्पन्न हुई है; उस दुःख के वेग को सहन न कर सकने से उन्हें व्याधि के प्रतिकार के समान (-रोग में थोड़ासा आराम जैसा अनुभव करानेवाले उपचार के समान) रम्य विषयों में रति उत्पन्न होती है। इसलिये इन्द्रियाँ व्याधि समान होने से और विषय व्याधि के प्रतिकार समान होने से छद्मस्थों के पारमार्थिक सुख नहीं है ॥६३॥

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गाथा ६३ पर प्रवचन

अब, जिनका परोक्ष ज्ञान है और इन्द्रियसुख है वह (झूठा) खोटा है वे दुःख से पीड़ित हैं। मोटर में बैठकर उधारी वसूल करने जाता है और रुपये आते हैं, तो वहाँ भी वह राग के दुःख से पीड़ित है। दुकान में कमाई होती है वहाँ हर्ष मानता है, वह भी दुःखी ही है। दुकान के काम में सब ध्यान रखता है कि कोई आदमी दुकान में आगे-पीछे (गड़बड़ी) न करे किन्तु यदि वह धर्म के काम में ध्यान नहीं रखता तो वह दुःखी ही है।

अब परोक्षज्ञानवालों के अपारमार्थिक इन्द्रियसुख का विचार करते हैं। आचार्य कहते हैं कि परोक्षज्ञानवाले का इन्द्रियसुख वास्तव में सुख नहीं है। वह थोड़े समय का, एकपल का, जरा सा भी सुख नहीं है अपितु दुःख ही है। परोक्षज्ञानवाला सामग्री को ढूँढता है इसलिये उसे थोड़ा भी सुख नहीं है।

मनुष्येन्द्र (चक्रवर्ती) असुरेन्द्र और सुरेन्द्र स्वाभाविक इन्द्रियों से पीड़ित होने से उन्हें स्वाभाविक आकुलता है; आकुलता होने से वे रम्य विषयों में रमते हैं इसलिये वे थोड़े भी सुखी नहीं है।

ज्ञानस्वभाव का आश्रय और मैत्री नहीं करनेवाला इन्द्रियों का आश्रय और उनसे मैत्री करता है। आत्मा का चैतन्य ज्ञानानन्द स्वभाव है, किन्तु अज्ञानी को राग का और इन्द्रिय का आलम्बन होने के कारण उसे प्रत्यक्षज्ञान का अभाव है जिससे वह परोक्षज्ञान का अवलम्बन लेता है; एक समय की ज्ञान पर्याय का आश्रय लेता है।

परोक्षज्ञान इन्द्रियों को ढूँढता है इसलिये उसकी सामाग्री के प्रति मैत्री वर्तती है। अपूर्ण परोक्षज्ञान का आश्रय करने जाए वहाँ इन्द्रिय की मैत्री बसती है - स्वभाव से ही उसकी इन्द्रिय के साथ मैत्री प्रवर्तती है। यहाँ मिथ्यादृष्टि की बात है। आत्मा अतीन्द्रिय स्वभाववाला है उसका आश्रय नहीं करता और परोक्षज्ञान में इन्द्रिय की तरफ प्रेम करता है, जो भ्रम है।

अल्पज्ञ पर्याय का आश्रय ले तो उसकी सामग्री तो जड़ इन्द्रियाँ हैं, इसलिये जड़ इन्द्रिय के साथ उसकी मैत्री प्रवर्तती है किन्तु आत्मा के साथ मैत्री नहीं वर्तती। अतीन्द्रियज्ञान आनन्द का कारण है - ऐसा निर्णय करे तो आत्मा की ओर झुके।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अतीन्द्रियज्ञान का आश्रय त्रिकाली आत्मा है यदि ऐसा निर्णय करे तो उसकी आत्मा की तरफ मैत्री प्रवर्ते। अंतरंग में पूर्ण ज्ञानानन्द स्वभाव का आश्रय करे तो स्वभाव के प्रति मैत्री हो। अतीन्द्रियज्ञान केवलज्ञान है व आत्मा में से प्रवर्तता है - ऐसे त्रिकाली ज्ञानस्वभाव का आश्रय करे तो मैत्री हो। परोक्षज्ञान का आश्रय करनेवालों का लक्ष्य इन्द्रिय तरफ जाता है। परोक्ष ज्ञान का निमित्त साधन इन्द्रियाँ हैं। ज्ञान की अपूर्णदशा में इन्द्रियों की मैत्री वर्तती है। उसका समय मिथ्यात्व में चला जाता है।

परोक्षज्ञान की रुचिवाले को तथा इन्द्रिय की रुचि करनेवाले को मिथ्यात्व ने ग्रास बना लेता है (अर्थात् खा जाता है)। इन्द्रियों के प्रति मैत्री को प्राप्त उन प्राणियों को (जीवों को) मिथ्यात्वभाव ने ग्रास बना लिया है। उदय में आया हुआ महामोह-यही मिथ्यात्वभाव है। मिथ्यात्वरूपी अग्नि ने चैतन्यस्वभाव को ग्रास बना लिया है।

ज्ञानानन्द स्वभाव का अवलम्बम ले तो स्वभाव की रुचि वर्ते और स्वभाव का स्वकाल जीव को जीवित रखे। चैतन्य, ज्ञान और आनन्द से पूर्ण है उसमें से प्रत्यक्षज्ञान आता है। सामान्य स्वभाव की सन्मुखता हो तो - सम्यग्दर्शन होता है और उन इन्द्रियों की मैत्री नहीं रहती किन्तु इन्द्रिय से मैत्री होनेपर काल ग्रास बना लेता है।

इसतरह यहाँ दो प्रकार हुए:-

(१) प्रत्यक्षज्ञान अंतरंग ध्रुव में से आया है, उसका निर्णय होनेपर स्वभाव की रुचि हुई तब उसे मिथ्यात्व ग्रास नहीं बनाता और उसे सम्पूर्ण अतीन्द्रिय स्वभाव का आंशिक अनुभव होता है।

(२) इसके विपरीत परोक्ष ज्ञान की रुचिवाले को मिथ्यात्व ने ग्रास बना लिया है।

स्वभाव के संतोष को भूलनेवाले अज्ञानी जीवों को महातृषा उत्पन्न होती है और उसे रम्य विषयों में रति उत्पन्न होती है।जैसे, गरम किये हुए लोहे के गोले को पानी की अत्यंत तृष्णा पैदा हुई है अर्थात् वह पानी को शीघ्र ही सोख लेता है वैसे ही अज्ञानी को स्वभाव का अमृतरस नहीं आया और अत्यंत तृष्णा उत्पन्न हुई है

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

तब वह, जिसके भंडार में स्वभाव भरा है उसका आश्रय तो नहीं लेता किन्तु एक समय की पर्याय का आश्रय लेने से, उसे मिथ्यात्व के काल ने ग्रास बना लिया है अर्थात् उसे शब्द, रस, रूप, गंध, वर्ण को ग्रहण करने की अत्यंत तृष्णा उत्पन्न हुई है इसके विपरीत स्वभाव का आश्रय लेनेवाले को स्व-पदार्थ का अत्यंत संतोष उत्पन्न हुआ है।

जिसे अनन्त गुणों के भंडार का आश्रय नहीं लेने के कारण इन्द्रिय की रुचि हुई है उसने आत्मा को मिथ्यात्व जितना ही माना, इसतरह उसे लगता है कि - ऐसी गंध हो, ऐसा स्पर्श हो, ऐसा रूप हो तो ठीक इसतरह उसे अनन्त तृष्णा हुई है जिससे वह दुःख के वेग को सहन नहीं कर सकता। उनको व्याधि के प्रतिकार के समान रम्य विषयों में रति उत्पन्न होती है अतः वह दुःख का इलाज ढूँढता है। मैं खाऊं, मैं आबरू (प्रशंसा के शब्द) सुनूँ - इसप्रकार विषयों के प्रति उसे प्रीति हुई है।

परोक्षज्ञान का आश्रय होने के कारण इन्द्रिय की रुचि होने से उसे मिथ्यात्व ने ग्रास बना लिया है वहाँ अत्यंत तृष्णा उत्पन्न होती है जिसके प्रतिकार के लिये उसे रम्य विषयों में रति उत्पन्न होती है। आबरू (प्रशंसा के शब्द) सुनने का भाव होता है वहाँ उसे अपना नाम सुनने का मन होता है।

मेरा नाम छपा है - इसप्रकार पर पदार्थों की रुचि हुई है। परोक्षज्ञान की रुचि होने से - निमित्त के ऊपर उनका लक्ष्य गया है और इन्द्रिय की प्रीति हुई हो, वहाँ ज्ञान का भंडार वस्तु है ही नहीं, यह उसकी मान्यता हुई है अतः यह मिथ्या है। ज्ञानी की दृष्टि परोक्षज्ञान के ऊपर नहीं होती है।

प्रश्न :- कोई कहे कि सम्यग्दृष्टि खाता-पीता तो है न ?

समाधान:- ज्ञानी पर की क्रिया कुछ भी नहीं करता और उन्हें विषयों में रुचि नहीं होती, सामग्री को ढूँढने की रुचि नहीं, इन्द्रियों की रुचि नहीं, परोक्षज्ञान का आश्रय भी उन्हें नहीं है इसलिये स्वभाव तरफ का आश्रय है। जिससे उन्हें मिथ्यात्व ने ग्रास नहीं बनाया है, इसलियेअत्यंत तृष्णा उत्पन्न नहीं होती और स्वभाव का संतोष वर्तता है; जबकि अज्ञानी को अत्यंत तृष्णा उत्पन्न हुई है जिससे उसे इस रूप को देखूँ, इस सुगंध को सूंघूँ और इन शब्दों को सुनूँ - ऐसी इच्छा हुआ करती है।

परोक्षज्ञान का आश्रय करनेवाला दुःखी है इसलिये वह-रोगी के समान

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उपचार (इलाज) कर रहा है; इसलिये इन्द्रियाँ व्याधि समान और विषय व्याधि के प्रतिकार समान होने से छद्मस्थों को पारमार्थिक सुख नहीं है। कोई करोड़पती मोटरकार में घूमता हो, हापुस आम खाता हो तो भी वह दुःखी है क्योंकि विषय, सुख के साधन नहीं है अपितु वे तो दुःख के प्रतिकार के समान है।

स्वयं एक समय में ज्ञान और आनन्द से पूर्ण है, आत्मा उसका आश्रय नहीं लेता और वह इन्द्रियज्ञान का आश्रय लेने से इन्द्रिय की रुचि करता है जिससे वह मिथ्यात्व का ग्रास बनता है। उसे अत्यंत तृष्णा उत्पन्न हुई है और तृष्णा के उत्पन्न होनेपर दुःख के इलाज के लिए स्पर्श, रस, गंध, वर्ण के विषयों की तरफ झुकता है इसलिये :-

(१) परोक्षज्ञान का आश्रय नहीं करना अर्थात् स्वभाव का आश्रय कर।

(२) इन्द्रिय की रुचि नहीं कर - स्वभाव की रुचि कर। जिससे-

(३) मिथ्यात्व का ग्रास नहीं बनने पर स्वभाव सन्मुख होते ही- सम्यग्दर्शन होता है।

(४) तृष्णा उत्पन्न नहीं होनेपर स्वभाव का संतोष प्रगट होता है।

(५) रम्य विषयों की तरफ रति नहीं करके स्वभाव में एकाग्रता और रति कर।

तृषा के समय मौसंबी का रस मिले तो वह रोग का उपचार है किन्तु वहाँ सुख नहीं इसलिये छद्मस्थ को पारमार्थिक सुख नहीं है। एक समय की पर्याय का आश्रय करनेवाला पर्याय बुद्धि है। उसकी नजर इन्द्रिय और इन्द्रियों के विषयों की तरफ जाती है। ज्ञानपर्याय का आश्रय करने जाय तो भी इन्द्रिय की तरफ लक्ष्य जाएगा किन्तु स्वभाव की तरफ उसका लक्ष्य नहीं जायेगा।

इसप्रकार उसे भ्राँति हुई क्योंकि सम्पूर्ण स्वभाव दृष्टि में नहीं रहा जिससे उसे असंतोष हुआ और दुःख हुआ। वह सोचता है कि - ५० हजार रुपये मिले तो हैं किन्तु बाद में खर्च हो जाए तो ? पुत्र बीमार हो जाय और स्वयं बीमार हो जाए तो दस-दस हजार रुपये खर्च हो जाय तो ? इसप्रकार वह विचार में पड़ जाता है। बहोत बड़ा दर्द हो जावे तो वहाँ पानी के पूर की तरह पैसा खर्च करना पड़े तब क्या करना ? इसप्रकार उसे अत्यंत तृष्णा उत्पन्न हुई है। अब, वहाँ से गुलांट मार (पलट और विचार कर) कि - परोक्ष ज्ञान पराधीन है। पूर्णज्ञान और आनन्द स्वभाव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विद्यमान है उसकी रुचि करके अवलम्बन ले तो संतोष होगा - ऐसा नहीं मानने पर तृष्णा का घेरा घिरता (चला जाता) है।

परपदार्थ के ऊपर रुचि गई है जिससे वह पर को मिलाना (एकमेक करना) चाहता है जबकि वे तेरे रखने से नहीं रहेंगे। इसके बदले आत्मा जो कि संतोषकंद ज्ञान का भंडार है, उसमें एकाग्र होने से केवलज्ञान होता है, उसका विश्वास नहीं आता और विचारता है कि यदि इतनी सामग्री हो तो ठीक इसप्रकार बाहर के तृष्णा रूपी समुद्र में गोता खाता है और जहाँ सुख है वहाँ नहीं देखता। जैसे रोगी को उपचार होता है; वैसे ही इन्द्रिय ज्ञानवाला उपचार करता है- इसलिये वह दुःखी ही है।

-आत्मा का हित-

हे भाई ! जगत के लोग एकत्रित होकर तेरी प्रशंसा करे या अभिनन्दन पत्र दें - इससे तेरी आत्मा का कुछ भी हित नहीं है; परन्तु अपने चिदानन्दस्वभाव अभिमुख जाकर उसके अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करना वह आत्मा का सच्चा अभिनन्दन है और उसमें ही तेरा हित है। अरे प्रभो ! अनादि से तुझे तेरे स्वभाव का सच्चा बहुमान ही नहीं आया और पर के मान में तू रुक गया है। परन्तु तेरे स्वभाव की परम महिमा है सर्वज्ञ भगवान हुये वे आत्मा में से ही हुये हैं और तेरी आत्मा में भी ऐसी ताकात भरी है। ऐसे स्वभाव सामर्थ्य को लक्ष्य में लेकर उसका बहुमान कर, और उसके सन्मुख होकर तेरे स्वभाव के आनन्द का वेदन करके तेरी आत्मा का अभिनन्दन कर, उसमें ही तेरा हित है; उसके सिवाय जगत के लोग एकत्रित होकर प्रशंसा करें या अभिनन्दन का कारण दें उसमें कुछ भी हित नहीं है।

- पूज्य गुरुदेवश्री

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचनसार गाथा ६४

अथ यावदिन्द्रियाणि तावत्स्वभावादेव दुःखमेवं वितर्कयति-

जेसिं विसएसु रदी तेसिं दुक्खं वियाण सब्भावं।
जइ तं ण हि सब्भावं वावारो णत्थि विसयत्थं ।।६४।।

अब, जहाँ तक इन्द्रियाँ हैं वहाँ तक स्वभाव से ही दुःख है, - ऐसा न्याय से निश्चित करते हैं :-

है जिन्हें विषयों में रती, जानो वे स्वाभाविक दुःखी।
यदि दुःख स्वाभाविक नहीं विषयार्थ न व्यापार भी ।।६४।।

अन्वयार्थ :- **(येषां)** जिन्हें **(विषयेषु रतिः)** विषयों में रति है, **(तेषां)** उन्हें **(दुःखं)** दुःख **(स्वाभावं)** स्वाभाविक **(विजानीहि)** जानो; **(हि)** क्योंकि **(यदि)** यदि **(तद्)** वह दुःख **(स्वभावं न)** स्वभाव न हो तो **(विषयार्थं)** विषयार्थ में **(व्यापारः)** व्यापार **(न अस्ति)** न हो।

टीका :- जिनकी हत (निकृष्ट, निंद्य) इन्द्रियाँ जीवित (-विद्यमान) हैं, उन्हें उपाधि के कारण (बाह्य संयोगों के कारण, औपाधिक) दुःख नहीं है किन्तु स्वाभाविक ही है, क्योंकि उनकी विषयों में रति देखी जाती है। जैसे - हाथी हथिनीरूपी कुट्टनी के शरीर-स्पर्श की ओर, मछली बंसी में फँसे हुए मांस के स्वाद की ओर, भ्रमर बन्द हो जानेवाले कमल के गंध की ओर, पतंगा दीपक की ज्योति के रूप की ओर और हिरण शिकारी के संगीत के स्वर की ओर दौड़ते हुए दिखाई देते हैं उसीप्रकार - दुर्निवार इन्द्रिय वेदना के वशीभूत होते हुए वे यद्यपि विषयों का नाश अति निकट है (अर्थात् विषय क्षणिक हैं) तथापि, विषयों की ओर दौड़ते दिखाई देते हैं।

और यदि 'उनका दुःख स्वाभाविक है' - ऐसा स्वीकार न किया जाये तो जैसे-जिसका शीतज्वर उपशांत हो गया है, वह पसीना आने के लिये उपचार करता तथा जिसका दाह्यज्वर उतर गया है वह काँजी से शरीर के ताप को उतारता

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तथा जिसकी आँखों का दुःख दूर हो गया है वह वटाचूर्ण (-शंख इत्यादि का चूर्ण) आँजता तथा जिसका कर्णशूल नष्ट हो गया हो वह कान में फिर बकरे का मूत्र डालता दिखाई नहीं देता और जिसका घाव भर जाता है वह फिर लेप करता दिखाई नहीं देता-इसीप्रकार उनके विषय व्यापार देखने में नहीं आना चाहिये; किन्तु उनके वह (विषय प्रवृत्ति) तो देखी जाती है। इससे सिद्ध हुआ कि जिनकी इन्द्रियाँ जीवित हैं - ऐसे परोक्षज्ञानियों के दुःख स्वाभाविक ही है।

भावार्थ :- परोक्षज्ञानियों के स्वभाव से ही दुःख है, क्योंकि उनके विषयों में रति वर्तती है; कभी-कभी तो वे, असह्य तृष्णा की दाह से (-तीव्र इच्छारूपी दुःख के कारण) मरने तक की परवाह न करके क्षणिक इन्द्रियविषयों में कूद पड़ते हैं। यदि उन्हें स्वभाव से ही दुःख न हो तो विषयों में रति ही न होनी चाहिये। जिसके शरीर का दाहदुःख नष्ट होगया हो वह बाह्य शीतोपचार में रति क्यों करेगा ? इससे सिद्ध हुआ कि परोक्ष ज्ञानियों के दुःख स्वाभाविक ही है॥६४॥

गाथा ६४ पर प्रवचन

जिनकी स्पर्श, रस, गंध, वर्ण में रुचि है वे दुःखी है - ऐसा जानो। यहाँ अज्ञानी की बात है। साधक को तो अतीन्द्रियज्ञान की मुख्यता होने से उनका अल्प इन्द्रियज्ञान गौण किया है। जिनको प्रतिष्ठा में, फूल-गज़रे में, आम में रुचि है उन्हें दुःख-स्वाभाविक ही जानो अर्थात् वे स्वाभाविक दुःखी हैं। भले ही वह दुकान में बैठा हो और ग्राहकों को माल बेचता हो तब भी उसे दुःखी जानो।

खाने के लिये बैठा हो और आम आदि खाता हो तब भी उसे दुःखी जानो क्योंकि जिनकी इन्द्रियाँ जीवित हैं किन्तु चैतन्य जीवित नहीं है वे सहज ही दुःखी हैं। यदिउन्हें दुःख में एकाग्रता न हो तो पाँच इन्द्रिय के विषयों के लिये दौड़ते हुए दिखाई न दें। दुकान जाना हो तो मोटर में जावे, फुरसत नहीं मिलती, खाना भी भूल जावें; वे सभी दुःखी ही हैं।

ज्ञानस्वभाव को जीवित नहीं रखकर अज्ञानी इन्द्रियों को जीवित रखना चाहता है इसलिये वह दुःखी है। अज्ञानी की निंद्य (निकृष्ट) इन्द्रियाँ जीवित हैं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अर्थात् वह इन्द्रियों का आश्रय करके इन्द्रिय को टिकाए रखना चाहता है क्योंकि जिनसे मैत्री होती है उनको दुःख नहीं देता, इसलिये अज्ञानी इन्द्रियों को जीवित रखना चाहता है। आँख ठीक हो तो ज्ञान कर सकूँगा, कान सही हो तो सुन सकूँगा - ऐसा वह मानता है इसलिये वह इन्द्रियों को जीवित रखना चाहता है क्योंकि उनका लक्ष्य पर तरफ जाता है।

संयोग दुःख का कारण नहीं है। अज्ञानी पाँच हजार रुपये परिवार के लिये खर्च करना चाहता है; वहाँ दुःखी हो रहा है। शादी में एक लाख रुपया खर्च करना चाहता है सोचता है कि बहन और लड़की को इससे सुख मिलेगा - ऐसी तृष्णा किया करता है; उसे विषयों में में रति है, प्रीति है इसलिये वह दुःखी है किन्तु वहाँ भी वह संयोगो के कारण दुःखी नहीं है। स्वभाव का आश्रय नहीं होने से अज्ञानी पांच इन्द्रिय के विषयों की तरफ दौड़ता है।

हाथी को पकड़ने के लिये कपट की हथनी रखी होती है, हाथी उसका स्पर्श करने के लिये जाता है, वहाँ पहले उसके भावों में दुःख है इसलिये दुःख का प्रतिकार करना चाहता है। इसी तरह लोहे के काँटे में आटा लगाते हैं और उसे मछली-खाने के लिये जाती है, जिससे मछली पकड़ ली जाती है। मछली उसके स्वाद में ललचाती है झपट्टा मारती है।

आम रखा हो और खाने जाता है यदि वह दुःखी न हो तो खाने का उपाय क्यों करे ? शाम को कमल के बंद होने की तैयारी हो, उस समय भौरा जो लकड़ी को कतर सकता है किन्तु इस कमल को नहीं कतरता वह गंध की तृष्णा में दुःखी हुआ है। दिया जलता हो तब पतंगा रूप के आकर्षण से उस तरफ जाता है और मर जाता है।

इसीतरह हिरण शिकारी की वीणा के स्वर की ओर दौड़ता देखने में आता है और वह शिकारी हिरण को मार डालता है। इन दृष्टांतों के समान ही स्वभाव के आश्रय बिना जिनका निवारण नहीं हो सकता - ऐसे इन्दियों के विषयों की तरफ अज्ञानी दौड़ता है।

विषयों की ओर दौड़ना यही बताता है कि वही अज्ञानी जीव दुःखी है ऐसा कहकर आचार्य कहते हैं कि पर्याय बुद्धि अभूतार्थ है और आत्मा चैतन्य मूर्ति

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञानानन्द है वह भूतार्थ है। एक समय की पर्याय का आश्रय लेनेवाला स्वाभाविक दुःखी है। वह विषयों की ओर दौड़ता दिखाई देता है।

खाने की सामग्री व रूप आदि नाश को प्राप्त होते ही स्पर्श, रस, प्रतिष्ठा आदि भी सदा नहीं रहती - नष्ट होती ही है फिर भी अज्ञानी उनकी और दौड़ता दिखाई देता है किन्तु अविनाशी आत्मा की तरफ नहीं दौड़ता और विषयों की ओर मति करता है।

एक समय की पर्याय में से शान्ति नहीं निकलती इसलिये इन्द्रियों की रुचि करने योग्य नहीं हैं। पर की ओर दौड़ना योग्य नहीं है - ऐसी अज्ञानी को खबर नहीं होती, इसप्रकार अज्ञानी जीवों को सहज ही दुःख है उनको दुःख स्वाभाविक है यदि ऐसा स्वीकार न किया जावे तो - जैसे किसी का शीत ज्वर उतर गया है तो वह पसीना आने के लिये उपचार करता हुआ दिखाई नहीं देता। यदि, उसे दुःख न हो तो उपचार न करे किन्तु जो उपचार करते दिखाई देते हैं वे तो दुःखी ही है। अज्ञानी जीव दुःखी न हो तो विषयों की ओर झुकाव नहीं करे।

इन्द्रियों के विषयों की ओर झुकनेवाला ज्ञान दुःखरूप है। आत्मा का स्वभाव सुख है और उसकी ओर पर्याय झुके वह भी सुखरूप है किन्तु उसे छोड़कर जो पर्याय इन्द्रियों के विषयों की ओर झुके वह दुःखरूप है; फिर भी अनादि से अज्ञानी उसे सुखरूप मानता है।

यहाँ ज्ञान अधिकार के साथ आनन्द का वर्णन करना है इसलिये वर्तमान पर्याय अतीन्द्रिय ज्ञानस्वभाव का अवलम्बन नहीं लेने से इन्द्रियों की ओर झुकती है वह दुःखरूप है। यदि ऐसा स्वीकार न किया जाए तो उन प्रकारों के विषय व्यापार क्यों देखनें में आवे।

जैसे शीत ज्वर के समय रजाई ओढ़ता है और उतर जाय तो फिर रजाई नहीं ओढ़ता तथा दाह्य ज्वर के उतर जाने के बाद दूध व ठंडे पानी की पट्टी नहीं रखते। जहाँ तक दाह्य ज्वर था वहाँ तक उपचार करता था वैसे ही जहाँ तक इन्द्रियों के झुकाव में दुःख है वहाँ तक विषय की ओर झुकता है।

तथा जिसके आँखों का दुःख दूर हो गया है वह वटा चूर्ण (शंख इत्यादि का चूर्ण) नहीं आंजता। तथा जिनके कान में शूल नहीं आता हो वह कान में बकरे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

का मूत्र डालते दिखाई नहीं देता। कान का दर्द मिट जाने के बाद वह दवा नहीं डालता। इसप्रकार पीड़ा हो वहाँ तक उपचार करता है। घाव भर जाने के बाद फिर पट्टी नहीं बांधता।

इसप्रकार पाँच इन्द्रिय के विषयवाला यदि दुःखी न हो तो उनकी ओर व्यापार देखने में नहीं आना चाहिये; इसलिये जिनकी इन्द्रियाँ जीवित हैं वे दुःखी है क्योंकि आत्मा ज्ञानानन्द स्वभावी है - ऐसा जिन्हें भान नहीं हैं वे वर्तमान पर्याय का आश्रय लेते हैं उनकी इन्द्रियाँ जीवित है-परोक्ष ज्ञान के आश्रय लेते हैं।

ज्ञानी को परोक्षज्ञान होता है, किन्तु वास्तव में उसका आश्रय नहीं होता क्योंकि अतीन्द्रियज्ञानस्वभाव का मुख्यरूप से आश्रय है। अज्ञानी को परोक्ष ज्ञान का सर्वथा आश्रय है इसलिये वे सभी दुःखी है। पैसा, रोटी और खाने-पीने के पदार्थों में अज्ञानी सुख मानता है, वह वर्तमान (पर्याय) का आश्रय करता है और त्रिकालस्वभाव को भूलता है इसलिये दुःखी है। आत्मा केवलज्ञान लेने की शक्तिवाला है - ऐसा अज्ञानी नहीं मानता किन्तु पर में झपट्टा मारता है।

भावार्थ पर प्रवचन :- संसार में रहा हुआ सम्यग्दृष्टि छयानवें हजार स्त्री के साथ विषय में हो, किन्तु उसे विषयों की रुचि नहीं होती क्योंकि स्वभाव की रुचि है। परोक्षज्ञान का उसे आश्रय नहीं, इन्द्रिय में प्रीति नहीं - राग में रुचि नहीं। परोक्षज्ञान होने के लिये पर तरफ लक्ष्य जाता है इसलिये वह दुःखी है। वह कितनी ही बार असह्य तृष्णारूपी दुःख के कारण मरण-पर्यन्त जोखिम उठाता है।

हथनी के पीछे हाथी, कमल के पीछे भौंरा, खाने के पदार्थ के पीछे मछली, रूप के पीछे पतंगा और संगीत के पीछे हिरण मर जाता है। जैसे भौंरा लकड़ी को तोड़ने की ताकतवाला है किन्तु सुगन्ध की इच्छा से कमल को तोड़कर बाहर नहीं निकलता वैसे ही आत्मा ज्ञाता-दृष्टा है तथा वह राग-द्वेष को तोड़ने की ताकतवाला है-केवलज्ञान की तैयारीवाला है किन्तु वह नहीं करता हुआ संकोच को प्राप्त होता है। अपनी प्रतिष्टा के कारण आत्मघात करने के लिये ज़हर खाए, पहाड़ पर से कूद जाए इसप्रकार वह दुःखी होता है।

तथा पुण्य के कारण अनुकूलता दिखे वहाँ तक उसे ठीक लगता है और जहाँ प्रतिकूलता आवे वहीं ठीक नहीं लगता। पैसा, प्रतिष्ठा, कुटुम्ब होनेपर भी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्महत्या करता है और मरण तक की जाखिम उठाता है। परोक्षज्ञानवाला दुःखी हो रहा है वह अंशी स्वभाव को नहीं देखकर अंश की ओर देखता है।

व्यापार में बड़ा नुकसान (घाटा) हो जावे और आड़तिया (व्यापारी) जिन्हें रुपये देना हो वे नहीं माने तो सोचता है कि अब मैं अपना मुंह किसको (कैसे) दिखाऊँगा ? जिस मुँह से पान खाया उसी मुँह से कोयला कैसे चबाया जायेगा ? अर्थात् अभी तक जो सम्मानित रहा हो वह बेइज्जती कैसे सहेगा ? - ऐसा मानकर आत्महत्या करता है।

अब, (देखा जाय तो) पर में प्रेम है वही वास्तव में दुःख है। यदि, उनको स्वभाव से ही दुःख न हो तो - विषयों में रति नहीं होना चाहिये। जिसे बाह्य ज्वर का दुःख नष्ट हुआ है उसे ठंडक के बाह्य उपचार में रति क्यों हो ? एकाकी परोक्ष ज्ञान पर्याय का आश्रय लेनेवाला इन्द्रियों की रुचि करता है और बाह्य प्रतिकार करना चाहता है वह दुःखी है। अच्छी कमाई हो और स्त्री-पुत्रादि अनुकूल हो वहाँ अज्ञानी-सुख मानता है किन्तु यह सब दुःख ही है। पर्याय, पर्याय का आश्रय करे वह भी दुःख है-अधर्म है और स्वभाव का आश्रय करना वह सुख और धर्म है।

-अहो ! श्री सत्पुरुष के वचनामृत !-

सत्समागम के निमित्त का जिन्हें बहुमान नहीं है उन्हें अपने गुणों का आदर नहीं है। जिनके पात्रता, विनय, आदि गुण खिले हैं उन्हें ऐसा स्वच्छंद भाव और भाषा भी नहीं होती कि मैंने मेरी पात्रता से प्रयत्न किया है इसलिये गुण प्रगटे हैं। गुरु का उपकार नहीं है ऐसा आत्मार्थी को नहीं होता।

- पूज्य गुरुदेवश्री

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचनसार गाथा ६५

अथ मुक्तात्मसुखप्रसिद्धये शरीरस्य सुखसाधनतां प्रतिहन्ति-

पप्पा इट्ठे विसये फासेहिं समस्सिदे सहावेण।
परिणममाणो अप्पा सयमेव सुहं ण हवदि देहो ॥६५॥

अब मुक्त आत्मा के सुख की प्रसिद्धि के लिये, शरीर सुख का साधन होने की बातका खण्डन करते हैं। (सिद्ध भगवान के शरीर के बिना भी सुख होता है यह बात स्पष्ट समझाने के लिये, संसारावस्था में भी शरीर सुख का-इन्द्रियसुख का साधन नहीं है - ऐसा निश्चित करते हैं) :-

स्पर्श आदि से रहित कर प्राप्त इष्ट पदार्थ को।
स्वयमेव सुखमय परिणमित हो आत्मा न देह हो ॥६५॥

अन्वयार्थ :- (स्पर्शैः समाश्रितान्) स्पर्शनादिक इन्द्रियाँ जिनका आश्रय लेती हैं - ऐसे **(इष्टान् विषयान्)** इष्ट विषयों को **(प्राप्य)** पाकर **(स्वभावेन)** (अपने शुद्ध) स्वभाव से **(परिणममानः)** परिणमन करता हुआ **(आत्मा)** आत्मा **(स्वयमेव)** स्वयं ही **(सुखं)** सुखरूप (-इन्द्रियसुखरूप) होता है। **(देहः न भवति)** देह सुखरूप नहीं होती।

टीका :- वास्तवमें इस आत्मा के लिये सशरीर अवस्था में भी शरीर सुख का साधन हो - ऐसा हमें दिखाई नहीं देता; क्योंकि तब भी, मानों उन्मादजनक मदिरा का पान किया हो - ऐसी प्रबल मोह के वश वर्तनेवाली, 'यह (विषय) हमें इष्ट है' इसप्रकार विषयों की ओर दौड़ती हुई इन्द्रियों के द्वारा असमीचीन (अयोग्य) परिणति का अनुभव करने से जिसकी [1]शक्ति की उत्कृष्टता (-परम शुद्धता) रुक गई है - ऐसे भी (अपने) ज्ञान-दर्शन-वीर्यात्मक स्वभाव में- जो कि (सुख के) निश्चय कारणरूप है-परिणमन करता हुआ यह आत्मा स्वयमेव सुखत्व को प्राप्त करता है, (-सुखरूप होता है,) और शरीर तो अचेतन ही होने से सुखत्वपरिणति

[1]इन्द्रियसुखरूप परिणमन करनेवाले आत्मा की ज्ञानदर्शन-वीर्यात्मक स्वभाव की उत्कृष्ट शक्ति रुक गई है, अर्थात् स्वभाव अशुद्ध हो गया है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

का निश्चय-कारण न होता हुआ किञ्चित् मात्र भी सुखत्व को प्राप्त नहीं करता।

भावार्थ :- सशरीर अवस्था में भी आत्मा ही सुखरूप (इन्द्रियसुखरूप) परिणति में परिणमन करता है, शरीर नहीं; इसलिये सशरीर अवस्था में भी सुखका निश्चय कारण आत्मा ही है अर्थात् इन्द्रियसुख का भी वास्तविक कारण आत्मा का ही अशुद्ध स्वभाव है। अशुद्ध स्वभाव में परिणमित आत्मा ही स्वयमेव इन्द्रियसुखरूप होता है। उसमें शरीर कारण नहीं है; क्योंकि सुखरूप परिणति और शरीर सर्वथा भिन्न होने के कारण सुख और शरीर में निश्चय से किञ्चित्मात्र भी कार्यकारणता नहीं है ॥६५॥

गाथा ६५ पर प्रवचन

अब, मुक्त आत्मा के सुख की प्रसिद्धि के लिये, शरीर, सुख का साधन होने की बात का खंडन करते हैं। अर्थात् सिद्ध भगवान को शरीर के बिना भी सुख होता है - यह बात स्पष्ट समझाने के लिये, संसार अवस्था में भी शरीर, सुख का-इन्द्रियसुख का साधन नहीं है।

कोई पूछता है कि-सिद्धों को इन्द्रियाँ नहीं होती है तो (उन्हें)क्या सुख होगा ? ऐसा कहनेवालों को यहाँ कहते हैं कि - तुझे इन्द्रिय का सुख नहीं किन्तु, कल्पना का सुख है।

स्पर्श आदि इन्द्रियों को इष्ट विषय मिले हैं किन्तु स्वयं अशुद्ध स्वभाव रूप परिणमित हुआ है। आत्मा स्वयमेव सुख रूप होता है। विषय सभी को मिले है फिर भी स्वभाव का आश्रय करे तो - सुख की कल्पना नहीं करता। आत्मा स्वयमेव सुखरूप होता है किन्तु देह सुखरूप नहीं होती। अज्ञानी, ज्ञान-दर्शन और वीर्य की अल्प अवस्थारूप परिणमित होता हुआ-सुख मानता है।

इस आत्मा को संसार अवस्था में भी शरीर, सुख का साधन नहीं है। शरीर सुखी तो सर्व सुखी - ऐसा लोग कहते हैं किन्तु यह बात सही नहीं है, क्योंकि शरीर सुख का साधन हो - ऐसा तो हमें दिखाई नहीं देता। निरोगी शरीर हो और अंदर कल्पना करता है इसलिये शरीर सुख का साधन नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शरीर निरोग होनेपर भी शोक उत्पन्न करता है-मदिरा पीता है - ऐसा प्रबल मोह करता है। अमुक शब्द, रूप, रस, भोग मुझे इष्ट है - ऐसा वह मानता है। विषयों की ओर दौड़ती हुई इन्द्रियों के द्वारा अपनी विकारी दशा को भोगता है जबकि स्पर्श, रस, गंध, वर्ण को वह अनुभवन नहीं करता। आम का कोई अनुभव नहीं करता।

कोई कहता है कि यदि आम में सुख नहीं हो तो रोटी के साथ कालीजीरी (जीरा) क्यों नहीं खाता ?

भाई ! रस के समय भी स्वयं अशुद्धरूप परिणमित होता है। धर्मी जीव की दृष्टि विषयों की प्रीति के ऊपर नहीं है स्वभाव इष्ट है। राग-द्वेष अनिष्ट है और विषय ज्ञेय हैं फिर भी अज्ञानी उनमें इष्ट-अनिष्ट कल्पना करता है; इसप्रकार उन्हें जानने-देखने का और वीर्य का विकास रुक गया है।

पर्यायस्वभाव अशुद्ध हुआ है पर्याय में ज्ञान दर्शन और वीर्य का विकास होना चाहिये इसके बदले संकोच पाता है। 'तुम्हारे रुपये से बहुत मनुष्य कमाते हैं' - तुम्हारे रुपये ब्याज से ले जानेवाले की कमाई होती है; इसप्रकार रुपये-रुपये को लाता है - ऐसे शब्द सुने वहाँ हर्ष से फूल जाता है अथवा कंजूस के रुपये संग में जाये वहाँ लड़ाई हो जाती है - ऐसा अज्ञानी मानता है। उन्माद जनक मदिरा पीनेवाला जीव पागल हो जाता है, वैसे ही स्त्री के मोह के खातिर (लिये) संपूर्ण राज्य छोड़ देता है। इसप्रकार अयोग्य परिणति का अनुभव करता है।

ऐसे शरीरवाला भी इस तरह अपने ज्ञान-दर्शन और वीर्यात्मक स्वभाव में जो कि सुख का निश्चय कारणरूप है (उसरूप) परिणमन करता हुआ, यह आत्मा स्वयमेव सुखत्व को प्राप्त करता है, अर्थात् कल्पना करता है। जैसे शरीर रहित परमात्मा भी अपने स्वभाव से सुखी हैं; वैसे ही निचलीदशा में ज्ञान-दर्शन और वीर्यरूप परिणमित हुआ जीव अपनी परिणति के कारण सुखी है किन्तु शरीर के कारण सुखी नहीं। यहाँ संसार के सुख की बात है। पैसा बहुत हो, प्रतिष्ठा हो - ऐसी कल्पनारूप स्वयं परिणमित होता है। यह सुखरूप होता है अर्थात् यह इष्टरूप, यह अनिष्टरूप, यह प्रतिष्ठा इष्ट है - इसप्रकार सुखरूप होता और मानता है।

भिन्न-भिन्न प्रसंगों में जीव स्वयं इष्ट-अनिष्ट की कल्पना करता है। शरीर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

को अचेतनता ही होने से वह सुखत्व परिणति का निश्चय कारण नहीं होता इसलिये वह थोड़े भी सुखत्व को प्राप्त नहीं होता।

पर्याय दृष्टि होनेपर स्वयं खराब (अशुद्ध) परिणतिरूप परिणमित होता है। वहाँ ज्ञान, दर्शन, और वीर्य रुक गया है अर्थात् अपनी शक्ति ढक (रुक) गई है। इसमें शरीर कुछ भी नहीं करता। अज्ञानी स्वयं सुखरूप कल्पना करता है।

भूख लगने पर यदि रस, पूड़ी और करेले का साग मिले तो कैसा सुख हो? यह पदार्थ इष्ट है - ऐसा मानकर वह रुक गया है। सुख की कल्पना स्वयं करता है। आत्मा की ज्ञानपर्याय त्रिकाल स्वभाव का अवलम्बन ले, तो धर्म होता है किन्तु वर्तमान (पर्याय) का आश्रय लेकर, मान्यता (कल्पना) करके पर में सुख मानता है।

१०५ डिग्री बुखार आया हो फिर भी यदि खबर मिले कि लड़का बहुत साल बाद परदेश से घर आ रहा है और लाखों की कमाई करके आया है तो वह प्रसन्न हो जाता है। मेरा लाखों रुपया आनेवाला है! ऐसी उमंग आती है तो वहाँ १०५ डिग्री बुखार का लक्ष्य छूट जाता है।

देखो! परोक्षज्ञान में इष्ट कल्पना की तो वहाँ शरीर में रोग होनेपर भी इष्ट की कल्पना करके सुख मानता है। कमाई के समय सब भूल जाता है। शरीर अच्छा हो, खाकर के सो रहा हो और उसी समय लड़के के मरने की खबर आवे, तो वहाँ वह दुःखी होता है। अरे रे! लड़के का अकस्मात् ही निधन हो गया। देखो! यहाँ शरीर तो अच्छा था किन्तु अनिष्ट कल्पनारूप यह स्वयं परिणमित हुआ है। शरीर कल्पनारूप परिणमित नहीं होता, अपितु स्वयं उल्टी मान्यता करता है।

शरीर अचेतन है वह सुख का निश्चय कारण नहीं। शरीर अचेतन है, उसे मात्र जीव के निमित्त से सचेतन कहा जाता है किन्तु शरीर तो अचेतन ही है। व्यवहार से जिसे सचेतन कहा वह निश्चय से तो अचेतन ही है। जीव सचेत निमित्त है अर्थात् निमित्त का उपचार करके शरीर को सचेत कहा जाता है, वास्तव में शरीर तो अचेतन ही है।

जीव जीवित हो अर्थात् कि शरीर का सम्बंध हो तब भी शरीर अचेतन ही है। वह सुख की परिणति का निश्चय कारण नहीं है। इसलिये शरीर सुखत्व को प्राप्त नहीं होता। शरीर सुख का वास्तव में कारण नहीं है। अज्ञानी जीव सुख की कल्पनारूप

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परिणमित होता है, तो शरीर को सुख का व्यवहार कारण कहा जाता है।

सचेत अग्नि सचेत वनस्पति - इसप्रकार व्यवहार से कहा जाता है। जीव के निमित्त के कारण जीव का खून कहा है, जबकि खून तो अचेतन है। शरीर में कम्पन होने के कारण दुःख नहीं होता अपितु कल्पना से दुःख होता है क्योंकि शरीर सुखरूप परिणमित नहीं होता स्वयं की कल्पनारूप परिणमित हो तो शरीर निमित्त कहलाता है और यदि स्वयं आत्मा के आनन्दरूप परिणमित हो तो उसे निमित्त भी नहीं कहा जाता।

इसप्रकार जो श्रद्धा-ज्ञान से पहचान नहीं करता तो फिर उसे चरित्र की यथार्थता कहाँ से आयेगी। संयोग अपेक्षा से शरीर और आत्मा एक साथ हैं - ऐसा कहने में आता है, किन्तु निश्चय से वे पृथक हैं। सिद्धदशा होनेपर पृथक होते हैं क्योंकि वे पृथक हैं तो पृथक होते हैं।

शरीर में रक्तचाप (ब्लड-प्रेशर) हो तब कल्पना करता है वह दुःख रूप है जबकि शरीर दुःख रूप नहीं है। यह स्वयं ही इष्ट-अनिष्ट की कल्पना करके तेरा भाव दुःखरूप हुआ है जबकि शरीर उस रूप नहीं होता।

१०५ डिग्री बुखार के समय, लड़के की कमाई की कल्पना करके वहाँ सुखरूप हुआ और शरीर अच्छा हो तब यदि लड़का अपने से प्रतिकूल चले तो वहाँ द्वेष की कल्पना करके दुःखी होता है। दुकान में अमुक माल आये और कमाई अच्छी है वहाँ सुख की कल्पना करता है और खबर मिले कि उस माल में किन्हीं चोरों का माल आ गया है तो वहाँ कल्पना करके दुःख मानता है।

किसी की पत्नि मर जानेपर एक तो सोचता है कि अब अपने को अकेले के लिये ही कमाना पड़ेगा (चलो) उपाधि मिटी और दूसरा कल्पना करता है कि पत्नि थी तो अच्छा खाना बना देती थी अब कोई देख-रेख करनेवाला नहीं रहा। इसीप्रकार कल्पना करता है।

पर के कारण कल्पना करता है किन्तु वे वस्तुएँ इष्ट-अनिष्ट नहीं है अपितु स्वयं उनमें इष्ट-अनिष्ट की कल्पना किया करता है जो वस्तुओं के कारण से नहीं है। यदि वस्तुओं के कारण कल्पना होती हो तो केवली भगवान को भी कल्पना होना चाहिये इसलिये पर के कारण कल्पना नहीं होती अपितु स्वयं करे तो होती है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इसप्रकार अज्ञानी स्वयं कल्पना करता है।

एक युवक ने किसी कारण से अपने भाई को मार डाला और बाद में स्वयं को पश्चाताप होनेपर स्वयं ने भी आत्महत्या कर ली; इसीप्रकार अज्ञानी स्वयं कल्पना करता है, शरीर तो अच्छा था - ऐसी कल्पना पैदा करता है तो उसको निमित्त कहा जाता है। यदि निमित्त नहीं बनाये तो निमित्त नहीं कहलाता। विकार में निमित्त नहीं बनाये तो वह मात्र ज्ञान का ज्ञेय होता है।

भावार्थ पर प्रवचन :- सशरीर अवस्था में भी आत्मा ही इन्द्रिय सुखरूप परिणमन करता है - शरीर नहीं। इसलिये उसे भी सशरीर अवस्था में सुख का कारण आत्मा ही है - अर्थात् इन्द्रिय सुख का भी वास्तविक कारण - आत्मा का ही अशुद्ध स्वभाव है, क्योंकि स्वयं कल्पना करता है।

इसप्रकार अशुद्ध स्वभावरूप परिणमित होता हुआ आत्मा ही स्वयमेव इन्द्रिय सुखरूप होता है उसमें शरीर कारण नहीं है क्योंकि सुखरूप परिणति और शरीर एकदम (बिल्कुल ही) पृथक होने के कारण सुख को और शरीर को निश्चय से कार्य-कारणता बिल्कुल नहीं है, अपितु शरीर को सुख का व्यवहार से कारण कहा वह मात्र कहने के लिये है अर्थात् वास्तव में शरीर सुख का कारण नहीं है।

卐 卐 卐

आत्मशक्ति में - स्वभाव में भूल की गन्ध ही नहीं है और पर्याय की भूल को हम देखते ही नहीं, सदोषदशाको हम देखते नहीं। हम तो सिर्फ पवित्र स्वभाव ही देखते हैं।

- पूज्य गुरुदेवश्री

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचनसार गाथा ६६

अथैतदेव दृढ़यति-

एगंतेण हि देहो सुहं ण देहिस्स कुणदि सग्गे वा।
विसयवसेण दु सोक्खं दुक्खं वा हवदि सयमादा ॥६६॥

अब इस बात को दृढ करते हैं :-

इस देह के कारण सुखी न दिविज देही भी कभी।
होता विषयवश से स्वयं ही जीव सुखमय या दुःखी ॥६६॥

अन्वयार्थ :- **(एकान्तेन हि)** एकान्त से अर्थात् नियम से **(स्वर्गे वा)** स्वर्ग में भी **(देहः)** शरीर **(देहिनः)** शरीरी (-आत्मा को) **(सुखं न करोति)** सुख नहीं देता **(विषय वशेन तु)** परन्तु विषयों के वश से **(सौख्यं दुःखं वा)** सुख अथवा दुःखरूप **(स्वयं आत्मा भवति)** स्वयं आत्मा होता है।

टीका :- यहाँ यह सिद्धांत है कि - भले ही दिव्य वैक्रियिकता प्राप्त हो तथापि 'शरीर सुख नहीं दे सकता;' इसलिये, आत्मा स्वयं ही इष्ट अथवा अनिष्ट विषयों के वश से सुख अथवा दुःखरूप स्वयं ही होता है।

भावार्थ :- शरीर सुख-दुःख नहीं देता। देवों का उत्तम वैक्रियिक शरीर सुख का कारण नहीं है और नारकियों का शरीर दुःख का कारण नहीं है। आत्मा स्वयं ही इष्ट-अनिष्ट विषयों के वश होकर सुख-दुःख की कल्पनारूप में परिणमित होता है ॥६६॥

ॐ ॐ ॐ

गाथा ६६ पर प्रवचन

देखो ! यहाँ यह नहीं कहा कि - 'शरीर कथंचित् सुख का साधन है और कथंचित् सुख का साधन नहीं है, किन्तु एकान्त अर्थात् नियम कहा है कि शरीर सुख का साधन नहीं है - नहीं है। कषाय मंदता करके पुण्य के फल में स्वर्ग का भव मिलता है। वहाँ जीव स्वयं राग -द्वेष करता है और सुख की कल्पना करता है,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

किन्तु शरीर सुख-दुःख का कारण नहीं है। विषयों के वश हुआ जीव स्वयं सुख-दुःख की कल्पना करता है जबकि शरीर के कारण सुख-दुःख नहीं होता, भले ही शरीर घाणी में पेला जाता हो तो भी शरीर दुःख का कारण नहीं होता और स्वर्ग के संयोग सुख के कारण नहीं है अपितु स्वयं आत्मा ही उनमें सुख-दुःख की कल्पना करता है। अतः **'अनुकूल संयोग सुख के कारण नहीं है तथा प्रतिकूल संयोग दुःख के कारण नहीं है।'**

यहाँ, यह सिद्धांत है कि - भले ही पूर्व पुण्य के कारण वैक्रियक शरीर मिले तो भी वह सुख का कारण नहीं है, इसीतरह पैसा आदि का मिलना वह भी सुख का कारण नहीं है। यहाँ सिद्धांत यह है कि - बाह्य साधन सुख-दुःख का कारण नहीं है, अपितु आत्मा स्वयं, यह पदार्थ मुझे इष्ट है, इसप्रकार उनके वश होकर उनमें सुख की कल्पना करता है जबकि अनिष्ट विषय, रोग अथवा निर्धनता दुःख का साधन नहीं है, अपितु 'यह मुझे ठीक नहीं हैं' - ऐसी कल्पना दुःख का कारण है। शरीर स्वस्थ हो, प्रतिष्ठा (इज्जत) हो, पैसा हो, वैमानिक देवों की सामग्री हो तो वह भी सुख का कारण नहीं है।

आत्मा सत् अर्थात् कायम (ध्रुव) रहनेवाला ज्ञान और आनन्द स्वरूप है, उसे भूलकर (छोड़कर) अज्ञानी कल्पना से पर पदार्थों में यह ठीक है अथवा ठीक नहीं है - ऐसा मानता है; जबकि बाह्य कारण (संयोग) सुख-दुःख के कारण नहीं है किन्तु फिर भी पुत्र मेरा वंश रखेगा - ऐसी कल्पना करता है। अखंड आनन्द मूर्ति आत्मा को भूलकर, बांझपना मुझे ठीक नहीं है - ऐसी कल्पना करता है।

निर्धनता, दरिद्रता, रोग दुःख का कारण नहीं है अपितु ज्ञानस्वरूप आत्मा को भूलकर मुझे रोग अनिष्ट है - ऐसी कल्पना ही दुःख का कारण है। यदि रोग दुःख का कारण हो तो जितने प्रमाण में रोग उतने प्रमाण में वह दुःख का कारण बनना चाहिये, किन्तु ऐसा नहीं होता।

तथा शरीर धर्म का साधन नहीं अपितु अपना ज्ञानानन्द स्वभाव धर्म का साधन है। आत्मा अपने स्वरूप को भूलकर स्वयं सुख-दुःखरूप होता है। स्वयं ज्ञानानन्द स्वरूप है उसे भूलकर जो संयोगों को हितकर तथा अहितकर मानता है वह दुःख का कारण है। शरीर सुन्दर मिले, पुत्र-पुत्री अच्छे मिले तो वहाँ ठीकपने

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

की कल्पना करता है और मुझे सुख मिला है - ऐसा मानता है किन्तु यह माना हुआ सुख भी पर के कारण नहीं हुआ है क्योंकि यदि पैसे के कारण सुख हो तो पैसा जब हो तब-तब हर समय सुख होना चाहिए।

पच्चीस हजार की अंगूठी पहन कर निकला हो और रास्ते में किसी बदमाश ने पीट कर अंगूठी छीन ली हो तब विचार करता है कि यदि अंगूठी पहनकर नहीं आया होता तो सुख होता। पहले मानता था कि अंगुठी पहनने से शोभा है ओर अब नहीं पहनने में सुख मानता है; इसप्रकार कल्पना करता है, किन्तु अंगुठी सुख-दुःख का कारण नहीं है। अब लोग कहते हैं कि यदि शरीर सुखी हो तो सब कुछ है, किन्तु यह बात झूठी है; क्योंकि शरीर स्वस्थ्य होनेपर भी यदि पुत्र मर जाये तो वहाँ दुःख की क ल्पना करता है।

तेरी कल्पना ही दुःखरूप है, इसलिये अपनी दृष्टि बदल और आनन्दस्वरूप आत्मा की रुचि कर। परपदार्थ सुख-दुःख के कारण नहीं हैं, अपितु तेरी कल्पना दुःखदायक है तथा उससे रहित आत्मा सुखदायक है - ऐसी श्रद्धा-ज्ञान करे तो सुखी हो। यदि पुत्र अनुकूल हो तो अच्छा मानता है और प्रतिकूल हो तो सोचता है कि यदि पुत्र न होता तो अच्छा होता; इसप्रकार जो कल्पना करता है वही दुःख है; इसलिये दृष्टि बदल और मान कि बाहर के पदार्थ सुख-दुःख के कारण नहीं है अपितु मेरी कल्पना दुःख का कारण है। कल्पना रहित मेरा स्वरूप आनन्द है - ऐसी दृष्टि कर।

जिन संयोगों को सुखरूप मानता है उनको मिलाना चाहता है और जिनको दुःखरूप मानता है उनको दूर करना चाहता है इसप्रकार अज्ञानी व्यर्थ प्रयत्न करता है। वास्तव में तो अपनी कल्पना में ही दुःख है इसलिये इस कल्पना को बदल।

वर्तमान अवस्था में दुःख है और अंतरंग स्वभाव में सुख है - ऐसी दृष्टि कर। बाहर की कोई भी वस्तु मुझे सुख-दुःख का कारण नहीं। काला बाजार करके भी पैसा प्राप्त करना चाहता है क्योंकि तेरी कल्पना है कि यह मुझे सुखरूप है किन्तु वह कल्पना दुःख रूप है क्योंकि वहाँ आत्मा इष्ट-अनिष्ट और परवश होता है तथा परवश होकर दुःखी हो रहा है इसलिये आनन्दस्वरूप आत्मा की रुचि कर।

भावार्थ पर प्रवचन :- शरीर जीव को सुखी-दुःखी नहीं करता। देवों को उत्तम वैक्रियक शरीर है, उन्हें पूर्व पुण्य के कारण स्वर्ग के इष्ट संयोग मिले है

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जिसप्रकार कपूर की डली बिखर जाती है वैसे ही देवों का शरीर, आत्मा के पृथक होनेपर बिखर जाता है वैसे ही देव अनेक प्रकार की शरीर की विक्रिया कर सकते हैं किन्तु वह शरीर सुख का कारण नहीं तो फिर इन्द्राणी आदि संयोग भी सुख का कारण नहीं हो सकता।

मांस खानेवाले, मदिरा पीनेवाले नरक में जाते हैं। नरक में कम से कम दस हजार वर्ष की स्थिति (आयु) होती है वहाँ भी शरीर दुःख का कारण नहीं है, अपितु यह संयोग प्रतिकूल है - ऐसी मान्यता और राग-द्वेष दुःख का कारण है। आत्मा स्वयं स्वरूप को छोड़कर भूल करता है। भूल करनेवाला स्वयं है और भूल को भगानेवाला भी स्वयं ही है, किन्तु कोई कर्म का उदय पराधीन कराता हो - ऐसा नहीं है। त्रिकाल चिदानन्द प्रभु को भूलकर जो कल्पना करता है वही सुख-दुःख का कारण है।

卐 卐 卐

-पूज्य गुरुदेवश्री के हृदयोद्गार-

निःसंदेहरूप से तू ऐसा जान कि देह में विराजमान देह से भिन्न परमात्मा स्वयं है। राग-द्वेष तो भिन्न हैं, शरीर भिन्न है, उन्हें तो एक ओर रखो, किन्तु परमात्मा को जाननेवाली जो दशा है वह नाशवान है, उसमें अविनाशी प्रभु का वास नहीं है। ऐसा महिमावान त्रिलोकीनाथ सच्चिदानन्द प्रभु तुझसे मिलने आया-पर्याय में भेट करने आया है तब तूने राग के साथ भेट करके उसका अनादन किया है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचनसार गाथा ६७

अथात्मनः स्वयमेव सुखपरिणामशक्तियोगित्वाद्विषयाणाम-किञ्चित्करत्वं द्योतयति-

तिमिरहरा जइ दिट्ठी जणस्य दीवेण णत्थि कायव्वं।
तह सोक्खं सयमादा विसया किं तत्थ कुव्वंति ॥६७॥

अब, आत्मा स्वयं ही सुख परिणाम की शक्तिवाला होने से विषयों की अकिञ्चित्करता बतलाते हैं :-

यदि है तिमिरहर दृष्टि जन की दीप से फिर काम क्या ?
है स्वयं सुखमय आत्मा तो विषय से फिर काम क्या ? ॥६७॥

अन्वयार्थ :- **(यदि)** यदि **(जनस्य दृष्टिः)** प्राणीकी दृष्टि **(तिमिरहरा)** तिमिर नाशक हो तो **(दीपेन नास्ति कर्तव्यं)** दीपक से कोई प्रयोजन नहीं है, अर्थात् दीपक कुछ नहीं कर सकता, **(तथा)** उसीप्रकार जहाँ **(आत्मा)** आत्मा **(स्वयं)** स्वयं **(सौख्यं)** सुखरूप परिणमन करता है **(तत्र)** वहाँ **(विषयाः)** विषय **(किं कुर्वन्ति)** क्या कर सकते हैं ?

टीका :- जैसे किन्हीं निशाचरों के (उल्लू, बिल्ली, भूत इत्यादि) नेत्र स्वयमेव अन्धकार को नष्ट करने की शक्तिवाले होते हैं, इसलिये उन्हें अन्धकार नाशक स्वभाववाले दीपक-प्रकाशादि से कोई प्रयोजन नहीं होता, (उन्हें दीपक-प्रकाश कुछ नहीं करता) इसीप्रकार-यद्यपि अज्ञानी 'विषय सुख के साधन हैं' - ऐसी बुद्धि के द्वारा व्यर्थ ही विषयों का अध्यास (-आश्रय) करते हैं तथापि-संसार में या मुक्ति में स्वयमेव सुखरूप परिणमित इस आत्मा का विषय क्या कर सकते हैं ?

भावार्थ :- संसार में या मोक्ष में आत्मा अपने आप ही सुखरूप परिणमित होता है; उसमें विषय अकिञ्चित्कर हैं, अर्थात् कुछ नहीं कर सकते। अज्ञानी विषयों को सुख का कारण मानकर व्यर्थ ही उनका अवलम्बन लेते हैं ॥६७॥

ॐ ॐ ॐ

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गाथा ६७ पर प्रवचन

यदि प्राणी की दृष्टि स्वयं ही अंधकार का नाश करनेवाली हो तो उसे दीपक से कोई प्रयोजन नहीं होता। जैसे उल्लू और निशाचर को दीपक की जरूरत नहीं होती वैसे ही जहाँ आत्मा स्वयं रागरूप परिणमित होता है वहाँ विषय क्या करे ? यहाँ देह और विषय दोनों को ही निकाल दिया है, क्योंकि वे सुख का कारण नहीं हैं अज्ञानी स्वयं उनमें सुख की कल्पना करता है। जैसे सुख-दुःख की कल्पना संयोग में नहीं है वैसे ही वह स्वभाव में भी नहीं है - मात्र वर्तमान पर्याय में ही यह कल्पना करता है।

जिसप्रकार रात में विचरण करनेवाले उल्लू सर्प आदि को प्रकाश की जरूरत नहीं होती और वे अंधेरे में भी देख सकते हैं। अंधेरे में वस्तु कहाँ है उसे देखकर ले लेते हैं। किसी चोर ने तालाब में चोरी का माल (वस्तु) डालकर आया हो तो कोटवार उसके पैरों के निशान के ऊपर से पकड़ लेता है; उसे दीपक की जरूरत नहीं पड़ती।

जैसे दीपक आदि का प्रकाश कुछ नहीं करता, वैसे ही आत्मा का तत्त्व ज्ञानानन्द है-चिदानंद है उसे भूलकर यह जीव स्वयं पर के वश होता है और मानता है कि विषय सुख का साधन है। घर में सभी दवाएं तैयार रखता है, खाने की सभी चीजें तैयार रखता है। आम का रस, स्त्री का रूप, फूलों का गज़रा, प्रतिष्ठा, अभिनंदन-पत्र इत्यादि जो विषय हैं वे सुख के साधन है - ऐसा अज्ञानी मानता है।

आम को मीठा जानना यह अलग बात है किन्तु वह अच्छी है - ऐसा मानना यह भ्रांति है, क्योंकि कोई जीव आम खाते हुए मर जाता है और कड़वी चीज खाने पर भी बच जाता है, इसलिये मीठी चीज अच्छी है और कड़वी खराब है यह बात नहीं रहती। एक बीमार बच्चें को मौसम्बी का रस पिलाते ही उसकी देह छूट गई, अब इसमें किसको अच्छा अथवा बुरा कहना ?

वस्तु में ठीक (अच्छा) अठीक (बुरा) पना नहीं है और ठीक-अठीक की कल्पना भी आत्मा के स्वभाव में नहीं है, किन्तु अज्ञानी स्वभाव को छोड़कर पर्याय में ठीक-अठीक कल्पना करता है। एक तरफ तो कहता है कि रोटी के बिना तो चल सकता है किन्तु अफीम के बिना नहीं चलता और कोई कहेगा कि शरीर की

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तंदुरुस्ति के बिना नहीं चलता - ऐसी वह अनेक प्रकार की भूलें करता है। स्वभाव में भूल नहीं और संयोग में भी भूल नहीं, किन्तु अज्ञानी वर्तमान अवस्था में भूल करता है।

अज्ञानता बचाव नहीं है। अज्ञानी जीव विषयों को सुख का साधन मानकर व्यर्थ ही अध्यास करता है। जिसतरह अति आवश्यक पोस्टेज पर सील लगाते समय पोस्टमास्टर को उपस्थित रहना चाहिये; यदि वह नियम को नहीं जानता हो और वह हाजिर न रहे, तो उसके लिये पोस्ट मास्टर स्वयं जिम्मेदार होता है, इसलिये अज्ञानता बचाव नहीं है। उसीतरह कोई कहे कि हमें खबर नहीं है कि - विषय सुख के साधन नहीं है और वह रूपवान स्त्री-पुत्र व धनादि में सुख की कल्पना करे तो निश्चित ही वह दुःखी होगा; इसप्रकार अज्ञानता बचाव नहीं है।

अज्ञानी कहता है कि निमित्त आये तो राग होता है। पहले प्रशंसा के शब्द नहीं सुने थे तब राग नहीं होता था और जहाँ प्रशंसा के शब्द सुने वहाँ राग हुआ इसप्रकार अज्ञानी निमित्त से सुख की असत्य कल्पना करता है। अपने ज्ञानस्वभाव को भूलकर राग करता है और विषयों को सुख के साधन मानता है। यह स्पर्श, रस, गंध, वर्ण के विषय साधन हैं - इसप्रकार व्यर्थ अध्यास करता है।

जड़ पदार्थ का परिणमन जड़ के कारण है, फिर भी उनके कारण अज्ञानी दुःख मानता है। यदि किसी का शरीर स्थूल (मोटा) हो और उसकी जानने की बुद्धि कम भी देखी जाती है। यदि शरीर और आत्मा एक हो तो शरीर के प्रमाण में ज्ञान का विकास होना चाहिये, किन्तु ऐसा नहीं होता क्योंकि शरीर तथा आत्मा पृथक वस्तु हैं, इसलिये शरीर में सुख नहीं है।

अज्ञानी जीव को खोटी आदत हो गई है। अपनी आत्मा की खबर नहीं और विषयों की ओर लक्ष्य करता है। मैं चिदानंद हूँ - इसका पता तो उसे नहीं है और पर का पता लगाता है। अपने पुत्र के समान ही किसी का नाम हो और वह मर जाय, तब भ्रम से अपने पुत्र का मरण हुआ समझकर दुःखी हुआ और जैसे ही खबर मिली कि वह अपना पुत्र नहीं था, तो वहाँ सुख की कल्पना करता है।

अपनी परदेश की दुकान में पाँच लाख रुपये का मुनाफा हुआ तब स्वयं कल्पना नहीं करता किन्तु जैसे ही उसकी खबर तार फोन द्वारा अपने देश में मिलती

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है कि पांच लाख का मुनाफा हुआ तो कल्पना करता है; जबकि उस समय वह वस्तु सुख-दुःख का कारण नहीं है, मात्र कल्पना ही सुख-दुःख का कारण है।

जगत के नियमों को समझे बिना शांति नहीं होती। पुत्र के लिये पिता मर-मिटे (बहोत मेहनत करे) फिर भी पुत्र कहता है कि- 'मेरे बाप को ममता बहोत है।' ममता छूट गई है - ऐसा कब कहा जावेगा ? वस्तु तो छूटी हुई सी पड़ी है किन्तु उसके प्रति रुचि और आसक्ति छोड़ी तो ममता को छोड़ा है - ऐसा कहा जायगा। अज्ञानी पर को अनुकूल रखने की कल्पना (इच्छा) करता है किन्तु दूसरे जीव अपने प्रति अनुकूल रहे अथवा न रहे वह इस जीव के आधीन नहीं है।

यदि रोटी चबा न सके तो, रोटी का चूरा करके दही के साथ खाए तो उसमें अज्ञानी सुख मानता है। निर्धनता अथवा धनवानपना, बांझपना अथवा पुत्र का होना यह कोई सुख-दुःख का कारण नहीं है, अपितु अपने को भूलकर जीव स्वयं सुख-दुःख की कल्पना करता है। इसप्रकार सही समझ हो तो सुखी होगा। पहले भ्रांति दूर हो तो समझ होगी और आनन्द का अंश प्रगट हो तथा पूर्ण स्थिरता होनेपर पूर्ण आनन्द प्रगट हो।

संसारदशा में अमुक विषय और सिद्धदशा में लोकालोक के विषय कुछ दुःख-सुख के कारण नहीं है अपितु जीव स्वयमेव सुखरूप परिणमित होता है। संसार दशा में अथवा मुक्तदशा में स्वयं सुखरूप परिणमित होता है। अज्ञान दशा में कल्पना करता है और मुक्तदशा होनेपर वीतरागरूप-आनन्दरूप स्वयं होता है।

आत्मा के ज्ञान में से केवलज्ञान प्रगट हुआ, उसमें लोकालोक जानने में आता है किन्तु लोकालोक सुख का कारण नहीं है; इसीतरह निचली दशा में भी विषय क्या करे ? विषय कहो अथवा निमित्त कहो एक ही बात है। बाहर की वस्तुएँ क्या करें ?

संयोग दुःख नहीं है, इसलिये संयोग को दूर करने जाए तो दुःख नहीं मिटेगा। इसके विपरीत संयोग रहित आत्मा ज्ञानस्वभावी है - ऐसा समझे तो दुःख मिटे। यदि जीव कल्पना करे तो बाह्य साधन निमित्त कहलाए, किन्तु वे निमित्त है इसलिये सुख होता है - ऐसा नहीं है। स्वयं ज्ञान और आानन्द स्वरूप है और उससे विपरीत कल्पना दुःखरूप है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भावार्थ पर प्रवचन :- कुटुम्ब-कबीला और विषय संसार नहीं हैं, अपितु, स्वभाव को भूलकर राग-द्वेष की कल्पना करता है वह संसार है। यदि, स्त्री, पुत्र, मकान, शरीर, प्रतिष्ठा और वस्त्र, गहने आदि संसार हो तो मरने पर सभी की मुक्ति हो जाना चाहिये क्योंकि वे वस्तुएं साथ नहीं आती। किन्तु ऐसा नहीं होता, वे वस्तुएं मेरी है और मैं उनका हूँ - ऐसी मान्यता को साथ लेकर जाता है वह संसार है।

जीव विकारी दशा करे तो दुःख स्वरूप और अविकारी दशा करे तो अपने से ही सुखरूप परिणमित होता है। उसे स्पर्श, रस, गंध, वर्ण के विषय अकिंचित्कर हैं, अर्थात् कुछ नहीं करते किन्तु अज्ञानी उनका अवलम्बन करता है। यदि हजार रुपये की कमाई हो तो ठीक मानता है, जबकि वह ममता दुःखरूप है किन्तु ये सब अज्ञानी की भ्रांतियाँ है।

अब परोक्षज्ञान का विषय बताते हैं। परोक्षज्ञान में इन्द्रिय और इन्द्रिय के विषयों की ओर लक्ष्य जाता है, इसलिये इन्द्रिय और इन्द्रिय के विषय का लक्ष्य छोड़कर स्वभाव का लक्ष्य करना वह साधन है। दो वर्ष का अनाज इकट्ठा करके रखा हो तो अच्छा है - ऐसा अज्ञानी मानता है और अनाज इकट्ठा किया हो और कोई मनुष्य आकर उसे लूट ले जाए तो उस समय वह कल्पना करता है कि मेरा माल लुट गया! किन्तु यदि वह तेरा माल है तो तेरे से पृथक (जुदा) न हो। अज्ञानी विषयों को सुख का कारण मानकर हैरान हो रहा है किन्तु सच्चे सुख को खोजता नहीं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचनसार गाथा ६८

अथात्मनः सुखस्वभावत्वं दृष्टान्तेन दृढयति-

सयमेव जहादिच्चो तेजो उण्हो य देवदा णभसि।

सिद्धो वि तहा णाणं सुहं च लोके तहा देवो ॥६८॥

अब, आत्मा का सुखस्वभावत्व दृष्टांत देकर दृढ़ करते हैं :-

है स्वयं नभ में सूर्य जैसे देव-उष्ण-प्रकाशमय ।

हैं सिद्ध त्यों स्वयमेव जग में देव-सुख वा ज्ञानमय ॥६८॥

अन्वयार्थ :- **(यथा)** जैसे **(नभसि)** आकाश में **(आदित्यः)** सूर्य **(स्वयमेव)** अपने आप ही **(तेजः)** तेज, **(उष्णः)** उष्ण **(च)** और **(देवता)** देव है, **(तथा)** उसीप्रकार **(लोके)** लोक में **(सिद्धः अपि)** सिद्ध भगवान भी (स्वयमेव) **(ज्ञानं)** ज्ञान, **(सुखं च)** सुख **(तथा देवः)** और देव हैं।

टीका :- जैसे आकाश में अन्य कारण की अपेक्षा रखे बिना ही सूर्य -

(१) स्वयमेव अत्यधिक प्रभासमूह से चमकते हुए स्वरूप के द्वारा विकसित प्रकाशयुक्त होने से तेज है।

(२) कभी [१]उष्णतारूप परिणमित लोहे के गोले की भाँति सदा उष्णता - परिणाम को प्राप्त होने से उष्ण है।

(३) देवगतिनामकर्म के धारावाहिक उदय के वशवर्ती स्वभाव से देव है।

इसीप्रकार लोक में अन्य कारण की अपेक्षा रखे बिना ही भगवान आत्मा स्वयमेव ही -

(१) स्वपर को प्रकाशित करने में समर्थ निर्वितथ (-सच्ची) अनन्त शक्तियुक्त सहज संवेदन के साथ तादात्म्य होने से ज्ञान है।

(२) आत्मतृप्ति से उत्पन्न होनेवाली जो [२]परिनिर्वत्ति है; उससे प्रवर्तमान

---

[१] जैसे लोहे का गोला कभी उष्णता परिणाम से परिणमता है वैसे सूर्य सदा ही उष्णता परिणाम से परिणमा हुआ है। [२] परिनिर्वृत्ति = मोक्ष; परिपूर्णता; अन्तिम सम्पूर्ण सुख (परिनिवृत्ति आत्मतृप्ति से होती है अर्थात् आत्मतृप्ति की पराकाष्ठा ही परिनिर्वृत्ति है।)

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनाकुलता में सुस्थितता के कारण सौख्य है।

(३) जिन्हें आत्मतत्त्व की उपलब्धि निकट है - ऐसे बुधजनों के मनरूपी [1]शिलास्तम्भ में जिनकी अतिशय [2]द्युति स्तुति उत्कीर्ण है - ऐसा दिव्य आत्मस्वरूपवान होने से देव है। इसलिये इस आत्मा को सुखसाधनाभास (जो सुख के साधन नहीं है परन्तु सुख के साधन होने का आभासमात्र जिनमें होता है - ऐसे) विषयों से बस हो।

भावार्थ :- सिद्ध भगवान किसी बाह्य कारण की अपेक्षा के बिना अपने आप ही स्वपरप्रकाशक ज्ञानरूप हैं, अनन्त आत्मिक आनन्दरूप हैं और अचिन्त्य दिव्यतारूप हैं। सिद्ध भगवान की भाँति ही सर्व जीवों का स्वभाव है; इसलिये सुखार्थी जीवोंको विषयालम्बी भाव छोड़कर निरालम्बी परमानन्दस्वभावरूप परिणमन करना चाहिये। ॥६८॥

गाथा ६८ पर प्रवचन

जैसे आकाश में सूर्य अपने आप ही तेज और उष्ण है उसे किसी दूसरी अग्नि की जरूरत नहीं। लोग तो उसे देव मानते हैं किन्तु वह पत्थर है, उसमें ज्यातिषि देव रहते हैं। दुनिया सूर्य को देव मानती है - यह दृष्टांत है। उसी प्रकार लोक में पूर्ण परमात्मा जिनको पूर्ण आनन्द प्रगट हुआ है वे स्वयं ज्ञान, सुख और देव है। आत्मा में ज्ञान और आनन्द स्वभाव विद्यमान है-स्वयं ही देव है। उसका अनादि से भान नहीं। इसलिये अज्ञानी पर - विषयों में सुख की कल्पना करता है वह संसार का कारण है।

आत्मा आनन्द स्वभावी है। उसे दृष्टांत द्वारा निश्चित करते हैं। आत्मा का स्वरूप ज्ञान है - यह निश्चित किया। पुण्य-पाप के भाव होते हैं - वे आत्मा का स्वरूप नहीं। जैसा ज्ञानस्वभाव है-वैसा त्रिकाल आनन्द स्वभाव है। आत्मा में पूर्ण आनन्द भरा है। उसे सूर्य के दृष्टांत से समझाते हैं। आत्मा अपने ज्ञानस्वभाव के

---

[1] *शिलास्तम्भ = पत्थर का खम्भा।* [2] *द्युति = दिव्यता; भव्यता; महिमा (गणधरदेवादि बुधजनों के मन में शुद्धात्मस्वरूप की दिव्यता का स्तुतिगान उत्कीर्ण हो गया है।)*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

साथ तद्रूप है इसलिये आत्मा ज्ञान है।

जैसे आकाश में अन्य कारण की अपेक्षा रखे बिना ही स्वयमेव सूर्य है - सूर्य अपने से है उसे अन्य कारण की जरूरत नहीं होती। कैसा है सूर्य ?

(१) अत्यधिक तेजस्वी स्वरूप है, इसलिये प्रगट प्रकाशवाला होने से तेज है। स्वयं कारणांतर रहित द्रव्य है और उसका तेज स्वरूप है।

(२) जैसे लोहे का गोला किसी समय उष्णता परिणाम को परिणमित होता है, वैसे ही सूर्य सदा ही उष्णता परिणाम से परिणमित हुआ है। यह सूर्य की किरणों की अपेक्षा से वर्णन किया है।

(३) देव गति नामकर्म के धारावाहिक उदय से वशवर्ती स्वभाव से देव है। यह सूर्य के विमान के अन्दर रहे हुए देव की बात है, क्योंकि सूर्य के पत्थर को कर्म का उदय नहीं होता, इसलिये यहाँ समुच्चय (समग्र) वर्णन है - ऐसा समझना। यह दृष्टांत है। इसीतरह :-

१. लोक में अन्य कारण की अपेक्षा रहित सिद्ध का आत्मा केवलज्ञानरूप परिणमित हुआ है, वैसे ही आत्मा का स्वभाव प्रकाशित होनेवाला स्वभाव है। शरीर, मन, वाणी, धर्म का कारण नहीं। जिस प्रकार सूर्य को किसी ने बनाया नहीं है; वह है, है और है; उसी प्रकार आत्मा को किसी ने बनाया नहीं है वह है...है...और है। वह आत्मा स्व-पर को प्रकाशित करने में समर्थ है।

आत्मा का स्वभाव स्व-पर को जानना है। जैसे स्वयं को जाने वैसे ही शरीर, मन, वाणी को भी जाने। इसप्रकार राग से पृथक (रहित) स्वभाव को जाने तो धर्म होता है। आत्मा का स्व-पर को प्रकाशित करने का स्वभाव है, किन्तु पर को करना अथवा पुण्य-पाप करना यह उसका स्वभाव नहीं। स्व को जाने कि मैं ज्ञानानन्द हूँ और पुण्य-पाप को पररूप जाने, किन्तु दया-दानादि के परिणाम को करे नहीं, उसे दूर करे नहीं और अपना माने नहीं - मात्र जाने। इसतरह आत्मा का स्व-पर को जानने का स्वभाव है।

जैसे सूर्य का तेजस्वी स्वभाव है। कारणांतर रहित सूर्य आकाश में है वैसे ही इस लोक में आत्मा स्व-पर को प्रकाशित करता हुआ झलकता हुआ चैतन्य सूर्य है - उसे अनन्त शक्तिवाले सहज संवेदन के साथ तादात्मता होने से वह ज्ञान है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सिद्ध का आत्मा ज्ञान स्वरूप है। अरहंत और सिद्ध की पर्याय स्वयं के साथ तद्रूप हैं किन्तु पुण्य-पाप के साथ तद्रूप नहीं। शरीर, पर पदार्थ अथवा राग-द्वेष के साथ तद्रूपता नहीं है। इस आत्मा को ज्ञान प्रकाश के साथ तद्रूप सम्बन्ध है किन्तु दया-दान, काम-क्रोध के साथ तादात्म्य सम्बन्ध नहीं।

इस आत्मा को किसी कारण की अपेक्षा नहीं है, तथा उसे ईश्वर ने बनाया नहीं है। अपने ज्ञानस्वरूप के साथ तद्रूप है। यह ज्ञान तत्त्व अधिकार है। ज्ञान स्व-पर प्रकाशक तत्त्व है। शुभाशुभभाव में भेद करना उसका स्वरूप नहीं है। ऐसे शुभाशुभ की बात आगे कहेंगे।

अल्पज्ञता के साथ तादात्म्य नहीं है। क्षयोपशम कम-अधिक हो वह उसका स्वरूप नहीं किन्तु पूर्ण केवलज्ञान के साथ तद्रूप हो - ऐसा आत्मा का जानने का स्वरूप अनादि-अनंत है। उसके साथ तादात्मता के कारण आत्मा ज्ञान ही है। पुण्य-पाप विकार है, आत्मा विकार के साथ तद्रूप नहीं है फिर भी विकार के साथ तद्रूपता जानना वह अज्ञान भाव है।

जैसे सूर्य के प्रकाश का अंधकार के धब्बे के साथ सम्बन्ध नहीं है, वैसे ही चैतन्य का राग-द्वेष रूपी अंधकार के साथ सम्बंध नहीं है, किन्तु स्व-पर ज्ञान शक्ति के साथ सम्बन्ध है, क्योंकि वह एकमेक है। देह की क्रिया तथा पुण्य-पाप के साथ आत्मा तादात्म्य नहीं हुआ किन्तु ज्ञान के साथ तद्रूप है - ऐसी प्रतीति और अनुभव करना वह धर्म है। चैतन्य सूर्य-सम ज्ञान स्वभावी सूर्य, स्व-पर प्रकाशक सूर्य, ज्ञान के अनुभव के साथ तद्रूप है। सिद्ध भगवान अनाकुलता में सुस्थित हैं इसलिये सुख स्वरूप हैं।

२. अब आनन्द की बात करते हैं :- शरीर, मन, वाणी, और इन्द्रियों के विषय से आत्मा को तृप्ति नहीं होती। अरबों रुपये हों अथवा इन्द्र का इन्द्रासन हो तो भी उसमें तृप्ति नहीं। आत्मा ज्ञान के साथ आनन्दस्वरूप है; उसमें से उत्पन्न होनेवाला परिपूर्ण अंतिम स्वरूप मोक्ष है।

आत्मा को मोक्ष कैसे होता है ?

आत्मा में पुण्य-पाप होते हैं वे अतृप्ति स्वरूप हैं। दया, दान, व्रत, यात्रा का विकल्प उठे वह अतृप्त स्वभाव है उससे तृप्ति नहीं होती। आत्मा ज्ञान और

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आनन्द - स्वरूप त्रिकाल है, उसके द्वारा पूर्ण निवृत्तिरूपी मोक्ष मिलता है। यहाँ आत्मसंतोष अथवा आत्मा के आनन्द की बात करते हैं।

लोग भोजन करके कहते हैं कि तृप्ति हुई, किन्तु छह घण्टे होते ही फिर भोजन करते हैं। इसलिए पैसा, इज्जत और भोजन में तृप्ति नहीं है। मैं निश्चय से अबद्ध-स्पष्ट हूँ और व्यवहार से कर्म के सम्बन्धवाला हूँ - ऐसा विभाग करके राग में रुकने में तृप्ति नहीं। आत्मा शुद्ध है - ऐसा विकल्प भी अतृप्ति है वह आत्म धर्म नहीं। सिद्ध भगवान पूर्ण तृप्ति से मोक्ष को प्राप्त हुए हैं। इसलिये आत्मा की श्रद्धा से तृप्ति कर तो सम्यक्दर्शन और ज्ञान को प्राप्त होगा और विशेष तृप्ति करेगा तो मोक्षदशा होगी।

अज्ञानी जीव विषयों के लिये झपट्टा मारते हैं, अनुकूल पदार्थों के लिये झपट्टा मारते हैं किन्तु उसमें तृप्ति नहीं - तृप्ति कहो अथवा धर्म कहो अथवा सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहो, वह एक ही है। आत्मा पूर्णज्ञान और आनन्द से भरा हुआ है, उसमें एकाग्रता करने से आत्म तृप्ति होती है।

आम खाने से तृप्ति नहीं होती। दो, पाँच लाख रुपये मिलने से तृप्ति नहीं होती, इसीतरह दया-दानादि से आत्म तृप्ति नहीं होती क्योंकि वह आश्रव है और आश्रव से आत्म-तृप्ति नहीं होती, अपितु आत्मा ज्ञान और आनन्द का पिण्ड है, उसमें एकाग्रता होने से मोक्षदशा होती है। सिद्ध भगवान परिपूर्ण स्थित हुए इसलिये सिद्ध भगवान सुखी हैं।

मोक्षदशा अनाकुल प्रवर्तित होती है। सिद्ध आनन्द स्वरूप में स्थिर है उसी प्रकार इस आत्मा का अतिन्द्रिय ध्रुवस्वभाव सम्यक् दृष्टि का विषय है। बहिर्मुख दृष्टि छोड़कर जो आनन्द प्रगट होता है वह मोक्षमार्ग है और पूर्ण आनन्द प्रगट हो वह मोक्ष है। इसप्रकार ज्ञान और आनन्द दोनों ही आत्मा के विशेषण हुए। अपने ज्ञानस्वभाव की दिव्यता जिनको स्वीकार हुई है उनके ह्रदय में देव की स्तुति उत्कीर्ण है।

अब, देव की बात करते हैं। जैसे सूर्य देव है वैसे ही सिद्धभगवान देव हैं; उसीप्रकार यह आत्मा भी दिव्य शक्तिवाला देव है, जिन्हें पूर्ण पर्याय की प्राप्ति अल्पकाल में होनेवाली है। सम्यक्दृष्टि, गणधरों, आचार्यों आदि को अल्पकाल में परिपूर्ण दशा होनेवाली है और संसार का अभाव होनेवाला है - ऐसे ज्ञानी जीवों के मन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रूपी शिला स्तंभ में अतिशय द्युति की स्तुति उत्कीर्ण हो गई है।

भगवान एक समय में तीन काल-तीन लोक को प्रत्यक्ष जानते हैं। अंतरंग में ज्ञान और आनन्द शक्तिरूप से था वह पूर्णरूप से प्रगट हो गया है - ऐसे भगवान की स्तुति बुधजनों के मन में उत्कीर्ण हो गई है। तीन काल तीन लोक को भगवान जानते हैं। भगवान ने देखा है वही होगा अनहोनी कभी नहीं होती और जो होनेवाला है वह कभी नहीं बदलेगा इसलिये अधीर क्यों होता है ? - ऐसा ज्ञानी कहते हैं।

इसे सुनकर कोई पूछता है कि जिससमय जो पर्याय जहाँ होगी वही होती है तो फिर उसमें पुरुषार्थ नहीं रहा ?

समाधानः- जब क्रमबद्ध पर्याय का निर्णय किया तब उसकी दृष्टि में सर्वज्ञ पद आ गया, वही पुरुषार्थ है। अज्ञानी को यह बात स्वीकार नहीं होती। भविष्य की सभी पर्यायें भगवान देखते हैं, वे पर्यायें आगे-पीछे नहीं होती - ऐसा ज्ञानस्वभाव में निर्णय किया उसे दिव्यशक्ति अंतरंग में आयी कि मेरा स्वभाव सर्वज्ञ है; इसप्रकार सर्वज्ञ की प्रतीति करने पर स्वयं ज्ञाता-दृष्टा रहता है और विशेष शुद्धि होनेपर अशुद्धता नाश को प्राप्त हो जाती है और केवलज्ञान प्राप्त करता है।

गणधर आदि सम्यग्दृष्टि के मन हृदय में निर्णय हुआ है। देखो ! गणधर देव आदिक बुध पुरुषों के मन में टंकोत्कीर्ण शुद्धात्म स्वरूप की दिव्यता की स्तुति का स्वरूप कहते हैं। द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय और उनके विषय से हटकर अतीन्द्रिय स्वभाव की ओर झुकने को भगवान की स्तुति कहते हैं।

धर्मी जीव संयोग का बखान नहीं करता, पुण्य-पाप का बखान नहीं करता और अपूर्ण पर्याय की भी प्रशंसा नहीं करता अपितु अंतरंग ज्ञानस्वभाव में एकाग्र होता है। अन्तरंग में एकाग्र होना वह स्तुति है। जिन्हें पूर्णपद प्रगट हुआ है वे एक समय में तीनकाल तीनलोक को जानते हैं।

इसप्रकार ज्ञानस्वभाव का निर्णय करनेवाला ज्ञान - राग और निमित्त से पृथक पड़ा है। पुण्य-पाप में एकाग्रता माननेवालों को अथवा दया-दानादि से लाभ माननेवाले को सर्वज्ञ की प्रतीति नहीं होती अर्थात् कि इस जगत में सिद्ध और अरिहन्त है उनकी उसे प्रतीति नहीं होती।

सर्वज्ञ देव राग से रहित हो गए हैं - ऐसा मेरा आत्मा राग से रहित है - ऐसा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निर्णय किये बिना, सर्वज्ञदेव की स्तुति उत्कीर्ण हुई है - ऐसा नहीं कहा जाता। सिद्ध का आत्मा विभाव और व्यवहार से रहित है, एक मात्र ज्ञान और आनन्द स्वरूप रह गया है - ऐसे देव होते हैं- ऐसी प्रतीति करनेवाले ने अपने ज्ञान को राग से रहित माना है।

मेरा स्वभाव पूर्ण जानना है। पूर्ण परमात्मा राग से रहित हो गया है। दृष्टि ज्ञान और रमणता की पूर्णता है - ऐसा निर्णय करनेवाला राग से रहित होकर स्वभाव में एकाग्र होता है वही - पुरुषार्थ है। यह आत्मा ज्ञान और आनन्द स्वरूप है। पूर्ण स्वभाव के आश्रय बिना, राग से रहित हुए बिना आत्मा की प्रतीति नहीं आती। पूर्णमुक्त हुए भगवान की प्रतीति सम्यग्दृष्टि के हृदय में उत्कीर्ण है।

कोई कहता है कि - यदि सर्वज्ञ सभी को जानते हैं तो इसमें हमारा पुरुषार्थ कहाँ रहा ? ऐसा कहनेवाले को सर्वज्ञ भगवान की प्रतीति नहीं है और इस जगत में केवलज्ञान है - ऐसी स्तुति उसे उत्कीर्ण नहीं हुई है। केवलज्ञानस्वभाव में एकाग्र होना वह निश्चय स्तुति है और जो विकल्प आता है वह व्यवहार स्तुति है। ज्ञान में उत्कीर्ण बात कभी नहीं बदलती।

धर्म का मूल सर्वज्ञ है - ऐसे सर्वज्ञ कौन है ? उसकी अज्ञानी को खबर नहीं है। सर्वज्ञ एक समय में भूत, वर्तमान, भविष्य की तीन काल की अवस्था को जानते हैं। जिसकी, जहाँ अवस्था जो होनेवाली है, वही होती है - ऐसा निर्णय करने जाए वहाँ अपना स्वभाव सर्वज्ञ है, जानने का है - ऐसा निर्णय करे वह जैन है। जैसे बोरे में ऊपर शक्कर नाम लिखे और अंदर चिरायता भरे तो चिरायता शक्कर नहीं होता वैसा ही बाह्य से जैन नाम धारण करने से जैन नहीं हो जाता।

इसतरह सर्वज्ञ का निर्णय धर्मात्मा को हुआ है। सिद्ध भगवान.को पूर्ण दिव्यशक्ति प्रगट हुई है, इसलिये वे देव है उसी तरह यह आत्मा भी दिव्यशक्तिवाला है। भगवान पूर्ण दशा को प्राप्त हुए है और अपूर्णता आदि का नाश किया वह कहाँ से हुआ है ? अंतरंग स्वभाव से प्रगट हुआ है। निश्चय से मेरा आत्मा देव है - ऐसा निर्णय करे तो व्यवहार से सिद्ध भगवान देव है।

जो पर का करना चाहता है अथवा व्यवहार से धर्म करना चाहता है उसे सर्वज्ञ की भी श्रद्धा नहीं, जैनधर्म की खबर नहीं। एक समय में केवलज्ञान प्रगट

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

किया और राग-द्वेष को जीतकर सर्वज्ञ पद को प्राप्त किया है - वे देवाधिदेव हैं, उनके ज्ञान में तीनलोक उत्कीर्ण हो गए हैं; वैसे ही मैं ज्ञाता हूँ, पर में मुझे फेरफार नहीं करना है तथा पर्याय में भी फेरफार नहीं करना है; इसप्रकार निर्णय करनेवाले को सर्वज्ञ उत्कीर्ण हो गए है। ज्ञान के साथ आनन्द नहीं आवे वे देव नहीं कहलाते।

यह आत्मा ज्ञान और आनन्द स्वरूप है - ऐसा निर्णय करनेवाले को देव की श्रद्धा हुई है । स्वभाव सन्मुख दृष्टिवाले को केवलज्ञान की प्रतीति है । अतः 'पुण्य-पाप और उनके फल की ओर के झुकाव से बस होओ और शुद्ध आत्मा की ओर परिपूर्ण ढलो '(- अग्रसर होओ)।

इसीलिये इस आत्मा को सुखसाधनाभास विषयों से बस होओ। स्त्री, पुत्र, दाल-भात, मकान आदि पूर्व पुण्य के कारण मिलते हैं किन्तु वे सुख के साधन नहीं हैं। अज्ञानी मानता है कि वे मुझे सुख के साधन हैं। इसलिये अब उन विषयों से बस होओ। मेरा आत्मा ज्ञान और आनंद स्वभावी है। पुण्य-पाप की ओर झुकाव वही विषय है, इसलिये अब बस होओ।

दया-दानादि की तरफ और उनके फल की ओर झुकाव बन्द होओ। मेरा स्वभाव ज्ञान और आनन्द है - ऐसी दृष्टि में स्वभाव को लिया है वह पर्याय पूर्ण होओ - ऐसी समझ करना वह क्रिया है इसके विपरीत एक रज कण की क्रिया करने की आत्मा में ताकत नहीं है किन्तु पर को जानने की पूर्ण ताकत (शक्ति) है। पुत्र, शरीर आदि का आत्मा कुछ नहीं कर सकता। जड़ की अवस्था जड़रूप होती है।

पर पदार्थ को परपने प्रकाशित करने की पूर्ण ताकत है किन्त पर को करने की आत्मा की ताकत नहीं है। आत्मा जगत को जाने किन्तु आत्मा के कारण शरीर चलता है अथवा वाणी निकलती है - ऐसी ताकत आत्मा में नहीं है। अज्ञानी इसके विपरीत मानता है, उसे ज्ञानतत्त्व की खबर नहीं है।

भगवान कहते हैं कि विषयों की ओर झुकाव बन्द होओ और आत्मा की ओर पूर्ण ढलो जो! रागादिक होते हैं वे मेरे ज्ञान के विषय हैं किन्तु उनको ध्येय करने का विषय - मेरा नहीं। आत्मा ज्ञान और आनन्द है, उसका निर्णय करके पूर्ण दशा होओ - यही सिद्ध भगवान बनने का उपाय है।

कोई कहता है कि - इसमें चौविहार (एकाशन) करने की बात कहाँ आई?

समाधानः- आत्मा पर पदार्थ का ग्रहण त्याग नहीं कर सकता किन्तु

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अज्ञानी इससे विपरीत मानता है। पर पदार्थ को ग्रहण करे व छोड़े - ऐसा मानना वह महा अज्ञान और पाखंड है। भगवान आत्मा स्वयं ज्ञानानन्द देवस्वरूप है जबकि अज्ञानी सूर्य को देव मानते हैं और ज्ञानी अपनी आत्मा को देव मानते हैं। जिसे पूर्ण केवलज्ञान और पूर्ण आनन्द प्रगट होता है - वे देव हैं। उसकी बात जिसने स्वीकारी वह ज्ञानी है तथा उसे सर्वज्ञ की प्रतीति है।

जो पर्याय जिस समय क्रमबद्ध होनेवाली है वही होगी - उसे फेरफार करने में कोई समर्थ्य नहीं है। इसप्रकार जिसे ज्ञानस्वभाव अथवा धर्म स्वीकार हुआ है उसे ही सर्वज्ञ की प्रतीति हुई है और वह अल्प काल में सर्वज्ञ होनेवाला है। बाहर जो कुछ करना ही नहीं है - पूर्ण ज्ञान और आनन्द स्वरूप है - ऐसी प्रतीति भाव (होना) चाहिये। राग जानने योग्य है किन्तु करने योग्य नहीं - इसप्रकार जिसे अकेले ज्ञान में यह बात स्वीकार हुई है उसे केवली भगवान का स्वरूप स्वीकार हुआ है।

भावार्थ पर प्रवचन:-सिद्ध भगवान स्व-पर प्रकाशपने तीनकाल तीनलोक को जानते हैं, उसमें बाह्य कारण नहीं क्योंकि वे अनन्त आत्मिक आनन्दरूप हैं और अचिंत्य दिव्य रूप हैं। गणधर उनकी बाह्य - अभ्यंतर स्तुति करते हैं। सिद्ध भगवान की भांति ही सर्व जीवों का स्वभाव है। कहा भी है :-

चेतनरूप अनूप अमूरति सिद्ध समान पद मेरो,
मोह महातम आतम अंग कियौ पर संग महातम घेरौ।
ज्ञान कला उपजी अब मोही, कहो गुण नाटक आगम कैरो,
जासु प्रसाद सधै शिव मारग वेगि मिटै भव वास बसेरौ।

समयसार नाटक में आता है कि सिद्ध भगवान को पूर्ण पर्याय प्रगट हो गई है, वैसा ही सभी जीवों का स्वभाव है। आनन्द जिनका प्रयोजन है - ऐसे जीव पुण्य-पाप और उनके फल का अवलम्बन छोड़कर निरालम्बी परमानंद स्वभाव से परिणमित हो। जैसे चने में मिठास भरी है वह व्यक्त होती है वैसे ही आत्मा में आनन्द भरा है वह व्यक्त होता है।

इसप्रकार आनन्द अधिकार पूर्ण हुआ।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचनसार गाथा ६९

अथेन्द्रियसुखस्वरूपविचारमुपक्रममाणस्तत्साधनस्वरूपमुपन्यस्यति-

देवदजदिगुरूपूजासु चेव दाणम्मि वा सुसीलेसु।
उववासादिसु रत्तो सुहोवओगप्पगो अप्पा ॥६९॥

-: अब, यहाँ शुभ परिणाम का अधिकार प्रारम्भ होता है :-

अब, इन्द्रिय-सुखस्वरूप सम्बन्धी विचार को लेकर, उसके (इन्द्रिय सुख के) साधन का (-शुभोपयोग का) स्वरूप कहते हैं :-

हो देव-गुरु पूजा यती पूजा सुशील व दान में।
है आत्मा उपयोग शुभयुत लीन उपवासादि में ॥६९॥

अन्वयार्थ :- (देवतायतिगुरुपूजासु) देव, गुरु और यति की पूजा में, **(दाने च एव)** दान में **(सुशीलेषु वा)** एवं सुशीलों में **(उपवासादिषु)** और उपवासादिक में **(रक्तः आत्मा)** लीन आत्मा **(शुभोपयोगात्मकः)** शुभोपयोगात्मक है।

टीका:- जब यह आत्मा दुःख की साधनभूत - ऐसी द्वेषरूप तथा इन्द्रिय विषय की अनुरागरूप अशुभोपयोग भूमिका का उल्लंघन करके, देव-गुरु-याति की पूजा, दान, शील और उपवासादिक के प्रीतिस्वरूप धर्मानुराग को अंगीकार करता है तब वह इन्द्रियसुख की साधनभूत शुभोपयोग भूमिका में आरूढ़ कहलाता है।

भावार्थ :- सर्व दोष रहित परमात्मा वह देव हैं; भेदाभेद रत्नत्रय के स्वयं आराधक तथा आराधना के अर्थी अन्य भव्य जीवों को जिनदीक्षा देनेवाले वे गुरु हैं; इन्द्रियजय करके शुद्धात्मस्वरूप में प्रयत्न परायण वे यति हैं। ऐसे देव-गुरु-यति की अथवा उनकी प्रतिमा की पूजा में, आहारादिक चतुर्विध दान में, आचाराँगादि शास्त्रों में कहे हुए शीलव्रतों में तथा उपवासादिक तप में प्रीतिका होना वह धर्मानुराग है। जो आत्मा द्वेषरूप और विषयानुरागरूप अशुभोपयोग को पार करके धर्मानुराग को अंगीकार करता है वह शुभोपयोगी है ॥६९॥

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गाथा ६९ पर प्रवचन

अब, यहाँ शुभ परिणाम का अधिकार प्रारम्भ होता है। इन्द्रियसुख स्वरूप सम्बन्धी विचार को लेकर प्रारम्भ में इन्द्रिय सुख के साधन का अर्थात् शुभोपयोग का स्वरूप कहते हैं। यह अधिकार यहाँ क्यों आया ? यह अधिकार ज्ञान तत्त्व का है। आत्मा ज्ञानस्वभावी है। अंतरंग ज्ञानस्वभाव के साधन से धर्म की प्राप्ति होती है और शुभ भाव ज्ञान तत्त्व का साधन नहीं किन्तु इन्द्रियसुख का साधन है - ऐसा बताते है। चैतन्य स्वभावी आत्मा के अंतरंग साधन से मुक्ति प्राप्त करते हैं। शुभोपयोग, ज्ञान तत्त्व को अथवा पूर्ण पर्याय को प्राप्त करने का साधन नहीं। अपूर्ण दशा में शुभ भाव आता है। वह इन्द्रिय सुख का साधन है किन्तु अतीन्द्रिय आनन्द का नहीं। इसलिये यह अधिकार आया है।

जो देव-गुरु - और यति की पूजा में, दान में सुशीलों में अथवा उपवास आदि में लीन होता है उसे शुभोपयोग होता है। पूजा, दान, शील के भाव शुभ हैं और वे इन्द्रियसुख के साधन है। जब यह आत्मा दुःख के साधनभूत ऐसे द्वेष भाव और इन्द्रियों के विषय के अशुभोपयोग भूमिका का उल्लंघन करता है अर्थात् अशुभोपयोग नहीं होता तब सच्चे देव, गुरु और साधु की पूजा करता है।

गुरु आदि को दान देता है, अखंड ब्रह्मचर्य का पालन करता है और उपवास आदि में प्रीति स्वरूप धर्मानुराग करता है - यह शुभ परिणाम है किन्तु वह मोक्ष का साधन नहीं है। जो निश्चय दान, शील, तप हैं वे मोक्ष का साधन है अर्थात् निश्चय स्वरूप का दान शील और इच्छा निरोध तप धर्म का साधन है।

शुभराग संयोगी भाव हैं इसलिये वह संयोग प्राप्त करता है, किन्तु धर्म प्राप्त नहीं करता। यहाँ धर्मानुराग कहा है अर्थात् पुण्य बन्ध होता है। शुभोपयोग इन्द्रिय सुख का साधन है किन्तु वह अतीन्द्रिय आनन्द का साधन नहीं। यहाँ धर्मानुराग का अर्थ पुण्य समझना, देव-गुरु-यति की पूजा, दान, शील, उपवास सभी शुभभाव हैं। महाव्रत और प्रतिमा शील में आ जाती है।

चिदानन्द भगवान में ज्ञान के साथ आनन्द अविनाभाव (नियम से होता) है। ऐसे आनन्द का कारण शुभोपयोग नहीं है। शुभोपयोगी जीव इन्द्रिय सुख के

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

साधनभूत शुभोपयोग में आरूढ़ कहा जाता है।

भावार्थ पर प्रवचन :- देव-गुरु और यति की पूजा का भाव शुभ है-धर्म नहीं।अठारह दोष रहित देव कहलाते हैं। क्षुधा, तृषा, मोह, आदि अठारह दोष सहित को देव माने - उनकी तो बात नहीं, किन्तु अठारह दोष रहित देव की पूजा का शुभराग धर्मी को आता है, वह पुण्य भी बन्ध है। अतीन्द्रिय आनन्द की मुख्यता में चौथे, पाँचवें, छटवें, (गुणस्थान) में शुभराग आता है किन्तु उसकी मुख्यता नहीं। शुद्ध चिदानन्द स्वभाव को धर्मी साधते हैं। उन्हें राग रहित स्वभाव की साधन की मुख्यता है।

सम्यग्दृष्टि शुभ में आरूढ़ नहीं किन्तु शुभ को जानते हैं, धर्मात्मा की दृष्टि शुभोपयोग ऊपर नहीं होती अपितु वे शुद्ध चैतन्य स्वभाव को आनन्द का साधन मानते है। शुभराग अतीन्द्रिय सुख का साधन नहीं है इसलिये वह इन्द्रिय सुख और शुभ राग को हेय मानता है अर्थात् इन्द्रियों का सुख मिलेगा - ऐसी उसे रुचि नहीं होती।

भेदाभेद रत्नत्रय के आराधक गुरु हैं, वे भेद रत्नत्रय के आराधक व्यवहार से कहलाते हैं। आत्मा अखंड आनन्द मूर्ति है - ऐसी दृष्टि-ज्ञान और रमणतावाले को आराधक कहा है। बीच में देव-गुरु-शास्त्र का शुभराग आता है इसलिये व्यवहार से उन्हें भेद के आराधक कहा है। इसप्रकार उन्हें भेदाभेद दोनों के आराधक कहा है वास्तव में तो वे अभेद के आराधक हैं किन्तु भेद के आराधक नहीं हैं देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, शास्त्र का ज्ञान और महाव्रत के परिणाम आते हैं इसलिये उन्हें उनका आराधक कहा।

उस आराधना के अर्थ अन्य भव्य जीवों को जिनदीक्षा के देनेवाले वे गुरु है तथा जो अतीन्द्रिय आनन्द में स्थिर होकर इन्द्रियों पर विजयी हुए हैं, वे आत्म स्वभाव में तत्पर हैं वे यति है। ऐसे देव-गुरु-यति की अथवा उनकी प्रतिमा की पूजा में शुभोपयोग होता है इसलिये इन्द्रियसुख मिलता है। मुनि को आहार - दानादि देने से संसार परित (समाप्त) नहीं होता, किन्तु इन्द्रिय सुख मिलता है। मुनि को आहार दान देने पर जो भाव होता है वह शुभोपयोग है वह धर्म का साधन नहीं अपितु इन्द्रियसुख का साधन है, किन्तु स्वरूप के सुख का साधन नहीं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञानी को शुभराग आता है यह बात सही है किन्तु वह ज्ञान तत्त्व का साधन नहीं है। आत्मा ज्ञान स्वरूप है - उसकी एकाग्रता ही साधन है। यहाँ चार प्रकार के दान से शुभ भाव कहा किन्तु उससे संसार परित (नष्ट) हो जाये - ऐसा नहीं कहा। देव-गुरु व यति की पूजा से संवर होता है - ऐसा नहीं कहा। कितने ही लोग कहते हैं कि पूजा से आश्रव दूर होता है और संवर बढ़ता है। किन्तु वह बात सही नहीं है तथा मुनि को आहार दान देने से संसार परित हो जाये यह बात भी झूठी है, क्योंकि वह शुभ परिणाम है, इसलिये वह इन्द्रियसुख का साधन है।

श्वेताम्बर शास्त्र में कहा है कि - हाथी के भव में खरगोश की दया से संसार परित हुआ - यह बात खोटी (झूठी) है क्योंकि दान देने की क्रिया जड़ की है और दान देने का भाव शुभराग है। राग मुक्ति का कारण नहीं किन्तु इन्द्रियसुख का साधन है।

आचारांग आदि शास्त्रों में कहे हुए शील, व्रत, महाव्रत और प्रतिमा में शुभराग होता है किन्तु वह धर्म का साधन नहीं है। अष्टमी चर्तुदशी को एकाशन, उपवास करना वह धर्म नहीं किन्तु शुभराग है, क्योंकि उससे इन्द्रियसुख मिलता है किन्तु आत्मा का सुख नहीं मिलता। जब आत्मा द्वेष और विषयानुरागरूप अशुभोपयोग छोड़ता है और धर्मानुराग अंगीकार करता है वह शुभोपयोगी है।

धर्मानुराग अर्थात् शुभराग समझना क्योंकि वास्तव में धर्म तो ज्ञानानन्द स्वभाव का अंतरंग प्रेम होता है वहाँ राग का अभाव होता है, जहाँ दूसरों को मारने का भाव और विषयानुराग नहीं होता वहाँ धर्मानुराग है - ऐसा कहा है। विषय के अनुराग की अशुभ भूमिका का उल्लंघन किया है और शुभराग की भूमिका प्राप्त की है, इसलिये इन्द्रिय सुख मिलेगा, किन्तु उससे ज्ञानानन्द स्वभाव नहीं मिलेगा।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचनसार गाथा ७०

अथ शुभोपयोगसाध्यत्वेनेन्द्रियसुखमाख्याति-

जुत्तो सुहेण आदा तिरिओ वा माणुसो व देवो वा।
भूदो तावदि कालं लहदि सुहं इन्दियं विविहं ।।७०।।

अब, इन्द्रियसुख को शुभोपयोग के साध्य के रूप में (अर्थात् शुभोपयोग साधन है और उसका साध्य इन्द्रियसुख है - ऐसा) कहते हैं :-

शुभ से सहित यह आत्मा तिर्यक् मनुज वा देव हो।
है एक सीमित समय पाता विविध इन्द्रिय-सौख्य को ।।७०।।

अन्वयार्थ :- **(शुभेन युक्तः)** शुभोपयोगयुक्त **(आत्मा)** आत्मा **(तिर्यक् वा)** तिर्यंच, **(मानुषः वा)** मनुष्य **(देवः वा)** अथवा देव **(भूतः)** होकर, **(तावतत्कालं)** उतने समय तक **(विविधं)** विविध **(ऐन्द्रियं सुखं)** इन्द्रियसुख **(लभते)** प्राप्त करता है।

टीका :- यह आत्मा इन्द्रियसुख के साधनभूत शुभोपयोग की सामर्थ्य से उसके अधिष्ठानभूत (-इन्द्रियसुख के स्थानभूत-आधारभूत - ऐसी) तिर्यंच, मनुष्य और देवत्व की भूमिकाओं में से किसी एक भूमिका को प्राप्त करके जितने समय तक (उसमें) रहता है, उतने समय तक अनेक प्रकार का इन्द्रियसुख प्राप्त करता है ।।७०।।

ॐ ॐ ॐ

गाथा ७०पर प्रवचन

शुभराग से संसार का अभाव नहीं होता। पुण्य-पाप रहित स्वभाव के वेदन बिना संसार का अभाव नहीं होता। शुभराग से संसार पारित नहीं होता। देव-गुरु-शास्त्र की पूजा करे, बारह अणुव्रत पाले, तप करे, दान दे, बरसी-तप करे उसमें पुण्य है। यदि मान, पूजा, सत्कार के लिये बरसी तप करे तो पुण्य भी नहीं है। जिन्हें सच्चे-देव-गुरु-शास्त्र निमित्त नहीं उनका शुभराग व्यवहाराभास भी नहीं कहलाता।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यहाँ जो शुभोपयोग सहित आत्मा कहा है उसमें मात्र बाहर की क्रिया की बात नहीं है। बाहर की क्रिया करता हो वहाँ, वह भगवान की पूजा करता दिखाई देता है किन्तु अंतर में परिणाम अच्छे नहीं हो तो शुभोपयोग भी नहीं होता। यहाँ तो परिणाम शुभ होता है वह आत्मा तिर्यंच, मनुष्य, व देव होता है और हमको पैसा मिला, राजपद मिला - ऐसा जो मानता है उतने समय वह विविध सुख को प्राप्त करता है। लोग उसे सुखी कहते हैं इसलिये यहाँ उसे सुखी कहा है।

अज्ञानी ऐसा मानता है कि जब बहुत अधिक पुण्य होता है तब आत्मा की पवित्रता बढ़ जाती है, किन्तु वह पुण्य के ऊपर दृष्टि रखनेवाला शुभ से छूटकर अशुभ हो जानेवाला है। ज्ञानी को शुभराग होनेपर भी शुद्ध (स्वभाव) ऊपर दृष्टि होने से शुभाशुभ छोड़कर शुद्ध हो जायेगा। शुभ के फल में देव गति, मनुष्य गति और तिर्यंच गति का अनित्य और काल्पनिक सुख मिलता है।

यह आत्मा इन्द्रिय सुख के साधनभूत व्रत, पूजा, दानादि के शुभोपयोग की सामर्थ्य से इन्द्रिय के स्थानभूत-आधारभूत ऐसी तिर्यंचपने की मनुष्यपने की ओर देवपने की भूमिका में से कोई एक भूमिका को प्राप्त करता है। शुभभाव से पैसेवाला होता है, राजा होता है अथवा भोग भूमि में जाता है।

अज्ञानी जीव कहता है कि पुण्य के कारण सुनने को मिला है इसलिये उससे धर्म होगा। किन्तु भाई! इसमें धर्म नहीं। शुभोपयोग से इन्द्रिय सुख मिलेगा - उससे जुगलिया होता है, पैसेवाला होता है अथवा देव होता है। इसमें से किसी एक भूमिका को प्राप्त करता है।

बारह अणुव्रत पाले तो भगवान के पास जाए और वहाँ सम्यक्त्व को प्राप्त करे - ऐसा जो अज्ञानी मानता है उससे कहते हैं कि जो यहाँ ही पुण्य की रुचिवाला है वह वहाँ भी पुण्य के संयोग में फंस जायेगा। स्वयं आत्मा ज्ञानानन्द निर्मल है उसकी दृष्टि ज्ञान और रमणता के सुख, का आधार आत्मा है और इन्द्रिय सुख का आधार तिर्यंच, मनुष्य और देव है।

इन्द्रियसुख का आधार आत्मा नहीं है। ज्ञानतत्त्व का साधन शुभोपयोग नहीं। तू जाननहार है - ऐसे स्वभाव की श्रद्धा कर और उसका परिणमन कर! दान, शील, तप और शुभभाव से त्रिर्यंच, मनुष्यऔर देव इन तीन में से किसी एक गति

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

को प्राप्त करेगा किन्तु उससे भव का अभाव नहीं होगा। उनका फल अनित्य है अर्थात् थोड़े समय रहता है। जितने समय रहता है उतने समय अनेक प्रकार के इन्द्रिय सुख को प्राप्त करता है। मनुष्य में भी पुण्य का काल बदलकर पाप का उदय आता है और इन्द्रियसुख उड़ (समाप्त हो) जाता है।

आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है, उसके आधार से जो आनन्द प्रगट होता है उसका अधिष्ठाता आत्मा है। आत्मा का कभी नाश नहीं होता, इसलिये उसके आधार से जो शाश्वत् आनन्द और सुख मिलता है वह सादि अनन्त काल तक रहता है - इन्द्रियसुख तो थोड़े ही समय रहता है आत्मा ज्ञान स्वरूप त्रिकाल है, उसके आधार से जो आनन्द प्रगट होता है उसका अन्त नहीं होता। इन्द्रियसुख का आधार गति है और गति क्षणिक है, इसलिये इन्द्रिय सुख थोड़े समय रहता है।

संसार संकट में फँसे हुये प्राणियों का उद्धार करनेवाला धर्म है किन्तु स्वार्थी दुष्टोने उसको विपरीत ही कर दिया है अर्थात् उनका माना हुआ धर्म का स्वरूप संसार में केवल डुबानेवाला ही है इसलिये अन्य जीवों को चाहिये कि वे भलीभाँति परीक्षा कर धर्म को ग्रहण करें।

- श्री पद्मनन्दी पंचविंशतिका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचनसार गाथा ७१

अथैवमिन्द्रियसुखमुत्क्षिप्य दुःखत्वे प्रक्षिपति-

सोक्खं सहावसिद्धं णत्थि सुराणं पि सिद्धिमुवदेसे।
ते देहवेदणट्टा रमंति विसएसु रम्मेसु ॥७१॥

इसप्रकार इन्द्रियसुख की बात उठाकर अब इन्द्रियसुख को दुःखपने में डालते हैं:-

है सुरों के भी सुख न स्वाभाविक प्रसिध उपदेश से।
वे रम्य विषयों में रमें हैं दुखित वेदन देह से ॥७१॥

अन्वयार्थ :- (उपदेशे सिद्धं) (जिनेन्द्रदेव के) उपदेश से सिद्ध है कि **(सुराणाम् अपि)** देवों के भी **(स्वभावसिद्धं)** स्वभावसिद्ध **(सौख्यं)** सुख **(नास्ति)** नहीं है; **(ते)** वे **(देहवेदनार्ता)** (पञ्चेन्द्रियमय) देह की वेदना से पीड़ित होनेसे **(रम्येषु विषयेषु)** रम्य विषयों में **(रमन्ते)** रमते हैं।

टीका :- इन्द्रियसुख के भाजनों में प्रधान देव हैं; उनके भी वास्तव में स्वाभाविक सुख नहीं है, उलटा उनके स्वाभाविक दुःख ही देखा जाता है; क्योंकि वे पञ्चेन्द्रियात्मक शरीररूपी पिशाच की पीड़ा से परवश होनेसे [1]भृगुप्रपात के समान मनोज्ञ विषयों की ओर दौड़ते हैं॥७१॥

ॐ ॐ ॐ

गाथा ७१ पर प्रवचन

जिनेन्द्रदेव के उपदेश में सिद्ध है कि देवों को भी आत्मा के आनन्द से प्राप्त हुआ सुख नहीं है क्योंकि वहाँ इन्द्रिय सुख है। मनुष्य, तिर्यंच और देव तीनों में इन्द्रिय सुख है यह बात आ गई है। अब उनमें अधिक पुण्यवाले देव की बात करते हैं। देवों को सुख नहीं इसलिये वे विषयों की ओर दौड़ते हैं। वे देह की ओर के

[1] भृगुप्रपात = अत्यन्त दुःख से घबराकर आत्मघात करने के लिये पर्वत के निराधार उच्च शिखर से गिरना। (भृगु = पर्वत का निराधार उच्च स्थान-शिखर; प्रपात = गिरना)

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

झुकाव में, रूप देखने में शब्द सुनने आदि में पीड़ित हुए हैं और विषयों में रमते हैं इसलिये उन्हें राग उत्पन्न होता है वह दुःख है। इसप्रकार अधिक पुण्यवाले देव भी स्वाभाविक दुःख भोगते हैं।

इन्द्रिय सुख के भाजनों में प्रधान देव है। इन्द्रिय सुख का आधार तीन गतियाँ कही गई है। उनमें प्रधान देव है। तिर्यंच और मनुष्य को गौण सुख है। इकतीस सागर की स्थितिवाले देवों को भी आत्मा का सुख नहीं है अपितु उनको स्वाभाविक अर्थात् प्रत्यक्ष दुःख है वहाँ आत्मा का सुख नहीं क्योंकि ज्ञानतत्त्व के साधन से ही सुख मिलता है, किन्तु शुभराग से सुख नहीं मिलता।

सम्यग्दृष्टि जीव सर्वार्थसिद्धि में जाए वहाँ पूर्ण आनन्द नहीं है वहाँ से मनुष्य होकर आत्मा की साधना करके पूर्णदशा प्रगट करेगा तब उसे पूर्ण आनन्द प्रगट होगा। देवों को मान (आदर) लेने की नाटक देखने आदि की आकुलता है उनको दुःख ही दिखाई देता है। दया-दान, व्रत-तप, देव-गुरु-शास्त्र की पूजा के फल में देव, मनुष्य और तिर्यंच गति मिलती है। उसमें अधिक पुण्यवाले देव भी दुःखी हैं - देव भी सुखी नहीं हैं। सेठ सेनापति अथवा देव भी सुखी नहीं। वीतरागी मुनि सुखी हैं। पूर्व पुण्य के कारण अनुकूल संयोग मिले वह आत्मा का सुख नहीं है।

देव भी विषयों में सुख मानकर उनकी ओर झपटते हैं, इसलिये वे दुःखी हैं। आत्मा भगवान है और शरीर भूत अथवा पिशाच है। देव भी शरीर के पाँचों इन्द्रियों के विषयों की ओर झुकते (दौड़ते) हैं। स्वयं से बड़े देव को देखकर ईर्ष्या करते हैं। जो अतीन्द्रिय स्वरूप आत्मा का साधन छोड़कर शुभराग का साधन करता है उसको इन्द्रिय सुख मिलता है।

बड़े देव भी परवश होते हैं। जैसे कोई अत्यधिक दुःख से पीड़ित होकर आत्महत्या करने के लिये पर्वत के उच्च शिखर से गिरता है, वैसे ही देव भृगुप्रपात के समान विषयों की ओर दौड़ता है। पाप रूप अशुभ राग होनेपर परवश होकर इन्द्रियों के विषयों की ओर दौड़ते हैं, किन्तु चिदानन्द भगवान आत्मा जो कि अमृत कुण्ड है उसकी ओर नहीं झुकते। पर की ओर धसते (झुकते-दौड़ते) हैं।

देव पाँच इन्द्रियों के विषयों की ओर झुकते हैं; शरीर ऊपर उनकी दृष्टि गई है। जैसे किसी पर भूत सवार हुआ हो तो उसे भान नहीं रहता; वैसे ही ऐसी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पीड़ावाले को भान नहीं रहता; किन्तु अज्ञानी उसमें सुख मानता है। यहाँ तो कहते हैं कि देवों को भी दुःख है। देवों को अमृत की डकार आवे और शरीर भी स्वस्थ (अच्छा) हो तो भी वे देव विषयों में राग करके विषय से पछाड़ खाते हैं, इसलिये उन्हें सुख नहीं है। जब देवों को भी सुख नहीं है तो फिर मनुष्यों को कहाँ से हो ?

इन्द्रिय विषय का अधिष्ठान तीन गति हैं। उसमें देव सबसे ऊंचे हैं। जब वे भी दुःखी हैं तब मनुष्य और तिर्यंचों को तो उतना पुण्य संयोग भी नहीं होता तो उनकी क्या बात करना ? जैसे पागल कुत्ते को सुख नहीं होता; वैसे ही विषयों की गृद्धतावाले जीवों को सुख नहीं होता। तीर्थयात्रा, पूजा विषय सुख का साधन है किन्तु वह धर्म का साधन नहीं है।

प्रश्नः- तो फिर पूजा आदि किस लिये करते हो ?

समाधानः- साधक को शुभराग आ जाता है किन्तु वे उसे धर्म का साधन नहीं मानते । अज्ञानी कहता है कि यदि शुभ-राग अधर्म है तो उसे किसलिये करते हो ? भाई ! शुभ-राग आए वह जुदी (अलग) बात है किन्तु उसे धर्म का साधन मानना मिथ्यात्व है। शुभराग इन्द्रिय सुख का साधन है; इन्द्रियसुख-साध्य है और उसका अधिष्ठान तीन गति है; उसमें अधिक पुण्यवाले देव भी दुःखी हैं।

जैसे अत्यधिक दुःख से पीड़ित हुआ मनुष्य अपघात करता है - संयोगों में प्रतिकूलता मानकर अपघात करता है क्योंकि वहाँ दुःख है; वैसे ही अज्ञानी विषयों की ओर झपट्टा मारता (दौड़ता) है, किन्तु आत्मा की ओर नहीं झुकता। आत्मा जो कि आनन्द कंद है उसे छोड़कर इसे लाऊँ और उसे लाऊँ इसप्रकार तृष्णा को बढ़ाता है। इन्द्रिय सुख को लोग सुख मानते हैं लेकिन वह सुख नहीं अपितु दुःख है - ऐसा आगे युक्ति से सिद्ध करेंगे। शुभ के फल में संयोग मिलते हैं - अज्ञानी उनमें सुख मानकर झपटता है।

यह ज्ञान तत्त्व अधिकार है। जानना आत्मा का मूल स्वभाव है। उसका अवलम्बन ले तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है - ज्ञान के सिवाय (अतिरिक्त) पुण्य-पाप का अवलम्बन ले तो धर्म नहीं होता। जानना आत्मा का स्वरूप है; उसकी एकाग्रता को छोड़कर दया-दान, व्रत-तप के भाव करता है, उससे इन्द्रिय सुख मिलता है, किन्तु आत्मा का सुख नहीं मिलता। दया- दानादि भाव राग है -

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पुण्य है, उन शुभ परिणामों का ध्येय इन्द्रियसुख है और उनका अधिष्ठान मनुष्य तिर्यंच और देवगति में उत्पन्न होना है, किन्तु उससे आत्मा में शान्ति उत्पन्न नहीं होती।

आत्मा वस्तु है, उसका कायमी (नित्य रहनेवाला) स्वभाव ज्ञान है। ज्ञान, ज्ञान में एकाग्र हो तो धर्म और शान्ति हो। इसके विपरीत यदि वह पुण्य-पाप में एकाग्र हो तो इन्द्रिय सुख होता है, उस सुख का स्थान तीन गति हैं इसलिये उसे स्वभाव की स्थिरता का आधार नहीं है।

अहा! भगवान तुझमें देह-मन-वाणी तो नहीं और राग भी तुझमें नहीं है। परन्तु यहाँ तो इससे गम्भीर बात कहते हैं कि तुझमें शुद्धपर्याय होती है। शुद्धपर्याय वृद्धिगत होती है, पूर्ण शुद्धपर्याय होती है - ऐसी ध्यानावली तुझमें होने का शुद्धनय नहीं कहता। क्योंकि तुम तो त्रैकालिक तत्त्व सदैव कल्याणस्वरूप शुद्ध ही हो। अरे! यह पञ्चम काल है और सभा को देखकर बात कहें! अरे भाई! सुनो ... सुनो हम तो आत्मा को देखकर बात करते हैं।

- पू. कानजीस्वामी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचनसार गाथा ७२

अथैवमिन्द्रियसुखस्य दुःखतायां युक्त्यावतारितायामिन्द्रिय-सुखसाधनीभूतपुण्यनिर्वर्तकशुभोपयोगस्य दुःखसाधनीभूतपापनिर्वर्त-काशुभोपयोगविशेषादविशेषत्वमवतारयति-

णरणारयतिरियसुरा भजन्ति जदि देहसंभवं दुक्खं।
किह सो सुहो व असुहो उवओगो हवदि जीवाणं ।।७२।।

इसप्रकार युक्तिपूर्वक इन्द्रियसुख को दुःखरूप प्रगट करके, अब इन्द्रियसुख के साधनभूत पुण्य को उत्पन्न करेवाले शुभोपयोग की, दुःख के साधनभूत पाप को उत्पन्न करनेवाले अशुभोपयोग से अविशेषता प्रगट करते हैं :-

नर-नारकी-तिर्यंच-सुर सब देहगत दुःख भोगते।
तो जीव का उपयोग वह शुभ-अशुभ, कैसे बोलते ? ।।७२।।

अन्वयार्थ :- **(नरनारकतिर्यक्सुराः)** मनुष्य, नारकी, तिर्यंच और देव (-सभी) **(यदि)** यदि **(देहसंभवं)** देहोत्पन्न **(दुःखं)** दुःख को **(भजंति)** अनुभव करते हैं, **(जीवानां)** तो जीवों का **(सः उपयोगः)** वह (शुद्धोपयोग से विलक्षण-अशुद्ध) उपयोग **(शुभः वा अशुभः)** शुभ और अशुभ-दो प्रकार का **(कथं भवति)** कैसे है ? (अर्थात् नहीं है)

टीका :- यदि शुभोपयोगजन्य उदयगत पुण्य की सम्पत्तिवाले देवादिक (अर्थात् शुभोपयोगजन्य पुण्य के उदय से प्राप्त होनेवाली ऋद्धिवाले देव इत्यादि) और अशुभोपयोग जन्य उदयगत पाप की अपादावाले नारकादिक - यह दोनों स्वाभाविक सुख के अभाव के कारण अविशेषरूप से (-बिना अन्तर के) पंचेन्द्रियात्मक शरीर सम्बंधी दुःख का ही अनुभव करते हैं, तब फिर परमार्थ से शुभ और अशुभ उपयोग की पृथकत्वव्यवस्था नहीं रहती।

भावार्थ :- शुभोपयोगजन्य पुण्य के फलरूप में देवादि की सम्पदायें मिलती हैं, और अशुभोपयोगजन्य पाप के फलरूप में नारकादिक की आपदाएं

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मिलती हैं। किन्तु वे देवादिक तथा नारकादिक दोनों परमार्थ से दुःखी ही हैं। इसप्रकार दोनों का फल समान होनेसे शुभोपयोग और अशुभोपयोग दोनों परमार्थ से समान ही हैं; अर्थात् उपयोग में - अशुद्धोपयोग में शुभ और अशुभ नामक भेद परमार्थ से घटित नहीं होते।

गाथा ७२ पर प्रवचन

इसतरह युक्ति से इन्द्रियसुख को दुःखरूप प्रगट करते हैं। अज्ञानी जीव विषयों में झपट्टा मारता है। पैसा, आबरू, कीर्ति को भोगने के लिए जाता है जो दुःख है। जैसे पर्वत के ऊपर का निराधार पत्थर ऊपर से गिरता है वैसे ही अज्ञानी पूर्व पुण्य के फल के विषयो में झुलसता है क्योंकि वहां दुःख है इसलिए शुभराग आदरणीय नहीं है।

इन्द्रियसुख को उत्पन्न करनेवाले दया दानादि भाव शुभभाव हैं और दुःख के कारण - ऐसे पाप को उत्पन्न करनेवाले हिंसा, झूठ, चोरी के भाव अशुभभाव हैं। दया-दानादि से पुण्य कर्म का बन्ध हो और स्वर्गादि मिले तथा हिंसा, झूठ से पाप कर्म का बन्ध हो और नरकादि मिले; फिर भी दोनो में अन्तर नहीं है। क्योंकि उन दोनों के फल में दुःख ही है। पुण्य का फल हो अथवा पाप का फल, दोनों दुःख के कारण है। इसप्रकार यहाँ दोनों में अविशेषपना प्रगट करते हैं।

यहाँ देहगत दुःख कहा किन्तु आत्मगत नहीं कहा क्योंकि मनुष्य, नारकी, पशु और देव सभी देहोत्पन्न दुःख का अनुभव करते हैं। पुण्य-पाप के फल में पाँच इन्द्रियों के विषयों में जीव झुकता है वह दुःख है। राजा और धनिक इत्यादि दुःख को अनुभव करते हैं। चारों गतियों का एक ही प्रकार है। दया-दान, व्रत के परिणाम को अज्ञानी व्यवहार से धर्म का अंश कहता है, किन्तु यह बात असत्य है क्योंकि पुण्य के फल में ये देवादिक देहगत दुःख को अनुभवते हैं। पाप के फल में नारकी देहगत दुःख को अनुभवते हैं।

आत्मा ज्ञानानन्द स्वरूप है, उसमें रमणता करना वह मुक्ति का कारण है। पुण्य-पाप दोनो ही भाव विपरीत हैं। दोनों में अन्तर नहीं करना चाहिए। आत्मा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शुद्ध चिदानन्द है, उसकी दृष्टि करके अन्तर स्थिरता करे वह धार्मिक क्रिया है। दया-दान यात्रा शुभ है और हिंसा, झूठ, चोरी पाप है - दोनो में दुःख है किन्तु उनमें आत्मगत सुख नहीं है। शुभोपयोग से इन्द्रिय सुख मिलता है किन्तु शुभ और अशुभ दोनो ही मलिन भाव हैं - संसार का कारण है किन्तु धर्म का कारण नहीं।

जैसे पुण्य के उदयवाले देहगत दुःख को अनुभवता है वैसे ही पाप के उदयवाले भी देहगत दुःख को ही अनुभवते हैं। पूर्व में शुभोपयोग किया था इससे पुण्य होता है वह पुण्य भाव है अर्थात् अधर्म है। राग में किंचित भी धर्म नहीं है इसलिए वह अधर्म है।

शुभभाव से बंधे हुए पूर्व पुण्य कर्म के कारण सम्पदा मिली है, जो दुःख का कारण है। हिंसा, झूठ चोरी की वासना से पापकर्म बंधा है और उससे प्रतिकूल संयोग मिले हैं। दोनों को स्वाभाविक सुख का अभाव है। इसप्रकार श्रद्धा करके आत्मा की पहचान कर।

पुण्य के फल में सुख नहीं मिलता। यात्रा आदि के भाव में यदि कषाय की मंदता हो तो पुण्य होता है और पैसा मिलता है। जैसा स्वरूप है वैसी पहचान कर। देव-गुरु-यति की पूजा आदि का परिणाम पुण्य है - धर्म नहीं। पुण्य-पाप के फल में आत्मा का साधन नहीं। इन्द्रियसुख दुःख का साधन है।

बड़े राजाओं को पूर्व पुण्य के कारण सामग्री मिलती है वे सभी दुःखी हैं क्योंकि उनकी आकुलता का पार (अन्त) नहीं, धाम-धूम (धमाल) में तो आकुलता ही है; वे सब विषय के गड्ढे में पड़े हैं। पाप के फलवाले भी आपत्ति के गड्ढे में पड़े हैं, दोनो ही दुःखी हैं।

दया-दानादि के परिणाम से जो विषय मिले हैं उसमें सुख की कल्पना करे वह दुःख है। चक्रवर्ती की सोलह हजार देव सेवा करते हैं, फिर भी वे पतंगे के समान विषयों में झुलसते हैं - वे दुःखी हैं सुखी नहीं। इसप्रकार पुण्य शाली और पापशाली दोनो ही दुःखी हैं। देव, नारकी, मनुष्य, तिर्यंच पंचेद्रियात्मक शरीर सम्बन्धी दुःख को ही अनुभवते हैं। अतः शुभ परिणाम दुःख का कारण है।

सम्यक्दृष्टि को दया-दान, व्रत के परिणाम मोक्ष का कारण हैं और मिथ्यादृष्टि का शुभभाव परम्परा से दुःख का कारण है - ऐसा अज्ञानी कहता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

किन्तु भाई ! सम्यक्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनों का शुभराग तो दुःख का ही कारण है। सम्यग्दृष्टि को आत्मा का भान हुआ है इसलिए शुभराग को व्यवहार से अमृत कहा; किन्तु निश्चय से तो वह ज़हर ही है। जहाँ व्यवहार से शुभभाव को अमृत कहा वहाँ अज्ञानी उसे पकड़ लेता है।

राजा, धनवान व सम्पत्ति होने पर अज्ञानी सुख मानता है और गरीबी व आपदा होने पर दुःख मानता है; जबकि दोनो ही दुःखी हैं। अज्ञानी पैसे में सुख मानता है किन्तु वे सभी आकुलित हैं। चाहे वे रंक हो अथवा राजा हों, सोलह हजार देव जिनकी सेवा करते हों - ऐसा कोई चक्रवर्ती हो और दूसरा ऐसा कोई मनुष्य हो कि जिसके शरीर में कीड़े पड़े हो - ये दोनो ही दुःखी हैं; जिन्हें ज्ञानानन्द स्वभाव का आश्रय नहीं है वे दुःखी है।

शुद्धचैतन्य स्वभावी आत्मा की दृष्टि करना वही भव की सफलता है। मनुष्यपना अनन्त बार मिला किन्तु उसमें कुछ भी तथ्य नहीं है। अज्ञनियों में एक पैसावाला हो अथवा एक गरीब मनुष्य हो तो भी वे दोनो दुःखी ही हैं - वे दोनों देहगत दुःख को ही अनुभवते हैं।

शुभ और अशुभ के फल में देहगत दुःख ही है इसलिए निश्चय से दोनों समान है। इसलिए ये दया-दानादि के परिणाम अच्छे हैं और झूठ चोरी के भाव खराब हैं - ऐसी पृथकत्व व्यवस्था नहीं रहती। दोनो संसार के कारण हैं। दया दानादि से जो पुण्य होता है वह पाप नहीं है। दूसरे जीवों को बचाने के भाव को पाप माने और हिंसा के भाव को भी पाप माने - इसप्रकार दोनो एक नहीं है। दोनों के फल में कर्म बंधन होनेपर भी एक के फल में अनुकूलता मिलती है और एक के फल में प्रतिकूलता मिलती है, फिर भी देहगत शरीर के दुःख की अपेक्षा से दोनों समान हैं - दोनो भाव बन्धन के कारण हैं। दोनो में व्यवहार से ही अन्तर है। दोनो के अलग-अलग दो फल हैं, किन्तु दोनो देहगत दुःख को अनुभवते हैं इसलिए वे आदरणीय नहीं है।

पैसेवाले,राजा अथवा देवादिक देह के दुःख को अनुभवते हैं इसलिए वास्तव में शुभ अशुभ की भिन्नता करके एक में लाभ मानना और दूसरे में नुकसान मानना वह सही नहीं है। ज्ञानानन्द स्वभाव पुण्य-पाप में अटके वह दुःख दायक है

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

- धर्म नहीं। जिनके फल में देह इन्द्रिय के दुःख मिले उसे धर्म कैसे कहें ? कषाय मन्दता और कषाय तीव्रता दोनो ही बाह्य साधन का कारण है, किन्तु इसमें आत्मा का सुख नहीं है, इसलिए पुण्य-पाप श्रद्धा में छोड़ने योग्य है क्योंकि दोनों से धर्म नहीं होता और वे आत्मा की शांति के लिए काम के भी नहीं है - ऐसा निर्णय करना चाहिए।

भावार्थ पर प्रवचन :- शुभोपयोग के फलरूप से देवादि की सम्पदा मिलती है और अशुभोपयोग से मिले हुए पाप के फलरूप में नारकादिकी आपदा मिलती है किन्तु वे देवादिक तथा नारकी दोनों परमार्थ से दुःखी ही हैं।

इसतरह दोनों का फल समान है, क्योंकि शुभ उपयोग और अशुभ उपयोग दोनो आश्रव हैं मलिन भाव हैं इसलिए अशुद्धोपयोग में शुभ और अशुभ - ऐसे भेद सच्ची दृष्टि में घटित नहीं होते क्योंकि दोनो ही सामग्री देते हैं - स्वभाव नहीं। इसप्रकार पुण्य, धर्म के लिए बिलकुल मददगार नहीं है।

प्रश्न :- पूर्व में पुण्य किया था तो सच्ची वाणी सुनने को मिली और पुण्य से निवृत्ति मिले और उससे धर्म हो सके इतना तो पुण्य मददगार है - यह तो सही है न ?

समाधान :- पुण्य से सामग्री मिली इसीलिए सच्ची दृष्टि करेगा और सामग्री नहीं मिली इसीलिए सच्ची दृष्टि नहीं करता - ऐसा नहीं है क्योंकि कोई तो सुनने को मिलने पर भी धर्म नहीं करता। श्रवण में शुभराग करे तो पुण्य बन्धता है और सामग्री मिलती है। श्रवण मिलने पर भी सच्चा निर्णय नहीं करता। मैं चैतन्य मूर्ति हूँ - ऐसी अपनी दृष्टि में नहीं आवे वहाँ तक स्वभाव का आदर नहीं करता और पुण्य-पाप का आदर करता है यदि आत्मा के स्वभाव का निर्णय करे तो श्रवण को निमित्त कहा जाता है अर्थात् स्वयं समझे तो भगवान को निमित्त कहा जाता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचनसार गाथा ७३

अथ शुभोपयोगजन्यं फलवत्पुण्यं विशेषेणे दूषणार्थमभ्युपगम्योत्थापयति-

कुलिसाउहचक्कधरा सुहोवओगप्पगेहिं भोगेहि।
देहादीणं विद्धिं करेंति सुहिदा इवाभिरदा ।।७३।।

(जैसे इन्द्रियसुख को दुःखरूप और शुभोपयोग को अशुभोपयोग के समान बताया है इसीप्रकार) अब, शुभोपयोगजन्य फलवाला जो पुण्य है उसे विशेषतः दूषण देने के लिये (अर्थात् उसमें दोष दिखाने के लिये) उस पुण्य को (उसके अस्तित्व को) स्वीकार करके उसकी (पुण्यकी) बात का खंडन करते हैं :-

है सुखित सम आसक्त चक्री शक्र भी देहादि की।
वृद्धि करें भोगों से जो उपयोग मूलक शुभमयी ।।७३।।

अन्वयार्थ :- (कुलिशायुघचक्रधराः) वज्रधर और चक्रधर (-इन्द्र और चक्रवर्ती) **(शुभोपयोगात्मकैः भोगैः)** शुभोपयोगमूलक (पुण्यों के फलरूप) भोगों के द्वारा **(देहादीनां)** देहादि की **(वृद्धिं कुर्वन्ति)** पुष्टि करते हैं और **(अभिरताः)** (इसप्रकार) भोगों में रत वर्तते हुए **(सुखिताः इव)** सुखी जैसे भासित होते हैं। (इसलिये पुण्य विद्यमान अवश्य है)

टीका :- शक्रेन्द्र और चक्रवर्ती अपनी इच्छानुसार प्राप्त भोगों के द्वारा शरीरादि को पुष्ट करते हुए-जैसे गोंच (जोंक) दूषित रक्त में अत्यन्त आसक्त वर्तती हुई सुखी जैसी भासित होती है, उसीप्रकार - उन भोगों में अत्यन्त आसक्त वर्तते हुए सुखी जैसे भासित होते हैं; इसलिये शुभोपयोगजन्य फलवाले पुण्य दिखाई देते हैं (अर्थात् शुभोपयोगजन्य फलवाले पुण्यों का अस्तित्व दिखाई देता है)

भावार्थ :- जो भोगों में आसक्त वर्तते हुए इन्द्र इत्यादि गोंच (जोंक) की भाँति सुखी जैसे मालूम होते हैं; वे भोग पुण्य के फल हैं; इसलिए पुण्य का अस्तित्व अवश्य है। (इसप्रकार इस गाथा में पुण्य की विद्यमानता स्वीकार करके आगे की गाथाओं में पुण्यको दुःखका कारणरूप बतायेंगे)

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गाथा ७३ पर प्रवचन

जिस प्रकार पिछली गाथाओं में इन्द्रिय सुख को दुःखरूप और शुभोपयोग व अशुभोपयोग को समान बताया है इसीप्रकार अब, शुभोपयोग मिला हुआ जो पुण्य है उसे विशेषतः दूषण देने के लिये पुण्य के अस्तित्त्व को स्वीकार करके पुण्य की बात का खण्डन करते हैं। पुण्य का अस्तित्त्व है यह बात सही है क्योंकि शुभराग के फल में पुण्य की प्रकृति बन्धती है। इसके अस्तित्त्व को स्वीकार करके उस पुण्य की बात का खण्डन करते हैं। पुण्य के फल को दुःखरूप गिना (समझा) जाता है, किन्तु कोई ऐसा माने कि - पुण्य और उसके फल का अस्तित्त्व ही नहीं है - तो ऐसा भी नहीं है; क्योंकि व्यवहारनय का विषय है, दया-दानादि के भाव हैं - यह बात अवश्य है किन्तु ये आदरणीय नहीं है।

अज्ञानी पुण्य सामग्री से देह की पुष्टि करता है और ज्ञानी आत्मा की पुष्टि करता है। अज्ञानी पूर्व में बांधे हुए पुण्य के फलरूप भोगों के द्वारा शरीर की पुष्टि करता है। हवा, पानी, अनाज आदि लेते हैं और देह की पुष्टि करते हैं। वास्तव में तो जीव शरीर की पुष्टि नहीं कर सकता किन्तु वैसा भाव करता है। शरीर-मन-वाणी आदि पर पदार्थ की जो इसके नहीं है उनकी तो पुष्टि करता है, किन्तु आत्मा जो स्वयं है इसकी पुष्टि नहीं करता। गहने, वस्त्र, अलंकार, आभरण से तथा दूध-भात, पुड़ी, रोटी, मगज, मैसूरपाक आदि से शरीर की पुष्टि करता है, लोगों को वह सुखी जैसा भाषित होता है किन्तु वास्तव में तो वह दुःखी ही है क्योंकि इन सबसे उसे आत्मा हाथ नहीं आता।

पुण्य है अवश्य; पुण्य का बन्धन और पुण्य का फल भी है किन्तु वह दुःखमय है; सुख का साधन नहीं। प्रद्युम्न कुमार ने छोटी उमर में ही विद्या साधी थी। स्वयं कामदेव थे किन्तु जहाँ वैराग्य आया वहाँ तो "आत्मा की शान्ति में लीन होना वह काम है। हमें विद्या से क्या काम है ?" ऐसा समझकर उन्होंने राज्य को छोड़ा और विद्या को भी छोड़ा। आत्मा चिदानंद है - ऐसी लीनता से आनन्द में विद्या की दरकार (अपेक्षा-जरूरत) नहीं होती। हमें विद्या नहीं चाहिये - ऐसा कहा। पुण्य है अवश्य ! किन्तु पुण्यवाले सुखी हैं अथवा दुःखी यह निर्णय करना चाहिये।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

धर्मात्मा को संयोगों के समय भी स्वभाव ही ध्येय होता है। शक्रेन्द और चक्रवर्ती अपनी इच्छानुसार प्राप्त भोगों के द्वारा शरीर आदि को पुष्ट करते हैं। भिन्न-भिन्न चीजों से शरीर को पुष्ट करते हैं। धर्मात्मा को तो वैराग्य होता है। भरत चक्रवर्ती अपनी रानियों को कहते हैं कि - हम तुम्हारे कारण (गृहस्थ जीवन में) नहीं रुके हैं, बादाम का हलवा और पिस्ता का पापड़ मिलता है, इसलिये नहीं रुके हैं अपितु अभी हमारा राग नहीं छूटा है इसलिये हम रुके हैं; किन्तु जैसे ही हमारा राग छूट जाएगा तब हम तुम्हारे सामने देखेंगे भी नहीं तुम्हारे कारण राग की पुष्टि नहीं करते अपितु राग नहीं छूटता इसलिये तुम्हारे ऊपर लक्ष्य जाता है। तुम्हारे कारण हम रुके हैं - यह बात तुम अपने मन से निकाल देना। स्वभाव सन्मुख होनेपर सभी कुछ छूट जाएगा। राग दूर नहीं होता अर्थात् लक्ष्य जाता है, राग जितनी अस्थिरता की मूर्छा है किन्तु स्वभाव तो आनन्दमय है। सचमुच राग शरणभूत नहीं है। अज्ञानी जीव स्व विषय को छोड़कर पर विषय में सुख मानता है, जिससे वह दुःखी ही है।

चक्रवर्ती आदि अपने शरीर को पुष्ट करते हैं। अज्ञानी स्त्री को वस्त्र देकर, पुत्री को पैसा देकर उससे सुख का होना मानते हैं, किन्तु यह सब तो भ्राँति के महादुःख का स्वाद है - आत्मा का स्वाद नहीं। अपने कुटुम्ब-परिवार आदि को पुष्ट करते हैं, कुत्ते को खाना खिलाते हैं; इन सभी में तो पर के ही पोषण की बात आई है किन्तु आत्मा की बात नहीं आई। जैसे गोंच (जोंक) दूषित रक्त को अत्यन्त आसक्त होकर चूसती हुई सुखी जैसी भासित होती है, वैसे ही अज्ञानी उन भोगों में आसक्त वर्तते हुए सुखी जैसे भासित होते हैं।

जो अभी पाप में ही रचे-पचे हैं वे तो प्रत्यक्ष दुःखी ही हैं - काला बाजार करे उनकी क्या बात करें, उनके तो पुण्य का भी ठिकाना नहीं किन्तु यहाँ तो उत्तम पुण्यवाले की बात लेते हैं। चक्रवर्ती को कुदरती ऋद्धि चली आती है फिर भी वे दुःखी हैं - विषयों में झपट्टा मारनेवाले तो दुःखी ही हैं।

अधिक पुण्यवाले सुखी जैसे भाषित होते हैं किन्तु वे दुःखी ही हैं। पुण्य तथा उसके फल की विद्यमानता है, उसको अस्वीकार नहीं करते, किन्तु वह दुःखरूप है - यह बताते हैं। अतः आत्मा की सच्ची श्रद्धा-ज्ञान-रमणता ही

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सुखरूप है - ऐसा निर्णय करना चाहिये। **'शुभ के कारण मिलनेवाले संयोग से जीव सुखी जैसा भासित होता है किन्तु वह सुखी नहीं है।'**

भावार्थ पर प्रवचन :- यह अधिकार ज्ञान तत्त्व का है ज्ञान सार का है। आत्मा ज्ञान और आनन्द स्वरूप है उसे छोड़कर जो दया-दानादि के परिणाम होते हैं वे शुभोपयोग हैं उनके फल में इन्द्रियसुख मिलता है, वहाँ ध्येय विषय हैं किन्तु वे आत्मा का स्वभाव नहीं है। यदि ऐसा है तो फिर दया-दानादि के परिणाम से क्या हुआ? शुभ के कारण मात्र संयोग तो मिलते हैं किन्तु संयोगी भाव से स्वभावभाव प्राप्त नहीं होता। इन्द्रादिक, भोगों में आसक्त वर्तते हुए जीवों के समान सुखी जैसे भासित होते हैं; वह पुण्य है यह बात सही है किन्तु वह सुख और सुख कारण नहीं है।

इसप्रकार इस गाथा में पुण्य की विद्यमानता स्वीकार करके आगे की गाथा में पुण्य को तृष्णा का बीज बतायेंगे। ज्ञान तत्त्व में पुण्य नहीं है। इसलिये पुण्य के आधार से सुख लेना चाहे वह भ्रांति है। पुण्य तो तृष्णा का कारण है; पुण्य के कारण मिलनवाले संयोगों की ओर लक्ष्य करे तो तृष्णा होती है। यह मुझे मिला और यह मेरा है - ऐसा भ्रम होता है जो आत्मा का स्वभाव नहीं है।

प्रवचनसार गाथा ७४

अथैवमभ्युपगतानां पुण्यानां दुःखबीजहेतुत्वमुद्भावयति-

जदि संति हि पुण्णाणि य परिणामसमुब्भवाणि विविहाणि।
जणयंति विसयतण्हं जीवाणं देवदंताणं ॥७४॥

अब, इसप्रकार स्वीकार किये गए पुण्य दुःख के बीज के कारण हैं, अर्थात् तृष्णा के कारण हैं इसप्रकार न्याय से प्रगंट करते हैं:-

परिणाम से उत्पन्न विविध प्रकार के जो पुण्य हैं।
वे शक्र आदि सभी को ही विषय-तृष्णा जनक हैं ॥७४॥

अन्वयार्थ :- **(यदि हि)** (पूर्वोक्त प्रकार से) यदि **(परिणामसमुद्भवानि)** (शुभोपयोगरूप) परिणाम से उत्पन्न होनेवाले **(विविधानि पुण्यानि च)** विविध पुण्य **(संति)** विद्यमान हैं, **(देवतान्तानां जीवानां)** तो वे देवों तक के जीवों को **(विषयतृष्णां)** विषय तृष्णा **(जनयन्ति)** उत्पन्न करते हैं।

टीका :- यदि इसप्रकार शुभोपयोगपरिणाम से उत्पन्न होनेवाले अनेक प्रकार के पुण्य विद्यमान हैं, - ऐसा स्वीकार किया है, तो वे (-पुण्य) देवों तक के समस्त संसारियों के विषयतृष्णा अवश्यमेव उत्पन्न करते हैं (- ऐसा भी स्वीकार करना पड़ता है) वास्तव में तृष्णा के बिना, जैसे जोंक (गोंच) को दूषितरक्त में उसी प्रकार समस्त संसारियों को विषयों में प्रवृत्ति दिखाई न दे; किन्तु वह तो दिखाई देती है। इसलिये पुण्यों की तृष्णायतनता अबाधित ही है (अर्थात् पुण्य तृष्णा के घर हैं, ऐसा अविरोधरूप से सिद्ध होता है)।

भावार्थ :- जैसा कि ७३ वीं गाथा में कहा गया है उसप्रकार अनेक तरह के पुण्य विद्यमान हैं, सो भले रहें। वे सुख के साधन नहीं किन्तु दुःख के बीजरूप तृष्णा के ही साधन हैं ॥७४॥

ॐ ॐ ॐ

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गाथा ७४ पर प्रवचन

अब, इसप्रकार स्वीकार किया गया पुण्य, दुःख के बीज का कारण है अर्थात् तृष्णा के कारण हैं - इसप्रकार न्याय से प्रगट करते हैं :-

शुभ के कारण संयोग मिले और उनकी ओर लक्ष्य जाने पर तृष्णा होती है किन्तु शान्ति उत्पन्न नहीं होती। दुनिया जिसे धर्म कहती है - ऐसे शुभभाव को यहाँ पुण्य कहा है। उन विविध पुण्य से बाहर की सामग्री मिलती है। देव गति के जीवों को भी विषयों की तृष्णा होती है किन्तु उन्हें आत्मा की शान्ति नहीं मिलती।

पुण्य की दृष्टिवाला पुण्य के फल के प्रति तृष्णा उत्पन्न करता है। पूर्व में शुभभाव किया हो तो उसके कारण सेठ, राजा, देव आदि होता है और वे सभी तृष्णा से दुःखी होते हैं।

कोई कहता है कि - पुण्य हो तो पैसा आदि मिले और स्त्री-पुत्र अनुकूल रहे तो धर्म होता है, पैसा निवृत्ति का कारण है - इसलिये धर्म होता है। पैसा हो तो ज्योतिषी, पंडित आदि सभी पूछने आते हैं, सन्मान करते हैं - ऐसा लोग कहते हैं। योग्य (निपुण) वैद्य, ज्योतिषी सभी पैसेवाले के पास आते हैं इसलिये पैसे की कीमत है। देखो ! हमें घर बैठे ही पूछने आते हैं - इसप्रकार अज्ञानी व्यर्थ में तृष्णा करता है-मोह करता है।

तथा दया-दान, व्रत के भाव से अनेकप्रकार के पुण्य होते हैं उससे पैसा, पुत्र आदि अनुकूल मिलते हैं किन्तु वहाँ वे राजा-सेठ व देव आदि तृष्णा उत्पन्न करते हैं। पुण्य के कारण सामग्री मिलती है और सामग्री तृष्णा उत्पन्न करती है - ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध बताते हैं। उनका लक्ष्य सामग्री के ऊपर जाता है - यदि स्वभाव के ऊपर लक्ष्य जाये तो तृष्णा उत्पन्न न हो। उनकी पुण्य के फल ऊपर दृष्टि है इसलिये वे एकमात्र विषय तृष्णा उत्पन्न करते हैं। अतः पुण्य का फल तृष्णा का घर है।

जैसे जोंक को दूषित रक्त में तृष्णा होती है उसीप्रकार समस्त संसारियों को विषयों में तृष्णा होती है। यदि सामग्री में तृष्णा न करे तो उनकी विषयों में प्रवृत्ति दिखाई न दे। जिसके पास हजार रुपये होते हैं वह दस हजार की इच्छा करता है, दस हजार मिले तो लाख की इच्छा करता है, इसप्रकार विषयतृष्णा करता जाता है। एक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गरीब मनुष्य था उसका अपना निजी मकान था और पन्द्रह सौ रुपये थे, फिर भी वह मांगा करता था। खाना, वस्त्रादि सभी मुफ्त में मंगाता था; इसप्रकार वह तृष्णा को बढ़ाता है। मांगने में कला का प्रयोग करता है यह उसकी तृष्णा की प्रवृत्ति दिखाई देती है।

दया, दानादि से पैसा मिलता है जो परिभ्रमण का साधन है किन्तु वह आत्मा का साधन नहीं है। पूर्व पुण्य के कारण सामग्री में तृष्णा करता है इसलिये पुण्य, धर्म का साधन नहीं है। तृष्णावाला तृष्णा को बढ़ाता है, एकके बाद एक बढ़ाता जाता है। जबकि आत्मा, जो कि ज्ञानानन्द है उसकी प्रतीति ज्ञान और लीनता संतोष का कारण है और संयोग तृष्णा का कारण है।

यदि जोंक को तृष्णा न हो तो वह दूषित रक्त को क्यों चूसे ? वैसे ही अज्ञानी को यदि तृष्णा न हो तो उसकी विषयों में प्रवृत्ति दिखाई न दे, परन्तु वह तो दिखाई देती है, इसलिये पुण्य तृष्णा की उत्पत्ति का घर है और आत्मा आनन्दकंद है वह शान्ति का घर है। पुण्य-तृष्णा के रहने का स्थान है; इसप्रकार अविरोधपने सिद्ध होता है। मूर्ख हो तो भी पुण्य के कारण होशियार कहलाता है और कोई गरीब मनुष्य होशियार भी हो तो मूर्ख कहलाता है। इसप्रकार कहनेवाले को तृष्णा है। जिसे पैसे की तृष्णा है वह पैसेवाले को मक्खन लगाता है।

भावार्थ पर प्रवचन :- जैसा कि ७३ वीं गाथा में कहा गया है, उस प्रकार अनेक तरह के पुण्य विद्यमान है सो भले रहें; हम पुण्य के अस्तित्व से इन्कार नहीं करते। शुभराग किया है उसके फल में पुण्य कर्म बन्धता है और उसके फल में संयोग मिलते हैं। इसप्रकार व्यवहार का अस्तित्व है अवश्य, किन्तु वह मोक्ष का अथवा धर्म का बिल्कुल भी साधन नहीं है, क्योंकि दया-दानादि के भाव विकार हैं और चिदानन्द आत्मा की दृष्टि-ज्ञान-रमणता - वह धर्म है।

मैंने भक्ति करी, यात्रा की, संघ निकाला, गजरथ चलाया - इसमें अज्ञानी धर्म मानता है किन्तु वह धर्म नहीं है। संघ निकालने में भी प्रतियोगिता (काम्पटीशन) करे और दूसरे की शोभा को कम करने का स्वयं प्रयत्न करे तो उसके तो मंद राग (शुभभाव) का भी ठिकाना नहीं है; यदि रागमंद हो तो पुण्य होता है किन्तु वह पुण्य सुख का साधन नहीं है, अपितु वह दुःख के बीजरूप तृष्णा का ही साधन है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

लोग कहते हैं कि यदि घर में खाने का दाना ही न हो तो धर्म कैसे हो सकता है ? यदि पैसा आदि हो तो धर्म होता है - ऐसा अज्ञानी कहता है। यहाँ पुण्य के अस्तित्त्व को सिद्ध करते हैं। दया, दानादि के भाव पुण्य भाव हैं उनके कारण संयोग मिलते हैं किन्तु वह धर्म का साधन नहीं है। शरीर स्वस्थ हो, पैसा हो तो धर्म होता है - ऐसा अज्ञानी कहता है किन्तु वह तो तृष्णा के निमित्त हैं।

पुण्य परिणाम धर्म का साधन नहीं किन्तु दुःख के बीजरूप तृष्णा का ही साधन है। पुण्य के कारण वैभव मिले वह क्लेश का कारण है - आत्मा के सुख का कारण नहीं। अज्ञानी कहता है कि चारों ओर दुःख हो और पेट में चूहे दौड़ते हों तो धर्म नहीं होता। यहाँ तो कहते हैं कि - पैसा सुख का साधन नहीं अपितु दुःख का साधन है।

卐 卐 卐

मेरा आयुष्य बहुत लम्बा है, हाथ, पैर बगैरह सब अंग बहुत मजबूत हैं, यह लक्ष्मी भी मेरे वश में है तो फिर मैं व्यर्थ व्याकुल किसलिये होऊँ ? भविष्य में जब वृद्धावस्था आयेगी तब मैं निश्चित होकर बहुत धर्म करूँगा। दुःख की बात है इस प्रकार का विचार करते ही यह मूर्ख प्राणी कालका ग्रास बन जाता है।

- श्री पद्मनन्दी पंचविंशतिका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचनसार गाथा ७५

अथ पुण्यस्य दुःखबीजविजयमाघोषयति-

ते पुण उदिण्णतण्हा दुहिदा तण्हाहिं विसयसोक्खाणि।
इच्छंति अणुभवंति य आमरणं दुक्खसंतत्ता ॥७५॥

अब, पुण्य में दुःख के बीज की विजय घोषित करते हैं। (अर्थात् पुण्य में तृष्णाबीज दुःखवृक्षरूप से वृद्धि को प्राप्त होता है-फैलता है - ऐसा घोषित करते हैं) :-

वे उदित तृष्णा जीव तृष्णा से तृषित हो चाहते ।
हो आमरण संतप्त दुःख से विषय सुख को भोगते ॥७५॥

अन्वयार्थ :- **(पुनः)** और, **(उदीर्णतृष्णाः ते)** जिनकी तृष्णा उदित है - ऐसे वे जीव **(तृष्णाभिः दुःखिताः)** तृष्णाओं के द्वारा दुःखी होते हुए, **(आमरणं)** मरणपर्यंत **(विषयसौख्यानि इच्छन्ति)** विषयसुखों को चाहते हैं **(च)** और **(दुःखसन्तप्ताः)** दुःखों से संतप्त होते हुए (-दुःखदाह को सहन न करते हुए) **(अनुभवंति)** उन्हें भोगते हैं।

टीका :- जिनके तृष्णा उदित है - ऐसे देवपर्यंत समस्त संसारी, तृष्णा दुःख का बीज होने से पुण्यजनित तृष्णाओं के द्वारा भी अत्यंत दुःखी होते हुए [1]मृगतृष्णा में से जल की भाँति विषयों में से सुख चाहते हैं और उस [2]दुःखसंताप के वेग को सहन न कर सकने से विषयों को तबतक भोगते हैं, जबतक कि विनाश को (मरणको) प्राप्त नहीं होते।

जैसे जोंक (गोंच) तृष्णा जिसका बीज है - ऐसे विजय को प्राप्त होती हुई दुःखांकुर से क्रमशः आक्रान्त होने से दूषित रक्त को चाहती और उसी को भोगती हुई मरण पर्यंत क्लेश को पाती है, उसीप्रकार यह पुण्यशाली जीव भी, पापशाली जीवों की भाँति, तृष्णा जिसका बीज है - ऐसे विजय प्राप्त दुःखांकुरों के द्वारा

---

[1] *जैसे मृगजल में से जल नहीं मिलता वैसे ही इन्द्रियविषयों में से सुख प्राप्त नहीं होता।*

[2] *दुःखसंताप = दुःखदाह; दुःख की जलन-पीड़ा।*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

क्रमशः आक्रांत होने से, विषयों को चाहते हुए और उन्हीं को भोगते हुए विनाशपर्यंत (-मरणपर्यंत) क्लेश पाते हैं।

इससे पुण्य सुखाभास - ऐसे दुःखका ही साधन है।

भावार्थ :- जिन्हें समस्तविकल्पजाल रहित परमसमाधि से उत्पन्न सुखामृतरूप सर्व आत्मप्रदेशों में परमआह्लादभूत स्वरूपतृप्ति नहीं वर्तती - ऐसे समस्त संसारी जीवों के निरन्तर विषयतृष्णा व्यक्त या अव्यक्तरूप से अवश्य वर्तती है। वे तृष्णारूपी बीज क्रमशः अंकुररूप होकर दुःखवृक्षरूप से वृद्धि को प्राप्त होकर, इसप्रकार दुःखदाह का वेग असह्य होनेपर, वे जीव विषयों में प्रवृत्त होते हैं। इसलिये जिनकी विषयों में प्रवृत्ति देखी जाती है - ऐसे देवों तक के समस्त संसारी जीव दुःखी ही हैं।

इसप्रकार दुःखभाव ही पुण्यों का-पुण्यजनित सामग्री का-आलम्बन करता है इसलिये पुण्य सुखाभास - ऐसे दुःख का ही अवलम्बन-साधन है ॥७५॥

ॐ ॐ ॐ

गाथा ७५ पर प्रवचन

अब, पुण्य में दुःख के बीज की विजय घोषित करते हैं - अर्थात् पुण्य में तृष्णा बीज दुःखवृक्षरूप से वृद्धि को प्राप्त होता है-फैलता है - ऐसा घोषित करते हैं। पुण्य में संतोष नहीं होता। 'अज्ञानी मरणपर्यन्त भी तृष्णा को बढ़ाता है।' उसकी पुण्य के फल ऊपर आसक्ति है। वे तृष्णा से दुःखी हैं। वे मरण समय आने तक विषयसुखों की इच्छा करते हैं।

एक साठ वर्ष का मनुष्य ज्वर में पड़ा था जिसकी मरने की तैयारी थी, उसके पास आठ हजार रुपये नगदी थे जिसे वह तिजोरी में रखता था और उसकी चाबी गद्दे के नीचे रखकर बारम्बार चाबी को देखा करता था; एकबार उसने चाबी को तो देख लिया फिर भी उसे शंका हुई कि यह चाबी तो है किन्तु कहीं किसी ने तिजोरी में से रुपये निकाल कर ले गया होगा तो ! ऐसी शंका होते ही वह कहता है कि मुझे तिजोरी में से रुपये निकाल कर बताओ; तब किसी ने उसे रुपये निकाल कर बताए जिसे उसने हाथ से गिना, खुश हुआ और बाद में तुरन्त ही मर गया। देखो !

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तृष्णा किस तरह मरणपर्यन्त जोर मारती है और यह संयोगों की ओर झुकाव करता है। मरने का काल आए तो भी यह उन्हीं विषयों की बातों को दोहराता है।

एक व्यापारी था जिसने मरण के समय भी व्यापार सम्बन्धी तार देने के लिये लड़के को डाकघर भेजा। लड़का स्टेशन गया और यहाँ वह मर गया। इसप्रकार तृष्णा से जीव दुःखी है। दुःखदाह को सहन नहीं कर सकता और तृष्णा को छोड़ता भी नहीं। इसप्रकार के अपने उल्टे अभिप्राय के विकल्पों से समाधान होगा - ऐसा जो मानता है वह मिथ्यात्व की पुष्टि करता है और तृष्णा को ही बढ़ाता है।

अज्ञानी कहता है कि यदि मेरा मरण सुधारना है तो यह वचन दो। इसप्रकार वे तृष्णा को भोगते हैं - ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। आत्मा का स्वभाव जानना-देखना और आनन्दमय है, उसे भूलकर जो दया-दानादि के परिणाम होते हैं वे पुण्य हैं, उनके फल में तृष्णा बढ़ेगी और भोगों को भोगने की वृत्ति होगी। मैं ज्ञान हूँ - जो होनेवाला था वह हुआ है किन्तु पर का कोई भी काम मेरे से हो सके - ऐसा है ही नहीं। इसप्रकार संतोष करे तो तृष्णा मिटे। अज्ञानी की संयोग और विकार के ऊपर दृष्टि है इसलिये वह दुःखी ही है।

अज्ञानी जीव तृष्णा के कारण विषयों में से सुख की इच्छा करते हैं। आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है - ऐसी प्रतीति नहीं होने के कारण तृष्णा उदीप्त है - ऐसे वे सेठ, राजा अथवा देव आदि समस्त संसारियों को तृष्णारूपी दुःख का बीज होने से पुण्य जनित तृष्णा के द्वारा वे भी अत्यंत दुःखी हैं।

मोक्षमार्ग प्रकाशक में चार प्रकार की इच्छा का वर्णन आया है।

(१) विषय ग्रहण की इच्छा,

(२) कषाय अनुसार कार्य होने की इच्छा,

(३) पाप के उदय से मिली प्रतिकूलता को दूर करने की इच्छा और

(४) पुण्य के उदय में मिली अनुकूलताओं को भोगने की इच्छा।

इसप्रकार चार प्रकार की इच्छा है। इसमें जो पुण्य जनित इच्छा है उसमें पूर्व पुण्य के कारण जो साधन मिले हैं उसमें वह तृष्णा करता है। समस्त संसारियों को संयोग भोग का बीज हैं। वे पुण्य जनित तृष्णा द्वारा दुःखी हैं। वे पुण्य के कारण जो संयोग मिलते हैं उसमें तृष्णा करते हैं। कोई तो एक दुकान के बदले दो दुकान

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

करते हैं और काम-काज बढ़ाते हैं, उसमें तृष्णा बढ़ाते हैं जिससे दुःखी है।

पुण्य के कामी (इच्छावाले) जीव मृगतृष्णा में से जल की इच्छा के समान विषयों में से सुख की इच्छा करते हैं। जिस प्रकार रेत (बालू) में से जल प्राप्त नहीं होता वैसे ही इन्द्रिय विषयों में से सुख प्राप्त नहीं होता। शब्द, रस, रूप, इज्जत (प्रतिष्ठा) में सुख नहीं है। कोई अपनी प्रशंसा करे तो अच्छा लगता है -ऐसा मानता है और विषयों में सुख की इच्छा करता है। अज्ञानी जीवों को बड़े होने की और सन्मान प्राप्त करने की तृष्णा होती है। भगवान के समान पूजा कराने की इच्छा रखता है। इसप्रकार वह तृष्णा के लिये दौड़ता है।

अज्ञानी दुःख की पीड़ा सहन नहीं कर सकता - इसलिये विषयों को भोगता है। वह उस दुःख-संताप के वेग को सहन नहीं कर सकता; विपरीत मान्यता के कारण विकल्प किया करता है। यहाँ अनन्त तृष्णा की बात की है। ऐसे जीव विषयों को भोगते हैं; मरण का समय आने पर भी उनकी तृष्णा नहीं मिटती।

असाध्य रोग व मरण समय निकट आने पर भी तृष्णावंत हो सोचता है कि - बहुत से जीव ऐसा रोग होने पर भी बच गए थे, इसलिये मैं भी ठीक हो जाऊंगा, इसप्रकार वह मरण के समय भी तृष्णा को बढ़ाता है। मरने की तैयारी हो फिर भी कषाय की मंदता नहीं करता, किन्तु तृष्णा किया करता है। शरीर की स्थिति पूरी होने को आए फिर भी काम को नहीं छोड़ता।

करोड़पति भी सुखी नहीं है। तृष्णा का पार नहीं है। पांच लाख का दान दे और धर्म न हो ? - ऐसा अज्ञानी पूछता है; किन्तु भाई ! रुपये तो जड़ है उनसे धर्म नहीं होता। रुपये दे और मंद राग हो तो भी उसमें धर्म नहीं है।

जिसप्रकार जोंक अति तृष्णावाली होने से रक्त पीना चाहती है वह खराब रक्त की इच्छा करती है - अत्यधिक रक्त पीने से उसका शरीर फट जाता है फिर भी रक्त पीने की इच्छा करती है, उसे ही भोगती हुई विनाश (मरण) पर्यन्त क्लेश को पाती है; वैसे ही **पुण्यशाली भी पापशाली के समान क्लेश को पाते हैं।**

पापवाले प्रतिकूल सामग्री को दूर करने की तृष्णावाले है और पुण्यवाले अनुकूल सामग्री को भोगना चाहते हैं। इस तरह अज्ञानी तृष्णा के कारण दुःखी होता है फिर भी उसकी ओर का झुकाव नहीं छोड़ता और विषयों की इच्छा करता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है।

तृष्णावान जीव, मरणपर्यंत क्लेश पाता है, इसलिये पुण्य दुःख का ही साथी है। जिसे स्वभाव ध्येय नहीं हुआ उसे पुण्य और पुण्य के फल की रुचि पड़ी रहती है। जिन्हें अंतरंग स्वभाव की रुचि नहीं होती, वे जीव विषयों में हैरान होते हैं - दुःखी होते हैं, फिर भी उन्हीं विषयों की इच्छा करते हैं। वे भी मरण को प्राप्त हो यहाँ तक क्लेश को प्राप्त होते हैं। जैसे मजीठिआ रंगवाले कपड़े को जलाओ तो उसकी भस्म भी लाल होती है। वैसे ही तृष्णावाले को विषयों में ऐसी तृष्णा होती है। इस लड़के का यह नहीं हुआ अथवा लड़की का पति खराब निकल गया - ऐसी तृष्णा (चिंता) करता है।

एक आदमी के दो जमाई (दमाद) खराब निकल गए तो उसने कहा कि - मेरा शरीर जलेगा वहाँ मेरी तृष्णा दिखाई देगी। इसप्रकार जीव की मूर्खता का भी पार (अंत) नहीं है। जीव, स्वभाव की ओर दृष्टि नहीं करता इसलिये पुण्य अर्थात् सुखाभाव दुःख का ही साधन है। इसलिये शुभभाव तथा उनसे बन्धे हुए पुण्य कर्म और उनसे मिलनेवाली सामग्री ये तीनों ही आदरणीय नहीं है; मात्र ज्ञानानन्द स्वभाव-एक ही आदरणीय है।

भावार्थ पर प्रवचन :- जिन्हें आत्मा के आश्रय से संतोष नहीं, उन्हें व्यक्त और अव्यक्त तृष्णा रहती ही है। आत्मा की शान्ति अथवा आनन्द, ज्ञान स्वरूप के आश्रय से होता है जो उसका आश्रय छोड़कर इन्द्रियों का आश्रय करता है उसे सुख नहीं किन्तु तृष्णा है।

जिस जीव को समस्त राग-द्वेष के विकल्प जाल से रहित आत्मा के परम ज्ञान से उत्पन्न हुआ सुखामृत - सर्व आत्म प्रदेशों में परम आह्लादभूत स्वरूप तृप्ति नहीं वर्तती, अर्थात् भगवानआत्मा जो ज्ञान और आनन्दस्वरूप है उसके आश्रय से शान्ति प्रगट नहीं हुई है, उसे प्रगट अथवा अप्रगट तृष्णा होती ही है।

द्रव्यलिंगी मुनि को भी अप्रगट तृष्णा है। किसी को विषयों का झुकाव बाहर से दिखाई देता है, वह अनुकूलता रखने का और प्रतिकूलता को दूर करने का प्रयत्न करता दिखता है।

तथा बाह्य द्रव्यलिंगी मुनि ने हजारों रानियों को छोड़ा हो, लक्ष्मी का भी त्याग किया हो किन्तु अंतर स्वभाव की तृप्ति नहीं इसलिये उसे भी तृष्णा रहती है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा की शान्ति अंतर अमृत स्वरूप के आधार से है; जिसे ऐसे अन्तर स्वरूप की तृप्ति नहीं वर्तती उसे तृष्णा का वेग होता ही है, जो किसी को तो प्रगट दिखाई देता है और किसी को अप्रगट दिखता है। अन्तर में संतोष नहीं आया हो तो तृष्णारूपी बीज क्रमशः अंकुरित हो-होकर दुःखवृक्षरूप से वृद्धि को पाता है। जैसे घबराया हुआ कुत्ता भौंकने लगता है, वैसे ही अज्ञानी जीव लोभ के कारण दुःखी है उसे तृष्णा के कीड़े पड़े हैं।

अज्ञानी बाहर में बहुत धूमधाम करता है। दूसरे जीवों को मेरे अभिप्राय के अनुसार परिणमन करा दूँ, जड़पदार्थ को मेरी अनुकूलता के अनुसार परिणमन करवाऊँ, इसतरह अंनतानुबंधी की तृष्णा व्यक्त अथवा अव्यक्तरूप से रहती ही है। आत्मा आनन्दस्वरूप है उसमें शांति भरी हैं, ऐसे शांतिस्वरूप के अवलम्बन बिना आकुलता ही होती है। इसप्रकार देवादि समस्त संसारी जीव विषयों में प्रवृत्ति करते हैं इसलिये वे दुःखी हैं।

यदि किसी कुत्ते को कीड़े पड़ गए हों तो कोई उसे दवा दे किन्तु इस लोभी को कौन दवा दे ? भाई ! **'स्वयं समाधान करे तो समाधान हो'**- ऐसा ही स्वरूप है। अज्ञानी व्यर्थ ही आकुल-व्याकुल होता है और दुःखी होता है इसप्रकार उसे दाह की पीड़ा सहन नहीं होने से वह स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द, कीर्ति, मानादि का अवलम्बन लेता है, किन्तु आनन्दस्वरूप आत्मा का अवलम्बन नहीं लेता इसलिए जिनकी विषयों में प्रवृत्ति दिखाई देती है - ऐसे देवों तक के समस्त संसारी दुःखी ही हैं।

मैं अच्छा हूँ - ऐसे शब्द सुनने की तृष्णा से अज्ञानी दुःखी है। किसने मुझे अपमानित किया ? कौन मेरा विरोधी है ? और कौन आदमी नजदीकी (खास-अपना) है ? इसप्रकार वह पर में तृष्णा करता है किन्तु आत्मा का अवलम्बन नहीं लेता; जबकि आत्मा के आनन्द और शान्ति के सिवाय कहीं भी सुख नहीं है।

शास्त्र के नाम से अज्ञानी विषय सेवन करता है। हम पंडित हैं - हमें सब आता है - ऐसे शब्द बोलता है। आत्मा चिदानन्द है, उसका अवलम्बन तो नहीं लेता किन्तु मैं समाज का मुखिया हूँ दूसरों से अधिक जानता हूँ, जिस समाज में

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

विद्वान की कीमत नहीं वह समाज आगे नहीं बढ़ सकता - ऐसा कहकर समाज की अपेक्षा रखता है। अपनी आत्मा का निर्णय नहीं किया इसलिये उसे सुख नहीं होता।

पुण्य सुखाभास अर्थात् दुःख का ही साधन है। आत्म संतोष नहीं अर्थात् तृष्णा हुई उसमें दुःखरूप फल हुआ है इसलिये वह दुःख भाव ही पुण्य और पुण्यजनित सामग्री का अवलम्बन लेता हुआ पुण्य-सुखाभास - ऐसे दुःख का ही अवलम्बन अर्थात् साधन है। अज्ञानी पर पदार्थ के अवलम्बन में वर्तता है जबकि यह पूर्व पुण्य से मिली हुई सामग्री सुखाभास है।

जिन्हें आत्म संतोष प्रगट नहीं हुआ वे शब्द, रूप, रस की ओर दौड़ते हैं। इतने रुपये का ब्याज कितना होगा आदि कल्पनाएं करते हैं; इसप्रकार उन्हें तृष्णा फलित होती है क्योंकि उसे चैतन्य का आनन्द नहीं आया। गुरु होकर कहता है कि मेरे शिष्य अच्छे होंगे, इसप्रकार पर के वेग प्रवृत्ति में तृष्णा करता है किन्तु पर के कारण मेरी शान्ति नहीं अपितु मेरे आश्रय से ही मेरी शान्ति है - ऐसा निर्णय जो नहीं करता वह स्वभाव सन्मुख नहीं होता।

घट घट अन्तर जिन बसे, घट घट अन्तर जैन।
मत मदिरा के पान सों, मतवाला समुझे न ॥
- पं. बनारसीदासजी

प्रवचनसार गाथा ७६

अथ पुनरपि पुण्यजन्यस्येन्द्रियसुखस्य बहुधा दुःखत्वमुद्योतयति-

सपरं बाधासहिदं विच्छिण्णं बंधकारणं विसमं।

जं इंदिएहिं लद्धं तं सोक्खं दुक्खमेव तहा ॥७६॥

अब, पुनः पुण्यजन्य इन्द्रियसुख को अनेक प्रकार से दुःखरूप प्रकाशित करते हैं :-

परतन्त्र बाधा सहित वा विच्छिन कारण बंध का।

है विषम इन्द्रिय-प्राप्त सुख वह 'दुःख ही' ऐसा कहा॥७६॥

अन्वयार्थः- **(यत्)** जो **(इन्द्रियैः लब्धं)** इन्द्रियों से प्राप्त होता है **(तत् सौख्यं)** वह सुख **(सपरं)** परसम्बंधयुक्त, **(बाधासहितं)** बाधासहित **(विच्छिन्नं)** विच्छिन्न **(बन्धकारणं)** बंध का कारण **(विषमं)** और विषम है; **(तथा)** इसप्रकार **(दुःखम् एव)** वह दुःख ही है।

टीकाः- परसम्बन्धयुक्त होनेसे, बाधासहित होनेसे, विच्छिन्न होनेसे, बन्ध का कारण होनेसे और विषम होनेसे, इन्द्रियसुख-पुण्यजन्य होनेपर भी - दुःख ही है। इन्द्रियसुख :-

(१) 'पर के सम्बन्धवाला' होता हुआ पराश्रयता के कारण पराधीन है,

(२) 'बाधासहित' होता हुआ खाने-पीने और मैथुनकी इच्छा इत्यादि तृष्णा की व्यक्तियों से (तृष्णा की प्रगटताओं से) युक्त होनेसे अत्यन्त आकुल है,

(३) 'विच्छिन्न' होता हुआ असातावेदनीय का उदय जिसे [१]च्युत कर देता है - ऐसे सातावेदनीयके उदय से प्रवर्तमान होता हुआ अनुभवमें आता है, इसलिये विपक्षकी उत्पत्तिवाला है,

(४) 'बन्ध का कारण' होता हुआ विषयोपभोग के मार्गमें लगी हुई रागादि दोषों की सेना के अनुसार कर्मरज के [२]घन पटल का सम्बन्ध होने के कारण

---

[१] च्युत करना = हटा देना; पथभ्रष्ट करना; (सातावेदनीयका उदय उसकी स्थिति अनुसार रहकर हट जाता है और असाता वेदनीयका उदय आता है)। [२] घन पटल = सघन (गाढ़) पर्त, बड़ा झुण्ड।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परिणाम से दुःसह है, और

(५) 'विषम' होता हुआ हानि-वृद्धि में परिणमित होने से अत्यन्त अस्थिर है; इसलिये वह (इन्द्रियसुख) दुःख ही है।

जबकि ऐसा है (इन्द्रियसुख दुःख ही है) तो पुण्य भी, पाप की भाँति, दुःख का साधन है - ऐसा फलित हुआ।

भावार्थः- इन्द्रियसुख दुःख ही है, क्योंकि पराधीन है, अत्यन्त आकुल है, विपक्षकी (-विरोध की) उत्पत्तिवाला है, परिणाम से दुःस्सह है, और अत्यन्त अस्थिर है। इससे यह सिद्ध हुआ कि पुण्य भी दुःख का ही साधन है ॥७६॥

ॐ ॐ ॐ

गाथा ७६ पर प्रवचन

अब, पुनः अनेकों प्रकार से पुण्यजन्य इन्द्रियसुख का दुःखरूपपना प्रकाशित करते हैं। शरीर, आबरू, कीर्ती आदि दुःख का कारण है - ऐसा अपमान होनेपर विचार करता है। सारा लश्कर (राज-पाट) बदल जाय तब वहाँ राजा भी विचार में पड़ जाता है कि मुझे तो कोई नहीं मानता। संघ (समाज) का श्रेष्ठ (मुखिया) अपना अपमान होनेपर आकुल-व्याकुल होता है

अन्य जीवों को अपने अनुसार बदलना चाहता है किन्तु उनका परिणमन इसके आधीन नहीं होने से इसे शाँति नहीं मिलती; कदाचित् संघ के मनुष्य इसकी बात मान भी लें तो भी तेरी शाँति इसमें नहीं है क्योंकि यहाँ पुण्य के फल को भी दुःखरूप बताते हैं। पूर्व में यदि दया-दानादि किया हो तो उसके फल में कर्म बंधते हैं, इसलिये उसमें चैतन्य का अवलम्बन नहीं आयगा।

कैसा है इन्द्रियों का सुख ?

उसमें पर का सम्बंध है क्योंकि वह चिदानन्द आत्मा का सम्बन्ध नहीं करता इसलिये पैसा मिलाऊँ, मकान अनुकूल करूँ- ऐसी दृष्टि करता है; तथा वह बाधासहित और विच्छिन्न है। जो पांच वर्ष तक सुख जैसा दिखाई देता है वही बाद में प्रतिकूल दिखाई देता है और यह दुःखी होता है। पाँच-पच्चीस लाख की सम्पत्ति हो किन्तु स्त्री अनुकूल न हो, बाहर में बहुत सन्मान हो, किन्तु घर में स्त्री और पुत्र

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बात नहीं मानते हो तो दुःखी होता है। बीस वर्ष की लड़की होनेपर भी लड़का नहीं मिला, तीस वर्ष का लड़का अभी कुंवारा है इसप्रकार सदा तृष्णा में जलता है। पुण्य-पाप रहित आत्मा के भान बिना पूर्व में जो शुभभाव किया था उसके फल में - ऐसी तृष्णा होती है।

सांसारिक सुख विच्छिन्न है जो धूप-छाया की तरह है। परतरफ का झुकाव बन्ध का कारण है। पूर्व पुण्य के कारण अनुकूलता मिलती है वह सभी दुःख ही है। शुभराग आता अवश्य है किन्तु जो उसे आदरणीय मानकर अथवा धर्म मानकर करता है उसकी लोलुपता (आसक्ति) नहीं छूटेगी।

(१) इन्द्रियसुख पर के सम्बन्धवाला है और बाधा सहित है :- इन्द्रियसुख पर के सम्बन्धवाला है जो पराश्रयता के कारण - पराधीन है। जैसे यदि नाक, काम नहीं करें तो सूंघ नहीं सकता, आँख ठीक न हो तो दिखाई नहीं देता, जीभ ठीक न हो तो चख (स्वाद) नहीं ले सकता इसप्रकार इन्द्रिय सुख पर के सम्बन्धवाला है इसलिये पराधीन है।

(२) बाधासहित :- तथा इन्द्रिय सुख बाधासहित है। खाने की इच्छा, अभिनन्दन (सम्मान) लेने की इच्छा, दुनिया में आगे बढ़ने की इच्छा वह जलना है; इसमें पुण्य करते -करते शान्ति होगी यह मान्यता होती है। पुण्य का उदय हो और निवृत्ति मिले तो धर्म होगा - ऐसा अज्ञानी मानता है। पैसा हो तो सभी पूछने आते हैं - ऐसी सभी मान्यताएं तृष्णा ही हैं।

खाने की इच्छा, पानी पीने की इच्छा, सन्मान पाने की इच्छा, रूप को देखने की इच्छा; इसप्रकार तृष्णा हुआ ही करती है इसलिये इसतरह पूर्व पुण्य के फल में इच्छा होती ही है।

हमें तो पुण्य में मजा आता है इसलिये 'पुण्य का फल मीठा है' - ऐसा तुम कहो - ऐसी अज्ञानी की दलील (तर्क) है। लोग पर की सेवा, भक्ति आदि को धर्म मानते हैं जबकि वह तो राग भाव है-वृत्ती का उत्थान है जिनके फल में दुःखों के वृक्ष निकलेंगे। खाने को नहीं मिलता, पानी की इच्छा होनेपर पानी नहीं मिलता, भोग की इच्छा के समय स्त्री नहीं मिलती; इसप्रकार इन्द्रियसुख में बाधा पड़ती है, इसलिये उसमें अत्यंत आकुलता होने से वह दुःख ही है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(३)विच्छिन्न :- असाता के उदय से साता वेदनीय के उदय में मिली सामग्री चली जाती है, इसलिये इन्द्रियसुख - विपक्ष की उत्पत्तीवाला है। शरीर में रोग आ जाए, हड्डी टूट जाए, असाता का उदय आ जाए तो मिले हुए सुख भी चले जाते हैं। साता वेदनीय का उदय उनकी स्थिति अनुसार रहकर चला जाता है और असाता वेदनीय का उदय आता ही है। इससे विपरीत चैतन्य स्वभाव जो आनन्दस्वरूप है उसकी दृष्टि करने पर धारावाही संवर होता है अर्थात् आत्मा जो कि पूर्ण शुद्ध आनन्दस्वरूप है उसकी दृष्टि में धारावाही शान्ति है वह अविच्छिन्न है।

बाहर में साता का उदय हो तो पांच वर्ष ठीक रहे और पांच वर्ष ठीक न रहे इसलिये पूर्व के पुण्य भी ठीक नहीं है और वैसे ही पूर्व पुण्य की सामग्री भी ठीक नहीं है। लड़के का जैसे-तैसे विवाह किया हो, किन्तु ६ माह बाद ही उसे टी.बी. हो जाती है जो दूसरी स्टेज में आ गई है और तीसरी स्टेज की तैयारी है - ऐसी खबर मिले तो वहाँ अज्ञानी को अत्यंत वेदना होती है।

साता का उदयकाल अल्प होता है और असाता के कारण, सामग्री चली जाती है। सेठपना, राजपना, अमलदारपना (कलेक्टर) चला जाता है, इसलिये इन्द्रियसुख उसके विपक्ष की उत्पत्तीवाला है। देखो ! एक गांव में बारह घंटे में ही बहुत कुछ बदल गया जीवित मनुष्य देखते ही देखते मर गए। थोड़े ही समय में सभी कुछ बदल गया, इसलिये पुण्य क्षणिक है-उसकी एक धारा नहीं रहती।

नित्यानंद आत्मा के आश्रय से शान्ति मिलती है। आत्मा के आनन्द में धारावाही शान्ति है किन्तु बाहर में धारावाही शान्ति नहीं हो सकती। असाता का उदय आए तो वहाँ शरीर में रोग आ जाय, क्षय (टी.बी.) हो जाय, मैं गर्भ से श्रीमंत हूँ - ऐसा गर्व धारण किया हो, वहाँ रोग होनेपर सब बदल जाता है। पूर्व के शुभभाव क्षणिक हैं इसलिये उनके फलरूप संयोग भी क्षणिक ही होते हैं। निमित्त का अनुभव करता हुआ सुख भी क्षणिक है, इसलिये वह विपक्ष की उत्पत्तिवाला है।

(४) बन्ध का कारण :- इन्द्रियसुख राग-द्वेष की उत्पत्ति करता है इसलिये बन्ध का कारण है। अन्तर चिदानंद स्वरूप की दृष्टि बिना इन्द्रियसुख बन्ध का कारण है। पांचों इन्द्रियों के विषय तरफ रागादि दोषों की सेना लगी पड़ी है इसलिये राग-द्वेष और हर्ष-शोक किया करता है। जिनके अनुसार कर्मों का

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अत्यधिक समूह बन्धता है इसलिये वे परिणाम दुःसह है।

अज्ञानी सदा तृष्णा किया करता है किन्तु आत्मा एक रजकण को भी बदल नहीं सकता, फिर भी राग-द्वेष और हर्ष-शोक करता रहता है। मैंने इतना रुपया कमाया, मैंने अपने बाहुबल से कमाया है, छोटे भाईयों को रोजगार आदि से लगाया और अब वे मेरा कहना नहीं मानते।

युवा अवस्था थी तबतक खूब कमाया और छोटे भाईयों की व्यवस्था की, मैंने दो लाख रुपये कमाए और छोटे भाई उसमें हिस्सा करना चाहते हैं - अरे रे! अब मेरी कमाने की ताकत चली गई और यहाँ भाई हिस्सा करते हैं - इसप्रकार शोक और राग-द्वेष करता है इसे राग की सेना ने जकड़ा है इसलिये कर्म बन्धते हैं जो दुःसह है।

(५) विषम :- इन्द्रियसुख हानि-वृद्धिवाला होने से अस्थिर है इसलिये वह दुःख ही है। पूर्व पुण्य के कारण मिले हुए फल की ओर तेरा झुकाव हटता नहीं इसलिए तू राग-द्वेषरूप होता है। अतः पुण्य और पुण्य के फल में सुख नहीं है। अतीन्द्रिय आत्मा में सुख हैं। इन्द्रियसुख तो विषम है - पांच लाख की संपत्ति हो जो थोड़े ही समय में पांच हजार की रह जाती है। बाहर में सम्मान हो और अन्दर में दिवालिया हो इसप्रकार इन्द्रिय सुख हानि-वृद्धिवाला है।

निर्धनता और धनवानपने का कोई पैमाना नहीं है। अज्ञानी जीव धन से निर्धन व धनवानपना मानता है जबकि असंतोषी निर्धन है और संतोषी धनवान है। इन्द्रियसुख हानि-वृद्धिवाला है जो थोड़े ही समय में कम हो जाता है और थोड़े ही समय में बढ़ जाता है इसलिये वह अत्यंत अस्थिर है।

एक व्यक्ति अड़तालिस वर्ष पहले अकेला था। कमाई होनेपर शादी हुई और बारह बच्चे हो गए बाद में असाता का उदय आने पर स्त्री, पुत्र मर गए और फिर अकेला रह गया। इसलिये पूर्व का पुण्य स्थिर नहीं है। अतः वह इन्द्रियसुख वास्तव में दुःख ही है।

इसप्रकार पुण्य दुःख का ही साधन है किन्तु धर्म का साधन नहीं है। यदि ऐसा है तो पुण्य भी पाप ही के समान दुःख का साधन है। इन्द्रियसुख दुःख ही है इसलिए पुण्य दुःख का साधन है। पूर्व में जो शुभभाव किया था उससे पुण्य बंध

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हुआ था। जिसे इन्द्रियसुख का साधन कहा था उसे यहाँ दुःखरूप सिद्ध किया है इसलिये वह आत्मा के आनन्द का साधन नहीं है।

पुण्य का अस्तित्त्व है उसके कारण अनुकूलताएं मिलती हैं, किन्तु उसमें दुःख ही है; वह आत्मा के आनन्द व धर्म का साधन नहीं। अज्ञानी को इन्द्रिय आदि अच्छी दिखती है उसमें उसे सुख दिखाई देता है।

हम पैसे का उपयोग (खर्च) करते हैं और उसका सदुपयोग करते हैं - ऐसा वह मानता है जबकि पैसे तो जड़ हैं; उसका उपयोग आत्मा नहीं कर सकता - यह बात अज्ञानी को रुचिकर नहीं लगती; इसके बदले हम पैसे का उपयोग कर सकते हैं अथवा दुखियों की मदद करना चाहिये - ऐसा वह कहता है किन्तु भाई ! जड़ की क्रिया तेरे आधीन नहीं है। तू राग करता है किन्तु तेरे कारण पर में कुछ भी नहीं होता। इस हाथ की क्रिया और अनाज की क्रिया स्वतंत्र है। लकवा लग जाने पर बोल नहीं सकता इसलिये तेरे कारण भाषा नहीं निकलती।

अज्ञानी कहता है कि हमें दुखियों के लिए कपड़ा और अनाज ले जाना चाहिए और उनका दुःख दूर करना चाहिए। किन्तु भाई ! तू क्या कर सकता है ? अजीव की क्रिया कर सकता हूँ और पर का भला कर सकता हूँ वह तो विपरीत मान्यता है।

भिखारी मानता है कि हम सेठ के पीछे लगे इसलिए पैसा मिला है, किन्तु भाई ! पैसे का मिलना अथवा दूर होना तेरे आधीन नहीं अपितु पूर्व पुण्य के कारण मिलता है और पाप के कारण चला जाता है - इस बात की अज्ञानी को खबर नहीं इसलिए वह मिथ्यादर्शन की पुष्टि करता है।

अतः पुण्य भी पाप के समान ही दुःख का साधन है - ऐसा सिद्ध हुआ; किन्तु इस बात को स्थानकवासी के समान नहीं समझना। दूसरे को दान देने का, अनुकंपा का भाव पुण्य है जिसे तेरापंथी स्थानकवासी पाप कहते हैं तो यह बात सही नहीं है। शुभभाव पुण्य है और अशुभभाव पाप है, व्यवहार से दोनों भिन्न-भिन्न हैं। असंयमी को उबारने में पाप नहीं किन्तु पुण्य है। पुण्य में धर्म माने तो यह विपरीत मान्यता होने से दुःख का ही साधन है किन्तु सुख का साधन नहीं; इसीतरह यहाँ पुण्य भी पाप के समान दुःख का साधन है - ऐसा सिद्ध हुआ।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भावार्थ पर प्रवचन :- इन्द्रियसुख, दुःख ही है क्योंकि वह पराधीन है, अत्यंत आकुलतावाला है, विपक्ष की उत्पत्तिवाला है, वह परिणाम से दुःसह है और अत्यन्त अस्थिर है इसप्रकार यह सिद्ध हुआ कि पुण्य भी दुःख का ही साधन है।

कषाय मंदता के कारण संयोग मिलेंगे और उनकी ओर झुकाव रहा करेगा उसमें तृष्णा का ही अनुभव होगा इसप्रकार पुण्य और पाप दोनों दुःख के साधन हैं - ऐसा निश्चित कराया है। पुण्य और पाप में भिन्नता नहीं है। पुण्य-पाप दोनों ही बन्ध का कारण हैं फिर भी यदि कोई पुण्य को अच्छा और पाप को खराब मानकर इनमें भेद करता है तो वह मिथ्यादृष्टि है जो घोर संसार में रखड़ता (परिभ्रमण करता) है।

अरे जीव! तुझे ऐसा लगना चाहिये कि सम्यग्दर्शन बिना का जीवन वह वास्तव में जीवन ही नहीं है, क्षण क्षण में भावमरणवाला जीवन वह मृतक समान है। शाश्वत चैतन्यसत्ता का भान करके उसके आश्रय से सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा ज्ञान-आनन्दमय जीवन जीता है वही सच्चा जीवन है।

- पूज्य गुरुदेवश्री

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचनसार गाथा ७७

अथ पुण्यपापयोरविशेषत्वं निश्चिन्वन्नुपसंहरति -

ण हि मण्णदि जो एवं णत्थि विसेसो त्ति पुण्णपावाणं।
हिंडदि घोरमपारं संसारं मोहसंछण्णो ॥७७॥

अब, पुण्य और पाप की अविशेषता का निश्चय करते हुए (इस विषय का) उपसंहार करते हैं :-

जो 'पुण्य एवं पाप में अन्तर नहीं' ना मानता ।
हो मोह से आछन्न घोर अपार भव में घूमता ॥७७॥

अन्वयार्थ :- **(एवं)** इसप्रकार **(पुण्यपापयोः)** पुण्य और पाप में **(विशेषः नास्ति)** अन्तर नहीं है **(इति)** - ऐसा **(यः)** जो **(न हि मन्यते)** नहीं मानता, **(मोहसंछन्नः)** वह मोहाच्छादित होता हुआ **(घोरं अपारं संसारं)** घोर अपार संसारमें **(हिण्डति)** परिभ्रमण करता है।

टीका :- यों पूर्वोक्त प्रकार से, शुभाशुभ उपयोग के द्वैत की भाँति और सुखदुःख के द्वैत की भाँति परमार्थ से पुण्यपाप का द्वैत नहीं टिकता-नहीं रहता, क्योंकि दोनों में अनात्मधर्मत्व अविशेष अर्थात् समान है। (परमार्थ से जैसे शुभोपयोग और अशुभोपयोगरूप द्वैत विद्यमान नहीं है, जैसे [१]सुख और दुःखरूप द्वैत विद्यमान नहीं है, उसीप्रकार पुण्य और पापरूप द्वैतका भी अस्तित्त्व नहीं है; क्योंकि पुण्य और पाप दोनों आत्मा के धर्म न होने से निश्चय से समान ही है।) ऐसा होने पर भी, जो जीव उन दोनों में सुवर्ण और लोहे की बेड़ी की भाँति - [२]अहंकारिक अन्तर मानता हुआ, अहमिन्द्रपदादि सम्पदाओं के कारणभूत धर्मानुराग पर अत्यन्त निर्भररूप से (गाढ़रूप से) अवलम्बित है, वह जीव वास्तव में चित्तभूमि के उपरक्त होने से (-चित्त की भूमि कर्मोपाधि के निमित्त से रंगी हुई-मलिन विकृत होने से) जिसने शुद्धोपयोग शक्ति का तिरस्कार किया है, - ऐसा

---

[१]सुख = इन्द्रियसुख, [२]पुण्य और पापमें अन्तर होने का मत अहंकारजन्य (अविद्याजन्य, अज्ञानजन्य है)।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वर्तता हुआ, संसारपर्यंत (-जबतक इस संसार का अस्तित्त्व है तबतक अर्थात् सदा के लिये) शारीरिक दुःख का ही अनुभव करता है।

भावार्थ :- जैसे सोने की बेड़ी और लोहे की बेड़ी दोनों अविशेषरूप से बाँधने का ही काम करती हैं, उसीप्रकार पुण्य-पाप दोनों अविशेष रूपसे बन्धन ही हैं। जो जीव पुण्य और पाप की अविशेषता को कभी नहीं मानता उसका इस भयंकर संसारमें परिभ्रमणका कभी अन्त नहीं आता।

ॐ ॐ ॐ

गाथा ७७ पर प्रवचन

अब, पुण्य और पाप की अविशेषता का निश्चय का निश्चय करते हुए-इस विषय का उपसंहार करते हैं। पुण्य की रुचिवाले का लक्ष्य संयोग के ऊपर जाता है इसलिये पुण्य-पाप दोनों ही दुःख का ही साधन है।

आत्मा का ज्ञानस्वभाव है, जानना उसका स्वरूप है; पुण्य-पाप के जो भाव होते हैं वे विकार हैं। दया-दानादि में जो राग की मंदता होती है वह पुण्य है और हिंसा, झूठ, चोरी के भाव पाप हैं - दोनों ही आत्मा से विरुद्ध है।

तो फिर जिसे धर्म करना हो उसे क्या करना चाहिये ?

पुण्य-पाप की रुचि छोड़कर त्रिकाल ज्ञानस्वभाव की रुचि करना तथा पुण्य आत्मा के सुख का कारण है - ऐसी दृष्टि छोड़ना। ज्ञान अर्थात् जानना आत्मा का स्वरूप है। पुण्य-पाप होनेपर भी - वे दोनों ही आत्मा के सुख के साधन नहीं है। पुण्य भाव इन्द्रिय सुख का साधन है किन्तु उससे आत्मा का सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र नहीं मिलता।

दया-दानादि का शुभराग आता है - उस राग का लक्ष्य इन्द्रिय के सुख ऊपर है किन्तु आत्मा के ऊपर उनका लक्ष्य नहीं होता। पुण्य के कारण संयोग मिलता है क्योंकि पुण्य की रुचिवाले का लक्ष्य संयोग ऊपर जाता है; मुझे सदा अच्छे संयोग मिलें - ऐसी आकुलता करता है इसलिये वह दुःख का जनक है। आत्मा का ज्ञानस्वभाव है उसकी शक्ति में से पूर्णज्ञान प्रगट हो, वह मुक्ति का कारण है। पुण्य-पाप का अवलम्बन लेने पर बन्धन होता है - पाप के फल में प्रतिकूलता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मिलती है। पुण्य की रुचिवाला संयोगों के मिलने के समय भी दुःखी होता है। इसलिये जैसे पाप दुःख का साधन है वैसे ही पुण्य भी दुःख का साधन है।

पुण्य के उदय में जो अनुकूल सामग्री मिलती है वह एक रूप नहीं रहती क्योंकि पुण्य क्षणिक है इसलिये वह कम-अधिक होता है। पूर्व पुण्य के कारण पैसा मिलता है उसमें अज्ञानी आकुलता ही करता है। इसलिये जैसे पाप-दुःख का साधन है, वैसे ही पुण्य भी दुःख का ही साधन है। आत्मा ज्ञानानन्द स्वभाव है उसकी दृष्टि-ज्ञान-रमणता सुख का कारण है। पुण्य के फल में अनुकूलता और पाप के फल में प्रतिकूलता मिली है फिर भी दोनों दुःख का साधन है।

प्रश्न :- यदि पैसा हो तो निवृत्ति लेकर धर्म का साधन होता है ? गरीब मनुष्य किस तरह धर्म करे ?

समाधान :- नहीं। बाहर के साधन में कम अथवा अधिक लालच का होना वह दुःख का ही वेदन है। इसलिये जिसे धर्म करना हो उसे आत्मा की श्रद्धा करना चाहिये। तेरापंथी स्थानकवासी कहते हैं कि दया,दानादि के भाव पाप हैं जबकि यह बात असत्य है। दया, दानादि पुण्य हैं, उनके फल में आकुलता मिलती है। हिंसा, झूठ, चोरी के जो भाव होते हैं इनके फल में रोग, निर्धनता, परेशानी, कुपुत्रादि मिलते हैं और दया-दान, व्रत, कोमलता, यात्रा, पूजा करे वह पुण्य है, पुण्य के फल में पैसा, राज्य आदि मिलता है इसप्रकार दोनों में सामग्री मिलती है एक में अनुकूलता और एक में प्रतिकूलता मिलती है, वहाँ वे आकुलता का ही वेदन करते हैं, इसलिये ये दोनों ही दुःख के साधन है और आत्मा की समझ ही सुख का साधन है। पुण्य की रुचिवाला मरण पर्यन्त विषयों में झपट्टा मारता है।

प्रश्न :- आत्मा तो साक्षी है तो फिर उसे कल्पना कैसी ?

समाधान :- स्वभाव निर्मल शुद्ध है किन्तु पर्याय में कल्पना करता है। जैसे- लेंड़ी पीपर में चौंसठ पुटी शक्ति है किन्तु प्रगट नहीं वैसे ही आत्मा में साक्षी स्वभाव है किन्तु पर्याय में मलिनता है। जड़ दुःखी नहीं होता। पुण्य परिणाम को लोग धर्म कहते हैं किन्तु यहाँ उसे विकार कहा है।

अज्ञानी पुण्य को धर्म का साधन कहता है जबकि यहाँ पुण्य को दुःख का साधन कहा है। पुण्य की रुचिवाला आत्मा की दृष्टि नहीं कर सकता। पुण्य द्वारा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा की शान्ति नहीं होती। पुण्य के कारण राज्य पद, सेठ पद, देव पद मिले, अनुकूल स्त्री-पुत्र मिले फिर भी जिसप्रकार जोंक दूषित रक्त को पीती है वैसे ही पुण्य की रुचिवाला असंतोष करता है।

जैसे जोंक का शरीर फट जाए तो भी वह दूषित रक्त पीना नहीं छोड़ती वैसे ही अज्ञानी जीव मानता है कि दया-दान करो, पुण्य करते-करते धर्म होगा। ऐसे जीव को यदि देह छूटने का भी समय आये फिर भी विषयों की तृष्णा नहीं मिटती और उनकी ओर झपटता है, मरते-मरते भी कहता है कि यह काम रह गया, लड़के की शादी करना रह गया, अथवा मेरे जीते जी प्रपोत्र की शादी कर जाऊँतो अच्छा है; इसप्रकार दुःखी होता है, क्योंकि आत्मा किसे कहना और पुण्य-पाप किसे कहना उसकी इसे खबर नहीं। पुण्य-पाप की रुचिवाले को सामग्री का अवलम्बन नहीं छूटता। मृत्यु पर्यन्त भी उसे तृष्णा नहीं छूटती इसलिये वह बाल (अज्ञान) मरण करता है।

पुण्य आकुलता का साधन है - यह बात पहले सिद्ध की गई है। कोई कहता है कि अच्छी पगार मिले तो उसमें सुख होगा ? नहीं, क्योंकि पैसा होनेपर भी जीव मानता है कि मेरे जैसा कोई भी दुःखी नहीं है। राग मंद किया हो तो पुण्य है किन्तु उसमें शान्ति नहीं है।

जो पुण्य रहित आत्मा की प्रतीति नहीं करता, वह घोर संसार में रखड़ता है। यहाँ शुभ और अशुभ भाव में अंतर नहीं है - ऐसा कहा है किन्तु यह बात तेरहपंथी स्थानकवासी के समान नहीं है। किसी जानवर को बचाने का भाव पुण्य है किन्तु पाप नहीं। जैसे पाप दुःख का साधन है वैसे ही पुण्य भी दुःख का साधन है। इसप्रकार समानता बताई है।

यहाँ तो कहते हैं कि शुभ परिणाम होता है वह पुण्य है उसके झुकाव में अतृप्ति रहती है इसलिये आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र का वह साधन नहीं। अपनी प्रभुता नहीं ढूँढता - पर में अंध बनता है। चिदानन्द अमृतस्वरूप आत्मा का अन्तर्मुख व्यापार - सुख का साधन है।

प्रश्न :- तो क्या फिर पुण्य नहीं करना ?

समाधान :- पुण्य करना अथवा नहीं करने का प्रश्न ही नहीं है। कषाय की मंदता के समय मंद राग होगा और कषाय की तीव्रता के समय तीव्रता का राग

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आएगा। जो आता है उसे करे कौन ? और जो नहीं आता उसे लावे कौन ? तेरी दौलत पुण्य-पाप में नहीं अपितु तेरी दौलत तो ज्ञानानन्द स्वभाव में है इसलिये पुण्य-पाप को हितकर न मान।

शरीर रोगी अथवा निरोग हो किन्तु अज्ञानी - मुझे निरोगता मिले - ऐसा मानकर मोह में अंध होता है; जबकि शरीर रोगी हो अथवा निरोगी हो - यह मेरास्वरूप नहीं है - ऐसा मानना चाहिये। अज्ञानी जीव पदवी मिलने पर सत्ता में अंधा हो जाता है; काम होनेपर कामांध, पैसा मिलनेपर पैसांध व मद होनेपर मदांध होता है, किन्तु मैं चैतन्य हूँ, जाननेवाला हूँ - ऐसी दृढ़ता नहीं करता, स्वभाव का अभिमान नहीं आया इसलिये पुण्य पाप का अभिमान आए बिना नहीं रहता।

शरीर का अभिमान नहीं करना - नहीं तो शरीर में कीड़े पड़ेंगे। अच्छा शरीर हो अथवा खराब शरीर हो दोनों की एक जाति है। पुण्य के फल की रुचिवाला दुःखी होता है। पुण्य के कारण अपनी प्रभुता को ढूँढने (समझने) की फुर्सत भी नहीं मिलती। दस लाख से बीस लाख हो जाय तो वहाँ अज्ञानी इसका अभिमान करता है। पुण्य के कारण यदि पैसा बढ़ जाय व अनुकूल स्त्री-पुत्रादि मिलें तो भी वहाँ सुखी नहीं है इसलिये जो पुण्य और पाप में अंतर मानता है वह मिथ्यादृष्टि है।

पुण्य-पाप के विकार एक ही जाति के हैं क्योंकि वे ज्ञान स्वभाव से विरुद्ध हैं; ज्ञान उसमें अटकता है इसलिये वे दुःख के साधन हैं फिर भी जो पुण्य-पाप में अंतर मानता है वह मिथ्या भाव में जुड़ता हुआ घोर संसार में परिभ्रमण करता है। पुण्य-पाप के परिणाम में, बंधन में और उनके फल में जो अंतर मानता है उसे नरक-निगोद में रखड़ना पड़ेगा और आत्मा का साधन भी नहीं मिलेगा इसलिये पुण्य और पाप दोनों ही आत्मा का धर्म नहीं है अपितु निश्चय से वे अधर्म हैं।

पूर्व गाथा में कहे अनुसार पुण्य इन्द्रियसुख का साधन है किन्तु आत्मा के सुख का साधन नहीं। पुण्य का ध्येय इन्द्रियसुख और विषय हैं। उनकी तरफ लक्ष्य होनेपर दुःख होता है। निर्धनता और धनवानपना, निरोगता अथवा रुग्णता दोनों में अन्तर नहीं है। यह ज्ञेय इष्ट है और यह ज्ञेय अनिष्ट है - ऐसा ज्ञेयों में भेद नहीं है। ज्ञान जाने और ज्ञेय जानने में आए इसके सिवाय दूसरा कोई सम्बन्ध नहीं है। ऐसा होनेपर भी पुण्य अच्छा है - ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि है। शुभाशुभ उपयोग के

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

द्वैत में दोपना नहीं है। विकार एक है। जैसे अनुकूल-प्रतिकूल संयोगों की एक ही जाति है वैसे ही पुण्य और पाप के बन्धन की एक जाति है। व्यवहार से पुण्य अच्छा है - ऐसा कहा जाता है, परन्तु परमार्थ से दोनों एक ही है।

अनुकूलता हो अथवा प्रतिकूलता हो दोनों की एक जाति है। इसी तरह शुभ परिणाम हो अथवा अशुभ परिणाम हो दोनो की एक जाति है। शुभ-अशुभ के दो प्रकार नहीं हैं। लक्ष्मी (धन) हो अथवा नहीं हो, पुत्र हो अथवा न हो, निरोगता हो अथवा न हो उनकी एक जाति है। पुण्य-पाप का बंधन एक जाति का है, क्योंकि दोनों में आत्मा का धर्म नहीं है।

पुण्य-पाप के भावरूप आश्रव में आत्मा नहीं है। जैसे शुभोपयोग और अशुभोपयोगरूप द्वैत धारण नहीं करता-टिकता नहीं अथवा जैसे इन्द्रियसुख और दुःखरूप द्वैत का अस्तित्त्व नहीं है; वैसे ही पुण्य और पापरूप द्वैत का अस्तित्व नहीं है क्योंकि पुण्य-पाप दोनों ही आत्मा के धर्म नहीं है, इसलिये वे निश्चय से समान है।

पुण्य का गाढ़ (निर्भर)रूप से अवलम्बन लेनेवाला शुद्धोपयोग का तिरस्कार करता है इसलिये वह संसार में रखड़ता है।- ऐसा होनेपर भी जो जीव स्वर्ण की और लोहे की बेड़ी की भाँति पुण्य और पाप में अन्तर होने का मत (अभिप्राय) रखता है वह अज्ञानजन्य है क्योंकि वह पुण्य को ठीक मानता है और पाप को बुरा मानता है; जिससे वह घोर संसार में रखड़ता है।

यदि किसी सेठ (प्रतिष्ठित व्यक्ति) को सोने की बेड़ी बाँधकर बाजार में घुमाया जाए तो वह खुश (प्रसन्न) होगा ? नहीं,अपितु उस तो शर्म लगेगी; किन्तु यहाँ अज्ञानी जीव पुण्य को अच्छा मानता है और कहता है कि - देखो ! पुण्य के कारण ही तो अहमिन्द्रादिक सम्पदा मिलती है, पैसा मिलता है। जो चक्रवर्ती, राजा अथवा सेठपने के कारणभूत पुण्य को अति गाढ़पने अवलम्बन करता है वह जीव वास्तव में दुःखी है।

चैतन्य ध्रुव अनादि-अनन्त है उसकी पर्याय में पुण्य परिणाम मालिन-भाव उपाधि है। ज्ञानस्वभाव त्रिकाल है, वह पुण्य के भाव से मलिन होता है क्योंकि उसने शुद्धोपयोग का अनादर किया है। मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ - उसमें उपयोग लगाऊँतो मेरा कल्याण होगा - ऐसा वह नहीं मानता और पुण्य परिणाम को गाढ़पने

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अवलम्बता है। आत्मा में शुभपरिणाम होता है, जो उसे गाढ़पने अवलम्बता है उसकी ज्ञान भूमि मैली है, वह शुद्धोपयोग का तिरस्कार करता है, इसलिये वह - ऐसा वर्तता हुआ सदा के लिए शारीरिक दुःख का ही अनुभव करता है।

पुण्य की रुचिवाला संसार के अस्तित्त्व पर्यन्त दुःख का ही अनुभव करता है। जो पुण्य को धर्म का अंग मानता है अथवा पुण्य को धर्म का साधन मानता है वह संसार में रखड़ता है। ज्ञानी को शुभभाव आता है, दया-दान, व्रत-तप होते हैं किन्तु उनका गाढ़ अवलम्बन नहीं होता। पूर्णानन्द स्वभाव का अवलम्बन होने से ज्ञानी को पुण्य का गाढ़ अवलम्बन नहीं होता।

अज्ञानी स्वयं पुण्य के परिणाम का गाढ़ अवलम्बन करता है। मोहनीय के उदय के कारण अवलम्बन करता है - ऐसा यहाँ नहीं कहा अपितु स्वयं उसरूप वर्तता हुआ कहा है। जिसे वर्तमान में पुण्य की रुचि है, उसे त्रिकाल पुण्य की रुचि है; इसलिये उसे धर्म का अवकाश नहीं रहता; वह शारीरिक दुःख का ही अनुभव करता है किन्तु ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव का अवलम्बन नहीं करता इसलिये उसे अशरीरी सुख नहीं होता।

यहाँ पुण्य परिणाम शुद्धोपयोग का तिरस्कार करता है - ऐसा कहा अर्थात् व्यवहार निश्चय का तिरस्कार करता है और निश्चय का आदर करनेवाला व्यवहार का आदर नहीं करता। जो व्यवहार का आदर करता है वह शारीरिक दुःख का ही अनुभव करता है।

भावार्थ पर प्रवचन :- जैसे सोने की बेड़ी और लोहे की बेड़ी अविशेषरूप से (सामान्यरूप से) बाँधने का काम करती है किन्तु छोड़ने का नहीं करती; वैसे ही पुण्य-पाप दोनों ही बन्धन है। पुण्य भी छोड़ने का काम नहीं करता। इसप्रकार जो जीव पुण्य-पाप का समानपना स्वीकार नहीं करता उसका संसार में रखड़ने का अंत नहीं आता अर्थात् जो जीव पुण्य-पाप में अन्तर मानता है वह चौरासी के अवतार में रखड़ता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचनसार गाथा ७८

अथैवमवधारितशुभाशुभोपयोगाविशेषः समस्तमपि राग-द्वेषद्वैतमपहासयन्नशेषदुःखक्षयाय सुनिश्चितमनाः शुद्धोपयोगमधिवसति -

एवं विदिदित्थो जो दव्वेसु ण रागमेदि दोसं वा।
उवओगविसुद्धो सो खवेदि देहुब्भवं दुक्खं ॥७८॥

अब, इसप्रकार शुभ और अशुभ उपयोग की अविशेषता अवधारित करके, समस्त रागद्वेष के द्वैत को दूर करते हुए, अशेष दुःख का क्षय करने का मन में दृढ़ निश्चय करके शुद्धोपयोग में निवास करता है (उसे अंगीकार करता है) :-

जो जानकर तत्त्वार्थ राग न द्वेष अर्थों में करे ।
उपयोग से हो शुद्धमय वह देहगत दुःख-क्षय करे ॥७८॥

अन्वयार्थ :- **(एवं)** इसप्रकार **(विदितार्थः)** वस्तु स्वरूप को जानकर **(यः)** जो **(द्रव्येषु)** द्रव्यों के प्रति **(रागं द्वेषं वा)** राग या द्वेष को **(न एति)** प्राप्त नहीं होता, **(सः)** वह **(उपयोगविशुद्धः)** उपयोगविशुद्ध होता हुआ **(देहोद्भवं दुःखं)** देहोत्पन्न दुःख का **(क्षयपति)** क्षय करता है।

टीका :- जो जीव शुभ और अशुभ भावों के अविशेषदर्शन से (समानता की श्रद्धा से) वस्तुस्वरूप को सम्यक्प्रकार से जानता है, स्व और पर - ऐसे दो विभागों में रहनेवाली, समस्त पर्यायों सहित समस्त द्रव्यों के प्रति राग और द्वेष को निरवशेषरूप से छोड़ता है, वह जीव, एकान्त से उपयोगविशुद्ध (-सर्वथा शुद्धोपयोगी) होने से जिसने परद्रव्य का आलम्बन छोड़ दिया है - ऐसा वर्तता हुआ - लोहे के गोले में से लोहे के[1]सार का अनुसरण न करनेवाली अग्नि की भाँति - प्रचंड घन के आघात समान शारीरिक दुःख का क्षय करता है। (जैसे अग्नि लोहे के तप्त गोले में से लोहे के सत्व को धारण नहीं करती इसलिये अग्नि पर प्रचंड घन के प्रहार नहीं होते, उसीप्रकार परद्रव्य का आलम्बन न करनेवाले आत्मा को शारीरिक दुःख का वेदन नहीं होता।) इसलिए यही एक शुद्धोपयोग मेरी शरण है ॥७८॥

---

[1] *सार = सत्व, घनता, कठिनता।*

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गाथा ७८ पर प्रवचन

शुभाशुभभावों में, उनके फल में और फल के संयोग के समय जीव की कल्पना में भेद नहीं है।

यह ज्ञानतत्त्व का अधिकार है। आत्मा का स्वभाव ज्ञान है, उसकी प्रीति व रमणता करना वह धर्म है। पुण्य-पाप के भाव होते हैं वे विकार हैं। विकार के फल में संयोग मिलते हैं वहाँ सुख-दुःख की कल्पना है। दया-दानादि के शुभभाव तथा हिंसा, झूठ, चोरी के अशुभ भाव - दोनों ही बन्धन हैं; उनसे संयोग मिलते हैं; वहाँ पुण्य के संयोगवाला संयोग के समय सुख भोगते हैं और पापवाला दुःख भोगता है इसलिये शुभ अशुभभाव में द्वैत नहीं रहता; क्योंकि उनके फल में दुःख भोगता है, इसलिये उनके वेदन में द्वेत नहीं है। जिन्हें धर्म करना हो उन्हें - ऐसी सत्य दृष्टि करना चाहिये।

सच्ची दृष्टि कब कहलाती है ?

जब ऐसा माने कि पुण्य पाप के भाव में द्वैत (दोपना) नहीं है। पुण्य लाभदायक और पाप नुकसान कारक हो - ऐसा नहीं है। तथा अनुकूल और प्रतिकूल सामग्रीयों में द्वैत नहीं है। उनके संयोग के समय स्वयं सुख-दुःख की कल्पना करता है, उसमें भी द्वैत नहीं है। आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप त्रिकाल है। वस्तु त्रिकाल है और उसका स्वभाव भी त्रिकाल है।

शुभ अशुभ भाव दोनों ही बन्ध के कारण हैं, उनके फल में विषय मिलते हैं। उसमें शारीरिक दुःख ही है। शुभ भाव के फल में अनुकूल सामग्री तथा उनकी तरफ कल्पना और अशुभभाव - उनके फल में प्रतिकूल सामग्री तथा उस तरफ की कल्पना - दोनों की एक ही जाति है, उसमें विशेष (अंतर) नहीं है इसलिये वे सामान्य (समान) हैं। शुभ-अशुभ भाव एक ही जाति के हैं, उनके कारण सामग्री मिलती है तथा उनकी सन्मुखता में आकुलता करता है इसलिये इन दोनों में थोड़ा भी अन्तर नहीं है।

अब, इसप्रकार शुभ और अशुभ भाव दोनों में पृथकता नहीं है; वे सामान्य हैं अर्थात् उन दोनों की एक ही जाति है। पुण्य-पाप के भाव, सामग्री और

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कल्पना सभी की एक ही जाति है; उनमें आत्मा का कल्याण नहीं है।

देव, मनुष्य आदि पुण्य के कारण सुखी जैसे दिखाई देते हैं, किन्तु वास्तव में वे सुखी नहीं है। जैसे जोंक दूषित रक्त को पीकर मरती है; वैसे ही पूर्व के शुभभाव के कारण पैसा मिलता है, वहाँ अज्ञानी कल्पना का सुख लेने लगता है और आर्तध्यान करता है इसलिये वह दुःख ही है।

पाप के फल में दुःख है - ऐसा तो सभी कहते हैं किन्तु यहाँ तो कहते हैं कि पुण्य का सुख भी आकुलतामय होने से वह दुःख का साधन है। पूर्व पुण्य के कारण सामग्री मिले उसे भोगने जाए तो वहाँ दुःख होता है, इसलिये कहा कि पुण्य परिणाम दुःख उत्पन्न करता है वह सुख का साधन नहीं है। धनवान हो अथवा निर्धन, राजा हो अथवा रंक उन सभी का पर की ओर लक्ष्य जाता है इसलिये वे दुःखी हैं। यहाँ ६ प्रकार से कथन करके सिद्ध किया कि - पुण्य दुःख का कारण है।

स्वभाव की प्रतीति और रमणता करने से शुभाशुभभाव दूर होते हैं। इसलिये पुण्यराग अच्छा हो और पाप खराब - ऐसा नहीं है। इसप्रकार उनके द्वैत को दूर करते हैं। अशेष दुःख अर्थात् समस्त दुःख का नाश करने के लिये दृढ़ निश्चय करके शुद्ध उपयोग में निवास करते हैं।

आत्मा ज्ञानानन्द है, उसकी एकाग्रता में निवास करना वही दुःख के क्षय का उपाय है, इसके अतिरिक्त प्रतिकूल सामग्री को दूर करना चाहे और अनुकूल सामग्री को रखना चाहे तो वह सुख का उपाय नहीं है। चिदानंद आत्मा सुख का साधन है इसके सिवाय दूसरा कोई भी सुख का साधन नहीं है - ऐसा निर्णय करना चाहिये।

जैसे नमक खारा है - ऐसा निर्णय करने के बाद वह खारा होगा अथवा कैसा होगा ? - ऐसा विकल्प नहीं आता; वैसे ही शुभ-अशुभ भाव और बाहर के साधन एक ही जाति के हैं - ऐसा निर्णय करने के बाद शुभराग ठीक होगा अथवा संयोग अच्छे होंगे - ऐसी कल्पना नहीं होती।

पुण्य-पाप तथा शुभ-अशुभ सभी एक हैं मेरा स्वभाव उनसे भिन्न है - ऐसा निर्णय होनेपर भ्राँति का दुःख नाश हुआ उसके बाद अपनी कमजोरी से होनेवाला अस्थिरता के दुःख का नाश स्वभाव में स्थिरता होने से हो जाता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञानस्वभाव में सुख है - ऐसा निर्णय होनेपर भ्रांति का दुःख दूर हो जाता है किन्तु अस्थिरता का दुःख सर्वज्ञ हुए बिना दूर नहीं होता; इसलिये पुण्य-पाप के भाव का नाश स्वभाव में एकाग्रता करने से होता है।

इसप्रकार अर्थात् ऊपर (पूर्वोक्त) गाथा में कहे अनुसार वस्तु का स्वरूप जान कर राग-द्वेष को प्राप्त नहीं होता - ऐसा कहा है। आत्मा ज्ञानानन्द स्वरूप है जो सुख का साधन है किन्तु पुण्य-पाप के भाव, सामग्री और कल्पना सुख का कारण नहीं है -ऐसा जाननेवाला जैसे स्व वैसे ही पर पदार्थ के प्रति राग-द्वेष को प्राप्त नहीं होता, अपितु आत्मा ज्ञानस्वभावी है - ऐसा निर्णय करने के बाद आत्मा के सन्मुख वर्तता होने से वह देहोत्पन्न दुःख का नाश करता है। इसप्रकार जो स्व-पर समस्त द्रव्यों के प्रति राग-द्वेष को छोड़ता है वह शुद्धोपयोगी होता है।

जीव अर्थात् आत्मा। जीव और आत्मा पृथक नहीं हैं। चिदानन्द मूर्ति-जीव है। दया-दानादि के भाव शुभ हैं और हिंसा, झूठ, चोरी का भाव अशुभ है - वे दोनों ही समान हैं,दोनों भावों में कोई अन्तर नहीं है - ऐसी श्रद्धा करना। शुभ-अशुभ भाव दोनों दुःख के कारण हैं - ऐसी श्रद्धा से वस्तु स्वरूप को सम्यक् प्रकार से जानना चाहिए।

पुण्य-पाप आत्मा को लाभदायक नहीं - ऐसा जानकर जीव स्व-पर ऐसे दो विभाग में रहा हुआ जो समस्त पर्यायों सहित समग्र द्रव्य, उनके प्रति राग और द्वेष को छोड़ता है अर्थात् अपने द्रव्य में और परद्रव्य में उसीप्रकार अपनी पर्याय में और पर की पर्याय में राग-द्वेष नहीं करता। स्व द्रव्य में निर्मल पर्याय हुई - ऐसा विकल्प छोड़ने योग्य है। ऐसी पर्याय हो तो ठीक और ऐसी पर्याय हो तो ठीक नहीं - ऐसे विकल्प को छोड़ता है। भगवान अनुकूल और दुश्मन प्रतिकूल है - ऐसा राग-द्वेष छोड़ता है।

प्रश्न :- 'मुझे जैन शासन को रखना है' - ऐसा प्रशस्त राग तो करना चाहिए न ?

उत्तर :- नहीं। शुभ-अशुभ दोनों ही अहितकारक है और स्वभाव हितकारक है। त्रिकाली द्रव्य अथवा पर्याय, स्व-पर में कुछ भी राग-द्वेष करने योग्य नहीं है - ऐसा निर्णय करना चाहिए। यहाँ तो (पर्याय की) कमजोरी से जो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

राग-द्वेष होता है उसे भी छोड़ते हैं - ऐसा कहा है।

शुद्धोपयोग करनेयोग्य है और शुभोपयोग करने योग्य नहीं - ऐसा अनेकांत है। शुभराग कंथचित लाभदायक है अथवा धर्म का साधन है - ऐसा अज्ञानी कहता है। इसीलये यहाँ शुद्धोपयोग करने योग्य है और शुभोपयोग करने योग्य नहीं है - यह अनेकांत बताया है। व्यवहार कथंचित आराधना करने योग्य है - ऐसा नहीं कहा अपितु एकांत शुद्धोपयोग को विशुद्ध कहा है। एकरूप स्वभाव में पुण्य-पाप की दो रूपता लाभदायक नहीं है - ऐसा निर्णय करने के बाद भी अस्थिरता का भाव आता है, उसे छोड़कर शुद्ध आत्मा का अवलम्बन लिया है अर्थात् पुण्य-पाप का अवलम्बन छोड़ता है; इसप्रकार शुद्ध उपयोग में वर्तना है मुक्ति का कारण है।

चैतन्य अग्नि, पुण्य-पापरूपी लोहे का संग न करे तो उसे चार गति में दुःख भोगना न पड़े। जैसे लोहे के गोले में से लोहे के सत्त्व को धारण नहीं करती हुई अग्नि के समान - प्रचण्ड घन के आघात के समान शारीरिक दुःख का क्षय करता है। अग्नि लोहे का संग करती है तो उसे घन का प्रहार सहन करना पड़ता है; यदि वह अग्नि लोहे के गोले में न जाय तो घन का प्रहार न पड़े; वैसे ही चैतन्य अग्नि पुण्य-पापरूपी लोहे में जाये तो उसे दुःख का प्रहार सहन करना पड़ता है किन्तु चैतन्य अग्नि पुण्य-पापरूपी लोहे में न जाये और अकेली शुद्ध रहे तो उसे दुःख सहन नहीं करना पड़ता।

आत्मा पुण्य-पाप का अनुशरण नहीं करता। मैं चिदानंद हूँ इसप्रकार पर से भिन्नता का निर्णय किया है - ऐसी चैतन्य अग्नि स्वभाव का अनुसरण करती है इसलिये दुःख नहीं है। लोहे के टुकड़ों को छोटा अथवा बड़ा बनाना हो तो उसे अग्नि में डाले तो उसके ऊपर प्रहार पड़ते हैं किन्तु अकेली अग्नि के ऊपर कोई प्रहार नहीं करता वैसे ही चैतन्य ज्ञानानन्द स्वरूप में एकाग्र हो और पुण्य-पाप में न जाये तो दुःख सहन नहीं करना पड़ता। पूजा में भी आता है कि:-

कर्म विचारे कौन, भूल मेरी अधिकाई।
अग्नि सहे घन घात, लोह की संगति पाई॥

पुण्य-पाप का संग करें तो आत्मा को दुःख का वेदन करना पड़ता है किन्तु संग न करें तो दुःख का वेदन नहीं करना पड़ता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चारित्र एक ही शरण है - शुभराग शरण नहीं। यहाँ चरित्र वास्तव में धर्म है यह बात चल रही है। शुभराग को उपचार से मित्र कहा है, किन्तु वह बैरी है इसलिये यही एक शुद्धोपयोग आनन्द कंद है उसकी दृष्टि करके अन्तरलीनता का व्यापार करना ही शरण है।

प्रश्न :- 'अरहंता शरणं, सिद्ध शरणं, केवलि पण्णतों धम्मो शरणं' - ऐसा आता है न ?

समाधान :- वास्तव में, अरहन्त तो शरण नहीं है किन्तु अरहंत के प्रति होनेवाला शुभराग भी शरण नहीं है।

प्रश्न :- यह निश्चय का ग्रंथ (कथन) है किन्तु व्यवहार का क्या अर्थ है?

समाधान :- धर्मात्मा को शुभराग सहचर देखकर उसे व्यवहार से शरण कहा है किन्तु वह वास्तव में शरण नहीं है।

एक आदमी को प्रतिदिन चूरमा का लड्डू खाने की वर्षों से आदत पड़ गई थी। कुछ समय पश्चात् उसके एक के बाद एक पुत्र मर गए; फिर भी समाज ने उसे चूरमे का लड्डू खिलाया, क्योंकि उसने एक भी दिन रोटी नहीं खाई थी; उसने भी रोते-रोते लड्डू खाया, दूसरा भोजन नहीं लिया और उसे लड्डू खाना पड़ा। क्या वहाँ उसे लड्डू खाने में खुशी होगी ? नहीं। बाजरे की रोटी आदि खाई नहीं जाती इसलिये लड्डू खाना पड़ता है किन्तु लड्डू खाते समय तो रोता है; वैसे ही धर्मात्मा को आत्मा का निर्णय है और वह इन्द्रियसुख, दुःखदायक है - ऐसा वह मानता है फिर भी अस्थिरता का राग आता है किन्तु समझता है कि राग दुःखदायक है और स्वरूप ही सुखदायक है।

जैसे उसे रोते-रोते लड्डू खाना पड़ता है, वैसे ही धर्माता को अस्थिरता का राग होता है किन्तु उसे खेद वर्तता है। मैं मेरे स्वरूप में ठहरूँ तो मुझे सुख होगा - ऐसी प्रतीति है, उसके बाद शुभभाव छोड़कर अंतर में ठहरता है वह शुद्धोपयोग है। पुण्य-पाप के सम्बन्ध को सर्वप्रथम, श्रद्धा से तोड़े उसके बाद अस्थिरता का सम्बन्ध तोड़े। वास्तव में शुद्धोपयोग ही शरण है, स्त्री-पुत्रादि तो शरण नहीं किन्तु शुभराग भी शरणरूप नहीं है। एकमात्र शुद्ध आत्मा ही शरण्य है।

इसप्रकार सर्वप्रथम निर्णय करना चाहिये। शुभराग वास्तविक सुख नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। आत्मा चैतन्य सर्वज्ञस्वभावी है। उसका निर्णय करे तो पुण्य-पाप शरण है - ऐसी मान्यता नहीं रहती; ऐसा निर्णय होने के पश्चात् चारित्र आता है वह चारित्र मुक्ति का साक्षात् कारण है।

इस अल्प आयु और चंचल काया को इस (मोक्ष) मार्ग में खपा देने से यदि परम शुद्ध चैतन्यधन अविनाश निःश्रेयस की प्राप्ति होती हो तो तुझे फूटी कौड़ी के बदल में चिन्तामणि रत्न से भी अधिक की प्राप्ति हुई है ऐसा समझ। हे जीव! सम्यक् ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप इन चारों आराधना की उत्तरोत्तर वृद्धि एवं शुद्धि में तेरे इस मनुष्य जीवन का जो काल है, उतनी ही तेरी सफल आयु है ऐसा समझ।

- श्री आत्मानुशासन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचनसार गाथा ७९

अथ यदि सर्वसावद्ययोगमतीत्य चरित्रमुपस्थितोऽपि शुभोपयोगानुवृत्तिवशतया मोहादोन्नोन्मूलयामि, ततः कुतो मे शुद्धात्मलाभ इति सर्वारम्भेणोत्तिष्ठते -

चत्ता पावारंभं समुट्ठिदो वा सुहम्मि चरियम्मि।
ण जहदि जदि मोहादी ण लहदि सो अप्पगं सुद्धं ।।७९।।

अब, सर्व सावद्ययोग को छोड़कर चारित्र अङ्गीकार किया होनेपर भी यदि मैं शुभोपयोगपरिणति के वश होकर मोहादि का [१]उन्मूलन न करूँ, तो मुझे शुद्ध आत्मा की प्राप्ति कहाँ से होगी ? - इसप्रकार विचार करके मोहादि के उन्मूलन के प्रति सर्वारम्भ (सर्वउद्यम) पूर्वक कटिबद्ध होता है :-

यदि त्याग पापारम्भ भी शुभचरित में उद्यममती ।
मोहादि को ना छोड़ता शुद्धात्म-प्राप्ती ना कभी ।।७९।।

अन्वयार्थ :- **(पापारम्भं)** पापारम्भ को **(त्यक्त्वा)** छोड़कर **(शुभे चरित्रे)** शुभ चारित्र में **(समुत्थितः वा)** उद्यत होनेपर भी **(यदि)** यदि जीव **(मोहादीन्)** मोहादि को **(न जहाति)** नहीं छोड़ता; तो **(सः)** वह **(शुद्ध आत्मकं)** शुद्ध आत्मा को **(न लभते)** प्राप्त नहीं होता।

टीका:- जो (जीव) समस्त सावद्ययोग के प्रत्याख्यानस्वरूप परमसामायिक नामक चारित्र की प्रतिज्ञा करके भी धूर्त [२]अभिसारिका (नायिका) की भाँति शुभोपयोग परिणति से अभिसार (-मिलन) को प्राप्त होता हुआ (अर्थात् शुभोपयोग परिणति के प्रेम में फँसता हुआ) मोह की सेना के वशवर्तनपने को दूर नहीं कर डालता-जिसके महादुःख संकट निकट हैं - ऐसा वह शुद्ध (-विकार रहित, निर्मल) आत्मा को कैसे प्राप्त कर सकता है ? (नहीं प्राप्त कर सकता) इसलिये मैने मोह की सेनापर विजय प्राप्त करने को कमर कसी है।

---

[१] *उन्मूलन = जड़मूल से निकाल देना; निकन्दन।*

[२] *अभिसारिका = संकेत अनुसार प्रेमी से मिलने जानेवाली स्त्री।*

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गाथा ७९ पर प्रवचन

मुनिराज मोक्ष प्राप्ति के लिये सर्वप्रकार से उद्यम करते हैं। मुनि ने पाप के परिणाम छोड़ कर चारित्र को अंगीकार किया है, फिर भी यदि मैं शुभपरिणाम के वश होकर मोहादि का उन्मूलन (नाश) न करूँ तो मुझे शुद्धात्मा की प्राप्ति कहाँ से होगी? अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति कहाँ से होगी ? - ऐसा विचार करते हैं। चारित्र का फल मोक्ष है। यहाँ चारित्र की बात चलती है।

मुनि को पांच महाव्रत के परिणाम आते हैं, फिर भी यदि वे शुभ के प्रभाव में हो तो मुक्ति नहीं होती। प्रथम निर्णय किया है कि शुभ से मुक्ति नहीं, स्वभाव के आश्रय से ही मुक्ति है, किन्तु शुभ अवश्य आता है, वह शुभ (भाव) रहे तब तक मुक्ति नहीं होती इसप्रकार विचार करके साधक जीव मोहादिक का अर्थात् शुभरागादि को मूल में से नाश करने के लिये तैयार होता है - कमर बांधी है। व्यवहार में खेद वर्तता है। वहाँ का उदय है इसलिये वर्तता है - ऐसा नहीं है, किन्तु मेरा स्वभाव शुद्ध चिदानन्द है। इसमें एकाग्र होने के लिये कमर कसी है अर्थात् पुरुषार्थ से कटिबद्ध होता है - ऐसा कहा है।

यहाँ मुनि की व्याख्या करते हैं। उनकी दृष्टि तो निर्मल है और अशुभ परिणाम भी छोड़े है। पाँच महाव्रत आदि के परिणाम आते हैं; अब, ऐसे पंचमहाव्रत के शुभराग को भी जो मुनि नहीं छोड़ते वे मुक्ति को प्राप्त नहीं होते, यह बात यहाँ बतलाते हैं।

जो जीव शुभरागरूपी ठग के साथ दोस्ती करते हैं वे मोह का नाश नहीं कर सकते। जो जीव समस्त सावद्य योग के प्रत्याख्यान स्वरूप परम सामायिक नामक चारित्र की प्रतिज्ञा करके भी शुभ की दोस्ती करते हैं, वे मोह को नष्ट नहीं कर सकते - दूसरे की क्या बात करना ? दूसरे तो मिथ्यात्व में पड़े हैं। यहाँ तो मुनि की व्याख्या करते हैं।

मुनिराज जंगल में निवास करते हैं। जैसा महावीर भगवान ने मुनिपने का पालन किया था। वैसा ही मुनिपना होता है उन्हें समस्त अशुभ भाव छोड़कर प्रत्याख्यान स्वरूप परम सामायिक चारित्र की प्रतिज्ञा की है। मात्र दो घड़ी बैठ जावे

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वह सामायिक नहीं और शुभराग भी सामायिक नहीं है, अपितु यहाँ आत्मा के भान सहित परम सामायिक की बात है। पाँचवें गुणस्थान में भी सामायिक होती है किन्तु यहाँ मुनि की परम सामायिक की बात करते हैं; उनने चारित्र की प्रतिज्ञा की है फिर भी जो अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अचौर्य अपरिग्रहता के शुभ परिणाम होते हैं वे धूर्त अभिसारिका (नायिका) की भाँति है।

शुभराग ठग हैं। हिंसा, झूठ, चोरी पाप है अधर्म है। वह तो बड़ा ठग है क्योंकि वह नरक का कारण है। जैसे धूर्त स्त्री प्रेमी को मिल जाए तो वह उसे बहुत पैसा देता है, इसलिए वह ठगनेवाली है। वैसे ही शुभराग भी धूर्त है। जो जीव शुभराग में मिलने जाए, उसके प्रेम में फंस जाए तो उसे लाभ नहीं होता। जो शुभराग में एकाग्र होता है उसे लाभ नहीं होता।

शुभराग उसके कारण आता है। जो उससे मिलने तो जाता है किन्तु स्वभाव से मिलन नहीं करता वह पुण्य के परिणाम को जंजीर नहीं डालता। इस जीव को महादुःख संकट निकट है। - ऐसे जीव निर्मल आत्मा को प्राप्त नहीं करते। इसप्रकार विचार करके मुनि मोह की सेना के ऊपर विजय प्राप्त करने के लिए स्वभाव सन्मुख होते हैं - पुरुषार्थ करते हैं।

एकबार अंतर से दृष्टि कर कि मैं भी सिद्ध की भाँति अशरीरी हूँ शरीर का स्पर्श ही नहीं करता; वर्तमान ही शरीर से पृथक् हूँ ऐसी श्रद्धा न करे तो जब शरीर से पृथक् होगा तब उसकी अभिलाषा शरीर के प्रति ही बनी रहेगी।

- पूज्य गुरुदेवश्री

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचनसार गाथा ८०

अथ कथं मया विजेतव्या मोहवाहिनीत्युपायमालोचयति-

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं ।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं ॥८०॥

अब, 'मैं मोह की सेना को कैसे जीतूं' - ऐसा उपाय विचारता है :-

जो जानता अरहन्त को द्रव्यत्व-गुण-पर्याय से ।
वह जानता है आत्मा हो मोहक्षय तब नियम से ॥८०॥

अन्वयार्थः- **(यः)** जो **(अर्हन्तं)** अरहंत को **(द्रव्यत्वगुणत्वपर्ययत्वैः)** द्रव्यपने गुणपने और पर्यायपने **(जानाति)** जानता है, **(सः)** वह **(आत्मानं)** (अपने आत्मा को) **(जानाति)** जानता है और **(तस्य मोहः)** उसका मोह **(खलु)** अवश्य **(लयं याति)** लय को प्राप्त होता है।

टीका :- जो वास्तव में अरहंत को द्रव्यरूप से, गुणरूप से और पर्यायरूप से जानता है, वह वास्तव में अपने आत्मा को जानता है, क्योंकि दोनों में निश्चय से अन्तर नहीं है; और अरहंत का स्वरूप, अन्तिम ताव को प्राप्त सोने के स्वरूप की भाँति, परिस्पष्ट (-सर्वप्रकार से स्पष्ट) है, इसलिये उसका ज्ञान होनेपर सर्व आत्मा का ज्ञान होता है।

वहाँ अन्वय वह द्रव्य है, अन्वय का विशेषण वह गुण है और अन्वय के व्यतिरेक (-भेद) वे पर्यायें हैं। सर्वतः विशुद्ध भगवान अरहंत में (-अरहंत के स्वरूप का ख्याल करनेपर) जीव तीनों प्रकारयुक्त समय को (द्रव्यगुणपर्यायमय निज आत्मा को) अपने मन से जान लेता है - समझ लेता है।

यथा 'यह [१]चेतन है' इसप्रकार का अन्वय वह द्रव्य है, अन्वय के आश्रित रहनेवाला 'चैतन्य' विशेषण वह गुण है, और एक समय मात्र की मर्यादावाला कालपरिमाण होनेसे परस्पर अप्रवृत्त [२]अन्वयव्यतिरेक वे पर्यायें हैं - जो कि चिद्विवर्तन की (-आत्मा के परिणमन की) ग्रन्थियाँ (गाँठें) हैं।

---

[१] चेतन = आत्मा। [२] अन्वयव्यतिरेक = एक दूसरे में नहीं प्रवर्तते - ऐसे जो अन्वय के व्यतिरेक।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अब, इसप्रकार त्रैकालिक को भी (-त्रैकालिक आत्मा को भी) एक काल में समझ लेनेवाला वह जीव, जैसे मोतियों को झूलते हुए हार में अन्तर्गत माना जाता है, उसीप्रकार चिद्विवर्तों का चेतन में ही संक्षेपण (अन्तर्गत) करके, तथा [१]विशेषणविशेष्यता की वासना का [२]अन्तर्धान होने से-जैसे सफेदी को हार में [३]अन्तर्हित किया जाता है, उसीप्रकार चैतन्य को चेतन में ही अन्तर्हित करके, जैसे मात्र [४]हार को जाना जाता है, उसीप्रकार केवल आत्मा को जानने पर, उसके उत्तरोत्तर क्षण में कर्ता-कर्म-क्रिया का विभाग क्षय को प्राप्त होता जाता है इसलिये निष्क्रिय चिन्मात्र भाव को प्राप्त होता है; और इसप्रकार मणि की भाँति जिसका निर्मल प्रकाश अकम्परूप से प्रवर्तमान है - ऐसे उस (चिन्मात्र भाव को प्राप्त) जीव के मोहान्धकार निराश्रयता के कारण अवश्यमेव प्रलय को प्राप्त होता है।

यदि ऐसा है तो मैंने मोह की सेना को जीतने का उपाय प्राप्त कर लिया है।

भावार्थः- अरहंत भगवान और अपना आत्मा निश्चय से समान है। अरहंत भगवान मोह-राग-द्वेषरहित होने से उनका स्वरूप अत्यन्त स्पष्ट है, इसलिये यदि जीव द्रव्य-गुण-पर्यायरूप से उस (अरहंत भगवान के) स्वरूप को मन के द्वारा प्रथम समझ ले तो 'यह जो आत्मा, आत्मा का एकरूप (-कथंचित् सदृश) त्रैकालिक प्रवाह है सो द्रव्य है, उसका जो एकरूप रहनेवाला चैतन्यरूप विशेषण है सो गुण है और उस प्रवाह में जो क्षणवर्ती व्यतिरेक हैं सो पर्यायें हैं" इसप्रकार अपना आत्मा भी द्रव्य-गुण-पर्यायरूप से मन के द्वारा ज्ञान में आता है।

इसप्रकार त्रैकालिक निज आत्मा को मन के द्वारा ज्ञान में लेकर - जैसे मोतियों को और सफेदी को हार में ही अन्तर्गत करके मात्र हार ही जाना जाता है, उसीप्रकार-आत्मपर्यायों को और चैतन्य-गुण को आत्मा में ही अन्तर्गर्भित करके

---

[१] *विशेषण गुण है और विशेष्य वह द्रव्य है।*

[२] *अन्तर्धान = अदृश्य हो जाना।*

[३] *अन्तर्हित = गुप्त; अदृश्य।*

[४] *हार को खरीदनेवाला मनुष्य हार को खरीदते समय हार, उसकी सफेदी और उसके मोतियों इत्यादि की परीक्षा करता है किन्तु बाद में सफेदी और मोतियों को हार में ही समाविष्ट करके उनका लक्ष छोड़कर वह मात्र हार को ही जानता है। यदि - ऐसा न करे तो हार के पहिनने पर भी उसकी सफेदी आदि के विकल्प बने रहने से हार को पहिनने के सुख का वेदन नहीं कर सकेगा।*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

केवल आत्मा को जानने पर परिणामी-परिणाम-परिणति के भेद का विकल्प नष्ट हो जाता है, इसलिये जीव निष्क्रिय चिन्मात्र भाव को प्राप्त होता है, और उससे दर्शनमोह निराश्रय होता हुआ नष्ट हो जाता है।

यदि ऐसा है, तो मैंने मोह की सेना पर विजय प्राप्त करने का उपाय प्राप्त कर लिया है - ऐसा कहा है।

ॐ ॐ ॐ

गाथा ८० पर प्रवचन

अब, 'मैं मोह की सेना को कैसे जीतूं' - ऐसा उपाय विचारता है :-

इसमें स्वरूप की असावधानी और परपदार्थ के प्रति सावधानीरूप मोह को - जीतने का उपाय बताया है। यह गाथा अलौकिक है, इसमें धर्म की मूल चीज है। यह ज्ञान अधिकार है; ज्ञान आत्मा का स्वभाव है - उसका जानना स्वभाव है उसमें धर्म कैसे-होता है ? उसकी यहाँ बात चलती है। अब तक जीव ने विपरीत श्रद्धा और अभिप्राय को नहीं छोड़ा इसलिये अधर्म हो रहा है। यह अधर्म कैसे दूर होता है ? वह इस गाथा में कहते हैं; निज आत्मा के सिवाय जो पर में सावधानी है उसे किस तरह जीतना ?

आत्मा जाननेवाला है। जाननेवाला अपनी एकाग्रता छोड़कर पर में सावधानी करता है जैसे शरीर का-जड़ का क्या होगा ? ऐसी परपदार्थ के प्रति सावधानीपना वर्तता है वह मिथ्यात्व भाव है; यह मोह की सेना का विकारी भाव है दया, दानादि भाव के प्रति सावधानी का भाव अथवा इससे मुझे लाभ होगा - यह भाव अधर्म है।

पुण्य-पाप की सावधानी का भाव और ज्ञानानन्द स्वभाव की असावधानी का भाव मिथ्यात्व है। यहाँ परजीव को बचाने अथवा मारने की बात नहीं है, क्योंकि आत्मा परजीव को बचा अथवा मार नहीं सकता। तथा आत्मा ज्ञानानन्द स्वरूप है उस छोड़कर पैसे को मिलाऊं और प्रतिकूलता न हो तो ठीक है, अनुकूलता हो तो ठीक है; इसप्रकार पर के प्रति सावधानी भाव होता है उसे कैसे जीतना ? वह बताते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आचार्य को स्वयं तो सम्यक् दर्शन हुआ है किन्तु जगत के लिए इसके उपाय का विचार करते हैं। अनन्त काल में शुभ भाव से स्वर्ग के भव हुए इसलिये ये दोनों ही अधर्म हैं। इस अधर्म का कैसे नाश करना उस उपाय का विचार करते हैं। स्वयं ने मोह भाव को दूर कर किया है किन्तु जगत के पास (सामने) बात रखी है।

जीव ने अनन्तकाल से धर्म नहीं किया, धर्म की विधि को वास्तव में सुना नहीं। यदि वास्तव में सुना हो तो धर्म हो जाता है। अब अनेक बातें करके धर्म करने की विधि कहते हैं। अरहन्त और आत्मा समान हैं। अन्तरंग स्वभाव में फेर (अन्तर) नहीं है - पर्याय में फेर है। संसारी को अल्पज्ञता और राग-द्वेष है और भगवान को सर्वज्ञता और वीतरागता है, शेष स्वभाव में अन्तर नहीं है यह यहाँ स्पष्ट करते हैं।

अन्तर शक्ति भरी है उसमें से भगवान ने केवलज्ञान प्रगट किया है - ऐसा मुमुक्षु जीव विचार करते हैं। जो कोई जीव अर्थात् इस जगत में कोई भी आत्मा अरहन्त परमात्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय को पहिचाने अर्थात् भगवान का कायम रहनेवाला आत्मा कैसा है ? - ऐसे द्रव्य को पहचाने; अरहंत में कायम रहनेवाले गुण कैसे हैं ? इसप्रकार गुण को पहचाने और अर्हंत की पर्याय-अवस्था पूर्ण दशा कैसी है ? इसप्रकार अर्हंत भगवान को पहचानता है उसका मोह अवश्य ही लय को प्राप्त होता है।

जिसने तीनकाल-तीनलोक को जाना है, उन्हें जानने के लिये कुछ बाकी नहीं रहा - ऐसे आत्मा को जो जानता है उसका मोह नाश को प्राप्त होता है। इसे जाने बिना मुनि होकर क्रिया-कांड करके सूख (जीर्ण-शीर्ण शरीर हो) गया किन्तु धर्म नहीं समझा। यहाँ जो कोई भी आत्मा कहा है; जब यह आत्मा अरहंत के आत्मा को, अपने आत्मा के साथ मिलाता है तब उसका मोह नाश को प्राप्त हो जाता है और उनकी पर के प्रति सावधानी नाश को प्राप्त होती है। सम्प्रदाय में सामायिक आदि बहुत बार करके छोड़ा किन्तु धर्म को नहीं जाना।

यह बात ज्ञानतत्त्व में क्यों ली ?

क्योंकि ज्ञानस्वभावी आत्मा में से पूर्णदशा प्रगट होती है, जिन्होंने उसे प्रगट किया है - वे अर्हंत हैं। अंतर ज्ञान-सार है। आत्मा भाववान है, ज्ञान भाव है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सर्वज्ञशक्ति है उसका अवलम्बन लेकर पूर्ण दशा को प्राप्त हुए हैं। जैसे हजार पुटी अभ्रक यदि साता का उदय हो तो क्षयरोग (टी.बी.) का नाश करती है (-यह निमित्त का कथन है) वैसे ही आत्मा का परिपूर्णज्ञान मोह का नाश करता है।

लेंड़ीपीपर के अन्दर तिखास और हरापन भरा है, उसमें से चौंसठ पुटी तिखास प्रगट होती है, वैसे ही भगवान का केवलज्ञान चौंसठ पुटी तिखास के समान परिपूर्ण है। आत्मा ज्ञानानन्द है उसकी एकाग्रता द्वारा केवलज्ञान प्रगट किया है और उसमें एकाग्रता करके बारम्बार ध्यान करके केवलज्ञानरूपी तिखास प्रगट की है।

आत्मा ज्ञानस्वभावी है। पुण्य-पाप के विकल्प व्यभिचारिणी वृत्ति है। हिंसा, झूठ आदि पाप भाव और दया-दानादि पुण्य भाव उन दोनों से रहित आत्मा है; यहाँ उसकी बात चलती है। अर्हंत की पर्याय, जैसी शक्तिरूप से है, वैसी प्रगट हो गई है। निचली दशा में सर्वज्ञ के द्रव्य-गुण तो अर्हंत के समान ही है किन्तु अंतर पर्याय में है।

इसप्रकार सर्वज्ञ के साथ अपनी आत्मा को मिलाता है। मेरा द्रव्य अर्थात् शक्तिवान, गुण अर्थात् शक्ति, उनके जैसे हैं किन्तु पर्याय में जो अंतर है उसका क्या कारण है ? इसप्रकार अर्हंत के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने वह आत्मा को जानता है और उसका मोह नाश को प्राप्त हो जाता है। यहाँ क्षायिक सम्यक्त्व की बात करते हैं।

प्रश्न :- इस पंचमकाल में क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता ?

समाधान :- क्षायिक के योग्य अप्रतिहत क्षयोपशम सम्यक्त्व है। जो पलटता नहीं और क्षायिक सम्यक्त्व लेकर केवलज्ञान लेता है उसकी यहाँ बात करते हैं।

अर्हंत के आत्मा में और मेरी आत्मा में निश्चय से तफावत् (अन्तर) नहीं है। जो वास्तव में अर्हंत को द्रव्यरूप से, गुण रूप से और पर्यायरूप से जानता है अर्थात् कि मेरे आत्मा का द्रव्य-गुण इन्हीं के समान है। जैसी अर्हंत को पूर्ण पर्याय प्रगट हुई है; वैसी ही मुझे प्रगट करना है।

इसप्रकार जिसने आत्मा की ओर दृष्टि की है उसने भगवान की वाणी सुनी है - ऐसा कहा जाएगा। केवलज्ञानी भूत, भविष्य, वर्तमान जानते हैं - ऐसा किसने जाना ? जो अपने स्वभाव सन्मुख हुआ उसने। उसकी यह बात है। तब वह समझ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

लेता है कि - **'अर्हंत भगवान और मेरी आत्मा में निश्चय से अन्तर नहीं है'**। आत्मा धर्मी है, ज्ञान धर्म अर्थात् गुण है। उसके आश्रय से जो निर्मल पर्याय प्रगट होती है वह (पर्यायरूप) धर्म है।

एक निर्धन दशावाला श्रीमाली बनिया हो और दूसरा करोड़पति दशावाला श्रीमाली बनिया हो तो भी दोनों की जाति एक है। दरिद्र विचार करता है कि मैं भविष्य में पैसेवाला हो जाऊंगा; वैसे ही भले ही अभी मेरा आत्मा राग-द्वेष में अटका हुआ दिखाई देता है किन्तु स्वभाव में राग-द्वेष नहीं है। यदि स्वभाव में राग-द्वेष हो तो उनका नाश नहीं हो सकता। अर्हंत भगवान ने राग-द्वेष का नाश करके वीतरागता प्रगट की है। भगवान की आत्मा का द्रव्य-गुण-पर्याय जैसी ही मेरी अवस्था होनी चाहिये। इसे प्रगट करने के लिये अन्तर्मुखी दशा करना चाहिये।

जैसे तिल में से तेल निकलता है वैसे ही आत्मा की शक्ति में से केवलज्ञान प्रगट होता है। एक तेल तो पीपे में है और एक तेल तिल में है, दोनों में तेल है क्योंकि तेल कहाँ से निकला ? तिल में तेल था तो निकला वैसे ही आत्मा में ज्ञान और आनन्द रूप शक्ति है उसमें से पूर्ण दशा प्रगट करके अर्हन्त भगवान ने केवलज्ञान और केवल आनन्द प्रगट किया है।

अन्दर भगवान आत्मा में एकाग्र होनेपर सम्यक् दर्शन हुआ, और अधिक एकाग्र होनेपर चारित्र हुआ और पूर्ण एकाग्र होनेपर केवलज्ञान हुआ। उनको पीपे में रखे तेल के समान व्यक्त दशा प्रगट है; इसप्रकार मेरा आत्मा शक्ति से पूर्ण है। मेरे में से केवलदर्शन और केवलज्ञान प्रगट होगा।

जहाँ-जहाँ भी जिस चेतन की अथवा जिस जड़ की जो अवस्था होनेवाली है, वह भगवान के ज्ञान में प्रत्यक्ष वर्तती (जानने में आती) है। अहो ! केवलज्ञान की इतनी ताकत ! एक समय में तीनकाल-तीनलोक को जाने - ऐसी ताकत की प्रतीति होनेपर स्वभाव सन्मुख हो, उसका मोह नाश को प्राप्त होता है।

अर्हंत के द्रव्य-गुण-पर्याय सदृश्य हो गए अर्थात् एकरूपता को प्राप्त हुए हैं। केवलज्ञानी को द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों सदृश्य हो गए हैं। द्रव्य अर्थात् वस्तु - ऐसी की ऐसी सदृश्य है उनके गुण भी सदृश्य - ऐसे के ऐसे हैं तथा उनकी पर्याय - ऐसी की ऐसी हैं इसलिये सदृश्य है। इसप्रकार अर्हंत के द्रव्य-गुण पर्याय तीनों

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सदृश्य एकरूप हुए हैं। मेरे भी वे एकरूप होना हैं जिन्हें एकरूपता प्रगट करना हो उन्हें अपनी आत्मा की ओर झुकना चाहिये जिससे अन्दर जो द्रव्य-गुण सदृश्य विद्यमान है उसमें से केवलज्ञान की सदृश्य पर्याय प्रगट होगी। केवलज्ञान पर्याय परिणमित होनेपर भी वह ऐसी की ऐसी प्रगट होती है इसलिये सदृश ठहरती (रहती) है। इसप्रकार जो अर्हंत के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानता है, वह अपनी आत्मा को जानता है क्योंकि दोनों में विषय के अन्तर नहीं है।

जैसे अग्नि से सोना पूर्ण शुद्ध होता है वैसे ही ध्यानाग्नि से अर्हंत का स्वरूप पूर्ण शुद्ध हुआ है। अर्हंत का स्वरूप, अन्तिम ताव को प्राप्त सोने के स्वरूप की भाँति सर्व प्रकार से स्पष्ट है। सोने को अग्नि की आँच देने पर सोलहवान होता है। उसका लालपना और मैलपना निकल जाता है और वह शुद्ध सोलहवान (सोलह टंच) रहता है। सोलह अर्थात् पूर्ण। वैसे ही भगवान को केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवलवीर्य और केवलआनन्द प्रगट हुआ है वह सर्व प्रकार से स्पष्ट है इसलिये उनका ज्ञान होनेपर सर्व का ज्ञान होता है।

ज्ञानानन्द मेरा स्वरूप है - ऐसी प्रतीति वह सम्यग्दर्शन है। जैसे सोने को आँच देने पर सोना सोलहवान होता है, वैसे ही आत्मा में ध्यानाग्निरूपी आँच देने पर केवलज्ञान प्रगट होता है किन्तु बाहर की क्रिया से धर्म नहीं होता। जैसे लेड़ीपीपर में तिखास भरी है और अभ्रक में हजार पुटी होने की ताकत है किन्तु रेती में वह ताकत नहीं है; वैसे ही शरीर में केवलज्ञान की ताकत नहीं है। आत्मा देह-मन-वाणी से भिन्न है, पुण्य-पाप से जुदा है। मैं तो ज्ञानानन्द स्वभावी आत्मा हूँ - ऐसी ध्यानाग्नि लगाए तो सम्यग्दर्शन होता है।

अर्हंत का स्वरूप जानने पर सभी आत्मा शक्तिरूप से अर्हंत हैं - ऐसा ज्ञान होता है। आत्मा देह और कर्म से अत्यन्त पृथक है, जो ऐसे ज्ञानस्वभाव की प्रतीति करे उसे सभी आत्मा का ज्ञान हो जाता है। अहो ! सभी आत्मा ऐसे ही हैं। जैसे प्रत्येक लेंडीपीपर में चौंसठ पुटी ताकत है; वैसे ही प्रत्येक आत्मा में पूर्ण आनन्द, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण दृष्टापना, पूर्ण शान्तरस, उपशम अनन्त रस भरा पड़ा है। अहो ! प्रत्येक आत्मा परिपूर्ण है। वर्तमान दशा में अटका है इसलिये पर्याय से अन्तर दिखाई देता है किन्तु स्वभाव से अन्तर नहीं है। जिसने अर्हंत के द्रव्य-गुण-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पर्याय को जाना उसने आत्मा को जाना है।

सर्वप्रथम अर्हंत के द्रव्य-गुण-पर्याय की मन में कल्पना करे, विकल्प से जान ले कि - अहो ! मेरा आत्मा ऐसा है; इसप्रकार अन्तर प्रतीति कर ले कि सभी का आत्मा ऐसा है। जैसे सभी अभ्रक की परतों में हजार पुटी होने की योग्यता है और सभी लेंडीपीपर में चौंसठपुटी तिखास होने की योग्यता है; वैसे ही सभी आत्मा केवलज्ञान से भरे हुए हैं।

जो पुण्य-पाप को अपना जानता है उसे क्षय रोग लागू पड़ता है। उसी क्षय रोग के नाश होने का उपाय बताते हैं कि सभी आत्मा ज्ञान के भंडार हैं - ऐसी प्रतीति कर। सभी आत्मा के समान मेरा आत्मा भी ज्ञानमय है - ऐसा निर्णय वह सम्यग्दर्शन अथवा सामायिक है।

श्रीमद् राजचन्दजी ने आत्मसिद्धि में कहा है कि:-

'सर्व जीव छे सिद्ध सम'

और यही योगीन्द्र देव भी कहते हैं कि:-

'सर्व जीव छे ज्ञानमय, जाने समता भाव'

ये दोनो बातें एक ही हैं। यहाँ तो कहते हैं कि अरहंत भगवान ने जो केवलज्ञान पर्याय प्रगट की वह कहाँ से की ? जीव के स्वभाव को यथार्थ जानना वह सच्ची सामायिक है। आत्मा को जाने बिना, शरीर की क्रिया में सामायिक माने वह तो मिथ्यात्वभाव है। आत्मा केवलज्ञान की बेल है। वर्तमान दशा में अटकना-भूल है। स्वभाव सन्मुख झुके तो सम्यग्दर्शन होकर केवलज्ञान हो।

वर्तमान दशा में निगोदरूप दशा हो अथवा कोई भी दशा हो किन्तु सभी आत्मा ज्ञानमय ही हैं, इसीप्रकार 'मैं भी ज्ञानमय हूँ'। जिसमें से माल निकालना है वह कैसा है यह जानना चाहिये। जैसे मोर के अंडे में से मोर होता है वैसे ही ज्ञान स्वभाव के आश्रय से केवलज्ञान होता है। जैसे भगवान पूर्ण ज्ञानशक्ति के अवलम्बन से पूर्ण हुए हैं वैसे ही मैं भी मेरे स्वभाव के आश्रय से पूर्ण होऊंगा। आत्मा अपने स्वभाव के आश्रय से पूर्ण होता है। इसप्रकार अरहंत के द्रव्य जैसी ही सभी आत्माएं है।

द्रव्य-गुण-पर्याय की व्याख्या :- अब, द्रव्य-गुण-पर्याय की बात

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

करते हैं। यहाँ द्रव्य का अर्थ पैसा नहीं है। तो फिर द्रव्य किसे कहना ? गुण किसे कहना ? और पर्याय किसे कहना ? वह बात यहाँ चलती है।

अन्वय वह द्रव्य है। आत्मा ऐसे का ऐसा त्रिकाल प्रवाहरूप से रहता है। जैसे पानी में से पानी का प्रवाह निकलता है किन्तु उसमें से ज्वालामुखी नहीं निकलता; वैसे ही आत्मा ज्ञान-दर्शन आदि अनन्त शक्तियों का पिंड, त्रिकाल प्रवाहरूप रहनेवाला जैसा द्रव्य है, वैसी ही द्रव्य की दृष्टि हो वह सम्यग्दृष्टि है। आत्मा अनन्त गुणों का पिंड है, उसकी दृष्टि होना वह सच्ची दृष्टि है।

जैसे सोना, सोनेपनेरूप कायम रहता है एकरूप रहता है; वैसे ही आत्मा, आत्मपने एकरूप प्रवाहरूप से रहता है वह अन्वय है। देखो ! अनन्त बार जाप किया किन्तु यह अपूर्व बात रह जाती है और दया, दान, व्रत में धर्म मान बैठता है किन्तु स्वयं आत्मा उनसे रहित कायम (ध्रुव) रहनेवाला द्रव्य उसकी श्रद्धा नहीं करता है। अन्वय अर्थात् - ऐसे का ऐसा कायम रहना। जैसे लोहा, लोहेपने रहता है, सोना, सोनेपना रहता है वैसे ही आत्मा आत्मपने रहता है-आलू और शकरकंद में भी आत्मा तो ऐसे का ऐसा रहता है।

कायम रहनेवाले आत्मा के विशेषण को सत् और गुण कहते हैं। ये कायम रहनेवाली शक्तियां हैं। आत्मा की शक्ति का भान होनेपर जो अरागीदशा होती है उसे धर्म कहते हैं। जैसे सोने में स्वर्णत्व रहता है उसे द्रव्य कहते हैं तथा पीलापन, चिकनापन आदि उसके गुण कहलाते हैं; वैसे ही आत्मा, आत्मपने रहे वह द्रव्य कहलाता है; ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि विशेषण भाव है। विशेष्य-आत्मा है और विशेषण गुण शक्तियाँ हैं। जैसे लेंडी पीपर में पीपरत्व रहता है वह द्रव्य है वैसे ही आत्मा ऐसे का ऐसा रहता है वह द्रव्य है, इसलिये जड़ नहीं होता। लेंडीपीपर में हरापन (गुण) और तिखास (रस) वह गुण है वैसे ही आत्मा के ज्ञान-दर्शन आदि गुण है।

जैसे सोना द्रव्य है पीलापन आदि उसके विशेषण हैं और जो कड़ा, कुण्डल, अंगूठी आदि बनती है उसे अवस्था कहते हैं; वैसे ही आत्मा कायम रहनेवाला द्रव्य कहलाता है, ज्ञान-दर्शन आदि उसके गुण कहलाते हैं और समय-समय होनेवाली उनकी अवस्थाएं वे व्यतिरेक कहलाती हैं। जैसे सोने में कड़ा,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अंगूठी का भेद पड़ता है इसलिये उसे व्यतिरेक कहा है; वैसे ही आत्मा में विकारी अथवा अविकारी दशा व्यतिरेक है। अरहन्त भगवान का केवलज्ञान अविकारी दशा है वह व्यतिरेक है। आत्मा की नई-नई अवस्था होती है उसे पर्याय कहते हैं।

इसप्रकार द्रव्य-गुण-पर्याय को समझे बिना यदि सामायिक करने लग जाए तो उसे धर्म नहीं होता, क्योंकि उसे वस्तुस्वरूप की ही खबर नहीं है। उसने अरहंत को पहिचानने की विधि को भी नहीं जाना क्योंकि जो अरहन्त को पहिचाने उसे आत्मा का ज्ञान हुए बिना नहीं रहता और आत्मा का ज्ञान होना वह धर्म है।

अरहंत भगवान पूर्ण विशुद्ध हो गए हैं। उन अरहंत भगवान के स्वरूप को जानने पर जीव द्रव्य-गुण-पर्यायमय निज आत्मा को अपने मन द्वारा जान लेता है। उनका द्रव्य ऐसे का ऐसा कायम रहता है, उनके गुण वे विशेषण हैं और जो उसमें भेद पड़े हैं वे पर्यायें हैं; इसप्रकार अरहंत के द्रव्य-गुण-पर्याय को मन द्वारा जान लिया है। मेरा आत्मा भी प्रवाहरूप से ऐसा है, गुण भी ऐसे हैं तथा भगवान को भेदरूपदशा पूर्ण है; मेरी भेदरूपदशा पूर्ण नहीं है इसप्रकार वह अरहंत के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानकर उसीतरह द्रव्य-गुण-पर्यायमय निज आत्मा को भी अपने मन द्वारा ग्रहणकर (जान) लेता है। अरहंत को जानने पर अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में आत्मा को अपने मन द्वारा जान लेता है। वह किस तरह जान लेता है यह अब बतायेंगे।

अरहंत के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानकर द्रव्य-गुण-पर्यायमय निज आत्मा को जानना वह चित्तशुद्धि है। अनन्तकाल में इस जीव ने क्या नहीं किया? और किस तरह सम्यग्ज्ञान होता है? उसकी यह गाथा है। अनन्त काल से यह कहा जाता है; इसप्रकार की विधि को जाने बिना बहुत किया है। आत्मा ज्ञानस्वभावी है उसे जानने के लिए सर्वज्ञ देव के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानना चाहिये। वे भी आत्मा हैं, उनकी पूर्ण पर्याय प्रगट हुई है - ऐसा ही यह आत्मा है।

जैसा भगवान का आत्मा है वैसा ही यह (मेरा) आत्मा है। अरहंत का स्वरूप एकदम (पूर्ण) स्पष्ट है उनको अपूर्णता नहीं रही। अरहंत का स्वरूप जानने पर निज आत्मा का ज्ञान होता है और इससे सभी आत्मा का ज्ञान होता है। भले ही वह अज्ञानी पर्याय में अटका है, किन्तु सभी का स्वभाव तो सर्वज्ञ होने का है - ऐसी प्रतीति होती है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

केवली भगवान का आत्मा ऐसे का ऐसा रहता है, वह द्रव्य है, उनके विशेषण गुण हैं और भेद पड़ते हैं वे पर्यायें है। अरहंत का द्रव्य हैं, हैं और हैं, उनके गुण है, है और है। वर्तमान अवस्था भेदरूप अंशरूप है। केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तवीर्य, अनन्त आनन्द अंशरूप पर्यायरूप है; इसप्रकार अरहंत सर्वतः विशुद्ध है; इसप्रकार जानने पर अपने द्रव्य-गुण-पर्याय को जानता है। अरहंत का आत्मा है और है, उनके गुण हैं हैं हैं, उनके अंश भेद हैं। इस तरह तीन प्रकार से आत्मा राग मिश्रित विचार द्वारा जानता है। यह अनन्त काल में प्राप्त नहीं हुई - ऐसी बात है। इसे जाने बिना सम्यग्दर्शन अथवा पूर्णता का कारण अथवा धर्म की शुरूवात नहीं होती।

ज्ञानस्वभावी अरहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को ज्ञान में विचार लिया है कि यह आत्मा ऐसा है; इसप्रकार मन द्वारा जानना - यह चित्त (मन) शुद्धि है इसलिए यह बात आती है। श्री समयसार में ऐसा कहा था कि नवतत्त्व, नये-निक्षेप के विचार प्रथम आते हैं, वहीं कर्ता-कर्म अधिकार में ऐसा कहा था कि मैं अबद्ध हूँ और पर्याय बद्ध से हूँ - ऐसा विकल्प आता है और यहाँ अरहंत के स्वरूप जैसा मेरा स्वरूप है ऐसा विचार आता है - ऐसा कहा। यह तीनों बात चित्त शुद्धि की है। इस तरह अपने स्वरूप को जान लेता है ग्रहण कर लेता है, यह प्रथम धर्म की शुरुवात की कला है।

चाहे जितना सुना हो, नौ पूर्व को सुना हो अथवा नहीं सुना हो किन्तु जिस पदार्थ की जो अवस्था होनेवाली है उसे केवलियों ने जाना है - ऐसा केवली का निर्णय आना चाहिए और केवली का निर्णय करने पर निज आत्मा का निर्णय होना चाहिए 'चैतन्य ही वस्तु है, ज्ञान वस्तु है' ज्ञान की पूर्णता केवली को हुई है। केवलज्ञानियों को दिखा है वही होगा। केवलज्ञानी कैसे हैं ?- ऐसा आत्मा के सन्मुख होकर निर्णय करता है तो उनके स्वभाव के निर्णय में केवली का निर्णय आ जाता है।

अपने द्रव्य-गुण-पर्याय के स्वरूप का विचार करता है कि - यह चेतन है; यह चेतन, चेतन प्रवाह रूप से त्रिकाल द्रव्य है सदृश्य रहनेवाला द्रव्य है। चेतना के आश्रय से रहे हुए विशेषण गुण है। चेतन त्रिकाल प्रवाहरूप से रहता है। चैतन्य

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसका स्वभाव है और एक समय की मर्यादावाला जिनका काल-परिमाण है, क्योंकि पर्याय एक समय रहती है, एक समय की पर्याय में दूसरी पर्याय नहीं रहती। छद्मस्थ का उपयोग उन्हें असंख्यात समय में ख्याल में लेता है, किन्तु वे पर्यायें एकमेक नहीं होती। एक समय की अवस्था दूसरे में नहीं प्रवर्तती - ऐसे व्यतिरेक अथवा भेद हैं। उन्हें द्रव्य के भेद कहा है उनकी पर्यायें अथवा अंश परस्पर अप्रवर्त हैं। पर्यायें आत्मा के परिणमन की गाँठे हैं अवस्था हैं। जैसे साठे (गन्ने) में गांठ होती है, वैसे ही आत्मा के गुण सलंग (अर्थात् विस्तार क्रम में) होते हैं किन्तु पर्यायें भेदरूप हैं। आत्मा वस्तु, उसके ज्ञानादि गुण और उनकी पर्यायें इसप्रकार तीन वस्तु हुई। केवलज्ञान ज्ञानस्वभावी भगवान की परिणमन रूप अवस्था है।

यह गाथा अलौकिक है। चौदह पूर्व और बारह अंग में यही बात कहना है। जब भी आत्मा को इस विधि से ग्रहण करे तब सम्यग्दर्शन होता है। नवतत्त्व की विकल्पवाली श्रद्धा में - मोक्ष की श्रद्धा आ जाती है। मोक्ष में केवलज्ञान का स्वरूप आया है। स्व-पर तत्त्व कहो तो स्व सन्मुख होते ही पूर्णदशा कैसी होती है वह आ जाता है। इसप्रकार स्व में मोक्ष आ जाता है।

'मैं अबद्ध हूँ' - ऐसा जानने पर मोक्ष स्वरूप का ज्ञान होता है। मोक्ष स्वरूप कैसा होता है ? उसका ज्ञान करने पर देव के स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। अकेले आत्मा के सन्मुख होने में भी पूर्ण स्वरूप कैसा होता है - यह बात आ जाती है। तथा अबद्ध दशा को प्राप्त हुए (जीव) कैसे होते हैं उनका विचार भी आ जाता है। पर्याय को स्वभाव की ओर झुकाना अर्थात् पर्याय दृष्टि छोड़कर स्वभाव दृष्टि करना।

अब, पर्याय को अन्तर में झुकाते हैं। आत्मा त्रिकाली है, त्रैकालिक आत्मा को वर्तमान में ग्रहण कर लेते हैं। त्रिकाल को, त्रिकाल से नहीं जानना। इसमें जानने की बात आई-दूसरी कोई क्रिया नहीं आई कि इतने उपवास करे, इतनी क्रिया करें तो धर्म होगा, यह बात नहीं आई। पर व राग रहित आत्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय को सर्व प्रथम विकल्प द्वारा मानना चाहिए। जब यह जीव त्रैकालिक आत्मा को समझ लेता है, पर्याय को समझ लेता है पर्याय त्रिकाली आत्मा को एक ही समय में ग्रहण कर लेती है, अर्थात् जान लेती है।

वह जीव क्या करता है ?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रथम पर्यायों को संक्षेप करता है। जैसे मोतियों को झूलते हुए हार में संक्षेपन किया जाता है वैसे ही आत्मा की पर्याय को आत्मा में ही द्रव्य की ओर झुकाते हैं। चेतन, चेतन द्रव्य त्रिकाल प्रवाहरूप है। परिणमित होनेवाले आत्मा में पर्याय को अंतर्हित करते हैं-यह सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की अंतरंग क्रिया है। आत्मा का दर्शन अथवा प्रभु के दर्शन से भेंट होने की यह क्रिया है। पर्याय की अंशबुद्धि छोड़कर स्वभाव बुद्धि कराते हैं। भगवान आत्मा चेतन है। चेतनाद्रव्य प्रवाह रूप से कायमी है। वर्तमान पर्याय को अन्तर में झुकाकर अर्थात् आत्मा की पर्याय को आत्मा में अन्तर्हित करते हैं।

पर्याय द्रव्य की ओर झुकने पर गुण-गुणी की कल्पना नाश को प्राप्त होती है, यह सच्ची धार्मिक क्रिया है। इसप्रकार पर्याय द्रव्य की ओर झुकती है अर्थात् गुण गुणी कल्पना लुप्त (अदृश्य) हो गई है। यह सच्ची क्रिया की बात है उसमें भक्ति आदि साधन नहीं, इन साधनों के बिना स्थिरतारूप चारित्र और व्रत सच्चे नहीं होते। स्वभाव कहाँ से निकालना है ? इस बात की खबर बिना वीर्य (पुरुषार्थ) कहां से निकालेगा ? पर्याय जो विकल्प की ओर थी उसे स्वभाव की ओर झुकाता है। जिस समय विकल्प है उस समय पर्याय, स्वभाव की ओर नहीं झुकती है किन्तु जो विकल्प ऊपर थी उसे स्वभाव की ओर झुकाता है। इसप्रकार पर्याय को स्वभाव की ओर झुकाने पर गुण गुणी का भेद अदृश्य हो गया।

सफेदी को हार में समाविष्ट करने में आता है। जैसे सफेदी के सामने नहीं देखने पर सफेदी अदृश्य हो गई वैसे ही चैतन्य को चेतन में अंतर्हित करता है। पर्याय, स्वभाव की ओर झुकने पर गुण-गुणी भेद नहीं रहा, फिर भी कहा कि चैतन्य को चेतन में ही अन्तर्हित करते हैं। इसप्रकार अरहंत के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने उसको क्षायिक समकित होता है - ऐसा कहते हैं।

प्रश्नः- पंचम काल में तो सम्यक्त्व नहीं होता ना ?

समाधान :- जो उग्र पुरुषार्थ करता है वह क्षायिक सम्यक्त्व लेनेवाला है। सर्वप्रथम सही विधि क्या है ? आत्मा के अनुभव की क्या विधि है ? उसे जानना चाहिये। यही सच्ची विधि है इसके अतिरिक्त अन्य कोई विधि नहीं है - ऐसा निर्णय करे यह भी एक प्रकार की क्रिया है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परिणमित होनेवाले आत्मा की पर्याय को बाहर में न झुकाकर अंतर में झुकाया जाता है तो वहाँ गुण-गुणी की कल्पना नहीं रहती। सारी बात आगे-पीछे नहीं अपितु क्रम से बताते हैं। पर्याय, राग में व निमित्त में विस्तार को प्राप्त नहीं होती, अपितु यह पर्याय अब स्वभाव तरफ झुकी है। यह बात सर्वप्रथम श्रवण करे, बारम्बार विचार करे और निर्णय करे वह सम्यग्दर्शन की पहली क्रिया है।

आत्मा वस्तु है, उसके गुण है और उसकी भिन्न-भिन्न पर्यायें हैं। पर्याय को आत्मा की तरफ झुकाए तो वहाँ गुण-गुणी भेद नहीं रहता; यहाँ इस बात को क्रम से समझाते हैं।

जैसे केवल हार जानने में आता है। यदि कोई मोती के दाने और सफेदी का विचार करे तो उसे हार पहनने का सुख नहीं आता। वैसे द्रव्य-गुण-पर्याय के भेद के विचार में अटकने से सम्यग्दर्शन नहीं होता। इसप्रकार की जानकारी, मनन और स्वाध्याय होना चाहिये। अंतर में झुकने से धर्म होता है; जो इस विधि को नहीं जानता उसका वीर्य अन्य काम किया करता है।

हार खरीदनेवाला मनुष्य हार खरीदते समय हार, उसकी सफेदी और उसके मोती इन सभी की परीक्षा करता है, परन्तु इसके बाद सफेदी और मोती को हार में ही समाहित कर देता है। इसके पश्चात् वह सफेदी आदि का विचार नहीं करता व उसका लक्ष्य छोड़कर केवल हार को ही जानता है। यदि वह ऐसा न करे तो हार पहनने की स्थिति में भी सफेदी आदि के विकल्प रहने से हार पहिनने के सुख का वेदन नहीं कर सकता।

अभेद एकरूप आत्मा में झुकनेषर मोह नाश को प्राप्त होता है और सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। केवल हार को जानने पर हार पहनने के सुख का वेदन कर सकता है; वैसे ही केवल आत्मा को जानने पर उसकी उत्तरोत्तर क्षण में कर्त्ता-कर्म-क्रिया विभाग क्षय होता है। यहाँ क्षय की बात करते हैं।

आत्मा चेतन है, चैतन्य उसका गुण है। यह ज्ञान तत्त्व अधिकार है इसलिये चैतन्य गुण लिया है। आत्मा परिणामी है, परिणमित होनेवाला है परिणाम उसका कार्य है। पहली पर्याय पलटकर दूसरी पर्याय होती है वह क्रिया है, इसप्रकार कर्ता-कर्म क्रिया के विभाग क्षय को प्राप्त होते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

द्रव्य चेतन है, चैतन्य गुण है; उसकी पर्याय को अन्तर में झुकानेवाला आत्मा बदलनेवाला है। निर्मल पर्याय बदले वह क्रिया है। पूर्व अवस्था पलटकर नई अवस्था होती है वह क्रिया है। इसप्रकार कर्ता-कर्म-क्रिया का विभाग क्षय को प्राप्त होता है।

यह चौथे गुणस्थान को प्राप्त करने के समय की बात चलती है। इसका बारम्बार स्वध्याय करना चाहिये। इसके बदले अज्ञानी जीव विपरीतता में चला जाता है। द्रव्य-गुण-पर्याय के भेद का नाश हुआ और कर्ता-कर्म-क्रिया के भेद का नाश हुआ - अभेद हो गया। समय-समय परिणामी-परिणाम-परिणति के भेद नाश को प्राप्त हों इसलिये निष्क्रिय चिन्मात्र भाव को प्राप्त होता है। निष्क्रिय का अर्थ राग की क्रिया रहित समझना।

यह द्रव्य है, यह गुण है, यह पर्याय है तथा परिणाम-परिणामी-परिणति - ऐसे तीन के राग मिश्रित विचार आते हैं, किन्तु उनकी ओर से हट कर स्वभाव तरफ झुके तो भूमिका कहलावे, नहीं तो भूमिका भी नहीं कहलाती। द्रव्य-गुण-पर्याय के भेद से तथा कर्ता-कर्म-क्रिया के विकल्प से सम्यग्दर्शन नहीं होता।

वह व्यवहार कब कहलाता है ?

उनके विकल्प से हटकर अभेद स्वभाव की ओर झुके तो भेद को व्यवहार कहा जाता है। भेद चाहे जितना हो किन्तु वस्तु तो ऐसी की ऐसी है। परिणामी-परिणाम-परिणति के भेद रूप विभाग थे, वे क्षय को प्राप्त होते हैं और अकेले ज्ञानमात्र भाव को प्राप्त होते हैं।

यह ज्ञान तत्त्व अधिकार है। ज्ञानतत्त्व कहो, ज्ञानभाव कहो अथवा चिन्मात्र भाव कहो एक ही अर्थ है, अर्थात् द्रव्य-गुण-पर्याय तत्त्व अर्थात् भाव वह तत्त्वार्थ है। इसप्रकार निष्क्रिय चिन्मात्र भाव को प्राप्त होता है।

इसप्रकार मणि के समान जिसका निर्मल प्रकाश अकम्प रूप से प्रवर्तमान है - ऐसे उस चिन्मात्र भाव को प्राप्त जीव के मोहान्धकार निराश्रयपने के कारण अवश्य नाश को प्राप्त होता है।

अन्य दीपक आदि का प्रकाश अस्थिर होता है किन्तु मणि का प्रकाश स्थिर है वह अकम्पपने वर्तता है। उसीतरह अकेले ज्ञान मात्र को प्राप्त हुए जीव को मोह का

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आश्रय नहीं रहता (अर्थात्) स्वयं मोह उत्पन्न करता था इसलिये कर्म का निमित्त कहलाता था। इसप्रकार मोहान्धकार नाश को प्राप्त होता है अज्ञान का नाश हो जाता है। स्वरूप कैसा है और किस तरह प्राप्त किया जाता है इसका ज्ञान द्वारा निर्णय किया जाना चाहिए। इसके बिना स्वभाव सन्मुख निर्णय नहीं होता। ज्ञानसार भगवान है। इसे जानने पर मोहान्धकार नाश को प्राप्त होता है और सम्यक्त्व प्रगट होता है, यह धर्म की विधि है, तो मोह की सेना को जीतने का उपाय मैंने प्राप्त कर लिया है। अन्तर भान हुआ है अर्थात् उपाय मिल गया - ऐसा भान हुआ है।

यह ज्ञानतत्त्व का अधिकार है। ज्ञान तत्त्व को पूर्ण प्राप्त हुए - ऐसे अर्हंत भगवान आदर्श हैं। जैसे दर्पण में मुँह दिखाई देता है, वैसे ही अर्हंत भगवान जैसा ही मेरा स्वरूप है, अर्हंत के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानकर यह जाने कि मेरा आत्मा वैसा ही है। इसप्रकार अर्हंत भगवान को आदर्श कहा है। अर्हंत भगवान आदर्श हैं उन्हें मुमुक्षु जीव ज्ञान में लेकर अपने साथ मिलान करते हैं।

भावार्थ पर प्रवचन :- मेरे और अर्हंत के द्रव्य-गुण समान हैं, पर्याय में अन्तर है। उस पर्याय के अन्तर को तोड़ना (समाप्त करना) है इसलिये अर्हंत का दृष्टांत दिया है। अर्हंत के आत्मा ने मोह अर्थात् इष्ट-अनिष्ट बुद्धि अर्थात् राग-द्वेष का नाश किया है; उनका स्वरूप अत्यंत स्पष्ट है। ज्ञान, स्वभाव का अंश है। वह पर में अटकने के लिये आलसी हो और पूर्णता को प्राप्त न हो - ऐसा नहीं होता। अर्हंत को स्वभाव के आश्रय से सर्वज्ञपना प्रगट हुआ, वह अत्यंत स्पष्ट है।

अब, जिन्हें स्वयं में भी स्पष्टता प्रगट करना हो वे अपने में दृष्टांत उतारते हैं। जिन्हें स्वयं को परिस्पष्ट करना है वे अर्हंत का उदाहरण लेते हैं। मैं भी ज्ञानस्वभावी आत्मा हूँ, इसप्रकार जिसे स्वभाव सन्मुख प्रतीति हुई है और अर्हंत की स्पष्ट दशा को लक्ष्य में लिया है उसे आंशिक स्पष्टदशा प्रगट होती है।

जिसने पूर्णदशावाले को लक्ष्य में लिया उसे प्रतीति आई अर्थात् पूर्णदशा का कारणरूप - ऐसा चारित्र भी ख्याल में आ जाता है। वह अर्हंत भगवान के स्वरूप को प्रथम मन द्वारा समझ लेता है कि ये भगवान केवलज्ञान को प्राप्त हुए हैं, तो मैं भी - ऐसी ही शक्तिवान हूँ। इसप्रकार स्वभाव सन्मुख होकर उनके जैसा होना चाहता है। आत्मा एकरूप कथञ्चित सदृश्य त्रैकालिक प्रवाह रूप द्रव्य है यहाँ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कथञ्चित कहा है क्योंकि आत्मा पर्याय दृष्टि से परिणमित होता है (द्रव्य दृष्टि से अपरिणामी है)।

जो एकरूप रहे वह द्रव्य है। उसका जो एकरूप रहनेवाला चेतन का चैतन्यरूप विशेषण वह गुण है और उस त्रिकालवर्ती प्रवाह में जो क्षणवर्ती व्यतिरेक-एक दूसरे में नहीं प्रवर्तित दशाएं, वे पर्यायें हैं। इसप्रकार वह अपनी आत्मा को भी द्रव्य-गुण-पर्यायरूप से विकल्प सहित ज्ञान के ख्याल में लेता है कि -'है' वह द्रव्य है, उसके विशेषण वे गुण हैं और भेदरूप वे पर्यायें हैं - ऐसा आत्मा है। इसप्रकार त्रैकालिक वस्तु रूप आत्मा को मन द्वारा ख्याल में लेता है।

द्रव्य-गुण-पर्याय के भेद को गौण करके स्वभाव सन्मुख होनेपर सम्यग्दर्शन होता है। जैसे मोती के प्रत्येक दानें को और सफेदी को हार में अन्तर्गत करने पर मात्र हार ही जाना जाता है; वैसे ही आत्मा की पर्यायों को और गुणों को आत्मा में ही अंतर्गर्भित करते हैं। दोनों एक ही साथ अंतर्गर्भित होते हैं। वर्तमान पर्याय को द्रव्य सम्मुख करने पर आत्मा को जानता है।

(१) आत्मा परिणमित होनेवाला है - ऐसा भेद,

(२) यह मेरा परिणाम है - ऐसा भेद,

(३) पूर्व अवस्था बदलकर नई अवस्था होती है - ऐसा भेद,

ऐसे तीन प्रकार के भेद स्वभाव सन्मुखदशा होनेपर नाश को प्राप्त हो जाते हैं, क्योंकि स्वभाव सन्मुख होनेपर भेद बुद्धि दूर हो जाती है। यही सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का उपाय है। साधक को भी शुभराग आता है किन्तु वह सम्यग्दर्शन का कारण नहीं है।

व्यवहार रत्नत्रय धर्म का अंग है और इसमें से सम्यक्त्व होगा क्योंकि अशुभभाव से किसी ने सीधे सम्यक्त्व को प्राप्त किया हो तो बताओ ? इसलिए शुभ से धर्म प्राप्त होता है - ऐसी अज्ञानी की दलील (तर्क) का जवाब देते हैं :-

अशुभ से सीधे सम्यक्त्व नहीं होता, किन्तु शुभराग आता है इसलिये सम्यक्त्व होता है - ऐसा नहीं है। मैं आत्मा हूँ, ज्ञान मेरा गुण है - ऐसा शुभराग आवे, इससे क्या हो ? आत्मा अबद्ध स्पष्ट है - ऐसे विकल्प से भी क्या ? अज्ञानी शुभराग के ऊपर जोर देता है। शुभराग आए बिना भी कभी सम्यक्त्व प्राप्त होता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है ? - ऐसा कहकर राग ऊपर वजन देता है। यदि राग का अभाव करके स्वभाव की दृष्टि करे तो राग के ऊपर उपचार आता है।

भगवान की भक्ति का राग शुभ है वहाँ भी अन्तर स्वभाव का आश्रय तो सम्यक्त्व प्राप्त करता है। परिणामी-परिणाम और परिणति के भेद रहित आत्मा को प्राप्त करे वह क्षायिक सम्यक्त्व है; वह राग रहित निष्क्रिय दशा है इसप्रकार दर्शनमोह निराश्रय होता है, इसलिए उसका क्षय होता है - ऐसा कहा है। यदि ऐसा है तो मैंने मोह की सेना के ऊपर विजय प्राप्त करने का उपाय प्राप्त कर लिया है। (इस गाथा पर पूज्य गुरुदेव श्री के विशेष प्रवचन और भी हुये थे, जिसे अत्यंत उपयोगी समझकर परिशिष्ट में अलग से दिया जा रहा है। पाठकों से अनुरोध है कि उसका लाभ अवश्य लें।)

तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय कदाचित् तत्त्व निश्चय करने का उपाय विचारे, वहाँ अभाग्य से कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र का निमित्त बने तो अतत्त्व श्रद्धान पुष्ट हो जाता है कि इनसे मेरा भला होगा; परन्तु वे ऐसा उपाय करते हैं जिससे यह अचेत हो जाय। वस्तु स्वरूप का विचार करने को उद्यमी हुआ था सो विपरीत विचार में दृढ़ हो जाता है और तब विषय-कषायी की वासना बढ़ने से अधिक दु:खी होता है।

तथा कदाचित् सुदेव-सुगुरु-सुशास्त्र का भी निमित्त बन जाये तो वहाँ उनके निश्चय उपदेश का तो श्रद्धान नहीं करता, व्यवहार श्रद्धान से अतत्त्वश्रद्धानी ही रहता है। वहाँ मन्द कषाय हो तथा विषय की इच्छा घटे तो थोड़ा दु:खी होता है, परन्तु फिर जैसे का तैसा हो जाता है; इसलिए यह संसारी जो उपाय करता है वे भी झूठे ही होते हैं।

- मोक्षमार्गप्रकाशक पृ. ५१

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचनसार गाथा ८१

अथैवं प्राप्तचिन्तामणेरपि मे प्रमादो दस्युरिति जागृति-

जीवो ववगदमोहो उवलद्धो तच्चमप्पणो सम्मं।

जहदि जदि रागदोसे सो अप्पाणं लहदि सुद्धं ॥८१॥

अब, इसप्रकार मैंने चिंतामणि-रत्न प्राप्त कर लिया है तथापि प्रमाद चोर विद्यमान है, - ऐसा विचार कर जागृत रहता है :-

हो मोह विरहित जीव आत्म-स्वरूप सम्यक् प्राप्त हो।

हो त्याग राग-द्वेष का तो शुद्ध आत्मा प्राप्त हो ॥८१॥

अन्वयार्थ :- **(व्यपगतमोहः)** जिसने मोह को दूर किया है और **(सम्यक् आत्मनः तत्त्वं)** आत्मा के सम्यक् तत्त्व को (-सच्चे स्वरूप को) **(उपलब्धवान्)** प्राप्त किया है - ऐसा **(जीवः)** जीव **(यदि)** यदि **(रागद्वेषो)** रागद्वेष को **(जहाति)** छोड़ता है, **(सः)** तो वह **(शुद्धं आत्मानं)** शुद्ध आत्मा को **(लभते)** प्राप्त करता है।

टीका:-इसप्रकार जिस उपाय का स्वरूप वर्णन किया है, उस उपाय के द्वारा मोह को दूर करके भी सम्यक् आत्मतत्त्व को (यथार्थ स्वरूप को) प्राप्त करके भी यदि जीव रागद्वेष को निर्मूल करता है, तो शुद्ध आत्मा का अनुभव करता है। (किन्तु) यदि पुनः-पुनः उनका अनुसरण करता है, -रागद्वेषरूप परिणमन करता है, तो प्रमाद के अधीन होने से शुद्धात्मतत्त्व के अनुभवरूप चिंतामणि-रत्न के चुराये जाने से अन्तरंग में खेद को प्राप्त होता है। इसलिये मुझे रागद्वेष को दूर करने के लिए अत्यन्त जागृत रहना चाहिए।

भावार्थ :- ८० वीं गाथा में बताये गए उपाय से दर्शनमोह को दूर करके, अर्थात् सम्यक्दर्शन प्राप्त करके जो जीव शुद्धात्मानुभूतिस्वरूप वीतरागचारित्रके प्रतिबन्धक राग-द्वेष को छोड़ता है, पुनः-पुनः रागद्वेषभाव में परिणमित नहीं होता, वही अभेदरत्नत्रयपरिणत जीव शुद्ध-बुद्ध-एकस्वभाव आत्मा को प्राप्त करता है-

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मुक्त होता है। इसलिए जीव को सम्यक्दर्शन प्राप्त करके भी, सराग चारित्र प्राप्त करके भी रागद्वेषके निवारणार्थ अत्यन्त सावधान रहना चाहिए॥८१॥

ॐ ॐ ॐ

गाथा ८१ पर प्रवचन

इसप्रकार सम्यक् दर्शन कर लिया है फिर भी थोड़ा सा प्रमाद भाव बाकी है इसलिये आचार्य भगवान जागृत रहते हैं। जैसे जब चिन्तामणि रत्न हाथ में हो तब जिसका चिंतवन किया जाता है वह मिल जाता है; वैसे ही आत्मा का भान हुआ है, (तत्पश्चात्) जितनी एकाग्रता करता है उतनी शान्ति मिलती है।

अनुकूल-प्रतिकूल संयोग की भावना तथा राग की भावना करनेवाले को चिंतामणि प्राप्त नहीं हुआ। मुनि को भेद-भंग रहित आत्मा की प्रतीति करके सम्यग्दर्शन हुआ है किन्तु अभी थोड़ा सा प्रमाद बाकी है - ऐसा विचार जागृत रहता है। पाँच महाव्रत के विकल्प आते हैं किन्तु वे प्रमाद भाव हैं, चोर हैं, इसलिये उनसे जागृत रहते हैं।

प्रथम मिथ्यात्व दूर करके फिर यह बात कहते हैं क्योंकि पहले राग-द्वेष दूर नहीं होते, किन्तु प्रथम मिथ्यात्व दूर होता है। जिन्होने मोह को दूर किया है और आत्मा के ज्ञान स्वरूप अथवा कारण परमात्मा को प्राप्त किया है। वस्तु का स्वरूप मात्र शुद्ध है, जो ऐसी प्रतीति करता है वह जीव यदि राग-द्वेष को छोड़े तो वह शुद्ध आत्मा को प्राप्त होता है।

स्वभाव के आश्रय से राग-द्वेष छूट जाते हैं, इसलिये राग-द्वेष को छोड़ते हैं - ऐसा कहने में आता है। समयसार गाथा ३४ में कहा है कि ज्ञानस्वभाव का भान होकर एकाग्र हुआ वह प्रत्याख्यान है। वह राग को छोड़ता है ऐसा कहना तो नाम मात्र है, क्योंकि स्वभावरूप से परिणमित होनेपर राग छूट जाता है। यहाँ ज्ञान प्रधान कथन है इसलिये कहा कि जो स्वभाव का आश्रय लेता है वह राग को छोड़ता है, इसलिए वह शुद्ध आत्मा को प्राप्त करता है। आत्मभान सहित स्वभाव का अनुसरण करे तो शुद्ध आत्मा का अनुभव करे।

यहाँ इसप्रकार जिस उपाय का स्वरूप वर्णन किया गया है उसमें

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्यग्दर्शन के उपाय का स्वरूप कहा। बीच में विकल्प आया है - ऐसा जानना किन्तु विकल्प अथवा व्यवहार उपाय नहीं है। अपना स्वरूप शुद्ध चैतन्य है, इसकी अन्तर्दृष्टि होनेपर भी और व्यवहार विकल्प का स्वामीपना दूर होनेपर भी बहुत काम बाकी रहता है। यदि जीव राग-द्वेष को निर्मूल करता है तो शुद्ध आत्मा का अनुभव करता है।

प्रथम मोह का क्षय कहा था और यहाँ राग-द्वेष की निर्मूलता कही है। आचार्य ने क्षय की ही बात ली है। दिगम्बर के तीव्र वचनों से स्वरूप समझा जा सकता है - ऐसा श्रीमद् राजचन्द्रजी ने कहा है, क्योंकि आचार्य का तीव्र पुरुषार्थ है। स्वभाव सन्मुख होकर अथवा पर्याय को द्रव्य की ओर झुकाकर अथवा विभाव तथा स्वभाव के बीच पहिचान करके राग-द्वेष का नाश करते हैं तो चारित्र सहित शुद्ध आत्मा का अनुभव करते हैं और आत्मा में विशेष एकाग्र होते हैं तब पूर्णदशा को प्राप्त करते हैं।

यदि राग-द्वेषरूप परिणमित हो तो, आत्मा का अनुभव नहीं होता- इसलिये जागृत रहना योग्य है। यदि, पुनः-पुनः उनका अनुसरण करता है अर्थात् राग-द्वेष रूप परिणमन करता है तो वह शुद्ध आत्मा को प्राप्त नहीं होता। यहाँ राग की कर्तव्य बुद्ध नहीं किन्तु रागरूप अस्थिरता का परिणमन है। मैं रागरूप परिणमन करूँ - ऐसी कर्तव्य बुद्धि गई है, किन्तु राग-द्वेष रूप परिणमन है। यहाँ ऐसा नहीं कहा कि - चारित्रमोह के उदय के कारण परिणमन करते हैं।

समयसार के बन्ध अधिकार में स्वभावदृष्टि कराने के लिए ऐसा कहते हैं कि पर द्रव्य राग-द्वेषरूप परिणमित कराते हैं। स्वभाव में राग नहीं किन्तु पर की ओर लक्ष्य करता है तो राग होता है और पर द्रव्य द्वारा परिणमित होता है - ऐसा कहा जाता है।

चौथे-पाँचवे अथवा छठवें गुण-स्थान में जीव स्वयं अस्थिरता के कारण परिणमित होता है। स्वयं प्रमाद के कारण आधीन होता है - निमित्त के वश स्वयं होता है। दोनों को कोई (दूसरा) वश (में) नहीं करता। अपने प्रमाद के अधीन हो तो निर्विकल्प अनुभव नहीं रहता। स्वभावदृष्टि होने पर भी अस्थिरता में चला जाता है अर्थात् शुद्ध आत्मा का अनुभव नहीं रहता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मुनि ज्ञानी हैं फिर भी स्वयं राग में आने से पर्याय में शान्ति लुटी है क्योंकि प्रमाद दुःख है, खेद का कारण है इसलिये राग-द्वेष को दूर करने के लिये अत्यन्त जागृत रहना योग्य है। अनुभव करना वह जरूरी (आवश्यक) है। शास्त्र पढ़ते समय राग है किन्तु वह राग दूर करना जरूरी है। राग आता है किन्तु किसकी ओर जोर (वजन) है उसकी यहाँ बात करते हैं। विकल्प का काल है अर्थात् विकल्प आता है किन्तु स्वभाव सन्मुख होकर स्थिरता करना वह मेरा जागृत कर्तव्य है।

प्रश्नः- स्वभाव तरफ बहुत जागृति करना योग्य है तो फिर इसमें क्रमबद्ध कहाँ रहा ?

उत्तर :- क्रमबद्ध का निर्णयवाला स्वभाव सन्मुख प्रयत्न करता है। राग की ओर नहीं जाता, स्वभाव सन्मुख होना यह क्रमबद्ध को समझने का फल है। स्वभाव सन्मुख जाना-यही कर्तव्य है।

ये गाथाएँ अलौकिक है। एक गाथा में बारहअंग और चौदहपूर्व का रहस्य है। **अभेद रत्नत्रय से मुक्ति होती है किन्तु भेद रत्नत्रय से मुक्ति नहीं होती।**

भावार्थ पर प्रवचन :- अस्सीवीं गाथा में बताए गए उपाय से दर्शनमोह को दूर किया है और सम्यग्दर्शन प्राप्त किया है। दर्शन मोह का सर्व प्रथम नाश होता है इसलिए पहले नास्ति से बात की है, उसका उपाय तो स्वभाव का आश्रय है। लोग कहते हैं कि भगवान को अर्पित हो जाओ किन्तु भाई वे तो पर द्रव्य हैं। स्वभाव को अर्पित हो जाना वह उपाय है। सम्यक्दर्शन प्राप्त करके जो जीव शुद्धात्मानुभूति स्वरूप वीतराग चारित्र का प्रतिबन्धक राग-द्वेष को छोड़ता है वह शुद्धात्मा को प्राप्त होता है।

चारित्र किसे कहना ?

शुद्धात्मा की अनुभूति स्वरूप वीतरागता वह चारित्र है। उसके प्रतिबन्धक राग-द्वेष को छोड़ता है। यहाँ द्रव्य-कर्म को चारित्र का प्रतिबन्धक नहीं कहा। श्री जयसेनाचार्य ने इस गाथा की टीका में राग-द्वेष को चारित्र का प्रतिबन्धक कहा है। जो राग-द्वेष को छोड़ता है वह पुनः-पुनः राग-द्वेष भावरूप परिणमित नहीं होता। वही अभेद रत्नत्रय परिणत जीव शुद्ध-शुद्ध एक स्वभावी आत्मा को प्राप्त

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होता है। भेद रत्नत्रय से मुक्ति को प्राप्त नहीं होता किन्तु अभेद रत्नत्रय से मुक्ति को प्राप्त होता है, इसलिये जीव को सम्यग्दर्शन प्राप्त होनेपर भी और तीन कषाय दूर होकर चारित्र प्राप्त करने पर भी राग-द्वेष के निवारण के लिये अत्यन्त सावधान रहना योग्य है।

अब पूजन के योग्य नवदेव हैं। उनका वर्णन शास्त्रों में है :-

अरहन्त सिद्ध साहू तिदयं जिणधम्म वयण पडिमाहू।

जिणणिलया इदिराए णव देवा दिंतु मे वोहि ॥

अर्थ :- अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु, जिनधर्म, जिनवचन, जिनप्रतिमा, जिनमंदिर - इस प्रकार ये नव देव हैं, वे मुझे रत्नत्रय की पूर्णता देवें।

जहाँ अरहन्त का प्रतिबिम्ब है वहाँ नवरूप देव गर्भित जान लेना चाहिए। आचार्य, उपाध्याय, साधु तो अरहन्त की पूर्व अवस्था हैं। सिद्ध हैं सो पहले अरहन्त होकर ही सिद्ध बने हैं। अरहन्तों की वाणी वह जिनवाणी हैं। वाणी द्वारा जो अर्थ प्रकाशित किया है वह जिनधर्म है। अरहन्त का स्वरूप जहाँ विराजमान रहता है वह जिनालय है। इस प्रकार नवदेवतारूप भगवान अरहन्त के प्रतिबिम्ब का पूजन नित्य ही करना योग्य है।

इस प्रकार तीनों लोकों के भव्य जीवों द्वारा वंदनीय पूज्य अरहन्त का तदाकार प्रतिबिम्ब है वह सदाकाल भव्य जीवों को पूजना योग्य है।

- श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचार पृ. १९९

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचनसार गाथा ८२

अथायमेवैको भगवद्भिः स्वयमनुभूयोपदर्शितो निःश्रेयसस्य पारमार्थिकः पन्था इति मतिं व्यवस्थापयति-

सव्वे वि य अरहंता तेण विधाणेण खविदकम्मंसा।
किच्चा तधोवदेसं णिव्वादा ते णमो तेसिं ॥८२॥

अब, यही एक (-पूर्वोक्त गाथाओं में वर्णित यही एक), भगवन्तो ने स्वयं अनुभव करके प्रगट किया हुआ [१]निःश्रेयस का पारमार्थिक पन्थ है-इसप्रकार मति को [२]व्यवस्थित करते हैं :-

अरहंत सब ही उस विधि से नष्ट कर कर्मांश को।
देकर तथाविधि देशना मुक्ति गए हैं-नमन हो ॥८२॥

अन्वयार्थ :- **(सर्वे अपि च)** सभी **(अर्हन्तः)** अरहन्त भगवान **(तेन विधानेन)** उसी विधि से **(क्षपितकर्मांशाः)** कर्मांशों का क्षय करके **(तथा)** तथा उसीप्रकार से **(उपदेशं कृत्वा)** उपदेश करके **(निर्वृताः ते)** मोक्ष को प्राप्त हुए हैं **(नमः तेभ्यः)** उन्हें नमस्कार हो।

टीका :- अतीत काल में क्रमशः हुए समस्त तीर्थंकर भगवान, [३]प्रकारान्तर का असम्भव होने से ज़िसमें द्वैत सम्भव नहीं है, - ऐसे इसी एक प्रकार से कर्मांशों (-ज्ञानावरणादि कर्म भेदों) का क्षय स्वयं अनुभव करके (तथा) [४]परमाप्तता के कारण भविष्यकाल में अथवा इस (वर्तमान) काल में अन्य मुमुक्षुओं को भी इसीप्रकार से उसका (-कर्म क्षय का) उपदेश देकर निःश्रेयस (मोक्ष) को प्राप्त हुए हैं; इसलिए निर्वाण का अन्य (कोई) मार्ग नहीं है - ऐसा निश्चित होता है। अथवा, अधिक प्रलाप से बस होओ! मेरी मति व्यवस्थित हो

---

[१] निःश्रेयस = मोक्ष। [२] व्यवस्थित = निश्चित; स्थिर। [३] प्रकारान्तर = अन्य प्रकार (कर्मक्षय एक ही प्रकार से होता है, अन्य-प्रकार से नहीं होता, इसलिये उस कर्मक्षय के प्रकार में द्वैत अर्थात् दो-रूपपना नहीं है)।
[४] परमाप्त = परम आप्त; परम विश्वासपात्र (तीर्थंकर भगवान सर्वज्ञ और वीतराग होने से परम आप्त है, यथार्थ उपदेष्टा है)

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गई है। भगवन्तों को नमस्कार हो।

भावार्थ :- ८० और ८१ वीं गाथा के कथनानुसार सम्यग्दर्शन प्राप्त करके वीतरागचारित्र के विरोधी राग-द्वेष को दूर करना अर्थात् निश्चयरत्नत्रयात्मक शुद्धानुभूति में लीन होना ही एकमात्र मोक्षमार्ग है; त्रिकाल में भी कोई दूसरा मोक्ष का मार्ग नहीं है। समस्त अरहन्तों ने इसी मार्ग से मोक्ष प्राप्त किया है और अन्य मुमुक्षुओं को भी इसी मार्ग का उपदेश दिया है। उन भगवन्तों को नमस्कार हो।

ॐ ॐ ॐ

गाथा८२ पर प्रवचन

अर्हंत के द्रव्य-गुण-पर्याय के स्वरूप को जानकर, अनन्त जीव भगवान हुए हैं; उन्होंने ऐसा ही किया और ऐसा ही कहा है। भगवान की वाणी में ऐसा ही उपदेश आया है। तू सम्यग्दर्शन नहीं कर सकता अथवा तुझे कर्म रोकेंगे - ऐसा नहीं कहा।

अब, यही एक अर्थात् पूर्वोक्त गाथाओं में वर्णित यही एक-भगवन्तो ने स्वयं अनुभव करके प्रगट किया हुआ मोक्ष का पारमार्थिक पंथ है। अनन्त भगवन्तों ने यही एक रास्ता अपनाया है। भगवान ने अपने द्रव्य-गुण-पर्याय को जाना है और स्वयं अनुभव करके रास्ता बताया है।

कोई कहता है कि - भगवान ने जो कहा है वह करना किन्तु जो किया है वह नहीं करना।

समाधान :- भगवान ने जो कहा है वही किया है और जो किया है वही कहा है। उनके कहने और करने में अन्तर नहीं है। जो सर्वज्ञ परमात्मा हो गए हैं उनने भी दूसरे का अनुकरण किया है - ऐसे सर्वज्ञ परमात्मा हैं इसप्रकार उन्होंने द्रव्य-गुण-पर्याय का विचार किया और मोक्ष को प्राप्त किया है। उनकी वाणी में दूसरे प्रकार का धर्म है - ऐसा नहीं आता।

सर्वज्ञ ज्ञानमूर्ति, पूर्ण हो गए हैं। उनको छद्मस्थ दशा में जिस राग के फल में तीर्थंकर नामकर्म बन्धा था उसके उदय से जो वाणी खिरती है, उसमें भी इसी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पुरुषार्थ की बात आती है। भगवान ने कहा कि - पुरुषार्थ से मुक्ति होती है। इससे विपरीत कोई कहता है कि - पुरुषार्थ करो तो भी मुक्ति नहीं होती किन्तु भगवान को दिखा होगा जब उसे मुक्ति होगी, तो वह भगवान की वाणी के अनुसार नहीं कहता; क्योंकि भगवान का उपदेश तब पुरुषार्थ का होता है।

भगवान को साधक दशा में विकल्प था कि मैं पूर्ण होऊं और दूसरे भी इसी विधि से पूर्ण हों - ऐसे विकल्प में बन्धे हुए कर्म के उदय के समय वाणी में यही आता है कि - आत्मा ज्ञानतत्त्व है उसमें स्थिर हो। भगवान ने जो किया वही वाणी में आया है, पूर्व में हुए समस्त ही भगवन्तों ने द्रव्य-गुण-पर्याय को जानकर सम्यक् दर्शन को प्राप्त किया है और स्थिरता करके केवलज्ञान को प्राप्त हुए हैं। ऐसी ही विधि द्वारा तुम भी तुम्हारे द्रव्य-गुण-पर्याय को जानकर स्थिरता करो यही एक उपाय है।

भगवान ने किसे साधा है ?

भगवान ने राग-द्वेष और निमित्त को नहीं साधा था; अपितु उन्होंने स्वभाव साधन से सम्यक् दर्शन को प्राप्त किया और उसी साधन से केवलज्ञान को प्राप्त हुए हैं। उनकी वाणी में भी यही आया है। अज्ञानी जीव इससे विपरीत कहे तो वह वस्तु को नहीं समझता। भगवान की वाणी में यही उपदेश आता है कि स्वभाव का अनुसरण करके सम्यक् दर्शन प्रगट करो और उसका ही अनुसरण करके केवलज्ञान प्रगट करो।

अमृतचन्द्र आचार्य कहते हैं कि भगवान ने जैसा स्वयं अनुभव किया वही कहा है। गाथा अस्सी और गाथा इक्यासी में जो कहा, वही पन्थ है; इसी पन्थ का अनुभव किया है और वही कहा है। इसप्रकार मोक्ष का पारमार्थिक पंथ है; मार्ग एक ही प्रकार का है। इसप्रकार मति को निश्चित करते हैं इसलिए तुम भी इसी तरह निर्णय करो और मति को निश्चित करो। **अरहंत के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानकर अपने स्वभाव की ओर झुकना यही एक मोक्ष का उपाय है।**

यह ज्ञानतत्त्व का अधिकार है। ज्ञानस्वभावी द्रव्य, ज्ञानस्वभाव और उसकी पर्याय का स्वरूप जानकर अरहंत हुए हैं। अरहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानकर स्वभाव सन्मुख होनेपर शुद्धोपयोग होता है और उससे कर्म का क्षय होता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। यह एक ही प्रकार है। स्वयं सर्वज्ञ स्वभावी है - ऐसी सर्वप्रथम प्रतीति करके पश्चात् शुद्धोपयोग करके, ज्ञानावर्णादि कर्मांशों का उन्होने नाश किया है। अनन्त तीर्थंकरों ने यही किया और यही कहा है; इसके सिवाय अन्य कोई मार्ग नहीं है।

भगवान ने किया कुछ और हो और कहा कुछ और हो - ऐसा नहीं है। भगवान ने जिसप्रकार से किया उसी प्रकार से कहा और मुमुक्षु जीव ऐसे ही समझें। सभी के लिये एक ही प्रकार है। तुम्हारा आत्मा शुद्ध चिदानंद है उसका आश्रय करके सम्यग्दर्शन प्रगट करके मोक्ष पाओ - ऐसी वाणी निकली है। यहाँपर वाणी के योगवाले तीर्थंकर लिये हैं; वे इसी उपदेश को देकर, मोक्ष को प्राप्त हुए हैं। भगवान ने ज्ञानस्वभाव बताया है इसलिए उनको नमस्कार करते हैं। भूतकाल में हुए अनन्त तीर्थंकर अपने ज्ञानस्वभाव के आश्रय से ही मोक्ष को प्राप्त हुए है।

भूतकाल में जितने भी तीर्थंकर हो गए हैं उन्होने कर्म का क्षय एक ही प्रकार से किया है और उपदेश भी ऐसा ही दिया है। दया-दानादि से धर्म हो जावे अथवा मुक्ति हो जावे - ऐसा कोई मुक्ति का प्रकार नहीं है। अतीतकाल में जितने भी तीर्थंकर हुये हैं वे इसी विधि से हुए हैं; अन्य किसी विधि से मुक्ति का होना सम्भव नहीं है। व्यवहार से निश्चय होता है - ऐसा तीनोंकाल में असम्भव है। ज्ञानानन्दस्वभाव की प्रतीति करके इसमें एकाग्र हो - ऐसे शुद्धोपयोग से ही मुक्ति मिलती है; यह एक ही प्रकार है।

मोक्ष प्राप्त करने की विधि में दो प्रकार नहीं हैं। भगवान ने दर्शनमोह, चारित्रमोह, ज्ञानावरणी आदि कर्मों का नाश इस एक ही प्रकार से किया है। तथा परमाप्तता के कारण भविष्यकाल अथवा वर्तमान काल में अन्य मुमुक्षुओं को भी इसीप्रकार से कर्म क्षय का उपदेश देकर मोक्षदशा को प्राप्त हुए हैं। तीर्थंकर भगवान सर्वज्ञ और वीतराग होने के कारण परम आप्त हैं, यथार्थ उपदेशक हैं; उन्होंने अखण्डस्वभाव का अन्तर अनुभव करके दर्शनमोह, चारित्रमोह और ज्ञानावरणीय आदि का नाश किया है।

भूतकाल में क्रम-क्रम से हो गए सभी तीर्थंकरों का मोक्षमार्ग एक ही था, जिसमें द्वैतपना सम्भवित नहीं है। कोई सच्चिदानन्द आत्मा का अनुभव करके मोक्ष गए हों और कोई व्यवहार का पालन करके मोक्ष गए हों - ऐसा द्वैतपना

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्भवित नहीं है। अपितु सभी ने ज्ञानस्वरूप आत्मा का ज्ञान, प्रतीति और उसमें रमणता की है। उन्होंने स्वभाव की दृष्टि करके दर्शनमोह का नाश कियाहै और स्वभाव में स्थिरता करके चारित्र का नाश किया है।

अन्तर के आश्रय से ही उन्होंने ज्ञान की और वीर्य की अल्पता का नाश किया है अर्थात् ज्ञानावरणी आदि का नाश करके केवलज्ञान को प्राप्त हुए हैं किन्तु किसी ने तो दया-दानादि के भाव से कर्मांशो का नाश किया है और किसी ने स्वभाव से कर्मांशो का नाश किया है - ऐसा द्वैतपना नहीं है।

कोई क्रिया-काण्ड से मुक्ति पाए और कोई ज्ञान से पाए अथवा कोई (स्व)काल में मुक्ति पाए हों और कोई अकाल में पाए हों अथवा कोई पुरुषार्थ से पाए हों कोई द्वैत से पाए हों - ऐसा भेद भी उनमें नहीं है। भिन्न-भिन्न विधि से मुक्ति पाए हों - ऐसा है ही नहीं, अपितु अर्हंत के द्रव्य-गुण-पर्याय अपनी आत्मा के साथ मिलकर, अपने स्वभाव-सन्मुख हुए हैं; मुक्ति की यही एक विधि है। जैसे अनुभव में एक ही प्रकार है; वैसे ही उनके उपदेश में भी एक ही प्रकार का वर्णन आया है कि - **आत्मा का श्रद्धान-ज्ञान-आचरण करो तो ही कर्म का क्षय होगा - ऐसा भगवान की वाणी में आया है।**

कैसे हैं भगवान ?

परम आप्त हैं। आत्मा अनादि-अनन्त ज्ञानस्वरूप है। यदि एक समय की पर्याय को गौण करो तो आत्मा ऐसे का ऐसा है। ऐसे आत्मा के आश्रय से सम्यक्त्व, चारित्र और केवलज्ञान प्राप्त किया जाता है। भूतकाल में जितने भी तीर्थंकर हो गए हैं उन्होंने यही कहा है। इसप्रकार तीनोंकाल के तीर्थंकरों ने अन्य मुमुक्षुओं को इसीप्रकार से कर्मक्षय का उपदेश दिया है। आत्मा ज्ञानानन्द स्वरूप है उसके आश्रय से चारित्र और केवलज्ञान प्रगट करना है - ऐसा ही उपदेश वे मुमुक्षुओं को देते हैं।

जिन्हें परिभ्रमण दूर करना हो - ऐसे मुमुक्षु जीवों के लिये यह उपदेश है। स्वयं ने जिसप्रकार से कर्म का क्षय किया है उसीप्रकार से वाणी में आया। तुम्हारे आत्मा की प्रतीति, ज्ञान और रमणता करो, यह एक ही प्रकार (उपाय) कहा है। तुम्हारा मोक्ष हमारे से नहीं होगा, इसलिये हमारी ओर का पुरुषार्थ न करो - ऐसी वाणी निकली थी। ज्ञानानन्द स्वभाव की प्रतीति करो तो दर्शन मोह दूर हो जाएगा,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्थिरता करो तो चरित्र मोह दूर हो जाएगा, उसके बाद ज्ञानावरणी दूर हो जायेंगे-ऐसी वाणी निकली है।

आत्मा के आश्रय से ही धर्म होता है किन्तु निमित्त अथवा व्यवहार के आश्रय से धर्म नहीं होता - ऐसी श्रद्धा करो यह भगवान की वाणी में आया है। इसके सिवाय जो दूसरा उपदेश करे, वह वीतरागता का बैरी है अर्थात् कि अपनी आत्मा का बैरी है। हमारी द्रव्य-गुण-पर्याय के साथ तुम्हारे द्रव्य-गुण-पर्याय को मिलाओ - ऐसा उपदेश आया था।

हमारा आत्मा द्रव्य-गुण-पर्याय से पूर्ण है। हम स्वभाव का लक्ष्य-स्थिरता करके वीतराग हुए हैं, तुम भी तुम्हारी आत्मा का लक्ष्य और स्थिरता करो तो कर्मक्षय होंगे। तेरे कर्मों का क्षय नहीं होगा - ऐसा भगवान के उपदेश में नहीं आया। किसी को क्रिया-काण्ड से और किसी को ज्ञान काण्ड से कर्म का क्षय होगा - ऐसा भी उपदेश में नहीं आया।

क्रमबद्ध पर्याय का निर्णय ज्ञानस्वभाव के आश्रय से होता है। अपूर्ण दशा में व्रतादिक के विकल्प आते हैं, उनका ज्ञान कराया है किन्तु वे कर्म क्षय का उपाय नहीं है।

कोई कहता है कि - जैसे यदि बर्तन में कालिख लग गई हो तो वह खट्टी छांछ और ईंट के बुरादे आदि से वह निकलती है; वैसे ही व्रतादि करो तो कर्म का नाश होगा - ऐसी अज्ञानी दलील करता है।

उसका समाधान यह है कि कालिख वह बर्तन का असली स्वभाव नहीं है - ऐसा पहले से ज्ञान वर्ते तो वह उसे दूर करने का प्रयत्न करना है। इसीप्रकार ज्ञानस्वभाव को समझे तो धर्म होता है। व्रत, तपादि से कर्मक्षय नहीं होते अपितु उनसे तो पुण्यबन्ध ही होता है। यदि कोई सम्यक्‌दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप कारण मिलाए तो उसके कर्म का नाश अवश्य ही होता है।

जैसा केवलज्ञान ने जाना है वैसा ही भगवान की वाणी में आया है। जैसे ज्ञान में आया कि मेहमान आए हैं, इसलिये पाँच किलो शक्कर चाहिए; वाणी भी ऐसी ही आई और सामने जिस व्यक्ति से कह रहे हैं उस आदमी ने भी यही समझा है। शक्कर चाहिए - ऐसा ज्ञान में आए और उसकी वाणी में पाँच किलो काली मिर्च

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

लाओ - ऐसा नहीं आता; इसतरह ज्ञान और वाणी का मेल है। वैसे ही आत्मा के आश्रय से सम्यक्‌दर्शन-ज्ञान-चरित्र प्राप्त होनेपर कर्मांश का नाश होता है और सर्वज्ञता प्रगट होती है। उन सर्वज्ञ की जो वाणी निकलती है उस वाणी में सर्वज्ञता कैसे होती है? यही आता है, फिर भी वाणी का कर्ता आत्मा नहीं है; किन्तु ऐसा ही निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है।

जिन्हें 'ज्ञ' स्वभाव के आश्रय से केवलज्ञान हुआ है उनकी वाणी में ऐसा ही आया है कि तुम भी तुम्हारे स्वभाव के आश्रय से ही सम्यक्‌दर्शन-ज्ञान-चारित्र और केवलज्ञान प्राप्त करोगे। अनंत तीर्थंकरों की वाणी में यह एक ही उपाय निकलता है। सामान्य केवली अथवा मूक केवली को इसमें नहीं लिया है किन्तु वाणी के योगवाले तीर्थंकरों को ही इसमें लिया है। उनकी वाणी में ऐसा आया है कि तुम स्वभाव की ओर देखो, अन्तर शक्ति के सन्मुख देखो किन्तु निमित्त और राग की ओर मत देखो।

यदि भगवान ने हमारे अनन्त भव देखे होंगे तो ? - ऐसा माननेवाला भगवान की वाणी को नहीं समझता।

यदि भगवान ने हमारे अनन्त भव देखे होंगे तो ? ऐसा कोई कहे तो उससे पूछना चाहिए कि क्या तू भगवान को मानता है ? केवली को मानने पर भी हमारे अनन्त भव दूर नहीं होंगे - ऐसा तू कहता है ? यदि तू ऐसा कहे तो तुझे केवली का निर्णय ही नहीं है। जिन्हें पूर्ण शुद्धदशा हुई है वे केवली है, उनकी वाणी का अवलम्बन लेकर कहता है कि - मेरे अनन्त भव बाकी है तो तुझे केवली की वाणी की खबर ही नहीं है। केवली के माननेवाले को अनन्त भव हों - ऐसा होता ही नहीं।

मेहमानों को आम खिलाते समय यदि आम कम हो जाए तो आम लाने के लिये कहता है किन्तु कोयला लाने के लिये नहीं कहता - ऐसा ज्ञान और वाणी का सम्बन्ध है; वैसे ही सर्वज्ञदशा होनेपर भाषा के परिणमन के नियमानुसार वाणी ऐसी ही निकलती है कि - तेरे आश्रय में तू जा और सर्वज्ञत्व को प्राप्त हो। यदि कोई इससे अन्यथा समझे तो वह भगवान को नहीं समझता। अभी जिसकी श्रद्धा का ही ठिकाना नहीं है उसे व्रत, तप कहाँ से होंगे ?

तथा कोई कहता है कि - जो क्रमबद्ध में होना होगा वही होगा?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

समाधान :- क्रमबद्ध पर्याय द्रव्य में होती है (इसलिये) द्रव्य का निर्णय करने पर क्रमबद्ध पर्याय का निर्णय होता है और उसे शुद्धता प्रगट हुए बिना नहीं रहती - ऐसा भगवान ने कहा है। भगवान की वाणी स्वभाव सन्मुख होने के लिए कहती है।

तथा कोई कहता है कि - हमारे पास तो भगवान द्वारा कहे हुए शास्त्र है और तुम्हारे पास तो आचार्य के कहे हुए शास्त्र है इसलिये हमें अधिक (बड़ा) मानना चाहिए ?

समाधान :- भाई ! भगवान के नाम से मिथ्यादृष्टि की वाणी को चलावे (प्रचार करे) वह बड़ा ढोंग है। स्वयं भव्य है अथवा अभव्य है - ऐसी ही स्वयं को खबर नहीं पड़ती, वह जीव केवली भगवान की वाणी को जान ही नहीं सकता। भव का अभाव होगा - ऐसी जिसे खबर नहीं वह भव रहित केवली की वाणी का निर्णय नहीं कर सकता।

जैसे भगवान भव रहित हैं वैसे ही मेरा ज्ञानस्वभाव (भी) भव रहित है - ऐसा निर्णय करना चाहिए। केवली भगवान की वाणी ज्ञानस्वभाव सन्मुख होने के लिये कहती है। तेरा मोक्ष नहीं होगा - ऐसा उन्होंने कहा ही नहीं है। तेरी आत्मा का लक्ष्य कर - ऐसा वाणी में आया है। भगवान का ज्ञान, वाणी और सुननेवाला इन तीनों का मेल है।

ज्ञानस्वभाव में से पूर्ण परम पद प्राप्त किये है वे भगवान हैं, उनकी वाणी में ऐसा ही उपदेश आता है और सुननेवाला भी ऐसा ही समझता है। ज्ञानस्वभाव के आश्रय से मुक्ति होती है - ऐसा सुननेवाला समझे तो उसमें भगवान की वाणी निमित्त कहलाए।

यह गाथा अलौकिक है। आत्मा अखण्ड ज्ञानानन्द स्वभावी है। उसके अवलम्बन से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तथा केवलज्ञान प्रगट होता है। भगवान को पहले छद्मस्थदशा में विकल्प था कि मेरे स्वभाव के आश्रय से मैं पूर्ण होऊं, उसके निमित्त से तीर्थंकर नामकर्म बन्धा था, इसके बाद वह विकल्प दूर होकर वे वीतराग और सर्वज्ञ हुए। जब वे कर्म उदय में आए तब उनकी वाणी में ऐसा आया कि हे भव्य तुम तम्हारे स्वभाव का आश्रय लेकर मुक्ति पाओ।

भगवान का ज्ञान ऐसा ही है,वाणी ऐसी ही है और सुननेवाले भी यही

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

समझते हैं। यह पूर्वापर विरोध रहित वाणी है। तेरा ज्ञान और उपदेश हम समझ गए इसलिये मेरी मति निर्मल हुई है - ऐसा कहकर भगवान को नमस्कार किया है। अतीत काल के तीर्थंकरों ने अनुभव करके कहा है। अपनी आत्मा के आश्रय से अनुभव करके मोक्ष को प्राप्त हुए हैं। वाणी का भाव यथार्थ समझकर निमित्त बनाए तो वह सर्वज्ञपद को अवश्य ही प्राप्त करता है।

तीनों काल के भगवन्तों ने एक ही उपाय कहा है। 'भगवान ने हमारे-अनन्तभव देखे होंगे तो ? फिर वहाँ तो हमारा पुरुषार्थ काम नहीं आएगा ?' - ऐसा अज्ञानी कहता है वह वास्तव में भगवान को मानता ही नहीं; क्योंकि तीन काल के जाननेवाले केवलियों ने जो उपदेश किया है उसकी उसे खबर ही नहीं है। साहूकार के साथ दिवालिया की बात करता है।

भूतकाल में जो तीर्थंकर हुए हैं वे सभी ज्ञानस्वभाव का अनुभव करके हुए हैं, वर्तमान में भी इसी प्रकार होते हैं और भविष्य में भी ऐसे ही होंगे। उन सभी की यह एक ही वाणी है-दूसरी वाणी नहीं होती। **स्वभाव की प्राप्ति का और विभाव के अभाव का उपाय बतावे वह आगम है।** ऐसे देव कैसे हैं, गुरु कैसे हैं और उनकी वाणी कैसी है यह सब इसमें आ जाता है।

भगवान ने जो किया है, वही कहा है किन्तु भगवान ने करा तो कुछ और हो और कहा कुछ और ऐसा है ही नहीं। तीर्थंकर होने के पहले उन्हें विकल्प आया था कि मैं परिपूर्ण होऊँ - ऐसे भाव में तीर्थंकर नाम कर्म बन्धा था फिर विकल्प को दूर करके वे सर्वज्ञ हुए। उस समय ध्वनि निकली कि - हमने प्राप्त किया उसी रास्ते से तुम भी मुक्ति को प्राप्त करोगे।

यह वाणी सर्वज्ञ होने में निमित्त है; यह समझ कर वाणी को निमित्त बनाए और वह धर्म को अथवा सर्वज्ञ पद को प्राप्त नहीं करे, ऐसा नहीं होता। अर्थात् वह धर्म को प्राप्त करके सर्वज्ञ पद अवश्य ही प्राप्त करेगा। पहले भावमोक्ष हुआ, वाणी निकली और बाद में द्रव्यमोक्ष हुआ - ऐसे तीर्थंकरों ने निर्वाण का एक ही मार्ग बताया है कि - **ज्ञानस्वभाव की प्रतीति, ज्ञान और रमणता यह एक ही मार्ग है।**

यह आत्मा ज्ञानस्वभावी है, उसका स्वरूप ज्ञान है किन्तु शरीर, मन,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वाणी उसका स्वरूप नहीं है तथा पुण्य-पाप भी उसका कायमी स्वरूप नहीं है। आत्मा गुणों का समूह द्रव्य है, वह कायमी है। उसके ज्ञान-दर्शन आदि सभी गुण पूरे क्षेत्र में रहते हैं और प्रत्येक अवस्था में रहते हैं। गुण के विशेष कार्य को पर्याय कहते हैं।

भगवान अर्हंत सर्वज्ञ देव, द्रव्य-गुण और केवलज्ञानादि पर्यायों से पूर्ण हैं, ये आत्मा द्रव्य से त्रिकाल है, गुण से त्रिकाल है और पर्याय परिणमित होती है - ऐसा समझकर पर्याय को स्वभाव सन्मुख झुकाकर और गुण-भेद के विकल्प का नाश करके एकाग्र होना वह सम्यग्दर्शन है।

अनन्त तीर्थंकर भगवान द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप जानकर शुद्ध आत्मा का अनुभव-एकाग्रता करके मोक्षदशा को प्राप्त हुए हैं। अनन्त तीर्थंकर हो गए हैं, वर्तमान में भी तीर्थंकर हैं और भविष्य में भी अनन्तों होंगे; सभी के लिये एक ही विधि (उपाय) है और उन्होने ऐसा ही उपदेश दिया है। पहले साधक दशा में जो शुभराग था कि मैं पूर्ण होऊं उसमें तीर्थंकर नामकर्म बंधा था, उसके उदय के समय वाणी भी पूर्ण होने की ही आती है।

निमित्त से मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती, पुण्य से भी मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती अपितु आत्मा आनन्दकंद है उसके अनुभव से ही मोक्षमार्ग व मोक्ष की प्राप्ति होगी - ऐसा उपदेश दिया है। निर्वाण का अन्य कोई दूसरा मार्ग नहीं है। आत्मा के अन्तर स्वरूप में एकाग्र होकर पूर्ण आनन्द प्रगट करे, यह एक ही मार्ग है। लोग व्यवहार को मोक्षमार्ग मान बैठे हैं जबकि वह मोक्षमार्ग नहीं है। अन्तर ज्ञानानन्द स्वरूप की अन्तर्दृष्टि और लीनता करना यह एक ही मार्ग है।

'आचार्य भगवान कहते हैं कि मेरी बुद्धि व्यवस्थित हुई है और सभी व्यग्रता मिट गई है। विशेष (अधिक) क्या कहें ! सर्वज्ञ का मार्ग एक ही है। मेरी बुद्धि व्यवस्थित हुई है। पर के कारण मेरा कल्याण होगा, अहिंसा पालने से, पुण्य करने से, धर्म होगा ऐसी व्यग्रता थी अब वह व्यग्रता मिट गई है। मति तो सम्यक् थी किन्तु अब विशेष ढलती है। मक्ति का मार्ग बुद्धि में आया है। पुरुषार्थी को यह बात बैठे - ऐसी है। आत्मा ज्ञानानन्द स्वरूप है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान-रमणता एक ही मुक्ति मार्ग है - ऐसी मेरी मति व्यवस्थित हुई है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अहो धन्य प्रभु ! आपने हमें मोक्षमार्ग बताया है इसलिये आपको नमस्कार है। ज्ञानस्वभाव जो अंतर में था वह उनकी पर्याय में पूर्ण प्रगट हुआ है - ऐसे भगवान मेरे ज्ञान में निमित्त हैं इसलिये मैं सर्वज्ञ भगवान को नमस्कार करता हूँ।

यहाँ निश्चय व्यवहार दोनो की सन्धि बताते हैं। अहो धन्य प्रभु ! आपने मोक्ष मार्ग बताकर मोक्ष पाया। आपने यह एक ही विधि बताई इसलिये नमस्कार करने योग्य तो आप ही हो। ऐसी बात अन्य किसी जगह नहीं है।

आत्मा ज्ञानानन्द है, आपने उसकी भक्ति करने के लिए कहा। हमने आत्मा की भक्ति जानी अर्थात् - ऐसी भक्ति बतानेवाले की ओर बहुमान आता है, इसलिये भगवान को नमस्कार करते हैं। इसप्रकार कहकर मोक्षमार्ग में सर्वज्ञ निमित्त होते हैं - ऐसा भी बताया है। **वीतराग देव वीतरागता बताते हैं; इसलिये राग से वीतरागता होगी - ऐसा माननेवाला वीतराग से विरुद्ध है।**

भावार्थ पर प्रवचन :- अर्हंत का द्रव्य उनकी शक्तियाँ तथा उनकी वर्तमान पर्याय को जानकर, स्वभाव सन्मुख होकर सम्यग्दर्शन प्राप्त किया है। ८० वीं गाथा में सम्यग्दर्शन की विधि बताई है और ८१ वीं गाथा में वीतराग चारित्र विरोधी राग-द्वेष को दूर करने के लिये कहा है।

ज्ञानस्वभाव को निर्विकल्प प्रतीति-ज्ञानपूर्वक अनुभव करना यह एक ही मोक्षमार्ग है, यही शुद्धात्मानुभूति है। अनन्त तीर्थंकर यही कह गए हैं, जो इसमें फेरफार (अन्तर) माने वह व्रत करो, तप करो, दया पालो इनसे कल्याण होगा - ऐसा कहनेवाला व्यग्र है वीतराग मार्ग का विरोधी है।

वीतरागी होकर वीतरागता बताते हैं। राग से वीतरागता होगी- ऐसा वे नहीं कहते। तीनोंकाल में मोक्ष का कोई दूसरा मार्ग नहीं है। पंचमकाल में भी एक ही मार्ग है। वर्तमान में महा विदेहक्षेत्र में सीमंधर भगवान भी ऐसा ही कहते हैं, फिर भी कोई उपवास से मोक्ष मानता है और कोई दया से मोक्ष मानता है, किन्तु ऐसा माननेवाले की व्यग्रता दूर नहीं होती और सम्यग्दर्शन नहीं होता। अन्य मुमुक्षुओं को इसी मार्ग का उपदेश दिया है।

अपूर्णदशा में, शुभरागरूप व्यवहार आता है वह जानने के लिए है किन्तु आदरणीय नहीं। अहो ! प्रभु ! आपके उपदेश में आया कि - निमित्त पृथक भावरूप

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हैं, पुण्य-पाप का जाल छोड़ो, स्वभाव सन्मुख होओ। इसलिये हे नाथ! मोक्षमार्ग में आप ही निमित्त हो। धर्म का मूल सर्वज्ञ है। आप ही पूर्ण उपकारी हो इसलिये आपको वन्दन करना चाहिये।

- *अज्ञानी की भूल हो तो उसे जान लेना किन्तु इससे उसका तिरस्कार नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह भी भगवान आत्मा है न! ये बेचारे तो अज्ञान से दुःखी हैं, दुःख में जलते हुए लोगों का तिरस्कार करना यह तो धर्मी का काम नहीं है।*

- *वर्तमान में एक जरा-सी प्रतिकुलता आती है तो वह इससे सहन नहीं होती तो फिर भविष्य में अनन्त प्रतिकुलताऐं आऐगी, उसकी इसे कोई चिन्ता नहीं है।*

- *जब तक आत्मा में सुख है ऐसा भाषित न हो और पर में सुख नहीं ऐसा भाषित न हो तब तक इसे आत्मा का अनादर वर्तता है।*

- *भाई! यह तो पचाकर परिणमन करने की बात है; वाद-विवाद की बात नहीं। वाद-विवाद में मौन हो जाना चाहिए। शास्त्र में ऐसा लिखा है... वैसा लिखा है ... यह तो वीतरगता प्रगट करने की बात है।*

- पूज्य गुरुदेवश्री

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचनसार गाथा ८३

अथ शुद्धात्मलाभपरिपन्थिनो मोहस्य स्वभावं भूमिकाश्च विभावयति-

दव्वादिएसु मूढो भावो जीवस्स हवदि मोहा त्ति।
खुब्भदि तेणुच्छण्णो पप्पा रागं व दोसं वा ॥८३॥

अब शुद्धात्मलाभ के [१]परिपंथी-मोह का स्वभाव और उसके प्रकारों को (-भेदों को) व्यक्त करते हैं :-

द्रव्यादि में अज्ञानता ही मोह है इस जीव का ।
आच्छन्न उससे रागिद्वेषी क्षुब्ध रहता है सदा ॥८३॥

अन्वयार्थ :- (जीवस्य) जीव के **(द्रव्यादिकेषु मूढः भावः)** द्रव्यादि सम्बन्धी मूढ़भाव (-द्रव्यगुणपर्यायसम्बन्धी जो मूढ़तारूप परिणाम) **(मोहः इति भवति)** वह मोह है **(तेन अवच्छन्नः)** उससे आच्छादित वर्तता हुआ जीव **(रागं वा द्वेषं वा प्राप्य)** राग अथवा द्वेष को प्राप्त करके **(क्षुभ्यति)** क्षुब्ध होता है।

टीका :- धतूरा खाये हुए मनुष्यकी भाँति, जीव के जो पूर्व वर्णित द्रव्य-गुण-पर्याय हैं उनमें होनेवाला [२]तत्त्व-अप्रतिपत्तिलक्षण मूढ़भाव वह वास्तव में मोह है। उस मोह से निजरूप आच्छादित होने से यह आत्मा परद्रव्य को स्वद्रव्यरूप से, परगुण को स्वगुणरूप से, और परपर्यायों को स्वपर्यायरूप समझकर-अंगीकार करके, अतिरूढ़-दृढ़तरसंस्कार के कारण परद्रव्य को ही सदा ग्रहण करता हुआ, [३]दग्ध इन्द्रियों की रुचि के वश से। [४]अद्वैत में भी द्वैत प्रवृत्ति करता हुआ, रुचिकर-अरुचिकर विषयों में राग-द्वेष करके अति प्रचुर जलसमूह के

---

[१] परिपंथी = शत्रु, मार्ग में लूटनेवाल।

[२] तत्त्व अप्रतिपत्तिलक्षण = तत्त्व की अप्रतिपत्ति (-अप्राप्ति, अज्ञान, अनिर्णय) जिसका लक्षण है - ऐसा।

[३] दग्ध = जली हुई; हल्की; शापित ('दग्ध' तिरस्कारवाचक शब्द है)।

[४] इन्द्रियविषयों में-पदार्थों में 'यह अच्छे हैं और यह बुरे' इसप्रकार का द्वैत नहीं है; तथापि वहाँ भी मोहाच्छादित जीव अच्छे-बुरे का द्वैत उत्पन्न कर लेते हैं।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वेग से प्रहार को प्राप्त सेतुबन्ध (पुल) की भाँति दो भागों में खंडित होता हुआ अत्यन्त क्षोभ को प्राप्त होता है। इससे मोह, राग और द्वेष-इन भेदों के कारण मोह तीन प्रकार का है ॥८३॥

गाथा ८३ पर प्रवचन

अब, शुद्धात्म लाभ का शत्रु जो मोह भाव उसका स्वभाव और उसके प्रकारों को (भेदों को) व्यक्त करते हैं। मोह-राग-द्वेष शुद्धात्म लाभ के लुटेरे हैं। जैसे रास्ते चलते जो चोर मिलते हैं वे लुटेरे हैं, वैसे ही आत्मा ज्ञानानन्द स्वरूप है उसकी दृष्टि नहीं करने पर निमित्त और पुण्य से लाभ होता है - ऐसा मोह भाव दुश्मन है- लुटेरा है, ये मोक्षमार्ग में नहीं ले जाता। स्वभाव मित्र है और मिथ्यात्व शत्रु है। मिथ्याभाव का पोषण करनेवाला आत्मा के मार्ग में नहीं आता। - ऐसी विपरीत भावना और उसके प्रकारों को इस गाथा में व्यक्त करते हैं।

निमित्त और पुण्य की रुचिवाला आकुलता उत्पन्न करके क्षुब्ध होता है। जो अर्हंत के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानता है वह आत्मा को जानता है - ऐसा ८० वीं गाथा में कहा था। हरितकाय न खाए, चोविहार करे, इसमें जैन धर्म नहीं है अपितु आत्मा ज्ञानस्वभावी है - ऐसा मान करके मिथ्यात्व को दूर करे और स्थिरता करके राग-द्वेष को दूर करे वह जैन है। चोविहार करना चाहिये ऐसा तो कहे; किन्तु जो मिथ्यात्व की खुराक खाता है, इसकी उसे खबर नहीं है।

आत्मा ज्ञानानन्द स्वभावी है, उसके गुण और पर्याय की विपरीत बुद्धि मिथ्यात्वभाव है, वह मोह भाव है। कर्म के कारण मोह भाव होता है - ऐसा नहीं कहा। निमित्त पाकर विकार होता है - ऐसा भी नहीं कहा, क्योंकि मेरी अवस्था मेरे से होती है। निमित्त का आश्रय लूँ तो विकार होता है और स्वभाव का आश्रय लूँ तो विकार नहीं होता - ऐसा यथार्थ स्वरूप नहीं जानता, वही मोह है।

अनुकूल निमित्त आए तो ठीक, प्रतिकूल निमित्त न आये तो ठीक इसप्रकार अनुकूलता में राग और प्रतिकूलता में द्वेष करके वह क्षुब्ध होता है। आत्मा ज्ञानानन्द का दरिया है, अन्तर में ठहरे तो विश्राम मिले - ऐसा नहीं मानता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

और आकुलता और क्षुब्धता उत्पन्न करता है।

द्रव्य-गुण-पर्याय की ना समझी ही मोह भाव है। जिसप्रकार धतूरा पिया हुआ मनुष्य सफेद चीज को पीली देखता है किन्तु वास्तव में वस्तु ऐसी नहीं है। इसीप्रकार भगवान-आत्मा द्रव्य से शुद्ध है, गुण से शुद्ध है; पर्याय को स्वभाव की ओर झुकाये तो वह शुद्ध है, नहीं तो कितनी ही पर्यायें शुद्ध हैं और कितनी ही अशुद्ध हैं; इसका जिसे भान नहीं वह मोही है।

आत्मा ज्ञायक तत्त्व है, शरीर-कर्म अजीव है, पुण्य-पाप आश्रव है - ऐसे तत्त्व का अज्ञान भाव मोह है। कर्म के कारण राग माने, आश्रव से धर्म माने वह मोह भाव है - मिथ्यात्व भाव है। अनुकूल पदार्थ आने से आनन्द माने, हमको लड्डू मिले, स्त्री मिली, अभिनन्दन मिला - ऐसा मानता है, किन्तु ये तो जानने लायक हैं - ऐसा नहीं मानता और उनको लाभदायक मानता है इसलिये वह मूढ़ भाव है।

स्वयं समझकर स्वभाव में समा जाना। इसमें क्या हुआ ? किन्तु उपकार में निमित्त हो तो दुनिया में कुछ किया कहलाए - ऐसा अज्ञानी कहता है। तत्त्वार्थ सूत्र में आता है कि - जीव परस्पर उपकार करते हैं, किन्तु इसका अर्थ यह है कि जीव स्वयं समझे तो अन्य के ऊपर आरोप आता है। यदि, शिष्य समझे तो गुरु उपकार में निमित्त कहलाए। दूसरा कोई भला-बुरा करनेवाला नहीं है।

यहाँ तत्त्व कहने से-जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष ये सातों तत्त्व आ जाते हैं। सात तत्त्व की भूल को मोह-मिथ्यात्व कहते हैं। मिथ्यात्व का पाप सभी पापों का बाप है। मिथ्या द्वार में से राग-द्वेष कौतूहलता आदि उत्पन्न होते हैं। मिथ्यात्व के दूर हो जाने के बाद राग-द्वेष लंगड़े हो जाते हैं। जगत में अनादि से तत्त्व का अनिर्णय है इसलिये मोह भाव है। दया पालो तो तत्त्व की समझ होगी - ऐसा यहाँ नहीं कहा।

कर्म के कारण राग माने, राग से-व्यवहार से निश्चय रत्नत्रय माने वह मोह भाव है। कर्म, कर्म के कारण परिणमन करते हैं, राग क्षणिक भूल है, स्वभाव के आश्रय से संवर निर्जरा होती है - ऐसा नहीं मानना वह मोह है। निमित्त और पर की पर्याय का स्वयं को कर्ता माननेवाला, ईश्वरकर्ता की मान्यतावाले के समान ही मोही है। द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों तत्त्व हैं। आत्मद्रव्य, आत्मा के गुण, आत्मा की

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पर्याय से विरोध भाव का होना वह मोह है।

विपरीत मान्यता से अपना स्वरूप ढका हुआ है, जिसमें वह पर द्रव्य को स्व द्रव्य मानता है। इस मोह में निजरूप आच्छादित हुआ है। ज्ञानावरणीय अथवा मोहनीय कर्म के कारण आच्छादित हुआ है - ऐसा नहीं कहा किन्तु अपनी भूल के कारण आच्छादित हुआ है, इसलिये पर द्रव्य को स्वद्रव्य रूप मानता है, अजीव में अपनापन मानता है।

आत्मा ज्ञान स्वरूप है-जाननेवाला है - ऐसा नहीं माना। शरीर अनुकूल हो तो ठीक लगे, दूसरे के शरीर की रक्षा करूं तो जीव बचे, पथ्य आहार लूँ तो निरोगता रहे - ऐसी मान्यतावाला शरीर को आत्मा मानता है। दूध, पानी, मोसम्बी आदि अनुकूलता मिले तो लाभ होता है - ऐसा अज्ञानी मानता है।

अनन्त अजीव तत्त्व (द्रव्य) हैं, उसमें एक अजीव के कारण दूसरे अजीव की अवस्था का होना माने तो वे अनन्त नहीं रहते। मैंने इच्छा की इसलिये पत्थर ऊँचा हुआ और दूसरे को लगा तो असाता का उदय आया, यह सभी मोह भाव है- उसमें अपना स्वरूप ढक गया है।

मनुष्य जहाँ भी बैठता (रहता) है वहाँ वह ऊपर नीचे सब जगह से कचरा निकाल कर ही बैठता है, इसलिये जिस जाति, देश और कुटुम्ब में रहता है, जिस शरीर में बसा है उसका कचरा निकालकर बैठेगा अथवा नहीं ? इसप्रकार अज्ञानी दलील (तर्क) करता है और प्रथम घर की सेवा करना फिर शरीर का करना - ऐसा वह मानता है, तो उससे कहते हैं कि - चिदानंद स्वरूप तेरा घर है, उसकी सम्हालकर।

खाते समय थाली साफ करके बैठते हैं वैसे ही शरीर को साफ रखें तो धर्म होता है न ? ऐसा माननेवाला द्रव्य को नहीं मानता। बैठने की जगह को भी साफ करके बैठते हैं तो आत्मा को शरीर मिला है तो उसे साफ तो करना चाहिये न ? ऐसी दलील करता है; फिर भी पर द्रव्य इसका नहीं होता, मात्र यह मिथ्याभाव ही करता है।

अज्ञानी पर गुण को स्व गुण और पर पर्याय को स्व पर्यायरूप समझकर अंगीकार करता है। राग-द्वेष अपने गुण नहीं होनेपर भी मूढ़ जीव उसे अपना मानता है। शरीर के गुण को अपना मानता है; शरीर के गुण में लाभ स्वीकार करता है। कर्म में अनुभागशक्ति प्रगट होती है, इसलिये मुझे राग-द्वेष होता है - ऐसा वह

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मानता है।

तथा राग-द्वेष विकारी पर्याय है फिर भी उन पर्यायों से अपने को लाभ मानता है; इसप्रकार यह परपर्याय को स्वपर्याय मानता है - ऐसा अतिरूढ़ रहा संस्कार हुआ है, जिसमें वह परद्रव्य को ही प्रतिक्षण ग्रहण करता है। स्वद्रव्य को पकड़ना चाहिये इसके बदले वह परद्रव्य को स्वद्रव्यरूप, परगुण को स्वगुणरूप और पर पर्याय को स्वपर्यायरूप समझकर प्रतिक्षण ग्रहण करता है। यहाँ पर को लेने-देने की बात नहीं कही है अपितु अज्ञानी भी मात्र विपरीत मान्यता ही करता है।

अज्ञानी ज्ञानस्वभाव को भूलकर, इन्द्रियों के विषयों में इष्ट-अनिष्टपना मानकर राग-द्वेष कर रहा है। आत्मा ज्ञानस्वभावी है उसे भूलकर अज्ञानी मानता है कि - मैं इस पदार्थ को लाऊं और छोड़ूँ। ज़गत की वस्तुएं तो उन्हीं के कारण आती और जाती है फिर भी वह ऐसा मानता है कि - मैं उन्हें लाता हूँ और छोड़ता हूँ।

जगत के ज्ञेयों को मैं सुधार दूं तथा उनकी व्यवस्था कर दूं इसप्रकार अज्ञानी मिथ्यात्व भाव को घोंट (पुष्टकर) रहा है, यह संसार का बीज है इसलिये अनादि से जन्म-मरण कर रहा है। जीव, पर की व्यवस्था में रूककर एकत्वबुद्धि का राग करता है।

आत्मा ज्ञान का भंडार है। जैसे चौंसठ पुटि तिखास लेंडी पीपर के दाने-दाने में भरी है, वैसे ही प्रत्येक आत्मा में - चौसठ पैसा, सोलह आने अर्थात् रुपया, पूर्ण सर्वज्ञ पद विद्यमान है, उसे भूलकर अज्ञानी मानता है कि व्रत करें, दान करें तो धर्म होगा किन्तु जो राग की क्रिया है वह धार्मिक क्रिया नहीं।

बाहर से मेरा ज्ञान और आनन्द प्रगट होगा ऐसा मानकर अज्ञानी पर को ही ग्रहण करता है किन्तु मैं आनन्द कंद हूँ उसकी दृष्टि नहीं करता। अज्ञानी को ज्ञानस्वभाव की प्रतीति नहीं है क्योंकि इन्द्रियाधीन ज्ञान की दृष्टि, पर की ओर जाती है और वह मानता है कि - मैं राग करता हूँ, मैं स्त्री-पुत्र, संयोगादि को छोड़ूँ तो कल्याण होगा, किन्तु यदि उनको छोड़ने से कल्याण हो जाय तो, मृत्यु होनेपर उन्हें कोई साथ नहीं ले जाता, तो फिर सभी का कल्याण हो जाना चाहिये। जबकि ऐसा नहीं होता इसलिये वास्तव में तो यह 'पर वस्तु मेरी है और मैं इनका हूँ' - ऐसा ममता भाव वही संसार है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञानी को राग होता है, किन्तु पर के कारण राग होता है - ऐसा वे नहीं मानते। सफेद होनेवाले बालों को तो यह रोक नहीं सकता फिर भी शरीर की व्यवस्था, पर की व्यवस्था मैं कर दूं - ऐसा अज्ञान भाव करता है उसे स्वयं ज्ञानस्वभावी है, उसकी रुचि छूट गई है। वह ज्ञानस्वभाव को छोड़कर एक दिन शमशान में जल जानेवाली जड़ इन्द्रियों को अच्छा रखना चाहता है। चिदानंद स्वभाव में एकत्व नहीं लाता और पर में यह इष्ट और यह अनिष्ट इसप्रकार द्वैत करता है। राग-द्वेष में लाभ मान रहा है किन्तु चिदानंद स्वभाव से लाभ है - यह नहीं मानता इसलिये संसार में रखड़ (परिभ्रमण कर) रहा है।

ज्ञेय पदार्थ एकरूप जानने योग्य हैं, फिर भी अज्ञानी उसमें इष्ट-अनिष्टपने की बुद्धि (कल्पना) करता है। आत्मा शुद्ध चैतन्य ज्ञानानन्द स्वभावी है, उसकी प्राप्ति में मिथ्यात्व व राग-द्वेष भाव लुटेरे हैं। आत्मा के स्वभाव की प्राप्ति क्यों नहीं होती ? तत्त्व की नासमझी (अज्ञानता) से राग-द्वेष लूटनेवाले लुटेरे हैं।

वास्तविक स्वरूप से आत्मा शुद्ध है। उसके सन्मुख न होनेपर इन्द्रियों के विषयों की ओर झुककर उनमें भेद करता है और पुण्य-पाप में अटकता है। पर द्रव्य को स्वद्रव्यरूप, पर गुण को स्व-गुणरूप और पर-पर्याय को स्व-पर्यायरूप अंगीकार करता है। समय-समय शुभाशुभ को ग्रहण करता हुआ ज्ञातापने को छोड़कर, राग-द्वेष करता है। इन्द्रियाँ तो मुर्दा हैं, फिर भी उनकी रुचि करके द्वैत में अद्वैत प्रगट करता है।

आत्मा का अन्तर स्वभाव इन्द्रियों व दया-दानादि से पार है - ऐसे अतीन्द्रिय स्वभाव की रुचि नहीं करता है फिर यदि वह पूजा-भक्ति आदि करता हो तो भी वह इन्द्रियों के प्रति ही झुकाव करता है। ज्ञानानन्द चैतन्य स्वभाव जीवंत है, उसे भूलकर मरी हुई इन्द्रियों की रुचि करता है। जैसे किसी को जला देते हैं वैसे ही इन्द्रियाँ जल गई है।

इन्द्रियाँ अच्छी हों तो ज्ञान होता है; इसप्रकार मिथ्यात्व भाव को घूँटता है। ज्ञायक स्वरूप अद्वैत एकरूप है। जानना-जानना नित्य एकरूप है। ज्ञेयों को भी पर ज्ञेयरूप अद्वैत जानना-एकरूप जानना योग्य है, किन्तु वैसा विवेक अज्ञानी नहीं करता और उनमें द्वैतपना मानकर इष्ट-अनिष्टपना करता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पदार्थों में ज्ञेयरूप एक ही प्रकार है; उनमें यह अच्छा और यह बुरा - ऐसा द्वैत नहीं होनेपर भी वहाँ मोहीजीव अच्छे-बुरेरूप द्वैत खड़े करता है। यह अनुकूल लगता है और यह ठीक नहीं लगता-यही मिथ्याभाव है। भगवान भी ज्ञान के ज्ञेय हैं। मित्र ठीक हैं और दुश्मन ठीक नहीं हैं - ऐसा विभाग करनेवाला अद्वैत स्वभाव को छोड़कर राग-द्वेष करता है। स्वभाव अच्छा है और विकार अनिष्ट है - ऐसा न मानकर पर में इष्ट-अनिष्टपना मानता है।

रोग, निर्धनता, बांझपना आदि को प्रतिकूल और स्त्री-पुत्र, धनवानपने को अनुकूल मानता है इसप्रकार वह एक प्रकार के ज्ञेयों में द्वैत खड़ा करता है। वास्तव में तो जाननेवाला तो मात्र जानता ही है। जानना एक रूप है। आत्मा स्व-पर ज्ञायक प्रमाण स्वरूप है और पदार्थ प्रमेय स्वरूप है - ऐसा नहीं मानता और यह मानता है कि पुत्र हो तो वह मेरा पालन-पोषण करेगा, पैसा हो तो ठीक हो, इसप्रकार द्वैत प्रवर्तित करता है। मनोज्ञ और अमनोज्ञ - ऐसी मान्यता करके विषयों में राग-द्वेष को प्राप्त होता है।

ज्ञेयों में विभाग करता हुआ और ज्ञाता स्वभाव को तोड़ता हुआ मिथ्यात्व भाव से अज्ञानी अत्यन्त क्षोभ को प्राप्त होता है। जैसे पानी का प्रवाह पुल के दो टुकड़े करता है अथवा पुल को तोड़ डालता है; वैसे ही अज्ञानी - यह शरीर मिला तो ठीक हुआ, अच्छी वाणी मिली तो ठीक हुआ, इसप्रकार दो भाग करता है। जैसे ज्ञानस्वभाव में इष्ट-अनिष्टपना नहीं है वैसे ही ज्ञेय में भी इष्ट-अनिष्टपना नहीं है फिर भी वह एकरूप ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव में दो टुकड़े कर डालता है।

आत्मा जाननेवाला (जाननहार) है। उसमें यह ज्ञेय ठीक है और यह ठीक नहीं - ऐसा किसी का भी स्वभाव नहीं है। ज्ञेयों में इष्ट-अनिष्टता नहीं है फिर भी एक प्रकार के ज्ञाता स्वभाव का विरोध करके ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव को तोड़ डालता है। यदि ऐसी दवा किया होता तो पुत्र बच जाता। इसप्रकार ज्ञेय में फेरफार करना चाहता है। ज्ञेय में दो विभाग करते ही ज्ञान के दो विभाग पाड़कर राग-द्वेष रूप प्रवर्तता है। एकरूप ज्ञानस्वभाव को तोड़ डालता है।

ज्ञान आत्मा का जीवन है किन्तु वह राग की भावना करनेवाला और राग को दूर करनेवाला नहीं है। किसी पर-वस्तु को लानेवाला भी नहीं है। फिर भी इष्ट-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनिष्ट की भेद-बुद्धि के द्वारा एक स्वरूप चैतन्य को तोड़ डालता है। जो संयोग आनेवाले होंगे वे आएंगे फिर भी उनमें इष्ट-अनिष्ट बुद्धि करता है। 'ज्ञ' पने ज्ञाता रहना इसका स्वभाव है किन्तु राग-द्वेष करना स्वभाव नहीं है।

पुण्य-पाप के विकल्प भी ज्ञेय हैं फिर भी पुण्य अच्छा है और पाप बुरा-इसप्रकार द्वैत की कल्पना करके, ज्ञानस्वभाव को तोड़ डालता है। जैसे बाढ़ का पानी पुल को तोड़ डालता है; वैसे ही विरुद्ध भाव द्वारा अज्ञानी ज्ञाता स्वभाव को तोड़ डालता है। आत्मा जाननेवाला है। जगत की वस्तुएं जानने योग्य हैं।

निर्धनता, धनवानपना, पुत्रवाला होना अथवा बांझपना मात्र जानने योग्य है, उनमें इष्ट-अनष्टिपना नहीं है, फिर भी यह मुझे इष्ट है और यह मुझे अनिष्ट है इसप्रकार भेद की कल्पना करता है, जबकि वस्तु में इष्ट-अनिष्टता नहीं है। परवस्तु से अपना भला-बुरा नहीं हो सकता फिर भी ऐसा मानता है, इसलिये वह मिथ्यादृष्टि है। राग-द्वेष-मोह ही दुःख का मूल है।

सम्यक्‌दृष्टि पर वस्तुओं में इष्ट-अनिष्टता मानता ही नहीं किन्तु अपनी वर्तमान (पर्यायकी) कमजोरी के कारण जरा मचक खाता (राग आ जाता) है। वह पर के कारण राग-द्वेष का होना नहीं मानता। ज्ञेय जानने लायक हैं-एकजाति के हैं फिर भी अज्ञानी उनमें दो भाग करता है। यह अनुकूल है और यह प्रतिकूल है - ऐसा कहता है; इसप्रकार ज्ञेयों में दो भाग करता हुआ ज्ञाता को तोड़ता हुआ मिथ्यात्व भाव से अत्यन्त क्षोभ को प्राप्त होता है। इसप्रकार वह ज्ञेयों में विभाग करके अनुकूल पदार्थ के प्रति राग और प्रतिकूल पदार्थ के प्रति द्वेष करता है।

इसमें मोह-राग-द्वेष इन भेदों के कारण, मोह तीन प्रकार का है। जानने योग्य पदार्थों में दो भाग करे वह मोह है। अपने स्वभाव को भूलता है और राग-द्वेष करता है। यहाँ जिसे द्रव्य-गुण-पर्याय की स्वतंत्रता का ज्ञान नहीं है और जो ज्ञेयों को एक रूप ज्ञेयपने नहीं देखता - ऐसा अज्ञानी जीव द्वैत दृष्टि द्वारा उसमें विभाग करता है।

शरीर अच्छा (स्वस्थ) हो तो धर्म होगा, शरीर अस्वस्थ हो तो तप नहीं होता, इसप्रकार उनमें भाग करता है। आत्मा का जीवन ज्ञान है, फिर भी पर वस्तु में इष्ट-अनिष्ट की कल्पना करना अपनी हिंसा करने का भाव है। दूसरे जीवों को स्वयं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं मार सकता, फिर भी मैं दूसरे जीवों को मार सकता हूँ अथवा जीवित रख सकता हूँ; इसप्रकार ज्ञेयों में दो भाग करता है, किन्तु उनकी आयु हो तो वे जीवित रहते हैं और यदि आयु न हो तो मरते हैं - ऐसा नहीं मानकर मेरी दयाभाव के कारण वे जीव बचे हैं अथवा हिंसा के भाव से मरे हैं - ऐसा मानना वह ज्ञानस्वभाव की हिंसा है। अशुभराग व शुभराग दोनो में ही-ज्ञानस्वभाव की हिंसा है। ज्ञानियों को निचली दशा में कमजोरी से शुभराग आ जाता है किन्तु वे उसे हिंसा जानते हैं।

''पर में चाहे जैसा परिणमन होता हो - वह मेरे अस्तित्त्व के कारण नहीं हुआ है अपितु स्वयं उनके अपने अस्तित्व के कारण से उनका परिणमन होता है। मैं जानने-देखनेवाला हूँ''इसप्रकार एकरूप जानने-देखने में अहिंसा है और ऐसी अहिंसा परम धर्म है। लोग तो दूसरे की सेवा करने में धर्म मानते हैं, किन्तु जब तू तेरे शरीर की रोग अवस्था को भी नहीं मिटा सकता तो फिर पर का कार्य कैसे कर सकता है ?

टी. बी. होनेपर तुरंत ही डॉक्टर के पास गया था इसलिये वह तुरंत ही मिट गई - ऐसा अज्ञानी मानता है जबकि शरीर में व्याधि अथवा दुःख नहीं किन्तु शरीर में अपनेपने की मिथ्यामान्यता है, वह दुःख है। आत्मा नित्यानन्द है। शरीर की व्याधि उतनी ही स्थिति की थी, उसके जाने का समय आनेपर वह चली जायगी, किन्तु आत्मा तो त्रिकाल है जो जड़ की अवस्था को नहीं बदल सकता फिर उनको बदलने की बुद्धि करे तो यह मिथ्याभाव ही है।

आत्मा ज्ञान स्वरूप है, उसे छोड़कर राग को लाना एकत्व बुद्धि है। मैं ज्ञाता हूँ जानने-देखनेवाला हूँ, इसकी स्वीकारता में विकार ज्ञेय है। सभी पदार्थ ज्ञेय है, किन्तु कोई भी अनुकूल-प्रतिकूल नहीं है। मैं ज्ञान का दरिया, जानने-देखनेवाला हूँ। आँख की पलक झपकती है वह आत्मा की क्रिया नहीं है - ऐसा अज्ञानी नहीं मानता अर्थात् वह ज्ञान को, ज्ञानरूप नहीं मानता, ज्ञेयों को ज्ञेयरूप नहीं रखता और उनके दो खण्ड करता है वह त्यागी जैसा दिखाई देने पर भी वह स्वधर्म के त्यागरूप मिथ्यात्वभाव को ही करता है।

स्वयं, समता रस से भरा हुआ वृहद (बड़ा) जीव राजा है - ऐसा तो नहीं मानता और सर्प को बड़ा जीव मानता है। आत्मा ज्ञाता-दृष्टा स्वभावी है वह अमृत

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

का पिंड बड़ा (महान) जीव है किन्तु लोग सर्प को बड़ा जीव कहते हैं क्योंकि उससे डरते हैं। आत्मा बड़ा जीव है, अमृत पिंड है - ऐसा नहीं मानने पर विपरीत मान्यता में चला जाता है और सर्प को बड़ा जीव कहता है। यदि वह बड़ा जीव हो तो वह पूजने योग्य हुआ।

नाग के चित्र को पूजता है किन्तु नाग निकले तो वहाँ डरता है। यदि वह बड़ा जीव हो तो उसकी पूजा करना चाहिए। जहर की महिमा आई है; मुझे काट देगा तो ? स्वयं परम आत्मा बड़ा जीव है किन्तु पुण्य-पाप, राग-द्वेष मेरा स्वरूप नहीं है - ऐसे बड़े जीव को ग्रहण नहीं करता और सर्प को पकड़ता है। दीवाल के ऊपर सर्प का चित्र बनाकर पूजा करता है।

जैसे प्रतिमा को पूजनेवाले को साक्षात् भगवान को पूजने का भाव आता ही है, वैसे ही सर्प की स्थापना करके पूजता है तो जब सर्प साक्षात् आए तब भी उसे पूजना चाहिए ? आत्मा जानने देखनेवाला है; मैं बड़ा जीव हूँ - ऐसा नहीं मानता और सर्प को बड़ा जीव मानकर विपरीत मान्यता में चला जाता है।

स्वयं समतारस का दरिया है उसकी तो रुचि नहीं करता और पर की रुचि करता है, यही मिथ्याभाव है। अहो ! तू भगवान चैतन्य है - ऐसे अपनी ज्ञान की एकता नहीं करने पर, पर में एकता करेगा और राग में रुकेगा तो यही संसार का बीज है। आत्मा जीवन्त भगवान है, किन्तु ज्ञेयों में विभाग करके चैतन्य का पुल तोड़ डाला है।

'चाहे जैसे संयोग हों वे संयोग ज्ञान में कहाँ प्रविष्ट हुए हैं? वे संयोग नहीं कहते कि मेरे से राग-द्वेष कर ? ज्ञानस्वभाव को भूलकर स्वयं मोह-राग-द्वेष करता है।'

जानने योग्य पदार्थों की इष्ट-अनिष्टपने की मान्यता मोह है। अनुकूल-प्रतिकूल पदार्थों में राग-द्वेष करना इसतरह तीन प्रकार के मोह को अनिष्ट कार्य का कारण कहकर उनके क्षय करने के उपाय को सूत्र द्वारा कहते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचनसार गाथा ८४

अथानिष्टकार्यकारणत्वमभिधाय त्रिभूमिकस्यापि मोहस्य क्षयमासूत्रयति-

मोहेण व रागेण व दोसेण व परिणदस्स जीवस्स।
जायदि विविहो बन्धो तम्हा बंधो ते संखवइदव्वा ।।८४।।

अब, तीनों प्रकार के मोह को अनिष्ट कार्य का कारण कहकर उसका (-तीन प्रकार के मोह का) क्षय करने को सूत्र द्वारा कहते हैं :-

हैं मोह राग व द्वेष परिणत जीव के बन्धन विविध।
इससे सभी वे नष्ट करने योग्य जानो सर्वविध ।।८४।।

अन्वयार्थ :- **(मोहेन वा)** मोहरूप **(रागेण वा)** रागरूप **(द्वेषेण वा)** अथवा द्वेषरूप **(परिणतस्य जीवस्य)** परिणमित जीव के **(विविधः बन्धः)** विविध बंध **(जायते)** होता है; **(तस्मात्)** इसलिए **(ते)** वे (मोह-राग-द्वेष) **(संक्षपयितव्याः)** सम्पूर्णतया क्षय करने योग्य है।

टीका :- इसप्रकार तत्त्व-अप्रतिपत्ति (-वस्तुस्वरूप के अज्ञान) से रुके हुए, मोहरूप-रागरूप या द्वेषरूप परिणमित होते हुए इस जीव को - घास के ढेर से ढँके हुए खड्डे को प्राप्त होनेवाले हाथी की भाँति, हथिनीरूपी कुट्टनी के शरीर में आसक्त हाथी की भाँति और विरोधी हाथी को देखकर, उत्तेजित होकर (उसकी ओर) दौड़ते हुए हाथी की भाँति-विविध प्रकार का बन्ध होता है; इसलिये मुमुक्षु जीव को अनिष्ट कार्य करनेवाले इस मोह, राग और द्वेष का यथावत् निर्मूल नाश हो इसप्रकार क्षय करना चाहिये।

भावार्थ :- (१) हाथी को पकड़ने के लिये धरती में खड्डा बनाकर उसे घास से ढक दिया जाता है, वहाँ खड्डा होने के अज्ञान के कारण उस खड्डेपर जानेसे हाथी गिर पड़ता है; और वह इसप्रकार पकड़ा जाता है।

(२) हाथी को पकड़ने के लिए सिखाई हुई हथिनी भेजी जाती है; उसके शारीरिक राग में फँसने से हाथी पकड़ा जाता है।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(३) हाथी पकड़ने की तीसरी रीति यह है कि उस हाथी के सामने दूसरा पालित हाथी भेजा जाता है; उसके पीछे वह हाथी उत्तेजित होकर लड़ने के लिये दौड़ता है और इसप्रकार वह पकड़नेवालों के जाल में फँस जाता है।

उपर्युक्त प्रकार से जैसे हाथी (१) अज्ञान से, (२) राग से या (३) द्वेष से अनेक प्रकार के बन्धन को प्राप्त होता है उसीप्रकार जीव (१) मोह से, (२) राग से या (३) द्वेष से अनेक प्रकार के बन्धन को प्राप्त होता है, इसलिये मोक्षार्थी को मोह-राग-द्वेष का भलीभाँति-सम्पूर्णतया मूल से ही क्षय कर देना चाहिये ॥८४॥

ॐ ॐ ॐ

गाथा ८४ पर प्रवचन

मोहरूप-रागरूप अथवा द्वेषरूप परिणमित होते हुए जीव को अनेक प्रकार की संसार की उत्पत्ति होती है, इसलिये उनको मोह-राग-द्वेष का सम्पूर्णरूप से क्षय करना योग्य है।

क्या पंचम काल में मोह-राग-द्वेष का क्षय किया जा सकता है ?

भाई ! क्षय करने की तैयारीवाला है इसलिए क्षय करने के लिए कहते हैं, वह पुरुषार्थ बताते हैं। मात्र तत्त्व के स्वरूप की अज्ञानता से (जैसा तत्त्व है वैसा उसका ज्ञान नहीं है इसलिये) अज्ञानी की ज्ञान पर्याय ढक गई है।

आत्मा ज्ञानतत्त्व है-जाननस्वरूप है। शुभाशुभभाव आश्रव और बंध तत्त्व हैं। शरीर, मन, वाणी अजीव हैं, एक अपने सिवाय अन्य सभी जीव पृथक हैं फिर भी उनको अपना मानकर ज्ञान ढक गया है। जैसे फूल की कली संकुचित हुई है वैसे ही ज्ञान ढक गया है। सर्वज्ञपद खिलना चाहिए उसके बदले यह मुझे इष्ट-अनिष्ट हैं - ऐसा मानना वह तत्त्व की अप्राप्ति है।

अनादिकाल से ज्ञानस्वभाव की प्रतीति नहीं करता, ज्ञेयों में क्रमबद्ध परिणमन होता है उसका मैं मात्र जाननेवाला ही हूँ किन्तु उनमें फेरफार करनेवाला नहीं - ऐसा नहीं जानता इसलिए वह ज्ञाता का विरोध कर रहा है इससे जैसे कमल का फूल शाम को संकुचित हो जाता है वैसे ही इसकी ज्ञानकला संकुचित हो गई है जिससे मोहरूप, रागरूप और द्वेषरूप से परिणमित होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अज्ञानी पर में सावधान होकर मोह के गड्ढे में गिरता है। हाथी को पकड़ने के लिए, बड़ा गड्ढा करके ऊपर से घास द्वारा ढंक दिया जाता है और उसके ऊपर हथिनी का आकार बनाकर रख दिया जाता है, जब हाथी हथिनी का संग करने जाता है तब वहाँ हाथी गड्ढे में गिरकर फंस जाता है; वैसे ही आत्मा ज्ञाता-दृष्टा है - ऐसा वह नहीं मानता और ये ज्ञेय मेरी मदद करेंगे अथवा मुझे हैरान करेंगे - ऐसी मान्यता से स्वयं ही मिथ्यात्व के गड्ढे में गिरता है। भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप है उसकी रुचि छोड़कर पर में जाता है। हाथी, हथिनी का स्पर्श करने जाए तो वहाँ गड्ढे में गिरता है।

पांच लाख रुपये हों तो वृद्धावस्था में सुख से रहूंगा। वृद्धावस्था जड़ की दशा है, हड्डी की नरमदशा वह वृद्धावस्था है उसमें आत्मा नहीं है। जहाँ सभी अवयव (अंग) खिले हुए हों वह युवावस्था है, उसमें अज्ञानी सुख मानता है जबकि उसमें सुख नहीं है। जिस शरीर को अच्छा मानता है वहाँ इल्लियाँ पड़ेंगी। ये सभी (वस्तुएँ) पर हैं - तेरे आधीन नहीं हैं, फिर भी मिथ्याभाव करता है कि पांचों इन्द्रियां अच्छी (स्वस्थ) हो तो घर का काम चलता है, परोपकार हो, देश की सेवा हो - ऐसा अज्ञानी कहता है।

निबोली बोने से आम नहीं ऊगते, स्त्री का शरीर सुन्दर हो तो उसके बच्चे भी सुन्दर होंगे, इसके लिये स्त्री को केशर, बादाम खिलाओ, इसप्रकार अज्ञानी पर की अवस्था को जीव करता है - ऐसा मानकर ज्ञातापने का तिरस्कार करता है। पुण्य के कारण अच्छा पुत्र मिलता है, किन्तु तेरे अभिमान के कारण नहीं। बच्चे का बराबर ध्यान रखकर उसे केशर, बादाम आदि खिलाया हो तो बच्चा अच्छा होता है; इसप्रकार सभी को पराधीनरूप देखता हुआ स्व-पर के अज्ञान द्वारा मिथ्यात्व के गड्ढे में फंसा पड़ा है।

अतः अब, यह श्रद्धा कर कि मैं नित्य ज्ञान हूँ। पर की अवस्था मेरे आधीन नहीं है, किसे प्रसन्न रखना है और किससे प्रसन्न होऊंगा ? जो हाथी जमीन के ऊपर था, वह हथनी के लालच में गड्ढे में गिरता है वैसे ही अज्ञानी पर में सावधान होता है और मानता है कि यदि, अच्छे (योग्य) लड़के को दुकान पर बैठाया जाए तो वह अच्छा काम करता है, किन्तु प्रत्येक वस्तु निरन्तर उसकी योग्यता से उसके काल में वर्तन (परिणमन) करनेवाली है। इसप्रकार वह अपना ज्ञाता-दृष्टापना नहीं मानता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

और ज्ञेय वस्तुएँ जैसी है वैसी नहीं मानता। इसप्रकार अज्ञानी जीव अनुकूल पदार्थ में राग और प्रतिकूल पदार्थ में द्वेष करता है।

हाथी को पकड़ने के लिये सिखाई हुई हथनी रखी जाती है, वह हथनी हाथी को अपने शारीरिक राग में फंसाकर शिकारी के पास ले जाती है। इसीतरह अनादि का अज्ञानी जीव राग करके ज्ञेयों की ओर जाता है। मेरे नाम की सारे हिन्दुस्तान में प्रसिद्धि है, मेरी दस लाख रुपये की आमदनी है, हमारी बहुत पूछ (सम्मान) है। इस तरह राग में तना हुआ अभिमान करता है।

हमारे माँ-बाप ने हमारे लिये कुछ भी नहीं छोड़ा था किन्तु हमने हमारे बाहुबल से कमाया है; इसप्रकार वह राग में ही भ्रमण करता है। पैसा अजीव है, उसका रूपान्तरण-क्षेत्रान्तरण होना आत्मा के आधीन नहीं है। जीव दान का, पुण्य का भाव करे किन्तु जीव से पैसे की क्रिया नहीं होती फिर भी राग का मारा हुआ - मैं राग को करनेवाला हूँ - ऐसा मानकर उसने अपने ज्ञाता स्वभाव को मार डालता है।

अब, द्वेष का दृष्टान्त देते हैं। जैसे विरोधी हाथी को देखते ही हाथी उत्तेजित हो जाता है, उससे वह दूसरे हाथी को मारने के लिये जाता है तब पालतू (सिखाया हुआ) हाथी पीछे हटता जाता है। पहले हाथी को पास लाकर वह उसे शिकारी के जाल में फँसवा देता है; वैसे ही हम तो खानदानी श्रीमंत सेठ हैं फिर भी उसने हमसे - ऐसा कहा ? इसप्रकार मान आदि द्वारा अभिमान करता है। यदि कोई उसे अपमान जनक नाम से बुलावे तो वहाँ उत्तेजित हो जाता है जबकि शब्द तो मात्र ज्ञेय हैं, उसमें उत्तेजित होना योग्य नहीं है। जैसे विरोधी हाथी को देखने पर हाथी उत्तेजित हो जाता है और शिकारी के जाल में बन्ध जाता है, वैसे ही अज्ञानी द्वेष द्वारा बन्धने का उपाय करता है और उसमें ठीक मानता है।

ज्ञानस्वभाव के आश्रय से मोह-राग-द्वेष का क्षय करना है। इसलिये ज्ञानी की नजर से देखो, ज्ञाता प्रभु को देखो। अनिष्ट कार्य करनेवाले मोह-राग-द्वेष का निश्चित ही नाश होगा। इस तरह क्षय करना योग्य है। यदि किसी नीम के झाड़ को निकालना हो तो उसके मूल को उखाड़ देना चाहिये।

परवस्तु इष्ट-अनिष्ट मानने के मूल को गहरे में गाड़ दिया है; उसका ज्ञानस्वभाव के द्वारा नाश करना चाहिए। ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव की प्रतीति ज्ञान और

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रमणता ही एक मात्र मोह-राग-द्वेष के नाश का उपाय है किन्तु संयोगों को छोड़ना कोई उपाय नहीं है।

बाह्य जंगल में चले जाने से शान्ति नहीं मिलती क्योंकि विपरीतता बाहर से नहीं अपितु तेरी पर्याय में है, जो ज्ञानस्वभाव के आश्रय से ही नाश को प्राप्त होती है। मैं ज्ञान हूँ - ऐसा मान, किन्तु शुभ व्यवहार ठीक है और अशुभ ठीक नहीं - ऐसे विभाग न कर। ज्ञान की ओर देखना यही शान्ति का उपाय है, अन्य कोई उपाय नहीं है।

भावार्थ पर प्रवचन :- १. हाथी को पकड़ने के लिए घास से ढका हुआ गड्ढा बनाया जाता है। हाथी वहाँ गड्ढा होने की अज्ञानता के कारण उस गड्ढे के ऊपर जाते ही उसमें गिर जाता है और इसतरह वह पकड़ लिया जाता है। गड्ढे के ऊपर पत्ते रखे होते हैं उसके ऊपर कोई चले तो वह गड्ढे में गिर जाता है। यदि तू अन्य वस्तुओं को अनुकूल-प्रतिकूल करने जायेगा तो मिथ्यात्व के गड्ढे में गिर जायगा पर पदार्थ तेरे रखने से वे रहेंगे नहीं और पर को प्रसन्न नहीं रख सकता इसलिए तू (स्वयं) ज्ञान है - ऐसा निर्णय कर।

यह अधिकार ज्ञान का है। ज्ञानस्वभावी आत्मा ज्ञान में रहकर जानने का काम करे वह धर्म है; इससे विपरीत अज्ञानी ज्ञेय की सावधानी में स्वयं को भूलकर पर में इष्ट-अनिष्ट के विभाग करता है। सभी पदार्थ एकरूप जानने योग्य हैं फिर भी उनमें भेद करके पर को अपना मानता हुआ मोह-राग-द्वेष करता है। हाथी को पकड़ने के लिए जिसके ऊपर घास बिछी हो - ऐसा गहरा गड्ढा बनाया जाता है और वहाँ हाथी गड्ढे होने के अज्ञान के कारण उस गड्ढे के ऊपर जाते ही उसमें गिर जाता है इस विधि से वह पकड़ लिया जाता है।

२. तथा हाथी को पकड़ने के लिए सिखाई हुई पालतू हथनी को छोड़ा जाता है। उसकी देह के प्रति के राग में फँसता हुआ हाथी पकड़ लिया जाता है।

३. हाथी को पकड़ने की तीसरी विधि यह है कि उस हाथी के सामने पाला हुआ दूसरा हाथी छोड़ा जाता है और पहला हाथी, इस सिखाकर छोड़ेगए हाथी के सामने लड़ने के लिए उसके पीछे दौड़ता हुआ शिकारी के जाल में फँस जाता है और पकड़ लिया जाता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यहाँ ये तीन दृष्टांत दिये -

१. अज्ञान के लिये खाली गढ्ढे का,

२. राग के लिये हथनी का और

३. द्वेष के लिये सिखाए हुए हाथी का दृष्टांत दिया।

जिसप्रकार हाथी अज्ञान से, राग से और द्वेष से अनेक प्रकार के बन्धनों को प्राप्त होता है; वैसे ही जैसा चैतन्य स्वरूप है वैसा नहीं मानते हुए, पुण्य से लाभ होता है, बाह्य संयोग मुझे ठीक रहे, मैं दूसरे को अनुकूल होऊं- ऐसा मिथ्याभाव अज्ञानी करता है। अपने ज्ञानस्वभाव को भूलकर पर को अनुकूल होना चाहता है; इसप्रकार वह मिथ्याभाव में रुकता हुआ संसार की वृद्धि करता है।

आत्मा ज्ञानस्वरूप है उसकी दृष्टि होनेपर भी सम्यक् दृष्टि संसार के काम में दिखता है, ऐसा भी कहता है कि यह पदार्थ इष्ट है और यह पदार्थ अनिष्ट है किन्तु उसके अन्दर अभिप्राय में इष्ट-अनिष्टपना नहीं होता। मेरा स्वभाव एकरूप चैतन्य है मेरे लिए कोई मित्र बने - ऐसा कोई दूसरा पदार्थ नहीं है अथवा मेरे लिए दुश्मन हो - ऐसा कोई दूसरा पदार्थ नहीं है और मैं भी दूसरे के लिए मित्र अथवा दुश्मन बनूँ - ऐसा नहीं है; इसप्रकार ज्ञानी मानता है, जबकि अज्ञानी परपदार्थों में अनुकूल-प्रतिकूल मानता है।

इसतरह अबंध स्वभावी आत्मा ही वर्तमान भूलरूप पर्याय द्वारा मोहभाव के कारण बंध को प्राप्त होता है। इसलिए मोक्ष के इच्छुक जीवों को पर के प्रति सावधानीरूप तथा अनुकूलता के प्रति राग और प्रतिकूलता में द्वेष को मूल में से नाश कर देना चाहिये।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचनसार गाथा ८५

अथामी अमीभिर्लिङ्गैरुपलभ्योद्भवन्त एव निशुम्भनीया इति विभावयति-

अट्ठे अजधागहणं करुणाभावो य तिरियमणुएसु।
विसएसु य प्पसंगो मोहस्सेदाणि लिंगाणि ॥८५॥

अब, इस मोह-राग-द्वेष को इन (आगामी गाथा में कहे गए) चिह्नों-लक्षणों के द्वारा पहिचान कर उत्पन्न होते ही नष्ट कर देना चाहिये - ऐसा प्रगट करते हैं :-

अयथाग्रहण हो अर्थ करुणाभाव तिर्यक मनुज में।
विषयों में हो आसक्त ये सब मोह के ही चिह्न हैं ॥८५॥

अन्वयार्थ :- (अर्थे अयथाग्रहणं) पदार्थ का अयथाग्रहण (अर्थात् पदार्थों को जैसे हैं वैसे सत्यस्वरूप न मानकर उनके विषय में अन्यथा समझ) **(च)** और **(तिर्यङ्मनुजेषु करुणाभावः)** तिर्यंच-मनुष्यों के प्रति करुणाभाव, **(विषयेषु प्रसंगः च)** तथा विषयों की संगति (इष्ट विषयों में प्रीति और अनिष्ट विषयों में अप्रीति)-**(एतानि)** यह सब **(मोहस्य लिंगानि)** मोह के चिह्न-लक्षण हैं।

टीका :- [१]पदार्थों की अयथातथ्यरूप प्रतिपत्ति के द्वारा और तिर्यंच-मनुष्य [२]प्रेक्षायोग्य होनेपर भी उनके प्रति करुणाबुद्धि से मोह को (जानकर), इष्ट विषयों की आसक्ति से राग को और अनिष्ट विषयों की अप्रीति से द्वेष को (जानकर)-इसप्रकार तीन लिंगों के द्वारा (तीन प्रकार के मोह को) पहिचानकर तत्काल ही उत्पन्न होते ही तीनों प्रकारका मोह नष्ट कर देने योग्य है।

भावार्थ :- मोह के तीन भेद हैं-दर्शनमोह, राग और द्वेष। पदार्थों के यथार्थ स्वरूप से विपरीत मान्यता तथा तिर्यंचों और मनुष्यों के प्रति तन्मयता से करुणाभाव वे दर्शनमोह के चिह्न हैं, इष्ट विषयों में प्रीति राग का चिह्न है और अनिष्ट

---

[१] पदार्थों की अयथातथ्यरूप प्रतिपत्ति = पदार्थ जैसे नहीं हैं, उन्हें वैसा समझना अर्थात् उन्हें अन्यथा स्वरूप से अंगीकार करना।

[२] प्रेक्षायोग्य = मात्र प्रेक्षकभाव से-दृष्टाज्ञातारूप से-मध्यस्थभाव से देखनेयोग्य।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विषयों में अप्रीति द्वेषका चिह्न है। इन चिह्नों से तीनों प्रकार के मोह को पहिचानकर मुमुक्षुओं को उसे तत्काल ही नष्ट कर देना चाहिये ॥८५॥

गाथा ८५ पर प्रवचन

अब, इस मोह-राग-द्वेष को लक्षणों (चिह्नों) के द्वारा पहचान कर उत्पन्न होते ही नष्ट कर देना योग्य है अर्थात् कि मोह-राग-द्वेष उत्पन्न नहीं होने देना अर्थात् स्वसन्मुख ज्ञाता रहना - ऐसा इसका अर्थ है; किन्तु मोहादि उत्पन्न हों और उसके बाद उसे नष्ट किया जाय ऐसा इसका अर्थ नहीं है। मैं स्वभाव से ज्ञान हूँ-परपदार्थ अनुकूल अथवा प्रतिकूल नहीं है और मैं पर को अनुकूल-प्रतिकूल होऊं ऐसा मैं नहीं हूँ। मेरा स्वभाव ज्ञातापने जानने का है - ऐसे भान द्वारा मोह, राग-द्वेष उत्पन्न नहीं होते। चैतन्य स्वभाव द्वारा विकार का नाश होता है।

पदार्थों की विपरीत समझ वह मोह है। पदार्थों की अयथातथ्य स्वरूप प्रतिपत्ति वह दर्शनमोह है। जीव ज्ञान स्वरूप है, विभाव विपरीत है, निमित्त पृथक हैं - ऐसा नहीं मानता और निमित्त से लाभ मानता है-विभाव को अनुकूल मानता है और स्वभाव के सामर्थ्य की खबर नहीं; इसप्रकार जिसे पदार्थों की खबर नहीं वह पदार्थों को अन्यथा अंगीकार (ग्रहण) करता है वही मिथ्याभाव है। संग्रह किया हुआ सांप भी काम आता है - ऐसा मानकर संग्रह करना यह मिथ्यादृष्टि की मान्यता है। आत्मा पर पदार्थों का संग्रह नहीं कर सकता किन्तु पुण्य-पाप दोनों ही दुःखरूप हैं फिर भी उन्हें सुखरूप मानना अथवा पुण्य को धर्म में सहायक मानना यह मोह का ईंधन है-मिथ्यात्व भाव है।

दुःखी जीव ज्ञान के ज्ञेय हैं, किन्तु अज्ञानी उसे करुणा का कारण बनाता है। तिर्यंच और मनुष्य मात्र मध्यस्थ भाव से देखने योग्य हैं फिर भी अज्ञानी जीव अज्ञान द्वारा संयोगों में एकत्व बुद्धिरूप करुणा करता है।

प्रश्न :- सम्यक्‌दृष्टि का अनुकम्पा भी एक लक्षण कहा है किन्तु यहाँ जो उसे दर्शनमोह का लक्षण कहा है इसका क्या अर्थ है ?

समाधान :- अनुकम्पा तो राग है। सम्यक्‌दृष्टि को अज्ञान रहित - ऐसा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

राग आता है, इतनी पहचान कराई है। आत्मा ज्ञान स्वरूप है-जाननेवाला है इसे छोड़कर-भूलकर ये मनुष्य और तिर्यंचादि दु:खी हैं - वे मिथ्यात्व से दु:खी हैं - ऐसा ज्ञानी मानता है। मुझे उनके कारण उनके प्रति करुणा आई है ऐसे माननेरूप करुणा वह मिथ्यात्व का लक्षण है।

ज्ञान जानता है कि ये ज्ञेय हैं किन्तु उनको जानने के बदले कोई ऐसा माने कि उनके कारण मुझे दःख होता है अथवा वह प्राणी हैरान होता है इसलिये मुझे दु:ख होता है तो वह मिथ्यादृष्टि है। मेरी कमजोरी के दोष के कारण मुझे करुणा आती है - ऐसा मानना वह अलग बात है किन्तु इस जीव के कारण मुझे करुणा आती है - ऐसा जो मानता है वह तो पर के कारण राग, द्वेष, मोह का होना मानता है इसलिये वह मिथ्यादृष्टि है।

ज्ञानी तो शुभाशुभ विकल्प का ज्ञाता ही है। मेरे में कमजोरी के दोष से करुणारूप अवस्था होती है किन्तु वह अपराध मेरे स्वभाव में नहीं है - ऐसा ज्ञानी जानता है किन्तु अज्ञानी पर को करूणा का कारण बनाते हैं जबकि सम्पूर्ण विश्व को ज्ञान का ज्ञेय बनाना चाहिये, इसके बदले उन्हें करुणा का कारण बनाता है। अपनी वर्तमान योग्यता से करुणा आए वह अलग बात है।

मैं ज्ञानस्वभावी हूँ, पर के कारण मुझे ज्ञानादिक होते ही नहीं - ऐसा जानने पर भी जबतक चारित्र में स्थिर नहीं हुआ तबतक उसकी कमजोरी के कारण करुणा आती है; किन्तु अज्ञानी पर के कारण करुणा का होना मानता है, इसलिये वह ज्ञेय को मिथ्यात्व का निमित्त बनाता है।

यदि करुणा पर के कारण होती हो तो राग रहित अबंधदशा प्रगट करने का कभी अवसर ही नहीं आएगा। पराधीनता की दृष्टि होने से अज्ञानी विभाव की विपरीतता, ज्ञानस्वभाव की सामर्थ्यता और पर पदार्थों की पृथकता को नहीं मानता इसलिये वह संयोग से राग-द्वेष-मोह की उत्पत्ति मानता है। अज्ञानी को दर्शनमोहरूप करुणा होती है। मेरी करुणा का आधार दुःखी प्राणी हैं - ऐसी मान्यता मिथ्याभाव है।

तथा सामनेवाला जीव जो दुःखी दिखाई दे रहा है वह किसी संयोग के कारण सुखी-दु:खी नहीं है, अपितु स्वयं उसे जो देह में ममता है उस ममता के

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कारण वह संयोगों से सुख-दुःख मानता है; इसलिये वह दुःखी है। ज्ञानी को भी पर के कारण करुणा का भाव नहीं आता अपितु जब वह अपने में स्थिर नहीं रह सकता तब अपनी कमजोरी के कारण करुणा आती है। यदि पर के कारण करुणा होती हो तो जगत में सदा ही दुःखी जीव हैं और रहेंगे तो फिर ज्ञानी कभी भी करुणा के राग रहित नहीं हो सकेंगे।

लोग करुणा को धर्म कहते हैं किन्तु उनकी मान्यता में सत्य से बहुत फेर (अन्तर) है। यदि अपनी अवस्था में करुणा पर के कारण आती हो तो, दुःखी जीव तो तीनों ही काल रहेंगे जिससे तीनों ही काल पुण्य का राग आता रहेगा और उनसे पुण्य का बन्धन भी होता रहेगा, जिससे अबन्ध होने का कभी अवसर ही नहीं आएगा।

अज्ञानियों को भी संयोग का दुःख नहीं है अपितु वे अपने आनन्द स्वभाव को भूल गए हैं इसलिये दुःखी हैं। ऐसा स्वरूप होने पर भी यह मानना कि - सामनेवाला जीव, संयोग के कारण दुःखी है वह मिथ्याभाव ही है। अर्थात् किसी को खाने को नहीं मिलता, निर्धनता है इसीलिये दुःखी है - ऐसा नहीं है अपितु आनन्द स्वभाव को भूलकर, संयोगों के कारण मैं दुःखी हूँ - ऐसा मानता है जो उसका भ्रम है, इसी भ्रम के कारण वह दुःखी है; इस भ्रमरूपी भूल को अज्ञानता से स्वयं ने किया है उसे स्वयं ज्ञान द्वारा दूर करे तो सुखी हो जाय।

प्रश्नः- छहकाय के जीवों की दया पालना तो सबसे बड़ा धर्म है न ?

समाधानः- भाई ! परजीव तो नित्य चैतन्यपने से जीवंत रहनेवाला-ध्रुव रहनेवाला है इसलिये स्वतंत्र है। पर की दया तो पाली नहीं जा सकती। परपदार्थ की रक्षा अर्थात् उनका बना रहना और व्यय होना अर्थात् उनकी अवस्था का बदलना वह तो उन्हीं के कारण होता है। दूसरा जीव उसकी रक्षा कर सकता है अथवा नाश कर सकता है - ऐसा मानना मिथ्याभाव है। इसप्रकार करुणा का बोल (भाव) पदार्थ की विपरीत समझ में गर्भित हो जाता है फिर भी उसे अलग से गाथा द्वारा बताकर-स्पष्ट करते हैं।

त्रिकालवेत्ता सर्वज्ञ भगवान जगत के दुःखों को देखते हैं किन्तु उन्हें कंम्पन (भय) नहीं होता क्योंकि वे जानते हैं कि - तेरा स्वभाव जो ज्ञान है उसे भूलकर तूने

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ही मिथ्या कल्पना की है। सामनेवाले प्राणी को आहार-पानी नहीं मिला, शरीर के ऊपर घाव लगा तो क्या इससे वह दुःखी है ? नहीं। इससे वह दुःखी नहीं है। तू बन्ध और बन्ध के कारण को नहीं समझता। जो दुःख है वह आत्मा के सुख गुण की विपरीत अवस्था है। संयोग के कारण किसी को दुःखी मानना और करुणा मानना यह तो मिथ्यात्व है।

असंयोगी आनन्द स्वरूप का लक्ष्य नहीं करता और संयोग का लक्ष्य करता है, इसलिये जीव अज्ञान के कारण दुःखी है। कोई भी प्रतिकूल संयोग के कारण दुःखी नहीं है। प्रतिकूलता के कारण दुःख है - ऐसा माननेवाला परकी पर्याय और अपनी आश्रव पर्याय भिन्न-भिन्न हैं - ऐसा नहीं मानता। शुभाशुभ आश्रव और उसका कारण क्या है इसका उसे भान नहीं है।

प्रत्येक आत्माएं ज्ञान और आनन्द स्वरूप हैं, इसलिये वे आत्माएं भी ऐसे ही हैं; किन्तु वे दुःखी इसलिये हैं कि वे ज्ञान का आश्रय नहीं करते किन्तु निमित्त का आश्रय करते हैं। जबकि अज्ञानी मानता है कि - वह संयोग के कारण दुःखी हैं और उनको देखकर उनके कारण मैं दुःखी हुआ तो उसने अजीव से आश्रव का होना माना, इसलिये उसे मिथ्यात्व सहित करुणा है। वह तो दुःख को भी नहीं समझता।

करुणा का आधार सामनेवाला जीव है - ऐसा वह मानता है। पर जीव तो सदैव है; तो सदैव करुणा हुआ करेग, इसलिये दुःख की लगार से भी रहित ज्ञानमात्र आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान करने का कभी भी अवसर नहीं रहेगा। रागदशा में करुणा का भाव आता है किन्तु उसकी परीक्षा तो करना चाहिए ? ज्ञानी को भी दया का भाव आता है किन्तु वह पर के कारण नहीं आता। इसमें बहुत अन्तर है। अज्ञानी पर के कारण दया मानता है।

देव दुःखी नहीं दिखते और नारकी सामने दिखाई नहीं देते इसलिये यहाँ मनुष्य और तिर्यन्च को लिया है। जबकि वे भी ज्ञान स्वरूप ही हैं-आत्मा हैं। वे देह स्वरूप नहीं है इसलिये वे संयोग के कारण दुःखी नहीं है। ज्ञानस्वभाव के कारण दुःखी नहीं किन्तु ज्ञानस्वभाव को भूलकर निमित्त का आश्रय लेते हैं इसलिये वे दुःखी हैं। अज्ञानी निमित्त के कारण अपने को सुखी-दुःखी मानता है यही मिथ्याभाव है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

'निःशल्यो व्रती' - ऐसा सूत्र है। मिथ्यात्व, माया और निदान इन तीनों शल्यों के जाने के बाद व्रत होता है। अभी जिसे शल्य की खबर नहीं उसे शल्य कहाँ से दूर होगी। यहाँ मिथ्यात्व शल्य की बात चलती है-विपरीत मान्यता की बात चलती है। जगत की शैली ऐसी है कि (वह कहता है कि) हमें दूसरे की दया करना चाहिए, इसे कर्तव्य मानकर चलता है इसलिये यहाँ उसकी मिथ्या मान्यता को स्पष्ट करते हैं। ज्ञानस्वभाव को भूल गया है इसलिये वह दुःखी है। जिसने संयोग के कारण अपने को दुःखी माना है उसने जीव, आश्रव और अजीव को भिन्न नहीं माना।

दूसरे के साथ अनुकूलता की इच्छा रखनेवाला बड़ा भिखारी है। कोई कहता है कि हमें इस पृथ्वी पर स्वर्ग उतारना है - ऐसा सुनकर परावलम्बी दृष्टिवाला खुश हो जाता है। क्या स्त्री-पुत्र अथवा शरीर में सुख है ? नहीं। उनसे सुख की इच्छा रखनेवाला तो भिखारी है। क्या किसी के आशीर्वाद से क्षय रोग मिट जाएगा, स्त्री मिल जाएगी, पैसा हो जाएगा ? इन्हें मांगनेवाला तो बहुत बड़ा भिखारी है।

स्वयं दूसरों से दया की भीख मांगता है। मैं दूसरे की दया करूं तो वे सुखी हो जाएंगे - ऐसा वह मानता है। अनुकूल स्त्री-पुत्र हो तो सुख की श्वांस ली जाय - ऐसा मानता है। यह अनन्तों परपदार्थों का भिखारी है इसलिये पर को कुछ दे तो वह सुखी होगा - ऐसा वह मानता है। इसतरह वह सभी पर पदार्थें को पराधीन मानता है जबकि पर वस्तु कभी किसी से कुछ भी लेती अथवा देती ही नहीं है।

श्वेताम्बर में एक तेरह पंथी स्थानकवासी मत है, वे उनके माने हुए साधुओं के सिवाय अन्य किसी को आहार-पानी के देने के भाव को पाप कहते हैं सो ऐसी यह बात नहीं है जबकि वह पाप नहीं अपितु पुण्य भाव है। परप्राणी के प्रति करुणा बुद्धि से दान देने का भाव पुण्य है, इसके बदले उसे पाप मनावे वह तो पुण्य तत्त्व की भी स्थूल विपरीत श्रद्धा है। असंयमी को आहार देने का भाव कराना वह पाप है - ऐसा वे कहते हैं किन्तु ऐसा नहीं है। सामने चाहे कोई प्राणी हो यदि उसे आहार-पानी देने का कषाय मंदता का भाव है तो वह पुण्य है।

स्वयं की कमजोरी से करुणा आई है - ऐसा ज्ञानी मानते हैं किन्तु अज्ञानी पर के कारण करुणा हुई है - ऐसा मानते हैं। ज्ञानी को भी दुःखी जीवों को देखकर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

करुणा का भाव आता है, किन्तु वे ऐसा जानते हैं कि वे जीव अपने ज्ञानस्वभाव को भूल गए हैं इसलिये दुःखी हैं। वे दुःखी है इसलिये मुझे करुणा आई है - ऐसा ज्ञानी नहीं मानते। दूसरे जीवों का स्वरूप भी ज्ञान ही है। अज्ञानी ज्ञान को भूलकर, पर को अनुकूल-प्रतिकूल मानकर, अनुकूलता में सुख की और प्रतिकूलता में दुःख की कल्पना करता है। मैं धनवान, मैं निर्धन - ऐसी मिथ्या कल्पना करना दुःख है, किन्तु शरीर आदि दुःख के कारण नहीं है, क्योंकि वह जड़ की अवस्था है - ऐसा वह नहीं मानता।

शरीर की अवस्था मेरी है, मुझे यह होता है - ऐसी मिथ्या मान्यता ही दुःख का कारण है। शरीर में सुई चुभाया इसलिये दुःख हुआ - ऐसी मान्यता मूर्ख की है। ज्ञानी जानता है कि मैं शरीर से रहित हूँ मेरा तो मात्र जानने का काम है; उसके कारण दुःख नहीं हुआ है अपितु मेरी सहनशीलता कम है उसी से दुःख होता है किन्तु शरीर की कम्पनरूप अवस्था के कारण दुःख नहीं है - ऐसा ज्ञानी, ज्ञाता रहकर जानता है।

जगत विपरीत क्यों मानता है और सर्वज्ञ के मार्ग में सत्य कैसा है उसका ज्ञान किये बिना सच्ची भक्ति नहीं होती। भगवान के कारण भगवान के प्रति भक्ति का राग माने वह मूढ़ है। दुःखियों के प्रति, उनके दुःख के कारण मुझे अनुकम्पा आती है, यह मिथ्यात्व भाव है। भगवान त्रिकाल हैं यदि उनके कारण भक्ति का राग आता हो तो सदैव राग आए ? फिर राग रहित होने का अवसर कभी न आए। इसलिये भगवान के कारण राग नहीं आता किन्तु अपनी कमजोरी से शुभराग आता है, ज्ञानी उसका ज्ञाता रहता है।

ज्ञानियों को मिथ्यात्व भावरूप करुणा नहीं होती है। अज्ञानी पर तत्त्व को राग का आधार बनाता है और मानता है कि यह मेरी करुणा का कारण है। यदि निमित्त के कारण करुणा हो तो सभी को करुणा आना चाहिए। एक बार अमेरिका का राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन घोड़ा गाड़ी में जा रहा था। तभी गड्ढे के पानी में पड़े हुए सुअर को देखा और घोड़ा गाड़ी में से तुरन्त उतरकर पहिने हुए कपड़े से कीचड़ भरे पानी में पड़े सुअर को निकाला, तब घोड़ा गाड़ीवाले ने कहा कि साहब मुझे कहना था, मैं उसे निकाल देता। राष्ट्रपति ने जवाब दिया कि भाई मैं सुअर के लिए नीचे नहीं गया बल्कि मेरे भावों में यह सहन नहीं हुआ इसलिये मेरे समाधान के लिये मैंने

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसे निकाला है। यदि तुझे उसे निकालने का भाव आया होता तो तू तुरंत उसे निकालने चला जाता। यदि सुअर के कारण भाव हो तो घोड़ा गाड़ीवाले को भी सुअर को बचाने का भाव क्यों नहीं आया ?

अज्ञानी जीव को जो दुःख है वह उसके आनन्द स्वभाव की विपरीत दशा है, इसका कारण उसकी विपरीत मान्यता ही है। अज्ञानी ज्ञेय का मात्र जाननेवाला नहीं रहता अपितु उनको इष्ट-अनिष्ट मानता है। यह इष्ट-अनिष्ट की कल्पना ही दुःखरूप है। अज्ञानी अपने को संयोगों के कारण दुःखी मानता है यह मिथ्याभाव है।

अनादि से अज्ञानी जीव पर की सावधानी कर रहा है; अच्छा भोजन, अच्छी हवा-पानी में सावधान है। भिखारी को चार पैसे दो तो आशीर्वाद देता है और कहता है ''दूधों नहाओ और पूतो फलो'' अर्थात् कर्म बन्धन रहित न रहो। इस आशीर्वादका अर्थ तो यही हुआ कि तुम्हें सदा शरीर मिलता रहे - संयोग मिलते रहें, पुत्र मिलते रहे इस तरह सदैव भिखारी रहना, इसप्रकार वह पाप करने का आशीर्वाद देता है।

पुत्र न आए तबतक तो पाप का राग करना चाहिये ना ? इसप्रकार वह अज्ञान द्वारा ही भिखमंगापना किया करता है। एक बार वस्तु के यथार्थ स्वरूप का यथार्थ निर्णय कर। विपरीत बुद्धि से भव का किनारा नहीं आता। व्रत-तपादि चाहे जितना करे किन्तु मिथ्या मान्यता का बीज पड़ा हुआ है इसलिए अज्ञानी को वर्तमान करुणा का शुभ भाव हो तो भी वह उसका आधार पर को मानता है, इस कारण उसे तत्त्वों का विरोध है। इसलिये विपरीत दया के कारण, पुण्य परिणाम पलट कर पाप हो जायगा और वह निगोद में चला जायगा।

जगत के पदार्थ अनन्त हैं और त्रिकाल है, इसलिये पर के कारण करुणा होती है - ऐसा माननेवाले का अनन्तानुबन्धी राग दूर नहीं होगा। जगत के जीव देखने-जानने योग्य है। केवलज्ञानी सभी को देखते हैं किन्तु उनको करुणा का विकल्प नहीं आता। निचली दशा में राग आता है, पशुओं को छोड़ देने की करुणा आती है। यदि करुणा का कारण पर वस्तु (जीव) को माने तो वह स्व-पर की पृथकता को नहीं मानता।

अज्ञानी को विपरीत मान्यता का महापाप खटकता नहीं और साधारण बाह्य

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पाप खटकता है। तिर्यंच, मनुष्य जानने लायक होने से वे ज्ञान में मात्र ज्ञेयपने निमित्त हैं - ऐसा नहीं मानता। उनके आधार से मुझे करुणा आती है - ऐसा मानना वह मिथ्याशल्य है। वह दोष ज्ञानस्वभाव के आश्रय से ही दूर होता है।

वास्तव में पर की पर्याय पर के कारण से होती है। वह जीव अपने आनन्द स्वभाव का आश्रय ले तो ही उनका दुःख दूर होगा। मैं उसका दुःख मिटा दूँ, माता-पिता का कर्तव्य है कि बच्चों को बड़ा करना, घर, समाज की व्यवस्था रखना - ऐसी सभी मान्यताओंवाला पर से भिन्न जीव तत्त्व को नहीं मानता। माता बच्चे को गीली जगह में से सूखी जगह सुलाती है, तो क्या वह बच्चे के लिये वह सब करती है ? नहीं, अपितु वह अपने राग के लिए करती है।

प्रभु तेरी प्रभुता, ज्ञानस्वभाव को जानने में है। ज्ञानस्वभावी आत्मा में से ही आनन्द आता है, उसे नहीं मानता तो दुःखी होता है। यदि पर के कारण करुणा हो तो अनन्तानुबन्धी का राग कभी दूर नहीं होगा। जगत से दया की इच्छा करता है। ऐसे कोई महाराज मिलें तो उनके आशीर्वाद से पैसा मिल जाए, पुत्र मिल जाय - ऐसा माननेवाला वह भिखारी है।

तेरे पुण्य के बिना कुछ नहीं मिलता। क्या कोई पैसे तथा पुत्र के कारण सुखी है ? नहीं। जबकि लोग तो पैसे के कारण सुखी होना कहते हैं किन्तु पैसे के कारण सुखी नहीं होता। **धनवानपना वह गुण नहीं है और निर्धनता दोष नहीं है वह तो मात्र जानने लायक है** किन्तु अज्ञानी ऐसा नहीं मानता।

प्रतिकूल संयोगों में मुनि को देखकर, जो जीव मुनि को दुःखी मानते हैं उन्हें चारित्रदशा में होनेवाले सुख की खबर नहीं है। मुनि के शरीर को सिंह फाड़कर खा रहा हो, उसे देखकर अज्ञानी, उन्हें दुःखी मानता है जबकि मुनि तो वीतरागी शान्ति में है। वे आत्मा के आनन्द में झूलते हैं, उन्हें दुःख नहीं! क्योंकि मुनिराज संयोग से दुःख नहीं मानते। तू देह में आत्मबुद्धि से, संयोग के कारण दुःख मानता है, इसलिये तुझे मुनिदशा की खबर नहीं है। तथा वह अज्ञानता में यह भी बोलता है कि भले ही हमारे ऊपर ये दुःख आ जावे किन्तु मुनि के ऊपर ये दुःख कभी नहीं आवे।

ज्ञानी को राग आता है और वह मुनि को छुड़वाने (उपसर्ग दूर करने) का

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रयत्न करता है। मुनि को बचाने के लिये सिंह को तलवार लग जाय तब भी वहाँ सिंह को मारने का अभिप्राय नहीं होता।

मेरे कारण भक्ति का राग आया है वहाँ यह क्रिया हो जाती है। वहाँ तो स्वयं की योग्यता के कारण से शुभराग आया है। अभिप्राय तो मुनि को बचाने का है-यह भी व्यवहार का कथन है। सिंह को मारने का भाव नहीं है। मुनि को बचाने के प्रसंग में बचानेवाला और मारनेवाला दोनो ही मर जाते हैं (- ऐसा भी हो सकता है)। सम्यक् दृष्टि स्वर्ग में जाता है और सिंह नरक में जाता है। वहाँ मुनि के कारण शुभराग आया है - ऐसा ज्ञानी नहीं मानते जबकि अज्ञानी पर के कारण करुणा मानता है यह मोह भाव है। इसप्रकार मोह को पहचानो।

ज्ञानतत्त्व परमेश्वर है उसको स्वीकार करनेवाले को परमेश्वर पद प्राप्त करने की शुरूवात होती है। यह अधिकार ज्ञान तत्त्व का है। आत्मा भगवान है उसका भाव ज्ञान है, मूल स्वभाव ज्ञान है। यदि ज्ञान न हो तो ये वस्तुएं है, शरीर है, मकान है यह कौन जाने ? ज्ञान यही आत्मा का स्वभाव है, ज्ञान तत्त्व है, भाव है-स्वभाव है। वहाँ अज्ञानी मात्र जानने का काम तो नहीं करता किन्तु जानने योग्य पदार्थ में मेरे से कुछ होगा तथा उनसे मेरे में कुछ होगा - ऐसी विपरीत मान्यता ही करता है, इसलीये वह स्वभाव का खून करनेवाला है। अल्पज्ञदशा में जानना-देखना स्वभाव के आधार से प्रगट हो वह साधक है और परिपूर्ण ज्ञान होनेपर अकेला ज्ञान रह जाय वह सर्वज्ञ है। उसका उपाय सत्यज्ञान को जानना है। सभी 'स्व' में रहकर जाननेवाले है। ज्ञान 'पर' की दया से पृथक है। जानने का स्वभाव शुभाशुभ परिणाम से प्रगट है, 'पर' की दया से पृथक है; इसप्रकार वस्तु का निर्णय होना वह सम्यग्दर्शन है, उसमें ज्ञान का - सत्य परमेश्वर का स्वीकार किया, उसी से परमेश्वर पद को प्राप्त करने की शुरुवात होती है, नहीं तो दशा अल्प हो जाती है।

ज्ञान को विकार में रोकना वह दुःख है और ज्ञान को अपने में रोकना वह सुख है। जैसा जीव का चैतन्य स्वभाव है तथा पुण्य-पाप का बन्ध स्वभाव है वैसा ही शरीर का जीव से पृथक स्वभाव है - ऐसा नहीं जाने और जो पृथक है उनसे लाभ-नुकसान माने तथा विभाव से लाभ माने, उसे वास्तविक तत्त्व की खबर नहीं है-उसे दुःखवाला मिथ्याभ्रांतिवाला ज्ञान है। इसप्रकार पहचान करना चाहिए कि

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वयं ज्ञानस्वभाव है और अन्य जीव जानने योग्य ज्ञेय हैं। ज्ञान जानता है कि वे अपने ज्ञान आनन्द को भूलकर दुःखीहोते हैं और पर को सुख-दुःख का कारण मानकर सुख की कल्पना करते हैं। उनके दुःख को मिटा दूँ और उनका दुःख मुझे लगता है-यह मान्यता, मिथ्यात्व को सूचित करती है।

प्रत्येक जीव का स्वभाव ज्ञान है; सभी अज्ञानी जीव ज्ञान के विकार में रुके हैं इसलिये दुःखी है किन्तु कोई भी जीव किसी प्रतिकूल संयोग के कारण दुःखी नहीं है; किसी के प्रतिकूल संयोग को मैं (आने से) रोक दूं और अनुकूलता दे दूं - ऐसा ज्ञान स्वभाव में सामर्थ्य नहीं है; वैसे ही उनको अनुकूलता मिलती जाय तो उनका दुःख मिट जावे - ऐसा उनका स्वभाव नहीं है। ऐसा होने पर भी माने की मैं पर को सुखी कर दूँ यह तो मिथ्याभाव है। दुःखी होनेवाला जीव उनकी ममता से दुःखी होता है और उस प्रसंग में अपने को करुणारूप मंदकषाय आ जावे तो वह अपनी भूल है।

वास्तव में पर के कारण कषाय मंदता नहीं हुई है और स्वभाव में से भी कषाय मंदता नहीं आई है अपितु अपनी कमजोरी के कारण-पुण्य परिणाम होते हैं। यदि पर के कारण पुण्य परिणाम होते हों तो जगत में तो अनेकों प्राणी अनादि-अनन्त (सदा) दुःखी रहेंगे; है तो फिर इसे कभी राग में से छूटने का अवसर ही नहीं आएगा। ज्ञान क्या करे ? राग को लावे ? नहीं, ज्ञानस्वभाव में रुचि व एकाग्रता जीव नहीं करता-इसलिये दुःखी है। मिथ्या अभिप्राय रहित होकर स्वतत्त्व में रहना वही दुःख के मिटने कारण है। किन्तु किसी पर के कारण राग होता है यह असत्य है, इसलिये सत्य का निर्णय करना चाहिए।

प्रश्न :- आपके जैसे महान्-उच्च्च कोटीवान मनुष्यों के लिये यह बात है ?

समाधान :- नहीं, प्रथम सत्य को स्वीकार करने की यह बात है। सर्वप्रथम सत्य निश्चित करना चाहिये अर्थात् सत्य का यथार्थ रीति से स्वीकार करना चाहिये। दूसरा उच्च्च कोटी का है और हम नीच कोटि के है, इसका निर्णय करने के लिये भी -ज्ञानस्वभाव का निर्णय करना पड़ेगा।

पर का दुःख देखकर राग होता है - ऐसा माननेवाले का ज्ञान असत्य है

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

क्योंकि उसके तथा तुम्हारे बीच अत्यंत अभाव है। केवली भगवान सभी दुखियों को देखते हैं। सर्वज्ञ के ज्ञान में ऐसा आया है और वस्तु स्वरूप भी ऐसा है कि दुःखी होनेवाला अपनी आत्मा के स्वभाव को भूलता है इसलिये ही वह दुःखी है, अतः भूल दशा स्वयं करता आया है - ऐसा निर्णय करके दुःखरूप भावों को दूर करने के लिये उसे क्या करना चाहिये ? ज्ञानस्वभावी आत्मा का सर्वप्रथम निर्णय करना चाहिये।

परजीव दुःखी हैं इसलिये करुणा आती है यह बात सत्य है अथवा असत्य ?

यदि पर को दुःखी देखकर करुणा आती हो तो सभी को करुणा आना चाहिये ? इस जगत में ऐसे भी जीव हैं जिनका ज्ञान पूर्ण हो गया है। वे कहते हैं कि - वे (दुःखी जीव) प्रतिकूल संयोग के कारण दुःखी नहीं है क्योंकि संयोग के कारण किसी को दुःख नहीं होता, ज्ञानस्वभाव को भूलते हैं इसलिये ही वे दुःखी हैं और तेरे स्वभाव में तू स्थिर नहीं रहता इसलिये तुझे राग आता है, इसप्रकार पहले सत्य निर्णय करना चाहिये। यदि पर के कारण राग होता हो तो राग से रहित होने का कभी अवसर ही नहीं आवेगा। **मिथ्यात्व के दोष और चारित्र के दोष के बीच के अन्तर को समझना चाहिये।**

प्रश्न :- सर्व ही जीव जिनशासन में दृढ़ हों- ऐसा राग ज्ञानी को क्यों आता है ?

समाधान :- अपनी कमजोरी से राग आता है किन्तु पर के कारण राग नहीं आता ऐसा स्वरूप होनेपर भी जो पर से राग का होना मानता है वह मिथ्यादृष्टि है। सामनेवाला दुःखी जीव अपनी भूल से रखड़ता है। किसी ने भूल खड़ी की है और मैं उनकी भूल दूर कर दूं - ऐसी मान्यता मिथ्यादृष्टि की होती है। मैं ज्ञानस्वभावी-जाननेवाला हूँ। मेरी पर्याय में जो करुणा आती है वह अस्थिरता चारित्र का दोष है किन्तु यदि पर के कारण करुणा माने तो यह मिथ्यात्व का दोष है। इन दोषों के बीच अन्तर को तो ना जाने और मैं सत्य के पथ में जाता हूँ - ऐसा मानता है वह स्वयं को ठगता है - जैसा वस्तु स्वरूप है वैसा वह नहीं मानता। यदि परिभ्रमण को दूर करना हो तो इन लक्षणों से मिथ्यात्व को पहिचानकर दूर करना चाहिये।

अज्ञानी कहता है कि - हमें जानना चाहिये और मैं इसे जानता हूँ। जानने का

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वभाव आत्मा का है तो वह ज्ञान क्या जाने ? पर के कारण राग होता है ऐसा जाने अथवा स्वयं के कारण राग होता है ऐसा जाने ?

पर मेरी दया करे अथवा मैं पर की दया करूँ - ऐसा माननेवाला परावलम्बी है। जगत के प्राणी परावलम्बी है। अपने को कोई तार दे ऐसा कोई गुरु मिले अथवा किसी की कृपा से तिर जाय - ऐसा माननेवाला भिखारी है। पर मेरी दया करे और मैं पर की दया करूँ - ऐसा माननेवाला चिदानंद भगवान का तिरस्कार करता है। सभी को पर के आधीन देखता है।

करुणा भाव ज्ञानी छद्मस्थ को भी आता है, वह पाप नहीं-पुण्य है किन्तु पर के कारण पुण्य हुआ - ऐसा माने वह सत्य से अलग है। पर के कारण करुणा नहीं आती और ज्ञानस्वभाव में से भी करुणा नहीं आती अपितु अपनी वर्तमान कमजोरी से करुणा आती है। अज्ञानी मानता है कि पर जीव को दुःखी देखकर-करुणा आती है उसने सत्य परमेश्वर की आज्ञा नहीं मानी और वह उनकी सेवा नहीं करता किन्तु वह मिथ्यात्व और राग की सेवा करता है।

इष्ट विषयों को अनुकूल मानकर राग करनेवाला असत्य देवी की आराधना करता है। इष्ट विषयों की आसक्ति द्वारा राग को पहचानो। यह पदार्थ इष्ट है - ऐसा मानकर जो राग होता है वह मिथ्यात्व सहित चारित्र दोष है जबकि कोई भी पदार्थ इष्ट है ही नहीं। ऐसा मनुष्य देह मिला किन्तु सत्य-असत्य का विवेक करने का प्रयास-प्रयत्न नहीं करे वह कहाँ जाएगा ? एक बार अन्तर ज्ञान में प्रयोग कर ! विपरीत प्रयोग करने से ही अवकाश नहीं मिलता। ज्ञान सत्य परमेश्वर है सर्वज्ञ स्वभाव को धारण करनेवाला तेरा आत्मा ही ज्ञान परमेश्वर है। पर के कारण राग करना पड़ता है - ऐसा मानने से तेरे परमेश्वर का खून होता है, पर के कारण राग माने वह तेरी भूल है।

तीनकाल के जाननेवाले परमेश्वर हैं। सम्पूर्ण जाननेवाले कब हुए ? जब कोई भी राग बाकी नहीं रहा तब तीनकाल के कोई भी पदार्थ जानने के लिए बाकी नहीं रहे। तीनकाल के किसी भी पदार्थ का करनेवाला नहीं है ऐसा निर्णय करनेवाला स्व-सन्मुख ज्ञान में निर्णय करता है। ज्ञेय से अथवा उसके किसी परिणाम से अपने को समता आए - ऐसा वस्तु स्वरूप ही नहीं है। एकरूप ज्ञेय हैं और एकरूप ज्ञान है फिर भी ज्ञेय में इष्ट-अनिष्ट के दो विभाग करना वह ज्ञान का विरोध है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जो पदार्थों को इष्ट-अनिष्ट मानकर राग-द्वेष करता है उसका ज्ञान लंगड़ा (पंगु) हो गया है। यह वस्तु ऊंची (इष्ट) है ऐसा जो तू उसे समझता है तो यह समझनेवाले की प्रीति है। ऐसा होने पर भी पर वस्तु के कारण प्रीति-अप्रीति नहीं होती। तू क्या देखना चाहता है ? असत्य ही देखना हो तो वह तो अनादि से करता ही आया है। धर्म के नाम से और त्यागी के नाम से भी असत्य कर रहा है। सत्य देखना हो तो तुझे क्या करना चाहिये, वह यहाँ कहते हैं कि - इष्ट पदार्थों के प्रति राग न कर क्योंकि कोई भी पदार्थ इष्ट-अनिष्ट नहीं है।

पतले वस्त्र गर्मी में अच्छे (इष्ट) लगते हैं और ठण्डी में अच्छे नहीं लगते। किसी गरीब को कोई भी वस्त्र मिले उसे वह इष्ट मानता है; इसलिए वे वस्तु इष्ट-अनिष्ट नहीं, किन्तु इष्ट-अनिष्ट की कल्पना वह तेरे मिथ्यात्व का लक्षण है। जैसे मरने के पहले मृत्यु के कुछ लक्षण दिखाई देते हैं, जैसे-किसी की नाक टेढ़ी हो जाती है वैसे ही यहाँ तेरा ज्ञान टेढ़ा हो गया है। ज्ञान का सीधा होना यह है कि सभी समानपने जानना; फिर भी पदार्थ इष्ट-अनिष्ट मानना वह ज्ञान की वक्रता है वह मिथ्यात्व से ठगा गया है।

इष्ट पदार्थ के प्रति राग होता है वह मिथ्यात्व का अमर्यादित दोष है। स्वयं के कारण राग होता है वह अल्प चरित्र दोष है पर के कारण राग माने उसका ज्ञान टेढ़ा हो गया है वह तिरछा शरीरवाला तिर्यंच होनेवाला है। एकेन्द्रिय, निगोद, वनस्पति वह तिर्यंच गति में है मिथ्यात्व की विपरीतता करनेवाला अल्प काल में निगोद में जायेगा; इसलिये वस्तु स्वरूप की पहचान कर।

अपनी सत्यता को न समझकर विपरीत शल्य रखता है वह मूल पाप है। सम्यग्दृष्टि लड़ाई में हो अथवा वह स्त्रियों के संयोग में हो फिर भी वह चारित्र दोष स्वभाव के जोर से अल्पकाल में टूट जायेगा, किन्तु जो पर के कारण राग का होना मानता है उसे राग के टूटने का कभी अवसर ही नहीं आयेगा।

परपदार्थ अनिष्ट नहीं है फिर भी अज्ञानी पर को अनिष्ट मानकर द्वेष करता है। विष्टा, रोगादि अनिष्ट नहीं है वह तो परमाणु द्रव्य का पर्याय धर्म है-तेरा ज्ञेय है फिर भी उन्हें अनिष्ट मानना मिथ्यात्व भाव है। ज्ञानी को कभी अल्पद्वेष आए किन्तु वह पर के कारण द्वेष का होना नहीं मानता। ज्ञानस्वभाव में से द्वेष नहीं आता अपितु

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चारित्र की कमजोरी के कारण द्वेष आता है - ऐसा वे मानते हैं जबकि मिथ्यादृष्टि जीव पर के कारण द्वेष मानता है। पर के कारण दुःख नहीं है और ज्ञानस्वभाव से भी दुःख नहीं आया है।

युवा पुत्र मर जाये तब धर्मी को भी रोना आता है और मिथ्यादृष्टि भी रोता है, किन्तु अन्तर में बहुत फेर है। ज्ञानी मृत्यु प्रसंग के कारण शोक नहीं मानता किन्तु सहनशीलता कम है इसलिये शोक आया है। ज्ञानस्वभाव तथा पर के बीच अन्तर विद्यमान रहता है जबकि अज्ञानी पर के साथ एकता करता है इसलिए संयोग के कारण शोक मानता है। मरण के काल में अन्तर मानता है कि इसे अभी नहीं मरना था किन्तु संयोग का वियोग तो उसके काल में होता है।

जो पर्याय हुई है तो क्या वह पर्याय का काल नहीं था ? क्या कोई तेरे लिए अनिष्ट है ? नहीं। वह तो ज्ञान का ज्ञेय है। दुनिया भी उसे उदयकाल कहती है अर्थात् वह पर्याय का उदय काल है उस समय वह प्रसंग आनेवाला था इसलिए लोग कहते हैं कि उदय काल निश्चित है। पंचमी की छठमी नहीं होती दाने-दाने पर खानेवाले का नाम लिखा है; इसका अर्थ यह है कि तू जानने देखनेवाला ही है, जो आनेवाला है वह आता ही है। ज्ञान किसे लाए और किसे छोड़े? ज्ञान तो मात्र जाने।

अतः ज्ञानस्वभाव की पहचान करके मोह-राग-द्वेष का नाश करना योग्य है। यहाँ विपरीत दृष्टि के तीन लक्षण बताए है अर्थात् तीन प्रकार के भाव ज्ञानस्वभाव से बिल्कुल विपरीत हैं - ऐसा पहचानकर उन्हें उत्पन्न ही न होने दे। यहाँ उत्पन्न होते ही नाश शब्द का प्रयोग किया है जबकि जिस समय वे उत्पन्न होते हैं उसी समय उनका नाश नहीं हो सकता किन्तु ज्ञानस्वभाव के आश्रय से मोहादि को उत्पन्न नहीं होने देना - ऐसा इसका अर्थ है।

तत्त्व की अप्रतीति जीवों के प्रति करुणा बुद्धि, अनुकूल पदार्थों के प्रति राग और प्रतिकूल पदार्थों के प्रति द्वेष का शीघ्र नाश करना योग्य है पर द्रव्य की सावधानी वह मोह है-कलुषिता हैं। स्वभाव का भान होने पर विकार उत्पन्न नहीं होते अर्थात् उनने नाश किया - ऐसा कहने में आता है। पहले सत्य क्या है और असत्य क्या है उसका निर्णय कर तथा विपरीत दृष्टि क्या है वह निश्चित कर।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जैसे तालाब में पड़ा हुआ मनुष्य नहाकर अच्छी साफ जगह देखकर-जहां सीढ़ियाँ बनाई गई हो वहाँ से निकलता है-किन्तु गारा (सनी हुई मिट्टी)वाली जगह से नहीं निकलता। यहाँ कहते हैं कि तू पवित्र शुद्धत्म तत्त्व होनेपर भी अनादि से मोहादि अशुद्ध पर्यायों में ही रहा है।

'क्षण-क्षण भयंकर भाव मरणे, कां अहो राची रहो।'

पर पदार्थ के कारण करुणा होती है इष्ट-अनिष्ट की कल्पना होती है - ऐसा मानना यही भाव मरण है। यदि तुझे जीवित होना हो तो मोह को पहिचानकर उसका नाश करना योग्य है। पर के कारण राग माननेवाले को राग की असीमितता है और अपनी कमजोरी से राग होता है ऐसा माननेवाले को राग की सीमितता है।

भावार्थ पर प्रवचन :- मोह के तीन भेद है दर्शनमोह, राग और द्वेष। पदार्थों के यथार्थ स्वरूप से विपरीत मान्यता मोह है। तिर्यंच और मनुष्य के प्रति तन्मयपने अर्थात् संयोग से सुख-दुःख माननेरूप करुणाभाव वह दर्शन मोह का चिह्न है। मैं दूसरे के दुःख से दुःखी हूँ - ऐसा अज्ञानी मानता है। जबकि पर के दुःख की पर्याय तो उनके आनन्द गुण की विपरीत दशा है वह उन्हीं से है-संयोग से नहीं। पर के आश्रवभाव को अपना आश्रवभाव मानना तो मूढ़ता है।

ज्ञान अकषाय भाव है, जिसे उसकी रुचि नहीं हुई तो उसे चैतन्य स्वरूप की करुणा नहीं आई किन्तु मिथ्यात्व की करुणा आई है। करुणा का राग उसके स्व काल में अपने कारण आता है। किन्तु पर के कारण राग आ जाए - ऐसा वस्तु स्वरूप ही नहीं है। बिहार में भूकम्प आया इसलिये करुणा नहीं आई अपितु स्वयं के कारण राग आता है; जबकि अज्ञानी मानता है कि पर के कारण राग आता है। ज्ञानी मानता है कि पर्याय की कमजोरी के कारण राग आया है - इन दोनो में बहुत अन्तर है।

जीवों को अनादि से स्व दया और पर दया का वास्तविक स्वरूप सही रूप से ख्याल (जानने) में नहीं आया इसलिये उसके स्वरूप का खून हुआ है। केवलज्ञानी तो पहले से विश्व का सब कुछ जानते हैं। यदि, पर के कारण करुणा होती हो तो फिर केवली भगवान को करुणा क्यों नहीं आती ? अतः सत्य को स्वीकार करने में समझरूप पुरुषार्थ की जरूरत होती है।

पर के कारण मैं और मेरे कारण पर है - ऐसा माननेवाला पर में राग-द्वेष

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अथवा सुख-दुःख का होना मानता है। तीन काल-तीन लोक के पदार्थ के कारण, राग माननेवाले को राग की अनन्तता है - असीमितता है। वास्तव में, पर के कारण राग नहीं अपितु मेरे कारण से राग है - ऐसा माननेवाले को मर्यादित (सीमित) राग रह जाता है।

प्रश्न :- तो हमें करुणा भाव करना अथवा नहीं ?

समाधान :- करुणा का विकल्प आता है किन्तु पर के कारण करुणा मानना वह दर्शन मोह का चिह्न है। इष्ट विषयों में प्रीति वह राग का चिह्न है और अनिष्ट विषयों में अप्रीति वह द्वेष का चिह्न है इन चिह्नों से तीनों प्रकार के मोह को पहिचान कर आत्मा के हित के इच्छुक जीव को उनका तत्काल ही नाश करना चाहिये।

कर्म के कारण राग-द्वेष होता है - ऐसा माननेवाले ने जड़ कर्म को अनिष्ट माना-यही मिथ्यात्व भाव है। कर्म के प्रमाण में राग करना ही पड़ेगा - ऐसा माननेवाले का दर्शन मोह दूर नहीं होगा। विभाव, स्वभाव और भिन्न तत्त्वों के बीच भेद ज्ञान न करे वह मोह है; इसलिये पहले श्रद्धा कर कि यही मार्ग है, बाद में स्वभाव की स्थिरता द्वारा दोष की उत्पत्ति नहीं होगी।

हे जीवो! पर द्रव्यों में परिवर्तन करने तथा स्वकार्य में अन्य साधन ढूँढने की चिन्ता छोड़कर, स्वसंवेदन से निजात्मा का अनुभव करो! आत्मा की ज्ञानकिरण जोकि प्रगट है उस प्रगट पर्याय द्वारा आत्मा को जानो।

- पूज्य गुरुदेवश्री

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचनसार गाथा ८६

अथ मोहक्षपणोपायान्तरमालोचयति-

जिणसत्थादो अट्ठे पच्चक्खादीहिं बुज्झदो णियमा।
खीयदि मोहोवचयो तम्हा सत्थं समधिदव्वं ॥८६॥

अब मोहक्षय करने का उपायान्तर (दूसरा उपाय) विचारते हैं :-

जिन शास्त्र-प्रत्यक्षादि से जो अर्थ जाने नियम से।
हो मोहचयक्षय शास्त्र का अध्ययनीय सम्यक् इसलिये ॥८६॥

अन्वयार्थ :- **(जिनशास्त्रात्)** जिनशास्त्र द्वारा **(प्रत्यक्षादिभिः)** प्रत्यक्षादि प्रमाणों से **(अर्थान्)** पदार्थों को **(बुध्यमानस्य)** जाननेवाले के **(नियमात्)** नियम से **(मोहोपचयः)** [१]मोहोपचय **(क्षीयते)** क्षय हो जाता है **(तस्मात्)** इसलिये **(शास्त्रं)** शास्त्र का **(समध्येतव्यम्)** सम्यक् प्रकार से अध्ययन करना चाहिये।

टीका :- द्रव्य-गुण-पर्यायस्वभाव से अरहंतके ज्ञान द्वारा आत्मा का उस प्रकार का ज्ञान मोहक्षय के उपायके रूपमें पहले (८० वीं गाथा में) प्रतिपादित किया गया था, वह वास्तव में इस (निम्नलिखित) उपायान्तर की अपेक्षा रखता है। (वह उपायान्तर क्या है सो कहा जाता है:-)

जिसने प्रथम भूमिका में गमन किया है - ऐसे जीव को, जो [२]सर्वज्ञोपज्ञ होने से सर्व प्रकारसे अबाधित है - ऐसे शब्द प्रमाण को (-द्रव्य श्रुतप्रमाणको) प्राप्त करके क्रीड़ा करने पर, उसके संस्कार से विशिष्ट [३]संवेदनशक्तिरूप सम्पदा प्रगट करनेपर, [४]सहृदयजनों के हृदय को आनन्द का [५]उद्भेद देनेवाले प्रत्यक्ष प्रमाण से अथवा [६]उससे अविरुद्ध अन्यप्रमाणसमूह से [७]तत्त्वतः समस्त वस्तुमात्रं को जानने पर [८]अतत्त्वअभिनिवेश के संस्कार करनेवाला मोहोपचय (मोहसमूह) अवश्य ही क्षय

---

[१] मोहोपचय=मोहका उपचय। (उपचय=संचय;समह)। [२] सर्वज्ञोपज्ञ = सर्वज्ञ द्वारा स्वयं जाना हुआ (और कहा हुआ)। [३] संवेदन = ज्ञान। [४] सहृदय = भावुक; शास्त्रमें जिससमय जिस भावका प्रसंग हो उस भाव को हृदय में ग्रहण करनेवाला; बुध; पण्डित। [५] उद्भेद = स्फुरण; प्रगटता; फुवारा। [६]उससे = प्रत्यक्ष प्रमाण से। [७]तत्त्वतः = यथार्थ स्वरूप से। [८] अतत्त्व-अभिनिवेश = यथार्थ वस्तुस्वरूप से विपरीत अभिप्राय।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

को प्राप्त होता है। इसलिये मोह का क्षय करने में, परम शब्दब्रह्म की उपासना का भावज्ञान के अवलम्बन द्वारा दृढ़ किये गए परिणाम से सम्यक् प्रकार अभ्यास करना सो उपायान्तर है। (जो परिणाम भावज्ञान के अवलम्बन से दृढ़कृत हो - ऐसे परिणाम से द्रव्यश्रुत का अभ्यास करना सो मोहक्षय करने के लिये उपायान्तर है) ॥८६॥

गाथा ८६ पर प्रवचन

अब, मोह क्षय करने का अन्य उपाय कहते हैं। सर्वज्ञ द्वारा कहे गए शास्त्र का भावज्ञान द्वारा अभ्यास करना चाहिये। जिनका स्वभाव पूर्ण प्रगट हुआ है, उनकी वाणी-शब्द प्रमाण है किन्तु मिथ्यादृष्टि की वाणी प्रमाण नहीं है। अरहंत परमात्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप जानकर स्वभाव की ओर झुकना वह दर्शन-मोह को दूर करने का उपाय बताया है। अब, दूसरा उपाय बताते हैं। स्वलक्ष्य से सर्वज्ञ वीतरागी देव के शास्त्र का स्वध्याय करना। जिनकी पूर्णदशा व्यक्त हो गई है उनकी वाणी को आगम कहते हैं किन्तु दूसरे के कल्पित शास्त्रों को आगम नहीं कहते।

सर्वज्ञ का शास्त्र किसे कहना चाहिये उसका स्पष्टिकरण करेंगे। ज्ञान, ज्ञान के अवलम्बन से पूर्ण कैसे प्रगट होता है और राग तथा अल्पज्ञता का कैसे नाश किया ? यह बात (मात्र) सर्वज्ञ के शास्त्र में आती है किन्तु दूसरे मिथ्यादृष्टि के शास्त्र में यह बात नहीं आती।

स्व लक्ष्य से शास्त्र स्वाध्याय सम्यक् ज्ञान की दृढ़ता के लिये उपाय है। यह मोह क्षय करने के अन्य उपाय का विचार करते हैं। अरहंत के द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप जानकर स्वयं के द्रव्य-गुण-पर्याय का विचार करना यह उपाय (पहले गाथा ८० में) बताया। सम्यक् ज्ञान होने के बाद विशेष राग घटाने के लिये शास्त्र ज्ञान का अभ्यास उपाय है।

अरहंत भगवान तीनकाल-तीनलोक को जानते हैं, उनके स्वरूप को समझकर अपने द्रव्य-गुण-पर्याय को जानना यह उपाय पहले बताया था। अब, सम्यक् ज्ञान के दृढ़तर निर्मल होने के लिये यह उपाय है। आत्मा के ज्ञानस्वभाव के आश्रय से जिसमें पूर्णता प्रगट हुई, वह ज्ञान सभी कुछ जानता है यह वस्तु सिद्ध

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

की; उनके द्रव्य-गुण और पर्याय एक हुए हैं-यह उत्कृष्ट स्वरूप है। जैसे सोना सोलहवान होता है वैसे ही ज्ञान में एकाग्रता होने से पूर्ण उत्कृष्ट स्वरूप प्रगट होता है ऐसा सभी आत्माओं का स्वरूप है।

अब, स्व द्रव्य के उग्र आलम्बन में आगे बढ़ने के लिये, उस मोह को नाश करने का विशेष उपाय यह है कि भावज्ञान के लक्ष्य से सर्वज्ञ द्वारा कहे गए शास्त्र का अभ्यास करना। ज्ञानस्वभाव के बिना आत्मवस्तु क्या है ? कुछ नहीं। चैतन्य प्रकाश की प्रतीति करके पूर्णता प्रगट हुई उनको वाणी द्वारा-अपने ज्ञान में निर्णय करना चाहिये। चैतन्य स्वभाव-राग और निमित्त रहित है इसप्रकार जिसे आंशिक प्रत्यक्ष प्रमाण ज्ञान हुआ उसे और अनुमानादि प्रमाणों से पदार्थों को जाननेवाले को नियम से मोह का संचय नाश को प्राप्त होता है, इसलिये सर्वज्ञ का जो आशय है उसके अनुसार शास्त्र का सम्यक् प्रकार से अभ्यास करना योग्य है।

अरहंत का द्रव्य त्रिकाल रहता है उनके अनन्त गुण हैं; वे हैं...हैं...हैं... इसप्रकार त्रिकाल रहते हैं; उनकी ज्ञान और आनन्दादि पूर्ण पर्याय प्रगट हुई है - ऐसे स्वभाववाले अरहंत के स्वरूप के ज्ञान द्वारा आत्मा का उस प्रकार का ज्ञान-मोह क्षय के उपाय के रूप में जो पहले ८० वीं गाथा में प्रतिपादित करने में आया था, वह वास्तव में भगवान के शास्त्र के अभ्यास की अपेक्षा रखता है।

यदि ज्ञान न हो तो कौन निर्णय करेगा ? शरीर तो अंधा (ज्ञान रहित) है, पुण्य-पाप भी अंधे हैं, श्रद्धा, चारित्र, आनन्द गुण को स्व-पर की खबर (ज्ञान) नहीं कि हम कौन हैं ? एकमात्र ज्ञान गुण स्व-पर प्रकाशक है। स्व पर को जानने की ताकत ज्ञान में है। इसलिये जिनकी पूर्ण पर्याय प्रगट हुई है - ऐसे अरहंत को पहचान कर, उनके कहे हुए शास्त्र का अभ्यास करना योग्य है।

जिसे प्रथम सम्यक् दर्शन प्रगट करना है उस जीव को क्या करना चाहिये ?

तू कौन है - ऐसा निर्णय कर। सर्वज्ञ स्वयं सबको जानते हैं। चैतन्य मूर्ति की पूर्ण पर्याय प्रगट हो गई है और एक बाजू सम्पूर्ण लोकालोक है; सब क्रमबद्ध होता है - ऐसा वे जानते हैं। इसे स्वीकार न करे तो ज्ञानस्वभाव उड़ जाता है। सर्वज्ञ ने पूर्णस्वरूप देखा है। उनके द्वारा कही बात में कोई बाधा नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तीनकाल-तीनलोक के सर्व पदार्थों का सर्वस्व सर्वज्ञ के ज्ञान में जानने में आ गया है। कुछ भी नया होनेवाला नहीं है - ऐसा निर्णय करें उसमें आत्मा के सर्वज्ञ पद की प्रतीति का अपूर्व पुरुषार्थ चालू होता है। 'णमो अरिहंताणं' पद की जीव को पहचान नहीं है। जैसा स्वरूप है वैसा (अरहन्त ने) जाना है और वैसी ही वाणी निकली है। **यह बात सत समागम में रहकर परिचय किये बिना समझ में नहीं आती।** सारी दुनिया तत्त्व से विरुद्ध बात कहती है। जैसे किसी पर भूत सवार हो जाय तो उसे मिर्ची की धूनी देते हैं और पूछते हैं कि बोल तू कौन है ? वैसे ही यहाँ कहते हैं कि तू कौन है ?

आत्मानी शंका करे, आत्मा पोते आप।
शंकानो करनार ते अचरज अेह अमाप॥

तू स्वयं नित्य ज्ञानस्वभावी है। इस समय भी तेरा स्वरूप शरीर से भिन्न ही है। यदि ज्ञान और शरीर एक हो तो शरीर के प्रमाण में सभी को ज्ञान होना चाहिए किन्तु ऐसा तो नहीं होता। शरीर और ज्ञान पृथक है। ज्ञान वही आत्मा है। राग में अटका हुआ ज्ञान कम है। ज्ञान अपने में पूर्ण एकाग्र हो यह सर्वज्ञ का ज्ञान है।

सर्वज्ञ देव की अबाधित वाणी की ध्वजा अनेकान्त है। सर्वज्ञ द्वारा कहे गए शास्त्र-शब्द प्रमाण हैं किन्तु दूसरों के शास्त्र-शब्दादिक प्रमाण नहीं कहलाते। जो शास्त्र स्त्री को इसी भव में मोक्ष बताए, सर्वज्ञ भगवान को आहार, रोग, उपसर्ग, खण्ड-खण्ड ज्ञान-दर्शन का उपयोग बताए वह वीतराग देव को हीन बताता है, इसलिये वे शास्त्र सच्चे नहीं है। कहा भी है कि - मोक्षमार्ग जिसका दूसरा नाम है - ऐसे श्रामण्य की सर्वप्रकार से सिद्धि करने के लिये मुमुक्षुओं को भगवान अर्हंत सर्वज्ञ से उत्पन्न होनेवाले शब्द-ब्रह्म में अथवा जिनका अनेकान्तरूपी केतन प्रगट है उसमें निष्णात होना चाहिये।

अनेकान्तरूपी चिह्न अर्थात् प्रत्येक वस्तु स्व से है और पर से नहीं, उत्पाद-व्यय-ध्रुवपना सदैव स्व से है, पर से नहीं यह वीतराग वाणी का चिह्न है। ज्ञान, ज्ञानस्वभावी आत्मा से होता है किन्तु वह राग से नहीं होता - ऐसा न मानकर ज्ञान राग से भी होता है - ऐसा माने वह एकान्त है। आत्मा के आश्रय से ज्ञान होता है और राग के आश्रय से ज्ञान नहीं होता; निमित्त, निमित्त से है-निमित्त राग से नहीं,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उपादान, उपादानरूप है निमित्तरूप नहीं-यह अनेकान्तरूपी ध्वजा है।

एकवस्तु में वस्तुपने को सिद्ध करनेवाली अस्ति-नास्तिरूप परस्पर दो विरुद्ध शक्तियों का एकसाथ प्रकाशित होना वह अनेकान्त है।

आत्मा संख्या से अनन्त हैं। प्रत्येक आत्मा दूसरे आत्मा से त्रिकाल भिन्न है। आत्मा है वह अनन्त जड़कर्मों से भिन्न है वह ज्ञाता स्वभाव से है और विभाव से नहीं। पुद्गल-पुद्गल से है, आत्मा से नहीं। अर्थात् आत्मा के आधार से पुद्गल नहीं है और पुद्गल के आधार से आत्मा नहीं है।

वीतराग शास्त्र में अनेकान्त की ध्वजा है। गुण, गुणरूप है पर्यायरूप नहीं। द्रव्य, द्रव्यरूप है किन्तु गुणरूप नहीं और पर्याय, पर्यायरूप है किन्तु द्रव्यरूप नहीं है - ऐसे अनेकान्त लक्षणा वाणी सर्वज्ञ की ही वाणी है; ऐसा द्रव्य-श्रुत होना चाहिये। इसके सिवाय दूसरे कोई भी शास्त्र सच्चे नहीं। सर्वज्ञ के सिवाय किसी अन्य की वाणी प्रमाण नहीं जो भूत-वर्तमान और भविष्य को नहीं जाने उसकी वाणी प्रमाण नहीं होती।

जैन के नाम से-सर्वज्ञ के नाम से विरुद्ध कहे तो वह भी जैन की वाणी नहीं है। शुभरागरूप दया से संसार का नाश होता है - ऐसा कहनेवाली वाणी-सर्वज्ञ की वाणी नहीं होती क्योंकि स्वभाव से ही संसार का नाश होता है किन्तु राग से कभी भी संसार का नाश नहीं होता। सर्वज्ञ, सर्वज्ञरूप हैं किन्तु लोकालोकरूप नहीं इसप्रकार पहले ही परीक्षा करना चाहिए।

जैसे किसी साहूकार के घर खोटा रुपया आए तो उसे खीला मारकर गाड़ देता है किन्तु उसे चलन में चलने नहीं देता; वैसे ही भगवान सर्वज्ञ की वाणी में देव-गुरु-शास्त्र का जो स्वरूप आया उससे विरुद्ध बात बाहर नहीं निकलती-विरुद्ध बात की प्ररूपना नहीं होती।

'मैं जाननेवाला हूँ' - ऐसा निर्णय करना। शास्त्र में जिस अपेक्षा से लिखा गया हो उस अपेक्षा को ज्ञानी समझ जाते हैं इसलिये सम्यक्ज्ञानी के शास्त्र का अभ्यास करना किन्तु मिथ्यादृष्टि के शास्त्र का कोई भी अंश आदरणीय नहीं मानना क्योंकि वह मिथ्यात्व का कारण है।

इसप्रकार उसके संस्कार से विशिष्टसंवेदनशक्तिरूप सम्पदा प्रगट करने पर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सहृदय जनों के हृदय को आनन्द का शरण देनेवाले प्रत्यक्ष प्रमाण से-मोह नाश को प्राप्त होता है। ज्ञानी सामनेवाले के भावों को अथवा उसकी लगन को समझने की सामर्थ्यवाले होते हैं। जैसे व्यापारी ग्राहकों के आते ही उसे जान लेते हैं; कोई सोना बेचने आया हो किन्तु लेने का भाव पूछता है किन्तु उसे व्यापारी समझ लेते हैं; वैसे ही सम्यक्ज्ञानी सामनेवाले के भाव को समझ लेते हैं।

शास्त्र में जिससमय जिसभाव का प्रसंग चलता हो उसभाव को हृदय में ग्रहण करनेवाले जीव चतुर हैं; जहाँ व्यवहार का कथन है वहाँ वे उसके आशय को समझ जाते हैं। जहाँ कर्म के उदय के कारण विकार होता है - ऐसा लिखा हो वहाँ समझ लेते हैं कि यह तो मात्र निमित्त बताने के लिए व्यवहार का कथन किया गया है; कर्म तो पर द्रव्य हैं, जो स्वयं अपने भाव से रखड़ता है उसके लिये परद्रव्य को निमित्त कहा था - ऐसा समझ जाता है।

और जहाँ निश्चय का प्रसंग हो तो वहाँ निश्चय समझे, व्यवहार का प्रसंग हो वहाँ व्यवहार समझे। जहाँ व्यवहार को मोक्षमार्ग कहा हो वहाँ वह समझ जाता है कि राग मोक्षमार्ग नहीं है किन्तु मोक्षमार्ग में इसप्रकार का शुभराग होता है जिसे सहचर जानकर उपचार से ही मोक्षमार्ग कहा गया है।

सम्यक्ज्ञानी प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा आनन्द का अनुभव करते हैं। स्वानुभव प्रत्यक्षज्ञान द्वारा आनंद का उफान आता है। उन्हें सम्यग ज्ञान हुआ है फिर भी शास्त्र अभ्यास करते हैं। चैतन्य, ज्ञान से भरा है। पूजा, भक्ति, दया, दान, व्रत आदि का शुभराग आता है जो विकार है-दोष है, वह स्वभाव नहीं है; स्वभाव में विकार नहीं है; इसप्रकार ज्ञानी शास्त्र का-यथार्थ जाननेवाला है। उन्हें आनन्द का फुआरा (फव्वारा) उछलता है। 'मैं' ज्ञानानन्द स्वरूप हूँ इसके अवलम्बन से आनंद प्रगट होता है। जैसे लेंडीपीपर में अंदर-पूर्ण तिखास और हरापन भरा है वैसे ही आत्मा ज्ञान औरआनंद से भरा हुआ है - ऐसी जिसने प्रतीति की है उसकी बात है।

प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा तथा अन्य प्रमाण द्वारा समस्त वस्तु को जाननेपर मोह नाश को प्राप्त होता हैं। विकार और संयोग से ज्ञान पृथक न हो तो आनन्द नहीं आता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

और शास्त्र को क्या कहना है उसका अर्थ वह नहीं समझता। **व्यवहार के कथन बहुत आते हैं किन्तु व्यवहार का फल संसार है** इसलिये निश्चय का भान करके वेदन कर।

निश्चय प्रमाणज्ञान है, यह आनन्द का देनेवाला है। चैतन्यस्वभाव नित्य ज्ञानानन्द स्वरूप है उसके यथार्थ ज्ञान द्वारा, स्वानुभव प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा तथा उससे अविरुद्ध अन्य प्रमाण समूह द्वारा शास्त्र का अभ्यास करना चाहिये। स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम ये परोक्ष ज्ञान के भेद हैं।

षटखंडागम, समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय आदि शास्त्र भगवान की वाणी अनुसार रचे गए हैं। जैसे सोने की परीक्षा करने के लिये काला पत्थर परखी पास रखते हैं; वैसे ही यहाँ भी परीक्षा करने के लिये कहते हैं। वीतराग की वाणी को प्रमाण द्वारा निर्णय करना चाहिये। अनुमान, प्रमाण आदि से समस्त वस्तुमात्र का निर्णय हो सकता है। इसप्रकार समस्त वस्तुमात्र को यथार्थ जाननेपर विपरीत अभिनिवेश नाश को प्राप्त हो जाता हैं।

भावज्ञान के अवलम्बन द्वारा शास्त्र का अभ्यास करना चाहिये। इसलिये मोह क्षय करने के लिये परमशब्दब्रह्म की उपासना का भावज्ञान के अवलम्बन द्वारा दृढ़ किये परिणाम से सम्यक् प्रकार से अभ्यास करना यह उपाय है। स्वभाव का ज्ञान हुआ है उसके द्वारा दृढ़ किये गये परिणाम से शास्त्र का सम्यक् प्रकार से अभ्यास करना यह अन्य उपाय है। राग की ज्ञान में नास्ति है और राग में ज्ञान की नास्ति है - ऐसा निर्णय करके शास्त्र अभ्यास करना चाहिये।

समस्त वस्तुमात्र को जानते ही मोह नाश को प्राप्त हो जाता है। यहाँ अकेले शास्त्र अभ्यास की बात नहीं समझना क्योंकि शास्त्र अभ्यास का विकल्प तो राग है। अन्दर सर्वज्ञशक्ति मेरे में विद्यमान हैं, शक्ति में से परमेश्वरता प्रगट होती है - ऐसे भगवान के अवलम्बन द्वारा अभ्यास करने की बात यहाँ कहीं है।

कोई कहे कि - सर्वज्ञ होने के पश्चात् तू यह सब मान लेना।

तो उससे कहते हैं कि - जैसे पानी पीने के पश्चात् प्याऊ पूछने से क्या काम ? अपितु पानी पीने के पहले घर (जहाँ पानी मिलता हो उसे) पूछना चाहिये; वैसे ही कोई कहे कि सर्वज्ञ होने के पश्चात् यह सब जान लेंगे तो उससे कहते हैं कि

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

फिर यथार्थ निर्णय करने से क्या काम रहा ? अतः पर्याय में सर्वज्ञ होने के पहले निर्णय करके मान कि - मैं वर्तमान में ही शक्तिरूप से सर्वज्ञ हूँ। स्वभाव की अपेक्षा रखकर स्वीकार कर। इसप्रकार स्वसन्मुख भावज्ञान के अवलम्बन द्वारा कहा। अधूरीदशा में शास्त्र अभ्यास का राग आयगा वह गौण रहता है। जो परिणाम भावज्ञान के अवलम्बन द्वारा दृढ़तर हो उस परिणाम द्वारा शास्त्र अभ्यास करना चाहिये।

अभी तो बहुतों को खबर ही नहीं है कि भगवान की वाणी किसे कहना अथवा साधु किसे कहना। जो निश्चय रत्नत्रयरूप अंतरंग शुद्धोपयोग में झूलते नग्न दिगम्बरदशा सहित होते हैं वे ही अल्पकाल में केवलज्ञान लेने की तैयारीवाले होते हैं वे ही साधू हैं; उन्हें तो गणधरदेव भी नमस्कार मंत्र द्वारा नमस्कार करते हैं। पंच नमस्कार मंत्र पढ़ते समय श्री गणधर बोलते हैं कि - हे ! सर्व साधू परमेष्ठी तुम्हारे चरणकमल में मेरा नमस्कार। जिनको नमस्कार किया है ऐसा परमेश्वरपद भी कोई अलौकिक है। रागरहित आत्मस्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान-रमणता करनेवाले को पंचपरमेष्ठीपद में शामिल किया है।

चारित्र ही वास्तव में मूल धर्म है और चारित्र का मूल सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन हो तो ही चारित्र पूज्य है।

ऐसे चारित्रवंत, पंच-परमेष्ठी में शामिल है। जैसा मार्ग है वैसा ही मानना-जानना चाहिये और जैसा निश्चय और व्यवहार का स्वरूप है वैसा ही जानना चाहिये। यहाँ अकेले शास्त्र की बात नहीं की है अपितु शुद्ध उपादान को सन्मुख रखकर-सत् शास्त्र का अभ्यास करना चाहिये - यह कहा है।

शब्द को निमित्तरूप कौन बनाएगा ?

निमित्त में उपादान नहीं है और उपादान में निमित्त नहीं है तथा राग में ज्ञान नहीं है और ज्ञान में राग नहीं है - ऐसी अनेकांत विद्या को पारमेश्वरी विद्या कहते हैं - ऐसे ज्ञान सहित की यहाँ बात है। बहोतों को तो सत्य समझने की दरकार ही नहीं है वे तो यह कहकर बहाना बनाते हैं कि - कोई सत्य का निर्णय कर ही नहीं सकता।

अथवा मत दर्शन घणां, कहे उपाय अनेक।
तेमा मत साचो कयो, बने न अेह विवेक॥

इसप्रकार कोई शिष्य शंका करता है किन्तु यहाँ तो लायक शिष्य की बात

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। भाई ! तू पहले निर्णय कर तो सही ठिकाने आ जायगा।

स्वभाव का सद्भाव और भव का अभाव कहनेवाले शास्त्र का अभ्यास करना। जो परिणाम भावज्ञान के अवलम्बन द्वारा दृढ़तर हों - ऐसे परिणाम से द्रव्य-श्रुत का अभ्यास करना वह मोह क्षय करने में उपायांतर है। आत्मा चैतन्य मूर्ति है जो निमित्त को-नहीं ला सकती और छोड़ भी नहीं सकती इसीतरह राग को भी लाया नहीं जा सकता और छोड़ा नहीं जा सकता - ऐसे भावज्ञान पूर्वक सर्वज्ञ देव निमित्त हैं। स्वयं उपादान की रुचि और लक्ष्य करे तो सर्वज्ञ देव की वाणी निमित्त कहलाती है। जिनके भव का अभाव हुआ है उनकी वाणी में भव के अभाव की बात आती है किन्तु भव और भव के कारणों को रखने की बात कभी भी वीतराग की वाणी में नहीं आती।

इस कसौटी से वीतराग की वाणी की यथार्थता ख्याल (समझ) में आती है। शुभराग करते-करते धर्म होगा अथवा मुनि को आहार देने से संसार का नाश होगा यह भगवान की वाणी में नहीं आता है अपितु वीतराग स्वरूप का आश्रय करने पर राग का अभाव होता है इसप्रकार स्वभाव का सद्भाव और राग का अभाव करने के लिये कहे उनकी वाणी अनेकांत वाणी है।

अरहंत के द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप जानकर अपना स्वरूप जानना वह भी एक उपाय है इसके बाद विशेष दृढ़ करने और राग का अभाव करने के लिये शास्त्र अभ्यास उपाय है। पूर्णज्ञान की प्रतीति-सम्यक् दर्शन है, ज्ञान का ज्ञान सम्यक् ज्ञान है, ज्ञान का ज्ञान में चरण (रमण) करना वह चारित्र है - ऐसा निश्चय करना चाहिये।

स्वलक्ष्य से ज्ञान की वृद्धि होना ही चारित्र है, बीच में जो विकल्प आता है वह चारित्र नहीं किन्तु दोष है। ज्ञान प्रगट करना और ज्ञान की एकाग्रता करना-यह केवल ज्ञान का उपाय है। नित्य चैतन्य स्वभावी हूँ यही श्रद्धा दृढ़ रखकर, शास्त्र का अभ्यास करना चाहिये। इसमें परिणामों की शुद्धता करना वही मुख्य है और वह मोह का नाश करने का उपाय है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचनसार गाथा ८७

अथ कथं जैनेन्द्रे शब्दब्रह्मणि किलार्थानां व्यवस्थितिरिति वितर्कयति-

दव्वाणि गुणा तेसिं पज्जाया अट्ठसण्णया भणिया।
तेसु गुणपज्जयाणं अप्पा दव्व त्ति उवदेसो ॥८७॥

अब, जिनेन्द्र के शब्द ब्रह्म में अर्थों की व्यवस्था (-पदार्थों की स्थिति) किसप्रकार है सो विचार करते हैं :-

उन द्रव्य-गुण-पर्याय सबकी अर्थ संज्ञा है कही।
उन गुणों पर्यायों का आत्मा द्रव्य जिन उपदेश ही॥ ८७॥

अन्वयार्थ :- **(द्रव्याणि)** द्रव्य, **(गुणाः)** गुण **(तेषां पर्यायाः)** और उनकी पर्यायें **(अर्थसंज्ञया)** 'अर्थ' नाम से **(भणिताः)** कही गई हैं। **(तेषु)** उनमें, **(गुणपर्यायाणाम् आत्मा द्रव्यम्)** गुण-पर्यायों का आत्मा द्रव्य है (गुण और पर्यायों का स्वरूप-सत्व द्रव्य ही है, वे भिन्न वस्तु नहीं है) **(इति उपदेशः)** इसप्रकार (जिनेन्द्र का) उपदेश है।

टीका :- द्रव्य, गुण और पर्यायों में अभिधेयभेद होनेपर भी अभिधान का अभेद होने से वे 'अर्थ' हैं (अर्थात् द्रव्यों, गुणों और पर्यायों में वाच्य का भेद होनेपर भी वाचक में भेद न देखें तो 'अर्थ' - ऐसे एक ही वाचक (-शब्द) से ये तीनों पहिचाने जाते हैं)। उसमें (इन द्रव्यों, गुणों और पर्यायों में से), जो गुणों को और पर्यायों को प्राप्त करते हैं-पहुँचते हैं अथवा जो गुणों और पर्यायों के द्वारा प्राप्त किये जाते हैं-पहुँचे जाते हैं - ऐसे [१]'अर्थ' वे द्रव्य हैं, जो द्रव्यों को आश्रय के रूप में प्राप्त करते हैं-पहुँचते हैं-अथवा जो आश्रयभूत द्रव्यों के द्वारा प्राप्त किये जाते हैं-पहुंचे जाते हैं - ऐसे 'अर्थ' वे गुण हैं, जो द्रव्यों को क्रमपरिणाम से प्राप्त करते

---

[१] 'ऋ' धातु में से 'अर्थ' शब्द बना है। 'ऋ' अर्थात् पाना, प्राप्त करना, पहुँचना, जाना। 'अर्थ' अर्थात् (१) जो पाये-प्राप्त करे-पहुँचे, अथवा (२) जिसे पाया जाये-प्राप्त किया जाये-पहुँचा जाये।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हैं-पहुंचते हैं अथवा जो द्रव्यों के द्वारा क्रमपरिणाम से (क्रमशः होनेवाले परिणाम के कारण) प्राप्त किये जाते हैं-पहुंचे जाते हैं - ऐसे 'अर्थ' वे पर्यायें हैं।

जैसे द्रव्यस्थानीय (-द्रव्य के समान, द्रव्य के दृष्टान्तरूप) सुवर्ण, पीलापन इत्यादि गुणों को और कुण्डल इत्यादि पर्यायों को प्राप्त करता है-पहुंचता है अथवा (सुवर्ण) उनके द्वारा (-पीलापनादि गुणों और कुण्डलादि पर्यायों द्वारा) प्राप्त किया जाता है-पहुंचा जाता है इसलिये द्रव्यस्थानीय सुवर्ण 'अर्थ' है, जैसे पीलापन इत्यादि गुण सुवर्ण को आश्रय के रूप में प्राप्त करते हैं-पहुंचते हैं अथवा (वे आश्रयभूत सुवर्ण के द्वारा प्राप्त किये जाते हैं-पहुंचे जाते हैं इसलिये पीलापन इत्यादि गुण 'अर्थ' हैं; और जैसे कुण्डल इत्यादि पर्यायें सुवर्ण को क्रमपरिणाम से प्राप्त करती हैं-पहुंचती हैं अथवा (वे) सुवर्ण के द्वारा क्रमपरिणाम से प्राप्त की जाती हैं-पहुंची जाती हैं इसलिये कुण्डल इत्यादि पर्यायें 'अर्थ' हैं; इसीप्रकार [१]अन्यत्र भी है, (इस दृष्टान्त की भाँति सर्व द्रव्य-गुण-पर्यायों में भी समझना चाहिये)।

और जैसे इन सुवर्ण, पीलापन इत्यादि गुण और कुण्डल इत्यादि पर्यायों में (-इन तीनों में, पीलापन इत्यादि गुणों का और कुण्डल इत्यादि पर्यायों का) सुवर्ण से अपृथकत्व होने से उनका (-पीलापन इत्यादि गुणों का और कुण्डल इत्यादि पर्यायों का) सुवर्ण ही आत्मा है, उसीप्रकार उन द्रव्य गुण पर्यायों में गुण-पर्यायों का द्रव्य से अपृथकत्व होने से उनका द्रव्य ही आत्मा है (अर्थात् द्रव्य ही गुण और पर्यायों का आत्मा-स्वरूप-सर्वस्व सत्व है)।

भावार्थ :- ८६ वीं गाथा में कहा है कि जिन शास्त्रों का सम्यक् अभ्यास मोहक्षय का उपाय है। यहाँ संक्षेप में यह बताया है कि उन जिन शास्त्रों में पदार्थों की व्यवस्था किसप्रकार कही गई है। जिनेन्द्रदेव ने कहा है कि - अर्थ (पदार्थ) अर्थात्

---

[१] *जैसे सुवर्ण, पीलापन आदि को और कुण्डल आदि को प्राप्त करता है अथवा पीलापन आदि और कुण्डल आदि के द्वारा प्राप्त किया जाता है (अर्थात् पीलापन आदि और कुण्डल आदि के सुवर्ण को प्राप्त करते हैं) इसलिये सुवर्ण 'अर्थ' है, वैसे द्रव्य 'अर्थ' है; जैसे पीलापन आदि आश्रयभूत सुवर्ण को प्राप्त करता है अथवा आश्रयभूत सुवर्ण द्वारा प्राप्त किये जाते हैं (अर्थात् आश्रयभूत सुवर्ण पीलापन आदि को प्राप्त करता है) इसलिये पीलापन आदि 'अर्थ' हैं; वैसे गुण 'अर्थ' हैं; जैसे कुण्डल आदि सुवर्ण को क्रमपरिणाम से प्राप्त करते हैं अथवा सुवर्ण द्वारा क्रमपरिणाम से प्राप्त किया जाता है (अर्थात् सुवर्ण कुण्डल आदि को क्रमपरिणाम से प्राप्त करता है) इसलिये कुण्डल आदि 'अर्थ' हैं, वैसे पर्यायें 'अर्थ' हैं।*

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

द्रव्य, गुण, और पर्याय; इसके अतिरिक्त विश्व में दूसरा कुछ नहीं है, और इन तीनों में गुण और पर्यायों का आत्मा व (-उसका सर्वस्व) द्रव्य ही है। ऐसा होने से किसी द्रव्य के गुण और पर्याय अन्य द्रव्य के गुण और पर्यायरूप किंचित् मात्र नहीं होते, समस्त द्रव्य अपने-अपने गुण और पर्यायों में रहते हैं - ऐसी पदार्थों की स्थिति मोहक्षय के निमित्तभूत पवित्र जिन शास्त्रों में कही है ॥८७॥

गाथा ८७ पर प्रवचन

त्रिलोकीनाथ सर्वज्ञ भगवान के कहे गए शास्त्र से पदार्थों का **स्वलक्ष्य से यथावत्** (बराबर) अभ्यास करना, जिससे मोह नाश को प्राप्त हो। ज्ञान निमित्त के लक्ष्य से नहीं बढ़ता अपितु सर्वज्ञ भगवान ने द्रव्य-गुण-पर्यायरूप जैसा स्वरूप जाना है वैसा ही विचार करना चाहिये। अब, जिनेन्द्र के शब्द-ब्रह्म में द्रव्य-गुण-पर्याय किसे कहते हैं उसकी यहाँ बात करते हैं। भगवान ने जैसे पदार्थ देखे हैं वैसा ही उनकी वाणी में आया है उसका अभ्यास स्व-लक्ष्य से करे तो-मोह दूर हुए बिना नहीं रहे।

यहाँ द्रव्य-गुण और उनकी पर्यायें-तीनों को अर्थ नाम से कहा है। यहाँ अर्थ अर्थात् पैसा नहीं समझना।

(१) 'अर्थ का' अर्थात् पैसे का पुरुषार्थ कहते हैं-यह बात यहाँ नहीं है।

(२) शुभ भाव का पुरुषार्थ करे वह पुण्य भाव है।

(३) काम-विषय का पुरुषार्थ वह पाप भाव है।

(४) मोक्ष का पुरुषार्थ वह शुद्ध भाव है।

इन चारों में यहाँ अर्थ का अर्थात् 'पैसे का' - ऐसा अर्थ नहीं लेना अपितु अर्थ अर्थात् द्रव्य-गुण-पर्याय और गुण-पर्याय का स्वरूप अर्थात् सत्व, वही गुण-पर्याय का आत्मा है। प्रत्येक पदार्थ, उनके गुण-पर्याय से पृथक नहीं है - ऐसा जिनेन्द्र का उपदेश है। द्रव्य अपने गुण-पर्याय को प्राप्त होता है और पर्याय द्रव्य को प्राप्त होती है।

द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में भाव भेद होनेपर भी तीनों को 'अर्थ' - ऐसे एक ही नाम से कहा जाता है। द्रव्य अर्थात् शक्तिवान वस्तु गुण अर्थात् शक्ति, पर्याय

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अर्थात् अवस्था इन तीनों में वाचक और वाच्य भेद है किन्तु तीनों का स्वरूप अभेद गिनकर (समझकर यदि) एक नाम लिया जाय तो तीनों को अर्थ कहा जाता है। गुण शब्द शक्ति को बताता है, पर्याय शब्द अवस्था को बताता है फिर भी यदि वाचक में भेद नहीं रखा जाये तो अर्थ - ऐसे एक ही शब्द से तीनों पहिचाने जाते हैं।

तत्त्वार्थ में तत्त्व और अर्थ - ऐसे दो शब्द कहे है वहाँ सातों तत्त्वों को अर्थ कहा है। जीव, अजीव ये दो सामान्यरूप से अर्थ है और आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष-पर्यायरूप से अर्थ है। अर्थ स्वरूप को तत्त्व कहते हैं। द्रव्य का स्वभाव गुण-पर्याय का पिंड है, गुण का स्वभाव अर्थात् वह त्रिकाली शक्तिरूप भाव है और पर्याय अर्थात् व्यक्त अवस्था-दशा; इसप्रकार स्वभाव भेद है। इसप्रकार द्रव्य-गुण-पर्याय के नाम भेद तीन हैं किन्तु तीनों का वाचक भेद निकालकर यदि तीनों को एक ही शब्द से कहें तो उनको अर्थ कहा जाता है।

द्रव्य-गुण-पर्याय तीन, तीनरूप से जुदी चीज है। पर्याय एक समय की है, गुण-शक्ति त्रिकाल है और गुण-पर्याय का पिंड वह द्रव्य है। तीनों के भाव में-सत्त्व में भेद होनेपर भी यदि उन्हें एक शब्द से कहना हो तो 'अर्थ' शब्द से कहा जाता है।

प्रत्येक द्रव्य अपने गुण-पर्याय को पहुंचता है किन्तु वह दूसरे के गुण-पर्याय को नहीं पहुंचता। उसमें इन द्रव्यों, गुणों और पर्यायों में से जो गुणों को और पर्यायों को प्राप्त करते हैं-पहुंचते हैं अथवा जो गुणों और पर्यायों द्वारा प्राप्त किये जाते हैं-पहुंचते हैं - ऐसा अर्थ वह द्रव्य है।

प्रत्येक आत्मा और परमाणु अपने गुणों को तथा पर्याय को प्राप्त करता है। आत्मा वस्तु है वह अपने गुणों में अभेद है और उनकी पर्यायों को प्राप्त होता है। आत्मा अपनी विकारी और अविकारी पर्याय को प्राप्त होता है। इस ऊँगली की अवस्था को परमाणु-पहुंचता है किन्तु आत्मा नहीं पहुँचता। आत्मा तो अपने ज्ञान-दर्शन-चरित्र को पहुँचता है।

एक परमाणु द्रव्य उनके स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-गुण को प्राप्त करता है उसकी हलन चलन की पर्याय को वह परमाणु पहुँचता है और प्राप्त करता है। दूसरा परमाणु उसकी पर्याय को नहीं पहुँचता। लोग कहते हैं कि - इसे पैसा मिला, इसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रतिष्ठा मिली; वहाँ क्या मिला ? वह आत्मा तो ममता को प्राप्त हुआ है-पहुँचा है और प्रतिष्ठा के परमाणु प्रतिष्ठा को पहुँचते हैं।

अनन्त जीव, अनन्तानंत पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल - ऐसे छहों द्रव्य अपने-अपने गुण तथा पर्याय को प्राप्त होते हैं। हमारी पर्याय को दूसरा जीव प्राप्त करे, जैसे हमने इन्हें आहार दिया, हमने इनकी व्यवस्था कर दी - ऐसा माननेवाला मूढ़ है। निमित्त बताने के लिए व्यवहार का कथन आता है किन्तु पर द्रव्य के गुण पर्याय को आत्मा पहुंचे - ऐसा नहीं होता।

एक द्रव्य की पर्याय को दूसरा प्राप्त हो और पहुंचे - ऐसा वस्तु स्वरूप ही नहीं है; ऐसे द्रव्य-गुण-पर्याय के अभ्यास से मोह नाश को प्राप्त होता है। संसार की पर्याय को आत्मा पहुँचता है-प्राप्त होता है। दाल की अवस्था को वे परमाणु पहुँचते हैं। अग्नि, स्त्री, पानी के कारण दाल की अवस्था नहीं हुई है। अज्ञानी को भ्रम होता है कि संयोग के कारण दाल उन-उन अवस्थाओं को प्राप्त करती है यह (उसके) भेद-ज्ञान के अभाव को बताता है।

इसमें धर्म कैसे आया ?

स्वयं विकार को पहुंचता है - ऐसा निर्णय करनेवाले की दृष्टि क्षणिक विकार से हटकर द्रव्य की ओर जाती है - यह धर्म है। आत्मा अपनी पर्याय को ही पहुंचता है इसलिए विकार को भी स्वयं ही पहुँचता है किन्तु विकार क्षणिक है, बदल जाता है और स्वभाव त्रिकाली है इसलिए त्रिकाली स्वभाव की रुचि होनेपर वह क्रमबद्ध अविकारी दशा को प्राप्त करता है - यही धर्म वार्ता है।

दिव्यवाणी में वस्तु की जो मर्यादा भगवान ने कही है कि - प्रत्येक द्रव्य अपने गुण-पर्याय को प्राप्त होता है - यही वस्तु की मर्यादा है। अतः आत्मा भी अपने गुण-पर्याय को प्राप्त होता है किन्तु दूसरे पदार्थ आत्मा की पर्याय को पहुंच जावे - ऐसी वस्तु की मर्यादा नहीं है तथा आत्मा दूसरे पदार्थ की पर्याय को पहुंचे - ऐसी भी वस्तु की मर्यादा नहीं है - यह महासिद्धांत है।

आत्मा, गुण-पर्याय स्वरूप द्रव्य है इसका अर्थ यहाँ कहा है। एक शरीर में अनन्त एकेन्द्रिय जीव हैं - वे निगोद के आत्मा भी स्वतंत्ररूप से अपने गुण-पर्याय को प्राप्त करते हैं किन्तु कर्म के कारण नहीं। इसके विपरीत अज्ञानी जीव कहता है

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कि - असंख्य प्राणी कर्म के कारण विकार करते हैं- जो असत्य है।

पानी की उष्णता को वे परमाणु प्राप्त करते हैं किन्तु अग्नि के कारण पानी में उष्णता नहीं हुई है क्योंकि अग्नि के परमाणु पानी की अवस्था को प्राप्त नहीं होते। अनन्त द्रव्य अपने-अपने सामान्य स्वभाव को तथा अपनी-अपनी पर्यायरूप विशेष स्वभाव को प्राप्त होते हैं और पहुंचते हैं; इसलिए निमित्त आए तो उनकी पर्याय होती है और नहीं आए तो उनकी पर्याय नहीं होती यह बात ही नहीं रहती; निमित्त भी अपनी पर्याय को प्राप्त करता है किन्तु निमित्त उपादान की पर्याय को पहुंच जावे - ऐसी वस्तु की मर्यादा ही नहीं है। निमित्त स्वयं के लिए उपादान है। जीव में जो भ्रांति होती है उसे उसका द्रव्य प्राप्त करता है किन्तु पर द्रव्य को कोई नहीं ला सकता-अज्ञानी को भ्रम होता है।

त्रिलोकीनाथ परमेश्वर के शब्द ब्रह्म की वाणी में छहों द्रव्य के अर्थपने यह यथार्थ व्यवस्था कहने में आई है; इससे विरुद्ध कहे वह वीतराग का दुश्मन है। अज्ञानी को निमित्ताधीनता की रुचि होने से वह विपरीत मान्यता को प्राप्त करता है किन्तु वह दर्शनमोह नाम के जड़कर्म के कारण नहीं परिणमा है। इसप्रकार पदार्थ का जैसा स्वभाव है वैसा समझे तो ही निमित्त और विकार की रुचि छूटकर स्वभाव सन्मुखता (धर्म) हो।

लोग कहते हैं कि हमें जीवों को तो बचाना चाहिए ?

तो उससे पूछते हैं कि तू तेरी पर्याय को प्राप्त होता है और दूसरे की पर्याय को भी प्राप्त होता है, तो क्या ऐसे दो काम करता है ? अनन्त पदार्थ भिन्न-भिन्न हैं ऐसा एकबार तो स्वीकार कर। अनन्त पदार्थ अपनी-अपनी पर्याय को प्राप्त करते हैं - ऐसा भेदज्ञान कर। कर्म का उदय अपनी पर्याय को प्राप्त करता है किन्तु कर्म का उदय आत्मा के राग को प्राप्त नहीं करता; इसतरह सर्वप्रथम द्रव्य-गुण-पर्याय के वास्तविक स्वरूप को जानना चाहिए।

आटा, रोटी की पर्याय को प्राप्त होता है। कर्म का प्रत्येक रजकण उसकी अपनी पर्याय को प्राप्त होता है; जब वह किसी दूसरे कर्म के परमाणु को भी स्पर्श नहीं करता तो फिर वह सदैव अस्पर्शी - ऐसे जीव को प्राप्त हो यह कभी नहीं हो सकता।

हम जैन है इसलिये हमें 'णमो अरिहन्ताणं' बोलना चाहिए - इतने मात्र से

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

काम नहीं चलेगा, अपितु सर्वज्ञ ने क्या जाना ? क्या कहा ? और उनके द्वारा कहा गया वस्तुस्वरूप क्या है ? उसे जानना चाहिए। इस लकड़ी की ऊपर होनेरूप अवस्था हाथ के कारण नहीं हुई है अथवा ज्ञान के कारण भी वह नहीं हुई है अपितु वह द्रव्य स्वयं अपने द्रव्य-गुण-पर्याय को पहुंचता है इसलिए उनकी गति, स्थिति आदि पर्यायें स्वयं उनसे हैं - पराधीन नहीं।

अपने गुण-पर्याय द्वारा तो द्रव्य को पहुंचा जा सकता है किन्तु किसी दूसरे द्रव्य के गुण-पर्यायों द्वारा अपने द्रव्य को नहीं पहुंच सकते। जितने भी द्रव्य हैं वे अपने गुण और पर्याय द्वारा प्राप्त किये जाते हैं; इसलिये आत्मा भी अपने गुणों और पर्यायों द्वारा प्राप्त होता है किन्तु अन्य (दूसरे) निमित्त द्वारा अथवा दूसरे की पर्याय द्वारा प्राप्त नहीं होता है।

प्रश्न :- क्या आत्मा राग के द्वारा प्राप्त किया जाता है ?

समाधान :- राग, वह एक समय का पर्याय सत् है और वह इस द्रव्य की है - ऐसा निर्णय करने पर त्रिकाली द्रव्य शुद्ध है - ऐसा निर्णय होता है। देखो ! वस्तु की व्यवस्था-पदार्थों की मर्यादा। जो इस मर्यादा का उल्लंघन करता है वह मिथ्यादृष्टि होता है। यह ज्ञान सो आत्मा है, यह पर्याय आत्मा की है। स्वयं की गुण-पर्याय द्वारा द्रव्य को पहुंचा जाता है किन्तु अन्य की गुण पर्यायों द्वारा अपने द्रव्य को नहीं पहुंचा जाता है। द्रव्य, अपने गुण-पर्यायों को पहुंचता है और गुण-पर्याय द्वारा द्रव्य को पहुंचते हैं, इसप्रकार यहाँ परस्पर (बात) ली है।

पहले द्रव्य को कारण लिया फिर गुण-पर्याय को कारण लिया और कहा कि यह परमाणु उनके गुण-पर्यायों द्वारा निश्चित होता है। अतः अब निमित्त आये तो कार्य होता है यह बात नहीं रही। जैसे किसी की नई-नई शादी हुई है और लड़का स्त्री के राग में खोकर मोह में पड़ गया है जिससे अपनी माँ को भूल गया है; वैसे ही अज्ञानी आत्मा अपने द्रव्य-गुण-पर्याय को भूल गया है और दूसरे चेतन और पुद्गल में गुम हो गया है।

द्रव्य को अर्थ क्यों कहा ?

यहाँ अर्थ अर्थात् प्राप्त होना-प्राप्त करना-पहुंचना है। द्रव्य अपने गुण-पर्याय को पहुंचता है और द्रव्य को अपने गुण पर्याय द्वारा प्राप्त किया जाता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

द्रव्य अपने गुण-पर्याय में जाता है और गुण-पर्याय अपने द्रव्य में जाते हैं किन्तु वे पर में नहीं जाते - ऐसा अर्थ वह द्रव्य है। गुण द्रव्य के आश्रय से प्राप्त किये जाते हैं अथवा आश्रयभूत द्रव्यों के द्वारा प्राप्त किये जाते हैं।

अब, गुण को 'अर्थ' क्यों कहा गया है - उसकी बात चलती है। गुण हैं वे द्रव्य को आश्रयरूप से प्राप्त होते हैं-प्राप्त करते हैं-पहुंचते हैं। गुणों का आधार द्रव्य है। द्रव्य के आश्रय से सर्वज्ञता को पहुंचा जाता है; इसीतरह दर्शन, चारित्र, अगुरुलघुत्व, प्रभुत्व गुण द्रव्य के आधाररूप से पहुंचते हैं। स्पर्श, रस आदि भी उनके द्रव्य के आधाररूप से पहुंचते हैं अथवा जो आश्रयभूत द्रव्य द्वारा प्राप्त होते हैं-प्राप्त किये जाते हैं-पहुंचते हैं - ऐसे अर्थ वे गुण हैं।

जिसका जो स्वभाव है उसमें उसे धारण किये रखे वह धर्म है। अज्ञानी कल्पना करता है कि-इतने धन का संग्रह रखूं तो ठीक होगा और मरण पर्यंत कोई परेशानी नहीं होगी, पुत्र बड़ा हो जाय तो शांति पूर्वक धर्म हो - ऐसा माननेवाला अज्ञानी मिथ्यात्व को पहुंचता है। पुत्र उसकी पर्याय को पहुंचता है-उससे तुझे क्या? किसी भी संयोग को जीव प्राप्त नहीं करता किन्तु अपनी पर्याय को प्राप्त करता है, इसप्रकार आचार्य ने गुण की बात की।

पर्याय द्रव्य को क्रम परिणाम से पहुंचती-प्राप्त करती है - ऐसा निर्णय होनेपर सम्यक्‌दर्शन होता है। अब, पर्याय को अर्थ कहते हैं; पर्याय क्रमवर्ती है। क्रमवर्ती अर्थात वह एक के बाद एक होती है। जैसे पैर एक के बाद एक निकलते (चलते) हैं; वैसे ही प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध वर्तती है; वे द्रव्य को क्रम परिणाम से प्राप्त करती हैं-पहुंचती हैं। जैसे टिकिट लेने के लिये ५० आदमी लाईन से खड़े हों तो सभी को एक के बाद एक टिकट मिलती है अर्थात् वे क्रम परिणाम से प्राप्त करते है-पहुंचते हैं किन्तु एक ही साथ सभी पर्यायें प्राप्त हो जाय - ऐसा नहीं होता।

जिससमय जो पर्याय होनी होती है उस समय वही पर्याय द्रव्य को पहुंचती है। यहाँ क्रम परिणाम में विकारी और अविकारी सभी पर्यायें समझना। क्रमपरिणाम से अर्थात् क्रमबद्ध-एक के बाद एक परिणाम उत्पन्न होते हैं-प्राप्त होते हैं किन्तु कोई भी परिणाम उल्टा-सीधा (आगे पीछे) नहीं होता।

द्रव्य-गुण अक्रम हैं और पर्यायें क्रम से पहुंचती हैं - ऐसे द्रव्य के सन्मुख

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दृष्टि होनेपर मिथ्यात्व पलटकर सम्यग्दर्शन होता है वह धर्म है। एकांत सभी को अक्रम माने तो व्यवस्था नहीं रही जैसे एक समय में अनन्त गुण क्षेत्र से चौड़ाई रूप एक ही साथ है, वैसे ही काल क्रम से वर्तती पर्यायें एक समय में खड़ी है वह उर्ध्व क्रम है इसलिये वे एक के बाद एक होती है किन्तु उल्टी-सीधी बात नहीं होती इसका अर्थ यह है कि आत्मा की ज्ञान सम्पदा का निर्णय कर, सर्वज्ञ द्वारा कहे हुये पदार्थ की मर्यादा यह है; इस मर्यादा को जो नहीं समझता उसका ज्ञान सच्चा नहीं होता।

इसप्रकार पर्याय क्रम परिणाम से प्राप्त होती है किन्तु उसमें उल्टा-सीधा नहीं होता इसलिये तू ज्ञाता-दृष्टा ही रहा जो द्रव्य द्वारा क्रम परिणाम से प्राप्त किया जाता है।

पर्याय कैसे प्राप्त की जाती है ?

पर्याय अपने क्रम परिणाम से प्राप्त की जाती है किन्तु वह किसी दूसरे के क्रम परिणाम से प्राप्त की जाय - ऐसा नहीं है। परमाणु की पर्यायें परमाणु द्वारा ही-क्रम परिणाम से प्राप्त होती हैं। दूसरे की पर्याय को मैं उल्टी-सीधी (इधर-उधर) करूँ - ऐसा माननेवाला ज्ञाता स्वभाव को भूलता है। आत्मा अपने क्रम परिणाम से प्राप्त किया जाता है।

अनुकूल निमित्त थे तो अच्छे परिणाम हुए यदि ये नहीं आए होते तो ये परिणाम नहीं होते - यह मान्यता भ्रांति है क्योंकि पर्यायें अपने-अपने द्रव्य द्वारा क्रम परिणाम से प्राप्त की जाती हैं - ऐसा ज्ञान जानता है। इसलिये अक्रम द्रव्य-गुण के लक्ष्य से, क्रम के निर्णय में ही पुरुषार्थ है। क्रमबद्ध का निर्णय करने पर त्रिकाली द्रव्य ऊपर दृष्टि होती है - और यही पुरुषार्थ है। यहाँ इन तीनों की व्याख्या में सम्पूर्ण विश्व की व्यवस्था बता दी गई है।

जो अपने-अपने द्रव्यों द्वारा, क्रम से होनेवाले परिणाम के कारण प्राप्त किये जाते हैं-पहुंच जाते हैं। विकार परिणाम को क्रम से पहुंच जाते हैं। इस शुभराग को हठ पूर्वक लाऊं- यह अज्ञान है। क्योंकि द्रव्य उसके क्रम परिणाम से पहुंचेगा, ऐसा शुभराग करूँ तो शुभ होगा और ऐसा अशुभ करूं तो अशुभ होगा यह अज्ञान है। **द्रव्य द्वारा पर्याय की प्राप्ति की जाती है किन्तु पर्याय द्वारा पर्याय की प्राप्ति नहीं होती।** यथार्थ वस्तुपने वस्तु को जाने तो धर्म होता है किन्तु विपरीत

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जाननेपर धर्म नहीं होता।

तेरी पर्याय द्वारा दूसरी पर्याय में फेरफार करने जाय तो कर्तापने की आकुलता और अज्ञान होगा, किन्तु धर्म नहीं होगा। परिणाम क्रम से ही प्राप्त किये जा सकते हैं - ऐसे निर्णय में ज्ञाता स्वभाव का निर्णय है इसलिये कर्तापने के भ्रम को छोड़कर, तू ज्ञाता-दृष्टा है ऐसा निर्णय कर। इसके अनुसार 'अर्थ' अर्थात् पहुंचता है-प्राप्त होता है; इसके ऊपर से द्रव्य-गुण-पर्याय तीन की बात की है।

सोने की अंगूठी, कड़ा आदि अवस्था को सोना पहुंचता है किन्तु सोनी अथवा हथौड़ा उसे नहीं पहुंचता है। इस अधिकार में ऐसा कहते हैं कि वीतराग देव द्वारा कहे गये अर्थ द्रव्य-गुण-पर्याय का यथार्थ ज्ञान वह मोह के क्षय का कारण है। जिसे वास्तविक द्रव्य-गुण-पर्याय की रुचि नहीं है अर्थात् उसे अवास्तविकपने की रुचि है, क्योंकि वास्तविकपनेकी रुचि होनेपर मोह नाश को प्राप्त होता है।

अब, द्रव्य-गुण-पर्याय की बात को सोने के दृष्टांत में उतारते हैं। द्रव्य के स्थान पर स्वर्ण द्रव्य, पीलापन आदि गुणों को और कुण्डलादि अवस्था को प्राप्त करता है - पहुंचता है। कुण्डलादि पर्याय को सोना प्राप्त करता है किन्तु सोनी से वह प्राप्त नहीं होता। पैसे की पर्याय को पैसा प्राप्त करता है और सोने की पर्याय को सोनी प्राप्त करता है। सोना स्वयं अपनी पर्याय को प्राप्त होता है। पीलापन चिकनापन आदि उसके गुण हैं और अंगुठी, कड़ा, कुण्डलादि पर्यायें हैं। सोना स्वयं ही अपने गुण को तथा पर्याय को प्राप्त होता है - पहुंचता है। सोना द्रव्य है, उसका पीलापन आदि गुण हैं तथा उसमें स्वकाल में कड़ा आदि की जो अवस्था होती है उसे सोना प्राप्त करता है किन्तु अज्ञानी को भ्रम होता है।

हथौड़ी के रजकण जगत की वस्तु हैं, वे कायम रहकर बदलते हैं। हथौड़ीरूप पर्याय को वे रजकण प्राप्त करते हैं किन्तु इसकी पर्याय सोने की पर्याय को प्राप्त कराती हो ऐसा नहीं है। **यह तो विज्ञान का विज्ञान है।** जगत में जितने भी पदार्थ हैं वे सभी पदार्थ अपने गुण की अवस्था को पहुंचते हैं। सोना पीलापन, चिकनेपन को और उनकी पर्याय को पहुंचता है। गुण आधेय है और सोना आधार है। सोना अपने गुणों तथा कुण्डलादि (अवस्था) को पहुंचता है किन्तु सोनी की इच्छा अथवा सोनी का ज्ञान कुण्डल को नहीं पहुंचता। हथौड़ी की अवस्था को

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हथौड़ी पहुंचती है किन्तु हथौड़ी कुण्डल को नहीं पहुंचती।

"स्वस्थ भवनम्" यह स्वभाव है। अपना परिणमन स्वभाव स्वयं से ही है इसलिये अन्य किसी भी दूसरी वस्तु के कारण अवस्था प्राप्त नहीं होती। **अज्ञानी भी पर की पर्याय को प्राप्त नहीं करता मात्र भ्रम को ही प्राप्त करता है।**

इन पांच सौ मनुष्यों के लिये आपने लड्डू बनाकर दिये हैं - ऐसा कहा जाता है, किन्तु लड्डू स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णवाली वस्तु है वह अपने गुणों को प्राप्त करती है और उसकी लड्डूरूप अवस्था को पुद्गल द्रव्य प्राप्त करता है; दसूरे ने लड्डू बनाया यह उपचार का कथन है। वस्तु स्वयं अपने कारण से परिणमित हो तब अन्य वस्तु को अनुकूल देखकर निमित्त कहा जाता है किन्तु निमित्त के कारण द्रव्य अपने परिणाम को प्राप्त होता है - ऐसा नहीं है।

वर्तमान में, सोने में कड़े की अवस्था प्राप्त होनेवाली नहीं थी किन्तु हथौड़ी के कारण वह हुई हो - ऐसा वस्तु स्वरूप ही नहीं है। लोग कहते हैं कि इस जीव को पांच लाख रुपये मिले इसका क्या अर्थ है ? जो वस्तु क्षेत्रान्तर होनेवाली थी वह वस्तु उसकी अवस्था को प्राप्त होती है किन्तु जीव कभी भी रुपये को प्राप्त नहीं करता किन्तु यह वस्तु मुझे प्राप्त हुई है - ऐसे भ्रम को प्राप्त करता है।

प्रश्न :- तो फिर रुपये को छोड़ दें ?

उत्तर :- पर वस्तु का ग्रहण अथवा त्याग जीव के आधीन नहीं है पर वस्तु को दूर करने की अवस्था को किसी भी तरह कोई दूसरा नहीं कर सकता किन्तु एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र जाने रूप अवस्था उस पदार्थ के आधीन होने से वह पदार्थ उस अवस्था को प्राप्त करता है। अज्ञानी अभिमान करता है किन्तु वस्तु की सामर्थ्य-सत्व को नहीं देखता और दूसरी वस्तु के कारण उसे सामर्थ्य आई है - ऐसा मानता है यह संयोग दृष्टि है जो अनन्त संसार भ्रमण का कारणरूप भ्रम है।

राग अंश, अंशी का है - ऐसे अंशी स्वभाव का ज्ञान होनेपर सम्यग्दर्शन होता है। आत्मा वस्तु है जो अपनी विकार-अविकार दशा को प्राप्त होता है। हिंसा, झूठ, चोरी के पाप की अवस्था अथवा दया, दानादि की पुण्यरूप अवस्था को प्राप्त करता है किन्तु उसकी अवस्था से दूसरे जीव मरे अथवा बचे - ऐसा नहीं होता।

जैसे किसी मनुष्य ने बहुत रुपये कमाए हैं - तो उसने बुद्धि द्वारा कमाया

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होगा। बुद्धि क्या है ? वह ज्ञानगुण की पर्याय (दशा) है। आत्मा वस्तु है, ज्ञान त्रिकाल है उसकी मति-श्रुत ज्ञानरूप दशा है; इस अवस्था द्वारा आत्मा को पहुंचता है, किन्तु बुद्धि की अवस्था से बाहर के काम हुये हों यह बात असत्य है। जगत् की जड़ अथवा चेतन वस्तुएँ सभी उनकी अवस्था रूप कार्य को करती हैं और पहुंचती हैं - ऐसा स्वरूप होनेपर भी दूसरा उसे प्राप्त करता है - ऐसा अज्ञानी को भ्रम हुआ है।

आत्मवस्तु ज्ञानानन्द स्वरूप है, आदि-अंत रहित है; जो है उसे बनानेवाली, रक्षा करनेवाली कोई अन्य सत्ता नहीं होती, जो है उसका कभी अभाव नहीं होता तथा जो वस्तु है उसका स्वभाव भी होता है। जानना-देखना यह आत्मा का स्वभाव है। प्रत्येक आत्मा अपने-अपने गुण-पर्याय आदि को पहुंचता है और जो विकार होता है उसको भी आत्मा ही पहुंचता है किन्तु कर्म के कारण विकार नहीं होता। तथा **शुभाशुभ विकार द्वारा आत्मा प्राप्त होता है-पहिचाना जाता है।**

विकार किसका है ?

विकार आत्मा के चारित्र गुण की अशुद्ध पर्याय है। यह क्षणिक विभाव की स्थिति एक समय की होने से त्रिकाली स्वद्रव्य के लक्ष्य से दूर की जा सकती है। इसप्रकार आत्मा शुद्ध चिदानंद ख्याल (ज्ञान) में आता है। कोई जीव कर्म के कारण विकार को प्राप्त करता है - ऐसा नहीं है। स्वयं में अपना स्वभाव चिदानंद भरा हुआ है उसकी विपरीत दशा को अथवा सीधी दशा को आत्मा पहुँचता है।

अशुद्धता के ज्ञान द्वारा भी आत्मा किस तरह प्राप्त होता है ?

यह अशुद्धता अंश, किस अंशी का है ? आत्मा का है ? आत्मा तो कायमी रहनेवाला है कायमी स्वभाव ज्ञाता-दृष्टा है उसका ख्याल आए तो राग को ज्ञेय बताते हैं। इसप्रकार स्वभाव में एकाग्र होनेपर स्वयं दृढ़ता सहित अपूर्व आनन्द आता है यह सम्यग्दर्शन है। भगवान की पूजा का भाव शुभराग है, रागदशा को देखकर आत्मा का ख्याल आता है। क्षणिक विकार है वह नित्य स्वभाव में नहीं है। स्वभाव में विकार नहीं इसप्रकार ज्ञानस्वभाव में विकार होनेपर सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चरित्र होता है इसे धर्म कहते हैं।

ज्ञान और आनन्द कहाँ मिलते हैं ?

आत्मा में।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अब, सोने के गुण की बात करते हैं। पीलापन आदि गुण सोने के आधार से रहते हैं किन्तु किसी दूसरे के आधार से नहीं रहते अर्थात् सोनी तथा हथोड़ी के आधार से नहीं रहते। वस्तु आश्रय है-आधार है और शक्तियां आधेय हैं अथवा गुण आश्रयभूत स्वर्ण द्वारा प्राप्त होते हैं।

गुण कहाँ मिलते हैं ? द्रव्य में। वैसे ही आत्मा का ज्ञान और आनन्द कहाँ मिलेगा ? ज्ञायक वस्तु में। इसलिये ज्ञान और आनन्द आत्मा को प्राप्त करते हैं; वे गुण बाहर से प्राप्त नहीं किये जाते। गुण दूसरे द्रव्य द्वारा नहीं पहुंचते। ज्ञान और आनन्द की सिद्धि वस्तु के आश्रय से होती है। इस आनन्द की विपरीतदशा विकार और दुःख है।

दुःख को कौन प्राप्त करता है ? आत्मा, किन्तु कोई दूसरा जीव दुःख से नहीं छुड़ा सकता। आत्मा अपने आनन्द को प्राप्त करता है अर्थात् आनन्द आत्मा में से मिलता है। आनन्द की विपरीत दशा को आत्मा प्राप्त करता है वह क्षुधा-तृषा के कारण नहीं।

स्वर्ण आदि द्रव्य अपनी प्रत्येक पर्याय को क्रम परिणाम से प्राप्त करते हैं। कुण्डल आदि पर्याय भी स्वर्ण को क्रम परिणाम से प्राप्त करती है-पहुंचती है। भिन्न-भिन्न अवस्था उत्पन्न होती हुई उनके द्रव्य को प्राप्त करती है। स्वर्ण द्रव्य द्वारा उसकी पर्याय क्रम परिणाम से ही प्राप्त की जाती है। एक साथ सभी पर्यायें प्राप्त नहीं होती अर्थात् जिस समय कड़े की पर्याय है उसी समय अंगूठी नहीं होती। जैसे सोना अपनी पर्याय को क्रम परिणाम से प्राप्त करता है वैसे ही आत्मा विकार अथवा अविकार दशा को क्रम से प्राप्त करता है।

आत्मा वस्तु है, आनन्द गुण है उसकी विपरीत दशा वह दुःख है और दुःख दशा को आत्मा प्राप्त करता है। इस दुःख दशा को देखकर भी आत्मा सिद्ध होता है। दुःख का वेदन शरीर को नहीं होता, शरीर की रोग अवस्था निरोग अवस्था क्रम से होती है। रोग के समय निरोग नहीं और निरोग के समय रोग अवस्था नहीं होती यह परमाणु की अवस्था है आत्मा की नहीं। स्वपर की पृथकता के अज्ञान के कारण अज्ञानी शरीर की निरोग अवस्था को देखकर सुख की कल्पना करता है और रोग अवस्था को देखकर दुःख की कल्पना करता है यह सुख-दुःख

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

की कल्पना पर के कारण और रोग के कारण भी नहीं हुई है।

धर्म कहाँ होता है ?

अंश का अस्तित्त्व स्वीकार करके अंशी स्वभाव की दृष्टि करे वह धर्म है। मन्दिर में अथवा भाषा में धर्म नहीं होता। आत्मा में ज्ञान-दर्शन, आनन्द आदि गुण बसे हैं। आत्मा (पर्याय) अंश से विकार को प्राप्त करता है किन्तु सम्पूर्ण त्रिकाल स्वभाव अंश में नहीं आ गया है; इसप्रकार ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव का ख्याल करे और विकार को ज्ञेय बनाए तो धर्म होता है।

लोग उपवास में धर्म मान बैठे हैं। मैंने इन पदार्थों को छोड़ा इसमें धर्म मानते हैं। स्वलक्ष्य से आहार की ओर का राग छूटने पर निमित्त से-व्यवहार से कथन होता है किन्तु उसका अर्थ यह नहीं है कि - आत्मा व्यवहार से पर का ग्रहण-त्याग करता है, क्योंकि किसी अपेक्षा से भी आत्मा रोटी की अवस्था को छोड़ ही नहीं सकता; अज्ञानी भ्रम से ऐसा अभिमान करता है।

आत्मा वस्तु है जो उसके गुणों को और उसकी पर्यायों को ही प्राप्त करता है तथा उसकी वर्तमान अवस्था स्वद्रव्य से मिलती है पर के कारण नहीं आनन्द की विपरीत दशा दु:ख है। आत्मा ज्ञाता-दृष्टा है - ऐसी श्रद्धा-ज्ञान करे तो आनन्द आता है। राग एक विकारी अंश है और स्वभाव निर्विकार है - ऐसे स्वभाव की दृष्टि करने पर धर्म होता है; इस धर्म को आत्मा प्राप्त करता है।

अनादि से अज्ञानी जीव विपरीत अभिप्राय से परिभ्रमण करता है। सही अभिप्राय से धर्म होता है। स्वयं अपने को पहुंचता है। सोने की पर्याय को सोना पहुंचता है तो हथौड़ी निमित्त कही जाती है, किन्तु हथोड़ी है तो सोना अपनी पर्याय को पहुंचता है - ऐसा नहीं है। पुण्य-पाप क्षणिक हैं और स्वभाव त्रिकाल है। अंश का अस्तित्त्व स्वीकार करके स्वभाव की दृष्टि करे वह सच्ची प्रतीति है। उस प्रतीति को आत्मा पहुंचता है, किन्तु किसी दूसरी वस्तु से नहीं पहुंचता। सोना अर्थ है, गुण अर्थ है और पर्याय भी अर्थ है; वैसे ही जगत के पदार्थ उनके गुण और जो उनकी दशा है उन सभी में समझना चाहिये।

उपादान और निमित्त दोनों के द्रव्य-गुण-पर्याय स्वतंत्र हैं - ऐसी व्यवस्था समझे तो धर्म होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जगत के सभी पदार्थ वस्तु हैं। वे सभी वस्तुएं अपनी पर्याय को प्राप्त करती हैं। पर्याय द्रव्य की प्रसिद्धि करती है निमित्त स्वयं का उपादान है। वह वस्तु उनकी पर्याय को प्राप्त करती है। अपनी अपेक्षा पर को निमित्त कहा जाता है, किन्तु निमित्त भी स्वयं का उपादान है। यहाँ कुण्डल होना (बनना) है इसलिये हथोड़ी को आना पड़ेगा ? नहीं। सम्यग्दर्शन प्राप्त होने में ज्ञानी निमित्त होते हैं किन्तु सम्यग्दर्शन होनेवाला है इसलिये ज्ञानी को आना पड़ेगा - ऐसा नहीं है। निमित्त, निमित्त के कारण ही उपस्थित हुआ है। अनन्तकाल से स्वतंत्र वस्तु होनेपर भी - ऐसा जाना नहीं है।

आत्मा ज्ञानस्वभावी है, उसके आधार से पूर्ण विकास हो गया (हो) और कुछ भी विकास करना बाकी न रहा हो उस केवलज्ञान को भगवान पहुंचते हैं। उनकी वाणी में पदार्थ की व्यवस्था बताई है। उनकी वाणी और आत्मा में कहे गए द्रव्य-गुण-पर्याय की व्यवस्था को जाने तो भ्रम का नाश हो।

कोई तर्क (प्रश्न) करे कि वेदनीय कर्म जीव विपाकी है तो वह जीव को सुख-दुःख वेदन कराता है अथवा नहीं ?

समाधान :- जिसे मोह का सद्भाव है उसे साता वेदनीय के उदय से प्राप्त पदार्थों के ऊपर लक्ष्य जाता है, तो वे पदार्थ (कर्म) जीव विपाकी कहे जाते हैं। ज्ञानानन्द स्वभाव को विषय न करें और मोह के विषय और निमित्त करें तो साता कर्म अथवा असाता कर्म की ओर झुकाव जाता है तब साता वेदनीय को जीव विपाकी प्रकृति कहा जाता है। (वहाँ भी) निमित्त झुकाव नहीं कराता। रति-अरति का परिणाम हो तो साता-असाता की ओर झुकाव होता है और उन कर्म को निमित्त कहा जाता है। स्वयं ज्ञानानन्द स्वरूप है, उसे छोड़कर मोह की अवस्था होती है तब साता-असाता की ओर झुकाव होता है।

प्रत्येक वस्तु नित्य रहकर परिणमित होती है किन्तु उसे कोई दूसरा पदार्थ परिणमित नहीं कराता।

यह जीवात्मा त्रिकाल ज्ञानी है। तीन काल का ज्ञान हुआ अर्थात् पूर्व में यह अवस्था थी, यह वस्तु है और वस्तु रहेगी - ऐसा एक समय में पूर्ण ज्ञाता तो हुआ किन्तु किसी का कर्ता नहीं हो सकता। यदि उन्हें करनेवाला माने तो सर्वज्ञ नहीं रहते

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भूतकाल में वस्तु है और ज्ञान नहीं तो भी सर्वज्ञता नहीं रहती। वस्तु है तो ज्ञान है और वस्तु है वह उसकी पर्याय को प्राप्त करती है। अज्ञानी पराधीनता को ही देखता है।

जो है उसकी आदि नहीं होती नित्यता के बिना वस्तु नहीं होती। नित्य रहकर उसकी अवस्थाएँ परिणमित होती है। जैसे नित्य को कोई प्राप्त नहीं कराता वैसे ही अनित्य पर्याय को भी कोई प्राप्त नहीं कराता क्योंकि उसका अर्थ-स्वभाव उसी से है-पर से नहीं।

अज्ञानी जीव कहता है कि-दूसरे जीवों का दुःख दूर करो किन्तु अन्य को करने की बात तो दूर रही, तेरे शरीर की अवस्था को भी तू नहीं कर सकता, रोग आ जावे अथवा बाल सफेद होने लगे तो उसे रोक नहीं सकता। जगत के पदार्थ (स्वयं ही) कायम रहकर उनकी वर्तमान अवस्था को पहुंचते हैं। इसप्रकार स्वतंत्रता समझे बिना धर्म नहीं होता।

जो कायम न रहे वह पदार्थ कहलाता है ?

नहीं।

तथा स्वयं परिणमन न करे और कोई दूसरा उसे परिणमन करावे वह पदार्थ कहलाता है ?

नहीं। अतः वस्तु है वह अपने परिणाम को पहुंचती है कोई दूसरा उसे परिणमन नहीं कराता।

इसमें धर्म कैसे आया ?

पर पदार्थ की अवस्था मेरे कारण होती है, यह भ्रांति है और मेरी अवस्था पर के कारण होती है, यह भी भ्रांति है।

अज्ञानी कहता है कि - हे प्रभु ! मुझे तारो। तो क्या तारना भगवान का काम था ? फिर यदि भगवान ने अभी तक नहीं तारा इसका अर्थ तो यह हुआ कि वह भगवान की भूल थी किन्तु तेरी नहीं ?

कोई तो कहता है कि - चौमासे में बरसात नहीं हुई इसलिये घास उत्पन्न नहीं हुई जिससे गायें भूखी मरती है। भगवान ने घास नहीं उगाया इसलिये भगवान खराब हो गए, किन्तु भगवान का ऐसा स्वरूप ही नहीं है। भगवान दूसरे के काम करे और जो भक्ति करे उनका भला करे - ऐसा वस्तु स्वरूप ही नहीं है। भगवान तो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वीतरागता व केवलज्ञान को प्राप्त हुए हैं यह भगवान का स्वरूप है।

पदार्थ हैं...हैं...हैं... और वे अपने कारण से अवस्थांतर होते हैं। जो होता है उसका नाश नहीं होता और जो होता है वह परिणमित हुए बिना नहीं रहता। तथा उस अवस्था को वह द्रव्य प्राप्त करता है। उसे कोई दूसरा प्राप्त करता है - ऐसा मानना वह भ्रांति है। अज्ञानी भ्रांति करता है किन्तु पर की अवस्था को कभी भी प्राप्त नहीं कर सकता।

जैसे स्वर्ण, पीलापन आदि को और कुण्डल आदि को प्राप्त करता है। अथवा पीलापन आदि और कुण्डल आदि (पर्याय) द्वारा प्राप्त किया जाता है अर्थात् पीलापन और कुण्डल आदि स्वर्ण को प्राप्त करते हैं, इसलिये स्वर्ण अर्थ है। वैसे ही द्रव्य अर्थ है। जैसे पीलापन आदि आधारभूत स्वर्ण को प्राप्त करते हैं अथवा आधारभूत स्वर्ण द्वारा प्राप्त किये जाते हैं। इसलिये पीलापन आदि अर्थ है वैसे ही गुण भी अर्थ है। आत्मा के ज्ञान-दर्शनादि, पुद्गल के स्पर्शादिक गुण वैसे ही धर्मादि द्रव्यों के गुण - सभी अर्थ हैं।

जैसे कुण्डल आदि स्वर्ण को क्रम परिणाम से प्राप्त करते हैं। पर्यायें क्रमशः आती है। सोना एक समय में सभी पर्यायों को पहुंचता हो - ऐसा नहीं किन्तु क्रमशः पहुंचता है, इसलिये कुंडल आदि अर्थ है; वैसे ही पर्यायें भी अर्थ हैं, वस्तु अर्थ है, गुण अर्थ है-इसप्रकार तीनों को अर्थ कहा है।

अनन्तकाल से जीव संयोग दृष्टिरूप भूल से रखड़ता है। त्रिकाल स्वभाव ज्ञायक है, भूल रहित है - ऐसा भेदज्ञान करे तो धर्म होता है। तेरे द्रव्य से तेरी पर्याय की प्राप्ति होगी, किन्तु पर से प्राप्ति नहीं होगी इसप्रकार पर से पृथक होकर (छूटकर) क्षणिक पर्याय स्वभाव अशुद्ध अंश है और अंशी-त्रिकाली द्रव्यस्वभाव शुद्ध है; इसप्रकार द्रव्यस्वभाव की दृष्टि होनेपर विकार ज्ञेय हुआ। इसप्रकार ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव के आश्रय से वीतरागता होनेपर केवलज्ञान प्राप्त होता है।

ऐसी समझ हुए बिना यदि साधु हो जाय तो भी वह भवसागर में डूब मरेगा। वस्तु कैसी है ? जिसे उसकी खबर ही नहीं है - उसे सम्यग्दर्शन नहीं है। जिसप्रकार भूमि के बिना, वृक्ष नहीं ऊगते, वैसे ही वस्तु के द्रव्य-गुण-पर्याय के भान बिना चारित्र नहीं हो सकता। वीतराग द्वारा कहे गए द्रव्य-गुण-पर्याय के

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यथार्थ ज्ञान द्वारा सम्यग्दर्शन होता है। विकार अथवा अविकार को आत्मा प्राप्त करता है - ऐसा निर्णय होनेपर ज्ञाता-स्वभाव की रुचि होती है।

अर्थ किसे कहना ?

यहाँ 'अर्थ' शब्द का आशय शब्दार्थ नहीं है अपितु यहाँ द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों को अर्थ कहते हैं। गुण-पर्याय द्रव्य को प्राप्त करते हैं इसलिये अर्थ हैं। आत्मा, परमाणु आदि जितने भी पदार्थ हैं वे अपने ही गुण-पर्याय को पहुंचते हैं। पर्याय, द्रव्य से प्राप्त होती है।

विकारी अथवा अविकारी पर्यायें-द्रव्य के सिवाय कहीं बाहर से नहीं मिलती। प्रत्येक आत्मा अथवा परमाणु आदि द्रव्य अपने गुण-पर्याय को प्राप्त करते हैं। अपने गुण-पर्याय उनके द्रव्य को पहुंचते हैं। गुण द्रव्य को प्राप्त करते हैं; गुण द्रव्य से प्राप्त होते हैं-गुण द्रव्य द्वारा मिलते हैं।

गुण, पर्याय को प्राप्त करते हैं अथवा पर्याय, गुण को प्राप्त करती है - ऐसा यहाँ नहीं लेना अपितु अखण्ड द्रव्य परिणमित होता है। द्रव्य के सम्पूर्ण परिणमन में गुण आ जाते हैं-पृथक नहीं रहते। पर्याय द्रव्य को क्रम परिणाम से प्राप्त करती है-पहुंचती है अथवा पर्याय द्रव्य द्वारा क्रम परिणाम से प्राप्त की जाती है। अभेदपने सम्पूर्ण द्रव्य को प्राप्त करती है। यहाँ गुण भेद की बात नहीं लेना। आत्मा आदि जितनी भी वस्तुएं हैं। वे अपनी शक्तियों को ही प्राप्त करती हैं। गुण, पर्याय द्वारा स्वद्रव्य को प्राप्त किया जाता है।

शुद्ध अशुद्ध पर्याय का पिंड द्रव्य है। अशुद्ध पर्याय द्वारा और शुद्ध पर्याय द्वारा द्रव्य प्राप्त किया जाता है। पर्याय में अशुद्धता का अंश द्रव्य का है - ऐसा निर्णय करने पर ज्ञानादि गुणों का पिंड निश्चित होता है। गुण कायमी स्वभाव है-पर्याय क्षणिक स्वभाव है मिथ्यात्व-राग-द्वेष भी क्षणिक स्वभाव है।

आत्मा अपनी मिथ्या-भ्रांति-राग-द्वेष को प्राप्त करता है - ऐसा निर्णय करने जाए तब भ्रांति नहीं रहती क्योंकि द्रव्य के ऊपर लक्ष्य जाने पर ज्ञान दर्शन आदि सीधे (सही) परिणमित हुए, राग से ज्ञान दर्शन पृथक परिणमित हुए, दुःख के अंश से आनन्द का अंश पृथक हुआ। कर्म के उदय के कारण विकार होता है - ऐसा नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इस एक गाथा में चौदह ब्रह्माण्ड को चीरकर भेदज्ञान कराया है। इसमें साधक, बाधक और सिद्ध सभी की बात आ जाती है। जो यथार्थरूप से अरहन्त के गुण-पर्याय को जानता है वह अपने आत्मा को जानता है - ऐसी बात आयी थी। अनादि-अनन्त कायम सदृश्य रहे वह द्रव्य है, उसके अनन्त विशेष गुण हैं और उसमें से समय-समय भिन्न-भिन्न व्यतिरेक होते हैं, वे पर्यायें हैं यहाँ तीनों को अर्थ कहा है।

विकारी पर्याय हो अथवा अविकारी पर्याय हो सभी को आत्मा प्राप्त करता है। मिथ्यादृष्टि को मिथ्याभ्रांति है, साधक को आंशिक विकार और आंशिक अविकार है, सिद्ध को पूर्ण अविकारदशा है। वस्तु, गुण-पर्याय को प्राप्त करती है - ऐसी दृष्टि होनेपर ज्ञानस्वभाव सन्मुख होकर ज्ञाता रह जाता है। जो पदार्थ है वह स्वभाववाला होता है और प्रत्येक समय परिणमनशील होता है।

कोई कहता है कि पर की दया पाले, मूर्ति की स्थापना करे, कितने ही उपवास करे तो धर्म होगा ?

समाधान :- लोग रोटी नहीं खाने को उपवास कहते हैं किन्तु उसमें धर्म नहीं है। खाने अथवा नहीं खाने के सम्बन्ध से रहित वस्तु क्या है ? उसे सर्वप्रथम जानना - ऐसा ज्ञानी फरमाते हैं। द्रव्य-गुण-पर्याय को अर्थ कहा है। वस्तु स्वयं गुण पर्याय को पहुंचती है। गुण-पर्याय द्रव्य को पहुंचे हैं। द्रव्य क्रम से परिणमित होकर पर्याय को प्राप्त करता है - पर्याय क्रम से परिणमित होकर द्रव्य को प्राप्त करती है किन्तु एक ही साथ सभी पर्यायें द्रव्य को प्राप्त नहीं करती। गुण एक साथ द्रव्य को प्राप्त करते हैं और द्रव्य गुणों को एक साथ प्राप्त करता है।

द्रव्य किस दुकान में मिलता है ?

द्रव्य, गुण-पर्याय की दुकान में मिलता है। कोई भी वस्तु है-जो है तो वह त्रिकाल है। जो वस्तु है वह उसके स्वभाव के बिना नहीं होती इसलिए वस्तु और उसका स्वभाव है... है... है... वह अपने कार्य के बिना नहीं होता और कार्य अर्थात् परिणमन-पर्याय न हो तो वह दूसरे से पृथक न हो। उसमें स्वयं अपना कार्य निरंतर होता है, इसलिए कोई भी द्रव्य, गुण-पर्याय बिना नहीं होता और गुण-पर्याय, द्रव्य के बिना नहीं होते। भगवान आत्मा एक समय में परिपूर्ण वस्तु है। सदा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ही सम्पूर्ण वस्तु है। वह उनके गुण पर्याय को ही प्राप्त करती है और गुण-पर्याय स्ववस्तु को (आत्मा को) प्राप्त करते हैं तथा गुण का आश्रय द्रव्य है।

ज्ञान, वाणी, और पदार्थ इन तीनों का मेल है फिर भी तीनों स्वतंत्र हैं, कोई किसी के अधीन नहीं है। यहाँ जिनेन्द्र देव द्वारा कथित अर्थों की व्यवस्था बताते हैं। उन्हें तीनकाल का ज्ञान हुआ, उस तीनकाल के ज्ञान में वस्तु व्यवस्था क्या आई ? वह बताते हैं। सर्वज्ञ की वाणी में पदार्थ की व्यवस्था कैसी आई है वह बताते हैं।

जैसे पदार्थ हैं वैसा जाना है और जैसा जाना है वैसी ही वाणी निकली है इसप्रकार तीनों का मेल है, फिर भी ज्ञान वाणी को नहीं पहुंचता और वाणी ज्ञान को नहीं पहुंचती। ज्ञान, पदार्थ को नहीं पहुंचता। तीनों स्वतंत्र हैं-पृथक-पृथक हैं। सर्वज्ञ का द्रव्य ज्ञानकी पर्याय को पहुंचता है किन्तु वह वाणी को प्राप्त नहीं होता है। तथा वाणी से ज्ञान प्राप्त नहीं होता मात्र निमित्त बताते हैं।

भगवान कहते हैं कि - संयोग की रुचि छोड़कर स्व द्रव्य में दृष्टि कर-तू तेरे द्रव्य-गुण-पर्याय को पहुंचेगा। हमारी वाणी तेरे द्रव्य-गुण-पर्याय को नहीं पहुंचती। आत्मा शब्द को प्राप्त नहीं कर सकता और शब्द आत्मा को प्राप्त नहीं होते। विकार कर्म की अवस्था को नहीं पहुंचते और कर्म विकार को प्राप्त नहीं करते इसप्रकार समझे उसे सम्यक् ज्ञान होता है।

यह सम्यग्दर्शन और सम्यक्ज्ञान की बात चलती है। प्रत्येक परमाणु और आत्मा अपने कायमी तथा क्षणिक स्वभाव को प्राप्त करते हैं, शेष धर्म, अधर्म, आकाश और काल चारों द्रव्यों में भी ऐसा ही है, किन्तु आत्मा और पुद्गल के बीच खास रमत है। विकार द्रव्य से प्राप्त होता है अर्थात् यह विकार अंश इस अंशी का है;इसप्रकार अंशी का लक्ष्य करने जाये तो शुद्ध चैतन्य स्वभाव में दृष्टि और एकाग्रता होनेपर राग का अंश ज्ञान का ज्ञेय हुआ अर्थात् इससे द्रव्य का निर्णय होता है।

तेरा द्रव्य जिस परिणमन को प्राप्त करता है उसरूप तू होता है। वह विकार किस द्रव्यका है - ऐसा निर्णय करे तो सम्यक्ज्ञान हो। निमित्त भले हो किन्तु सभी अपने-अपने द्रव्य को प्राप्त होकर पर्याय होती है - ऐसा निर्णय करे तो दूसरी वस्तु के ऊपर आरोप आता है।

अज्ञानी को ऐसी मजबूत गांठ पड़ी है कि-पर आए तो कार्य होता है निमित्त

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चाहिये, व्यवहार उड़ाओ (निषेध करो) यह हमें स्वीकार नहीं; इसप्रकार अज्ञानी की मिथ्यात्वरूपी गांठ मजबूत है। यहाँ द्रव्य-गुण-पर्याय को प्राप्त करें, पाये-पहुंचे, क्रम पर्याय द्वारा-पर्याय दव्य को प्राप्त करें-पाये-पहुंचे; इसप्रकार अभेद द्रव्य की बात ली है, किन्तु गुण पर्याय को प्राप्त करे अथवा पर्याय गुण को प्राप्त करे इसप्रकार भेद से नहीं लिया है; इसप्रकार सर्व द्रव्य-गुण-पर्यायों में समझना।

दर्शनप्रधान कथन में और ज्ञानप्रधान कथन में अन्तर।

यह सोना पीलापन आदि गुण और कुण्डल आदि पर्यायों में पीलापन आदि गुणों का कुण्डलादि पर्यायों का स्वर्ण से अपृथकत्व है। सोने से पृथकत्व नहीं है, इसलिए पीलापन आदि गुण और कुण्डल आदि पर्यायें, वे सभी स्वर्ण का सत्व है-स्वरूप है, क्योंकि यह स्वर्ण का सत्व है-स्वरूप है, क्योंकि वे स्वर्ण की मर्यादा में मिलते हैं, किन्तु मर्यादा के बाहर नहीं मिलते; वैसे ही आत्मा और परमाणु आदि में गुण-पर्याय का उनके द्रव्य से पृथकत्व नहीं है।

विकार आत्मा से पृथक नहीं है - ऐसा यहाँ कहा है और समयसार में विकार से भेद करके विकार को जड़ कर्म के साथ व्याप्य-व्यापक है - ऐसा कहा। वहाँ द्रव्य दृष्टि का कथन है। द्रव्य अविकारीपने व्यापता है, कर्म व्याप्त होकर विकारपने होता है।

जैसे मिट्टी से घड़ा हुआ है वैसे ही कर्म से विकार हुआ है - ऐसा वहाँ कहा है क्योंकि त्रिकाल सामान्य एकरूप द्रव्य स्वभाव की दृष्टि से सम्पूर्ण द्रव्य ख्याल में आया अर्थात् द्रव्य अशुद्ध को प्राप्त करता है-पहुंचता है। द्रव्यदृष्टि की सामर्थ्य से देखनेपर द्रव्य स्वयं निर्मलता को पहुंचता है-निर्मलतारूप उत्पन्न होता है। यह द्रव्यदृष्टि का कथन है।

यहाँ प्रवचनसार में ज्ञान-प्रधान कथन है। जीवादि प्रत्येक वस्तुओं के गुण-पर्यायों का द्रव्य से अपृथकत्व है। शुद्ध-अशुद्ध पर्यायें और गुण वे आत्मा का स्वरूप है, जिसे यह समझ में आए, उसे संसार पर्याय ज्ञान का ज्ञेय हो जाती है। सर्वज्ञ ने देखा है कि ऐसे पदार्थ हैं; ऐसी प्रतीति आने पर-राग और अल्प दुःख ज्ञाता के ज्ञेयमात्र रह गए हैं। अभेद की दृष्टि होनेपर श्रद्धाज्ञान चारित्र की पर्याय में आंशिक निर्मल पर्याय और आंशिक राग रहा है। आंशिक आनन्द की पर्याय सहित

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आंशिक दुःख रहा है वह ज्ञेय में रहता है, किन्तु विकार की कमजोरी स्वभाव में नहीं है - ऐसा भान करनेवाला कमजोरी का ज्ञान करता है।

जैसे सोने का चिकनापन आदि गुण और कुण्डल आदि पर्यायें स्वर्ण स्वरूप हैं वैसे ही आत्मा की पर्यायें और गुण आत्मस्वरूप है। वृहद् द्रव्य संग्रह शास्त्र में कथन आता है कि - बन्ध मोक्ष आत्मा का स्वरूप नहीं है, क्योंकि वह भाव-बन्ध और मोक्ष वे एक समय की पर्यायें है वह वस्तु स्वरूप में नहीं-वस्तु ध्रुव, सामान्य एक रूप है।

समयसार में भी बन्ध-मोक्ष की पर्याय अभूतार्थ और कायमी (ध्रुव) स्वभाव को भूतार्थ कहा है, वहाँ अभेद दृष्टि का कथन है। यहाँ ज्ञानप्रधान कथन है। ज्ञान स्व-परप्रकाशक है। वह ज्ञान स्व को जानता है। गुण-पर्याय को जानता है तथा अशुद्धी को जानता है। लोग कहते हैं कि यदि शरीर स्वस्थ हो तो सेवा हो सकती है, यदि बुद्धि अच्छी हो तो बात कर सकता है, पैसा हो तो दान में दिया जाए किन्तु पर वस्तु को तू कैसे छोड़ सकता है ? तू तो (मात्र) तेरी पर्याय को प्राप्त करता है। गुण-पर्याय, तेरा स्वरूप है।

केवलज्ञानी भगवान मिले इसलिये लाभ हुआ या नहीं ?

नहीं। तुझे भगवान नहीं मिले। तू (स्वयं) तुझे मिले तो भगवान मिले हैं - ऐसा निमित्त से कहा जाता है। गुण-पर्यायों का सर्वस्व-सार द्रव्य है। गुण और विकारी-अविकारी पर्यायों का सत्व द्रव्य ही है। पंचमकाल में श्रीकुन्दकुन्द आचार्य ने थोड़े शब्दों में सारे ही रहस्यों को भर दिया है। किसी दूसरी जगह (यह) बात नहीं है। जिनेन्द्रदेव, संतों और ज्ञानियों के सिवाय दूसरी जगह यह बात समझ में आ जाय - ऐसा नहीं है।

भावार्थ पर प्रवचन:- गाथा ८६ में कहा था कि भगवान की दिव्य ध्वनि के अनुसार रचे गए जिन शास्त्रों का सम्यक् अभ्यास (वह) मोहक्षय का उपाय है। जिन शास्त्रों का आशय क्या है वह पकड़ना (समझना) चाहिये। वीतराग के शास्त्रों में पदार्थों की जिसतरह व्यवस्था बताई गई है उसे यहाँ संक्षेप में दर्शाते हैं। जिनेन्द्र देव ने कहा है कि द्रव्य-गुण-पर्याय - ऐसे तीन पद हैं वे अर्थ को बताते हैं। इसप्रकार द्रव्य-गुण-पर्यायों के सिवाय (अतिरिक्त) विश्व में अन्य कुछ नहीं है। कितने ही जीव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

केवलज्ञान का निषेध करते हैं वह सभी भ्रम है। उपादान और निमित्त दोनों ही निश्चित है, पर के कारण अवस्था प्राप्त नहीं होती -ऐसा केवलज्ञान जानता है। स्कंध में प्रत्येक परमाणु-स्थूलपने को स्वयं के कारण धारण करते हैं किन्तु स्कंध के कारण नहीं।

परमाणु स्कंध में मिले तब स्थूलपने परिणमित होता है। जब वह अकेला था तब स्थूल नहीं था किन्तु स्कंध में मिला इसलिये स्थूल हुआ?

नहीं। अपितु स्वयं के कारण स्थूलपने को प्राप्त हुआ है। उस परमाणु द्रव्य ने स्वयं स्थूलपने को प्राप्त किया है किन्तु संयोग के कारण नहीं।

कोई परमाणु कभी अपने स्वचतुष्टय (द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव) को छोड़ता है ?

नहीं। द्रव्य अपने क्रम-परिणाम को प्राप्त करता है। पुद्गल द्रव्य, सूक्ष्म अथवा स्थूल पर्याय को क्रम से प्राप्त करता है। जब स्कंध में वह स्थूलपने हुआ है वह स्कंध के कारण नहीं। इस जगत में जड़ और चेतन अनन्त पदार्थ हैं। प्रत्येक ही पदार्थ द्रव्य-गुण-पर्याय स्वरूपवाला है। आत्मा विकार करे तो अपने घर में विकार करे और परमाणु स्थूलपने को धारण करे तो वह अपने घर में स्थूल होता है, उस स्थूलत्व को उसने स्वयं के द्रव्य के कारण प्राप्त किया है किन्तु स्कंध के कारण नहीं। ऐसा होने से इन तीन में गुण और पर्यायों का आत्मा उनका सर्वस्व द्रव्य है। द्रव्य ही गुण-पर्यायों का आत्मा अर्थात् स्वरूप है। द्रव्य ही गुण-पर्याय का सर्वस्व है। प्रत्येक द्रव्य स्वयं के गुण-पर्याय को प्राप्त करता है किन्तु पर के गुण-पर्याय का प्राप्त नहीं करता।

यदि कर्म के बिना ही विकार होता हो तो सिद्ध को भी विकार होना चाहिये ? - ऐसा काई तर्क (दलील) करता है तो उससे कहते हैं कि भाई! प्रत्येक पर्याय को द्रव्य पहुंचता है। ऐसा होने से किसी द्रव्य के गुण और पर्याय अन्य द्रव्य के गुण और पर्यायरूप अंशमात्र भी नहीं होता। प्रत्येक वस्तु अपने गुण-पर्याय को प्राप्त होती है किन्तु पर के गुण-पर्याय को प्राप्त नहीं होती। इसप्रकार जिनेन्द्र देव ने वस्तु-स्थिति देखी है। जिनेन्द्र देवाधिदेव के शासन में ऐसी पदार्थ की व्यवस्था कही है, उसे जैसा है वैसा जाने तो मोह नाश को प्राप्त हो।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचनसार गाथा ८८

अथैवं मोहक्षपणोपायभूतजिनेश्वरोपदेशलाभेऽपि पुरुषकारोऽर्थक्रियाकारीति पौरुषं व्यापारयति-

जो मोहरागदोसे णिहणदि उवलब्भ जोण्हमुवदेसं।
सो सव्वदुक्खमोक्खं पावदि अचिरेण कालेण ॥८८॥

अब इसप्रकार मोहक्षय के उपायभूत जिनेश्वर के उपदेश की प्राप्ति होनेपर भी पुरुषार्थ [१]अर्थक्रियाकारी है इसलिये पुरुषार्थ करता है :-

जो प्राप्त कर उपदेश जिन का नष्ट करता मोह को।
वा राग को वा द्वेष को वह शीघ्र सब दुःख मुक्त हो ॥८८॥

अन्वयार्थ :- **(यः)** जो **(जैनं उपदेशं)** जिनेन्द्र के उपदेश को **(उपलभ्य)** प्राप्त करके **(मोहरागद्वेषान्)** मोह-राग-द्वेष को **(निहंति)** हनता है, **(सः)** वह **(अचिरेण कालेन)** अल्पकाल में **(सर्वदुःखमोक्षं प्राप्नोति)** सर्व दुःखों से मुक्त हो जाता है।

टीका :- इस अतिदीर्घ, सदा उत्पातमय संसार मार्ग में किसी भी प्रकार से जिनेन्द्रदेव के इस तीक्ष्ण असिधारा समान उपदेश को प्राप्त करके भी जो मोह-राग-द्वेषपर अति दृढ़ता पूर्वक उसका प्रहार करता है वही हाथ में तलवार लिये हुए मनुष्य की भाँति शीघ्र ही समस्त दुःखों से परिमुक्त होता है; अन्य (कोई) व्यापार (प्रयत्न; क्रिया) समस्त दुःखों से परिमुक्त नहीं करता। (जैसे मनुष्य के हाथ में तीक्ष्ण तलवार होनेपर भी वह शत्रुओंपर अत्यन्त वेग से उसका प्रहार करे तभी वह शत्रु सम्बन्धी दुःख से मुक्त होता है अन्यथा नहीं, उसीप्रकार इस अनादि संसार में महाभाग्य से जिनेश्वरदेव के उपदेशरूपी तीक्ष्ण तलवार को प्राप्त करके भी जो जीव मोह-राग-द्वेषरूपी शत्रुओंपर अतिदृढ़ता पूर्वक उसका प्रहार करता है वही सर्व दुःखों से मुक्त होता है। अन्यथा नहीं) इसीलिये सम्पूर्ण आरम्भ से (प्रयत्नपूर्वक) मोह का क्षय करने के लिये मैं पुरुषार्थ का आश्रय ग्रहण करता हूँ ॥८८॥

---

१ अर्थक्रियाकारी = प्रयोजनभूत क्रिया का (सर्वदुःखपरिमोक्ष का) करनेवाला।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गाथा ८८ पर प्रवचन

स्वभाव की दृष्टि और स्थिरता द्वारा मोह-राग-द्वेष का नाश करो - ऐसा दिव्यध्वनि में आया है। जो सर्वज्ञ देवाधिदेव का उपदेश पाकर मोह-राग-द्वेष को तोड़ता है वह अल्पकाल में सर्वदुःखों से मुक्त होता है। वीतराग की वाणी में ऐसा आया है कि मोह-राग-द्वेष का नाश करो; तेरा आत्मा अविनाशी ज्ञानानन्द स्वरूप है, उसकी दृष्टि कर तो पर से और पुण्य-पाप से कल्याण मानने की भ्रांति का नाश होगा।

'तेरा आत्मा पूर्णानंद है' - ऐसा सर्वज्ञ की वाणी में उपदेश आया है। आत्मा वस्तु है जो अपनी वर्तमान दशा को प्राप्त करती है, वह अंश वस्तु का है; इसप्रकार आत्मा का ज्ञान करके 'मैं शुद्ध चिदानंद हूँ' - ऐसी अन्तर्दृष्टि करके, शुभाशुभराग और संयोग की रुचि तथा देहादि की क्रिया में कर सकता हूँ - ऐसी मिथ्या मान्यतारूप जो भ्रान्ति है उसे छेद (नष्ट कर)। 'तू ज्ञायक स्वभाव सन्मुख हो' - ऐसा पहला उपदेश आया है; इसमें तो बारह अंग और चौदह पूर्व का सार आ गया है।

मोह-राग-द्वेष को हनन (नष्ट) करने की बात आई। हिंसादि के भाव पाप हैं और दया-दान, व्रत-तप, यात्रा का भाव पुण्य है, दोनों ही विकार हैं; शरीर पर है। तेरा आत्मा शक्तिरूप से त्रिकाल ज्ञानानन्दमय है, शुद्ध है उसकी रुचि और आलम्बन कर और पुण्य-पाप के आलम्बन से पृथक हो, तब मोह नष्ट होता है। वीतरागी दशा न हो तब तक दया-दानादि के शुभ विकल्प आते हैं, उसे भी स्वभाव की स्थिरता द्वारा नष्ट करे तो चारित्र होगा।

दिव्यध्वनि में वीतरागता का उपदेश आया है किन्तु राग करने का उपदेश नहीं आया। भगवान की दिव्यध्वनि में यह आया है। वे स्वयं वीतराग हुए तो वीतरागता का उपदेश आया किन्तु तू राग कर तो वीतराग होगा अथवा देह की क्रिया करेगा तो धर्म होगा - ऐसा नहीं आया।

गुणस्थान के क्रम के अनुसार निमित्त, राग, संयोग आदि सहचर हेतु इसप्रकार के होते हैं, इसका ज्ञान कराते हैं किन्तु विकार से कल्याण होगा - ऐसा सर्वज्ञ नहीं बताते। इसलिये भ्रांति अर्थात् पर में सावधानी, यथा - 'मैं देश का, बाह्य समाज का कुछ कर सकता हूँ' इसे छोड़ - यह भ्रांति है, क्योंकि परवस्तु का परिणमन पर के कारण है। तू अभी भी ज्ञानानन्द है, इस स्वभाव के अवलम्बन से

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वर्तमान मूढ़तारूप भ्रांति दूर होती है।

जैसे लेंडी पीपर के प्रत्येक दाने में चौसठ पुटी तिखास भरी है, उसे घिसने पर उसमें से प्रगट होती है, किन्तु पत्थर में से तिखास नहीं मिलती। यदि पत्थर में से तिखास आती हो तो चूहे की लेंडी से भी तिखास आना चाहिये, किन्तु ऐसा नहीं होता। लेंडी पीपर में जो परिपूर्ण तिखास और हरापन भरा है वह प्रगट होता है और प्रगट होता है तो संयोग और निमित्त पर, कारण का आरोप आता है। चौंसठ अर्थात् पूर्ण। वैसे ही प्रत्येक आत्मा में पूर्ण सर्वज्ञपद और पूर्ण आनन्द, सम्पूर्णसुखी हो - ऐसा स्वभाव अंदर में सदा ही विद्यमान है। उसमें ही अंतरमुख दृष्टि करके भ्रांति को छेद (नष्टकर)! देह की क्रिया से और पुण्य-पाप से कल्याण होगा - ऐसी भ्रांति छेद!

इसप्रकार व्यवहार करे-राग करे तो अरागी धर्म होगा - ऐसा भगवान के उपदेश में नहीं होता। पहले राग की मंदता करो तो धर्म होगा - यह मिंथ्यादृष्टि की प्ररूपणा है इसे माननेवाला वीतरागी देव को, गुरु को और वैसे ही उनकी वाणी को नहीं समझता। जो कोई ऐसी प्ररूपणा करे, देह की क्रिया और शुभराग से धर्म कहे वह मिथ्या दृष्टि है।

अनन्तबार नग्न दिगम्बर साधु हुआ है, मोर पीछी धारण किये हैं किन्तु आत्मा ज्ञानानन्द है, शरीर-मन-वाणी मेरी नहीं-मेरे अधीन नहीं, परवस्तु से मुझे लाभ-नुकसान नहीं हो सकता; इसप्रकार स्वतंत्र वस्तु स्वरूप का जबतक भान नहीं होता तबतक वह अनादि मोह को नहीं छेदता।

हिंसा, असत्य आदि के पाप भाव के कारण ढोर (तिर्यंच) व नरक गति मिलती है और दया-दान के पुण्यभाव के कारण पैसा और स्वर्ग मिलते हैं किन्तु इनसे धर्म नहीं मिलता। धर्म तो निर्मलानंद, निर्मोही ज्ञायक स्वभाव में है-उसे पहिचान कर उसका आश्रय करे, तो ही धर्म मिले छहढाला में भी कहा है कि -

मुनिव्रत धार अनन्त बार, ग्रैवेयक उपजायो।
पै निज आतम ज्ञान बिना, सुख लेश न पायो॥

अनन्तबार साधु हुआ। दया आदि के भाव शुभराग है। राग का छेदन करो यह उपदेश में आया है। राग मेरे स्वरूप में नहीं है - ऐसा सर्वप्रथम श्रद्धा द्वारा छेदन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

करना फिर स्वरूप में स्थिरता करके राग का छेदन करना - ऐसा उपदेश में आया है। इस उपदेश को सुनकर-समझकर जो मोह-राग-द्वेष का हनन करता है वह अल्पकाल में सर्वदुःखों से मुक्त होता है। शुभराग भी उत्पातमय संसार है - ऐसा भाव भी अनन्तबार किया है।

आत्मा अनादि का है। पुण्य-पाप के फल में अनन्त भव किया किन्तु धर्म को प्राप्त नहीं किया। यह संसार अतिदीर्घ तथा सदा उत्पातमय है। दया-दानादि करूँ यह समस्त ही राग आकुलतामय उत्पादवाला है। व्रत का पालन शुभराग है-दोष है इसलिये वह संसार उत्पातमय है। अनन्तबार तपश्चरण करके पुण्य-पाप की लगन से उनका संचय किया; रुई की पोनी की तरह एक के बाद एक उन्हीं परिणामों की श्रंखला चलती रही, जिससे निगोदके अनंत भव किये।

इन सब पापों का मूल अज्ञान है-मिथ्या भ्रांति है, उसका छेदन करने के लिये भगवान का उपदेश तलवार जैसा है जो मिथ्या भ्रांति और राग-द्वेष को काट ही डाले (नष्ट कर दे) - ऐसा ही है। जिस भाव से स्वर्ग, अहमिन्द्रपद मिले, तीर्थंकरपद मिले उन सभी जाति के पुण्य के भाव उत्पातमय है क्योंकि उनमें थोड़ी भी शान्ति नहीं है। एक स्व-द्रव्य के आश्रयरूप वीतराग मार्ग में ही शान्ति है। श्रीमद् राजचन्द्रजी कहते हैं :-

वचनामृत वीतरागना, परमशान्त रस मूल,
औषध जे भव रोगना, कायर ने प्रतिकूल।

संसार मार्ग में ऐसे वचन नहीं मिलते। इस बात को सुनकर अनेक जीव विरोध करते हैं और कहते हैं अरे! पुण्य करने पर धर्म नहीं? ऐसा शोर मचाते हैं; किन्तु भाई! जैसे लहसुन खाते-खाते अमृत की डकार नहीं आती वैसे ही बाह्य क्रिया करते-करते धर्म नहीं होता तथा राग की मंदता भले हो किन्तु उससे धर्म नहीं होता। **जैसे सर्वज्ञ पूर्ण ज्ञाता है; वैसे ही तू भी ज्ञाता है।**

पुण्य-पाप उत्पात है उससे रहित आत्मा है - ऐसा भगवान का वचन शांत रस बताता है किन्तु पुण्य-पाप के उत्पाद में शान्ति नहीं बताता। आत्मा अमृत-स्वरूप है उसे कहने में निमित्त उनके वचन अमृत हैं। ज्ञानी को पूर्णदशा न हो तब तक राग आता है किन्तु वह संसारमय उत्पात (अशांत) मार्ग है-शान्ति नहीं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शांतमार्ग और उत्पातमार्ग क्या है, उसके क्या भेद हैं - ऐसा न जाने उसे शान्ति कहाँ से मिले। शुभ-अशुभ की लगन (रुचि) दोनों ही विकार हैं। वे उत्पातमय अशांतरस होने से संसार मार्ग है, उसे जीतनेवाला जैनमार्ग शांतरसमय है। मोक्षमार्ग और संसार मार्ग दोनों ही विपक्ष (परस्पर विरुद्ध) हैं। जिस मार्ग से मोक्ष मिलता है उसी मार्ग से संसार नहीं मिलता और जिस मार्ग से संसार मिलता है उसी मार्ग से मोक्ष नहीं मिलता। जैसे तलवार मजबूत वस्तु को भी काट देती है वैसे ही भगवान का उपदेश मोह-राग-द्वेष का नाश कर देता है।

इस उत्पातमय संसार मार्ग में किसी भी प्रकार से अर्थात् तेरे सुनने की योग्यता के कारण से और पुण्य प्रताप के योग से जिनेन्द्रदेव का उपदेश मिल जाए तो वह उपदेश मिथ्यात्व-राग-द्वेष को नष्ट करे तथा निश्चय व्यवहार को नष्ट करे - ऐसी तीक्ष्ण असिधारा के समान है। तलवार की यह धार बोथली नहीं अपितु चक्रवर्ती की तलवार के समान तीक्ष्ण धारवाली है। यदि वज्रखम्भ हो तो उसे भी चक्रवर्ती की तलवार ककड़ी के समान काट डालती है वैसे ही भगवान का उपदेश तीक्ष्ण तलवार जैसा है। उनके उपदेश में ऐसा आया कि अंतर में पूर्ण स्वभाव ज्ञान और आनन्द से भरा हुआ है, उसमें अंतरदृष्टि कर तो मिथ्यात्व दूर होगा नहीं तो मिथ्यात्व दूर नहीं होगा। निमित्त और पुण्य से लाभ मानना वह महा मिथ्यात्व है।

वाणी का क्या आशय है ? अरे ! जीव तू हमें मानता है ? तुझे असली स्वभाव रुचता है ? हम तीनकाल के जाननेवाले हैं, हमें माननेवाला कब कहलाएगा। अल्पता (अपूर्णता) तथा राग-द्वेष का आदर छोड़कर अंतर सर्वज्ञपद की दृष्टि कर तो ही तूने सर्वज्ञ को माना - ऐसा कहलाए।

यह बात अलौकिक है - ऐसा उपदेश, पुरुषार्थ की जागृति के कारण तेरी निकट मोक्ष की योग्यता हुई है इसलिये तेरी वर्तमान योग्यता के कारण मिला है; जो दिव्यध्वनि छूटी है उसका यह सार है। भगवान महावीर वर्तमान में अशरीरी सिद्धदशा में आनन्द का अनुभव करते हैं। जब वे अर्हंत पद में थे तब उनका यह उपदेश था कि - विकार को तोड़ और अविकारी स्वभाव को सम्हाल।

ऐसा उपदेश आया है कि - अंतर ध्रुवद्रव्य विद्यमान है, पर्याय में संसार दिखाई देता है किन्तु संसार, स्वभाव में नहीं - ऐसे स्वभाव की दृष्टि करके भ्रांतियों

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

को नष्ट करके फिर स्वभाव में स्थिरता करके राग-द्वेष का नाश कर! इसप्रकार मोह-राग-द्वेष को काट डालने का उपदेश आया है, किन्तु किसी भी प्रकार के राग को करने का उपदेश भगवान ने नहीं दिया है। राग होता है उसे जान किन्तु उसे करने योग्य नहीं मान। यह कोई बी.ए. या एल.एल.बी. की बात नहीं अपितु यह तो धर्म की प्रारम्भिक अर्थात् एकड़े की बात है।

ज्ञानी का उपदेश प्राप्त करके जो स्वभाव का भान करे और स्थिरता करे उसका मोह-राग-द्वेष नाश को प्राप्त हो जाता है। यहाँ "उपदेश प्राप्त करके" कहा है अर्थात् ज्ञानी गुरु मिलना चाहिये। श्रीमद् जी ने कहा भी है कि -

निज कल्पना थी कोटी शास्त्रों नो भणतर (अभ्यास) मात्र मन नो अमल छे। ज्ञानी गुरु के बिना समझ में आ जाय - ऐसा नहीं होता। वाणी और पुस्तक तो जड़ है, परन्तु उसका क्या आशय है वह ज्ञानी जानते हैं। यहाँ, समयसार आदि पुस्तक प्राप्त करके - यह नहीं कहा अपितु वीतराग का उपदेश पाकर कहा है। वीतराग का आशय गुरु के ज्ञान में आया है। उनके उपदेश को प्राप्त करके अर्थात् समझकर कहा है।

तेरी वर्तमान अवस्था में पुण्य-पाप हैं, किन्तु अंतर स्वभाव से भरा भगवान है, उसकी रुचि कर तो ही मिथ्यात्व का नाश होगा, इसके अलावा लाख-करोड़ क्रियाएँ कर तो भी मिथ्यात्व का नाश नहीं होगा। भ्रांति और अस्थिरता का नाश करने के लिए कहा अथवा उपदेश में उनको हनन करने का कथन आया। प्रथम तो ऐसा उपदेश मिलना दुर्लभ है।

यहाँ अज्ञानी मस्खरी (मज़ाक) करता है, परन्तु भाई! यह तो सौ इन्द्रों से पूजित भगवान की वाणी की लीला है। जैसे तलवार हीरे के खम्भे को भी काट डालती है वैसे ही वाणी में व्यवहार और राग-द्वेष को काटने का उपदेश आया है।

जैसे भरत चक्रवर्ती की तलवार में अग्नि झरती है। इन्द्र भी उसके सामने नहीं देख सकता; वैसे ही वीतराग के उपदेश को कायर नहीं झेल सकता। पुण्य-पाप की एकत्व बुद्धि को नष्ट कर डालें - ऐसा उपदेश भगवान की वाणी में आया था। तू चैतन्य है, दया-दानादि के भाव, राग होने से बन्ध के ही कारण हैं। ऐसे असिधारा जैसे उपदेश का मिलना, कान में पड़ना (सुनना) और धारण करना,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ख्याल में आना कायर के लिये मुश्किल है।

एक अन्तरंग ज्ञातास्वभाव की ही दृष्टि कर, पुण्य-पाप की दृष्टि छोड़ - ऐसा सुनकर जो स्वभाव-सन्मुख होता है वही उस भ्रांति को नष्ट करता है और फिर वह स्वभाव की स्थिरता द्वारा राग-द्वेष को नष्ट करता है। इसतरह वह जीव मुक्त होता है। उपदेश मिलने पर भी जो पुरुषार्थ नहीं करता उसे मुक्ति नहीं होती। उपदेश मिला तो उपदेश मिलने पर क्या करना ? वह बात यहाँ आई है। स्वभाव सन्मुख होकर, भ्रांति और राग-द्वेष का नाश करना - ऐसा उपदेश आया है।

अमुक राग को लाऊँ यह मिथ्यात्व सहित-शुभाशुभ भाव का उत्पात भाव है।

यह प्रवचनसार का ज्ञानतत्त्व अधिकार है। आत्मा ज्ञान स्वरूप है उसकी अवस्था में जो पुण्य-पाप के भाव होते हैं-वे विकारी भाव हैं। ज्ञानस्वभाव की दृष्टि और स्थिरता द्वारा पुण्य-पाप को जीतना वह जैन मार्ग है।

संसार कैसा है ? वह यहाँ कहते हैं। संसार अतिदीर्घकाल से सदा उत्पातमय है। एक ओर संसार मार्ग है दूसरी ओर जैन मार्ग है। आत्मा का अनुभव छोड़कर अनादि काल से जीव ने किसी समय हिंसा-झूठ-चोरी के पापभाव किये अथवा कईबार व्रत-तप, सामायिक आदि के पुण्यभाव किये-ये सभी भाव क्लेशमय उत्पात हैं और व्रत करने का राग लाऊं - यह मिथ्यात्व का उत्पात है। हिंसा झूठ आदि भाव इस समय लाऊं - यह पाप सहित मिथ्यात्व का उत्पात है।

तेरा स्वरूप तो निरुपाधिक चैतन्य है, उसकी दृष्टि यह एक ही मोक्षमार्ग है। पुण्य-पाप के उत्पात को जो जैनमार्ग कहे वह सच्चे देव-गुरु-शास्त्र को पहचानता नहीं है। देव-गुरु-शास्त्र की ओर का शुभराग उत्पात है, वह क्लेशमय भाव है उसे अच्छा माने वह मिथ्यात्व का उत्पात है।

'आत्मा की रुचि और स्थिरता से पुण्य-पाप को नष्ट कर' - ऐसा भगवान का उपदेश है। जीव अनादि से एक इन्द्रिय था फिर दो इन्द्रिय आदि होकर त्रस में आया, पुण्य के योग से पंचेन्द्रिय में मनुष्य हुआ और जिनेन्द्र देव का सच्चा उपदेश मिला, उसमें दिव्यध्वनि में ऐसा आया कि पुण्य-पाप की जो वृत्ति होती है उसे स्वभाव सन्मुख होकर नष्ट कर-अन्तर अनुभव कर - ऐसा उपदेश तीक्ष्ण तलवार

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

की धार समान है।

बारह अंग में द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग, कथानुयोग सभी में यह ध्वनि आई कि भगवान आत्मा ज्ञान स्वरूप है। पुण्य-पाप के भाव आए उसे नष्ट करने के लिए भगवान की वाणी है। वे भाव रखने योग्य हैं - ऐसा माने वह मूढ़ है वह भगवान की वाणी नहीं समझता। ज्ञानी को निचली दशा में दया-दानादि के भाव आते हैं यह बात सही है किन्तु उनसे वे धर्म नहीं मानते; और उसे करते-करते धर्म होगा - ऐसा भी वे नहीं मानते। वीतराग का मार्ग लोगों ने सुना नहीं। शुभराग होता है उसकी तरफ होनेवाली दृष्टि को फेरकर मोह रहित स्वभाव की दृष्टि कर।

आत्मा पर पदार्थ की अवस्था कर सकता है - यह बात तो है ही नहीं किन्तु यहाँ शुभ-अशुभराग करने की अथवा रखने की बात भी नहीं है। शुभराग से सम्यक् दर्शन नहीं होता तथा चारित्र भी नहीं होता, जिनेश्वर देव राग रखने के लिए नहीं कहते। पुण्य-पाप की रुचि छोड़, स्वभाव की रुचि कर - ऐसा उपदेश सुनना लोगों को कड़क-तीखा पड़ता है। शुभराग की पहचान करना, शुभराग को लाना, शुभराग को करते-करते आगे बढ़ा जाएगा - इसप्रकार वीतराग की वाणी नहीं होती। प्रवचनसार की एक-एक गाथा चौदह पूर्व का रहस्य दर्शाती है।

राग करना अथवा नहीं करने का प्रश्न ही नहीं, ज्ञानस्वभावी आत्मा की रुचि करने पर राग की रुचि (स्वयंमेव) छूट जाएगी और स्थिरता द्वारा राग छूट जाएगा। यहाँ निमित्त बताते हैं कि जिनेश्वर का उपदेश कैसा होता है? जैसे तलवार काटने का काम करती है वैसे ही उपदेश पुण्य-पाप के परिणाम को नष्ट करने के लिए कहता है। पुण्य पाप के परिणाम की रुचि को आत्मा की रुचि द्वारा नष्ट कर और स्थिरता द्वारा उन्हें सर्वथा नष्ट कर - ऐसा वाणी कहती है।

भगवान ने पहले से ही ज्ञानस्वभावी आत्मा की रुचि की थी; पुण्य-पाप के भाव होते थे फिर भी ज्ञान-स्वभाव का आश्रय था, किन्तु पुण्य का आश्रय नहीं था, फिर भगवान स्वभाव के आश्रय से ही वीतराग हुए। आत्मा 'ज्ञ' स्वभावी है उसकी रुचि कर, पुण्य-पाप का अवलम्बन छोड़, राग-द्वेष को नष्ट कर - यह भी उपदेश वाक्य (वचन) है। ज्ञानस्वभाव की रुचि करने पर पुण्य-पाप की रुचि उत्पन्न नहीं हुई और उसमें स्थिरता होनेपर पुण्य-पाप परिणाम उत्पन्न नहीं हुए - ऐसा उसका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अर्थ है; यह जिनेन्द्र देव का उपदेश कहता है।

बहुत पुण्य के निमित्त से सच्ची बात सुनने को मिली, सच्ची बात मिलना, सत् समागम का मिलना वह दुर्लभ है। व्यवहार कारण है व निश्चय का साधन है - ऐसा अज्ञानी कहता है जबकि यह बात असत्य है। निश्चय बिना व्यवहार कैसा ?

उपदेश के निमित्त से जीव स्वभाव में दृढ़ एकाग्रता करता है, उसमें मोह-राग-द्वेष के ऊपर दृढ़ प्रहार किया है - ऐसा कहा जाता है। ऐसा उपदेश प्राप्त करके जो मोह-राग-द्वेष के ऊपर अति दृढ़ता से उसपर प्रहार करता है वह तुरन्त ही समस्त दुःखों से परिमुक्त होता है।

पुण्य-पाप से हितबुद्धि व अनुकूल संयोग से लाभ मानना मोह है। दया-दानादि का भाव राग है और हिंसा का भाव द्वेष है, उसे स्वभाव के भान द्वारा मूल से उखाड़। जैसे हाथ में तलवार मिली हो किन्तु उसे मात्र रखे रहे तो वह किसी काम की नहीं होती। वैसे ही जिनेन्द्रदेव का उपदेश मिला किन्तु जो ज्ञान स्वरूप है - ऐसे स्वभाव में ढलने पर राग नहीं होता; स्वभाव ज्ञायक ज्योति है उसमें एकाकार-अन्तरदृष्टि होनेपर, मोह-राग-द्वेष के ऊपर दृढ़ प्रहार करता है - ऐसा भगवान के उपदेश में कहा है।

मैं ज्ञानस्वभाव हूँ, मेरा स्वरूप ज्ञानमय है, आत्मा ज्ञान का कर्ता है, ज्ञान कार्य है, आत्मा ज्ञान का साधन है, स्वयं संप्रदान, अपादान, अधिकरण है - ऐसे स्वभाव में एकाग्र होनेपर राग-द्वेष दूर होते हैं - ऐसा ज्ञान जानता है। इस कारण राग-द्वेष के ऊपर दृढ़ प्रहार करता है - ऐसा कहने में आता है।

"यह मोह है, यह राग है इसे मैं नष्ट करूँ' तो क्या इसतरह वे नष्ट होंगे?

नहीं। वह तो पर्याय बुद्धि है। चैतन्य स्वभाव की सावधानी द्वारा पुण्य-पाप की सावधानी को नष्ट कर और विशेष स्थिरता करके पुण्य-पाप को नष्ट कर। वीतरागता और केवलज्ञान प्रगट करने का उपाय-ज्ञानस्वभाव का आश्रय (करना यह) एक ही है।

सभी केवली परमेश्वर का यह एक ही प्रकार का उपदेश है, किन्तु अज्ञानी को यह बात गले उतारना कठिन पड़ता है। जैसे लेंडीपीपर में चौंसठपुटी तिखास

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होने की शक्ति विद्यमान है वैसे ही स्वभाव में सोलह आने-पूर्ण सर्वज्ञता विद्यमान है उसका अवलम्बन लेकर उसमें एकाग्र हो वही प्रगट केवलज्ञानी होता है उसमें अधिक समय नहीं चाहिये। अनन्तकाल परिभ्रमण में गया है इसलिये केवलज्ञान के लिये भी अनन्त काल चाहिए - ऐसा नहीं है।

प्रथम सच्चा उपदेश कहा है इसकी परीक्षा करना चाहिए। सच्चा उपदेश मिले फिर भी यदि निमित्त की सन्मुखता छोड़कर स्वभाव की सन्मुखता न करे तो सारे ही व्रत तपादि एक के बिना रखे गए शून्य के समान है। पुण्य के विकल्प को उठाना (उत्पन्न करना) वह मेरे स्वरूप में ही नहीं है, वैसे ही उन्हें दूर करना वह भी मेरे स्वरूप में नहीं है क्योंकि मैं ज्ञान स्वरूपी हूँ - ऐसी दृष्टि करके स्थिरता करने पर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रदशा होती है।

प्रथम सम्यक्‌दर्शन कर फिर स्वभाव में स्थिरता कर तो केवलज्ञान होता है - यही एक रास्ता है ऐसी प्रतीति कर। आत्म वस्तु है - ऐसी प्रतीति कर। आत्मवस्तु है, द्रव्य है। जैसे लेंड़ीपीपर में तिखास और हरापन भरा है वैसे ही आत्मा में ज्ञान और आनन्द की लीलाएँ लहराती हैं - ऐसे स्वभाव सन्मुख होनेपर सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चारित्र और केवलज्ञान होता है।

शुभरागादि क्रियाएँ धर्म का अथवा मुक्ति का कारण नहीं है; अन्य कोई व्यापार, समस्त दुःख से परिमुक्त नहीं करता; स्वभाव-सन्मुखता के सिवाय अन्य कोई भी क्रिया अथवा किसी भी भाव से जीव, दुःखों से मुक्त नहीं हो सकता। जिस भाव से तीर्थंकर नाम नाम कर्म बँधता है वह भाव पुण्य आश्रव है वह केवलज्ञान का कारण नहीं है।

सम्यक्‌दृष्टि को भान हुआ है कि राग लाभदायक नहीं है फिर भी कमजोरी से राग आ जाता है; वह राग किसी भी प्रकार से दुःख से मुक्त होने का उपाय नहीं है। स्वभावसन्मुख होने पर ही राग को नष्ट किया जा सकता है।

जब, इस विधि से ही जिनेश्वरदेव राग रहित हुए हैं तो क्या वे यह कहेंगे कि - तू राग को रखना अथवा राग को करना ? नहीं। भगवान को राग नहीं है; उन्होने राग को तोड़ा था तब ही उन्हें केवलज्ञान हुआ है। जो लोग भगवान के नाम से राग को रखने अथवा करने के लिये कहते हैं वे भगवान की वाणी को नहीं समझते।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शुभराग भी वीतरागता को प्राप्त करानेवाला नहीं है तो फिर अशुभराग से लाभ मनाने का कथन जैनमार्ग में कहाँ से होगा।

ज्ञानस्वभाव का आश्रय लेकर जो मोह-राग-द्वेष के ऊपर अति दृढ़ता से प्रहार करता है वही मुक्ति को प्राप्त करता है। जैसे मनुष्य के हाथ में तीक्ष्ण तलवार होनेपर भी जब मनुष्य, शत्रुओं पर अत्यंत जोर (ताकत) से उसका प्रहार करता है तभी वह शत्रु सम्बन्धी दुःख से मुक्त होता है अन्यथा नहीं।

इस अनादि संसार में महाभाग्य से जिनेश्वरदेव की उपदेशरूपी तीक्ष्ण तलवार मिली है। तू ज्ञानानन्द ज्योति है। पर द्रव्य का आलम्बन स्वभाव की श्रद्धा और स्थिरता द्वारा छोड़। स्वभाव की रुचि द्वारा मिथ्यात्व को नष्ट कर और स्थिरता द्वारा अस्थिरता को नष्ट कर। स्वभाव में एकाग्र होते-होते जब ज्ञानानन्द स्वभाव में स्थिर होता जाता है तो राग का अभाव होता जाता है। अनन्त संत यही कहते हैं क्योंकि तीर्थंकर भगवान ने जो कहा है वही संतो ने कहा है।

शरीर का हलन-चलन होता है वह आत्मा के कारण नहीं होता। अजीव के कारण जीव का होना माने अथवा जीव के कारण अजीव का होना माने तो यह मिथ्यात्व है। पुण्य वह तो संसार मार्ग है-कुमार्ग है इसलिये जो पुण्य से धर्म का होना मानता है वह कुमार्ग को मार्ग मानता है, वह जैन नहीं है; पुण्य-पाप के भाव संसार मार्ग का उत्पात है और इस उत्पात का ज्ञानस्वभाव के आश्रय से ही अभाव होता है।

इसप्रकार स्वभावसन्मुख होने का पुरुषार्थ करे तो सम्यग्दर्शन का अबन्ध भाव प्रगट होता है आत्मा सदैव ज्ञाता-दृष्टा है उसकी दृष्टि करके पाप-पुण्य की सावधानी छोड़ - ऐसा सर्वज्ञ के मार्ग में आया है।

'एक होय त्रण काल मां, परमारथ नो पंथ।'

तीनोंकाल में परमार्थ का रास्ता एक ही होता है। कोई दूसरा रास्ता बताए तो वह मूढ़ ही है और उस वीतरागमार्ग का विराधक है। वास्तव में तो वह अपनी आत्मा की ही विराधना करता है। धर्म सुनने का राग वह शुभभाव है यह सुनकर राग की रुचि छोड़कर अपने स्वभाव की रुचि कर तो सम्यक्दर्शन होगा और यही मोह-राग-द्वेष के ऊपर दृढ़ प्रहार है; इससे रहित सभी व्रत-तप मूर्खता से भरे हुए तप हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इस सत्य बात से विरुद्ध बात करे वह सच्चे शास्त्र-गुरु और देव नहीं है। जो उनके नाम से विपरीत बात करें वे देव को ही नहीं समझते।

यहाँ अनेकांत का स्वरूप कहते हैं। व्यवहार से भी मोह-राग-द्वेष का नाश हो जाय और स्वभाव के आश्रय से अर्थात् निश्चय से भी मोह-राग-द्वेष का नाश हो जाय - ऐसा अनेकांत नहीं है। जो ऐसा मानता है उसने प्रभु का मार्ग अर्थात् सुख के पंथ को सुना ही नहीं है।

पूर्णरूप निज आत्मा के स्वभाव की स्वाश्रयतारूप निश्चय प्रतीति, ज्ञान और रमणता यह एक ही मोक्ष मार्ग है इसके सिवाय दूसरा कोई मोक्षमार्ग नहीं है - ऐसा मानना वही अनेकांत हैं। किसी को आत्मा द्वारा मोक्षमार्ग हो जाय और किसी को पुण्य करते-करते मोक्षमार्ग हो जाय - ऐसा मानना वह अनेकांत नहीं किन्तु (मिथ्या) एकांत है। जो लोग व्यवहार को धर्म का अंग कहते हैं उन्हें संसार की ही रुचि है।

अब श्री अमृतचन्द्र आचार्य कहते हैं कि - "इसीलिये सर्व आरम्भ से, मोह का क्षय करने के लिये मैं पुरुषार्थ का आश्रय करता हूँ"। श्री अमृतचन्द्र आचार्य भावलिंगी मुनि हैं उन्हें आत्मा का भान है; जो अब विशेष पुरुषार्थ प्रगट करते हैं।

मुनि जंगल में ही रहते हैं, उनको वस्त्र-पात्रादि कदापि नहीं होते। वे कहते हैं कि - जो आहार लेने की वृत्ति उठती है वह विकल्प हमारे स्वरूप का साधन नहीं है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह का भाव उपदेश का विकल्प शुभराग है जो वास्तव में धर्म का अंग नहीं है।

मोह के तीनप्रकार (मोह-राग-द्वेष) कहे हैं; इन सभी का क्षय करने के लिये मैं आत्मा का ही आश्रय करता हूँ। पुण्य-पाप की वृत्ति तो अधर्म है; जितनी स्वभाव में स्थिरता करूँ उतना धर्म है। मोह क्षय करने के लिये व्यवहार साधन है अथवा पंच महाव्रत साधन है - ऐसा यहाँ नहीं कहा अपितु कहा कि मोहक्षय के लिये मैं ज्ञानस्वभावी आत्मा का आश्रय करता हूँ।

यहाँ पुरुषार्थ गुण को पृथक नहीं लेना। शुभ की ओर ढलता (झुकता) भाव तो विपरीत पुरुषार्थ है उसे अब स्वभाव सन्मुख करता हूँ। मुनिराज को जो निर्दोष पंचमहाव्रत की वृत्ति उठती है वह भी बन्धन का कारण है इसलिये अब

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वभाव के आश्रय से-उसे नष्ट करना चाहते हैं। इसप्रकार आचार्य भगवान ने उनके क्षय की बात ली है।

'ज्ञानी के उपदेश में मुक्ति की और अज्ञानी के उपदेश में पराधीनता की बात निकलती है।' आचार्य भगवान ने भाव-कर्म की योग्यता के नाश का ही उपाय बताया है। जिनशास्त्रों में पूर्वापर विरोध न हो वही वीतराग के शास्त्र हैं।

सम्यक्दर्शन की छोटी बात भी करे तो वीतराग स्वभाव के आश्रय से करे। चारित्र और केवलज्ञान की बात भी स्वभाव के आश्रय से है। बीच में सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा का राग बारह-व्रत तथा अट्ठाईस मूलगुण, महाव्रत आदि का राग, शास्त्र लिखने का राग आता है, यह बात सही है (इसलिये) उसे बताते हैं किन्तु उसका आदर नहीं होता। आचार्य भगवान कहते हैं कि - राग की शरण में नहीं जाना और स्वभाव के आश्रय से उसका सर्वप्रकार से नाश करना चाहिये।

जैसे चक्रवर्ती के पिटारे (खज़ाने) में से हीरे, माणिक के उत्तमोत्तम हार निकलते हैं; वैसे ही ज्ञानी की गाथाएँ एक के बाद एक ऊँची (उत्कृष्ट), उत्तमोत्तम निकलती है। सर्वज्ञ के मार्ग के संतो की गाथाएँ उत्तमोत्तम हीरे के हार जैसी हैं और जैसे चमार की थैली में से एक के बाद एक गंदे चमड़े के टुकड़े निकलते हैं; वैसे ही **अज्ञानी के मुख में से - शुभराग करो, व्यवहार करते-करते धर्म होगा - यही निकलता है।**

पाठशाला बनाने के लिए शुभराग करना चाहिये, किसी सेठ को खड़ा करें (सामने लाएं) तो मन्दिर बनेगा। पैसे का साधन हो, स्वस्थ्य शरीर आदि हो तो धर्म टिकेगा; इसप्रकार अज्ञानी का उपदेश सड़े हुए गन्दे चमड़े के समान (वस्तुस्वरूप से विपरीत) होता है। अज्ञानी धर्म के लिये शरीर, पैसा, शुभराग आदि की परांधीनता बताता है। इसप्रकार पुण्य से धर्म माननेवाला स्वभाव का घात करता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचनसार गाथा ८९

अथ स्वपरविवेकसिद्धेरेव मोहक्षपणं भवतीति स्वपरविभागसिद्धये प्रयतते-

णाणप्पगमप्पाणं परं च दव्वत्तणाहिसंबद्धं ।
जाणदि जदि णिच्छयदो जो सो मोहक्खयं कुणदि ॥८९॥

अब, स्व-पर के विवेक की (भेदज्ञान की) सिद्धि से ही मोह का क्षय हो सकता है, इसलिये स्व-पर के विभाग की सिद्धि के लिये प्रयत्न करते हैं :-

ज्ञानात्मक निज आत्मा वा अन्य को द्रव्यत्व से ।
सम्बद्ध जो जाने नियम से मोहक्षय वह ही करे ॥८९॥

अन्वयार्थ :- **(यः)** जो **(निश्चयतः)** निश्चय से **(ज्ञानात्मकं आत्मानं)** ज्ञानात्मक - ऐसे अपने को **(च)** और **(परं)** पर को **(द्रव्यत्वेन अभिसंबद्धम्)** निज-निज द्रव्यत्व से संबद्ध (-संयुक्त) **(यदि जानाति)** जानता है, **(सः)** वह **(मोह क्षयं करोति)** मोह का क्षय करता है।

टीका :- जो निश्चय से अपने को स्वकीय (अपने) चैतन्यात्मक द्रव्यत्व से संबद्ध (-संयुक्त) और पर को परकीय (दूसरे के) [१]यथोचित द्रव्यत्व से संबद्ध ही जानता है, वही (जीव), जिसने कि सम्यक्‌रूप से स्व-पर के विवेक को प्राप्त किया है, सम्पूर्ण मोह का क्षय करता है। इसलिये मैं स्व-पर के विवेक के लिये प्रयत्नशील हूँ ॥८९॥

ॐ ॐ ॐ

गाथा ८९ पर प्रवचन

अब स्व-पर के भेद ज्ञान की सिद्धि से ही मोह का क्षय हो सकता है, इसलिये स्व-पर के विभाग की सिद्धि के लिये प्रयत्न करते हैं :-

---

१ यथोचित=यथायोग्य-चेतन या अचेतन (पुद्गलादि द्रव्य परकीय अचेतन द्रव्यत्वसे और अन्य आत्मा परकीय चेतन द्रव्यत्वसे संयुक्त हैं)

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा ज्ञानानन्द स्वभावी है, शरीरादि पर हैं। स्वाश्रय निश्चय और पराश्रय व्यवहार के भेद ज्ञान की सिद्धि से ही मोह का क्षय हो सकता है। मेरे द्रव्य का मेरे स्वभाव के साथ सम्बन्ध है। पुण्य का भाव-मेरी कमजोरी से मेरी पर्याय में होता है - वे मेरे अंश है। पुण्य के विकल्प का जीव द्रव्य के साथ अनित्यतादात्म्य सम्बन्ध है - ऐसा ही जो जानता है वह क्षणिक विकार से पृथक, त्रिकाली निर्विकार ज्ञानस्वभाव को जानता है। ऐसे स्वभाव का आश्रय करे तो भी भेदज्ञान होता है। इससे विपरीत यदि कोई ऐसा माने कि - कर्म का जोर मिटे, कर्म रास्ता दे तो भेदज्ञान हो - तो उसे कभी भी भेदज्ञान नहीं होता।

मेरी भूल मेरे से होती है - ऐसा स्वीकार करनेवाला अभेद स्वभाव की रुचि करके चौथे गुणस्थान में आ जाता है इसके पश्चात् अंतर अनुभव द्वारा अनाकुल शान्ति में विशेष लीन होता है तब पांचवा गुणस्थान आता है और उसमें विशेष-विशेषपने बारम्बार लीन होता है तब छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान आता है - ऐसा न माने और सम्यक्एकान्त जो हित का मार्ग है उसे (मिथ्या) एकान्त माने तो उसने मानादि कषाय से धर्म माना है। शुभराग करो तो धर्म होगा - ऐसा माननेवाले ने विपरीत श्रद्धारूपी कसाई-खाना खोला है। पर से पुण्य माने और पुण्य से धर्म माने वह अधर्मी है।

पुण्य से कल्याण माननेवाला और मनानेवाला आत्मा की हत्या करनेवाला बन्ध के मार्ग को चलानेवाला है। **यदि धर्मी जीव के कान में विरुद्ध बात पड़े तो वह तुरन्त ही कहता है कि -'यह जिनमार्ग नहीं है'।** जो मिथ्याभावों से सम्यक् भावों का भेद जानता है वही पर से भेदज्ञान करता है। पुण्य क्षणिक है-ज्ञायक स्वभाव त्रिकाल है, इसप्रकार भेद ज्ञान सिद्धि से ही मोह का क्षय हो सकता है। इसप्रकार स्व-पर के विभाग की सिद्धि के लिये प्रयत्न करता है।

यह ज्ञानतत्त्व अधिकार है। ज्ञानात्मक लक्षणवाला आत्मा है और अन्य लक्षणों से लक्षित वे अन्य पदार्थ हैं; इसप्रकार स्व-पर के भेदज्ञान की सिद्धि होती है और इसी भेदज्ञान से ही मोह का क्षय हो सकता है। इसीलिये स्व-पर स्वरूप की भिन्नता की सिद्धि के लिये प्रयत्न करते हैं।

जो निश्चय से स्वयं का अपने चैतन्यात्मक द्रव्य से संबद्ध और पर का-पर के लक्षण से यथायोग्य द्रव्य से संबद्ध ही है, इसलिये पर के साथ किसी भी द्रव्य

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

का सम्बन्ध नहीं है - ऐसा जो जानते हैं उन्हीं आत्माओं ने सम्यक् प्रकार से यथातथ्य विवेक को प्राप्त किया है - ऐसा आत्मा सकल मोह का क्षय करता है।

मिथ्यादर्शन अर्थात् दर्शनमोह और अशान्ति व राग-द्वेष वह चारित्र मोह है; इसप्रकार दोनों ही प्रकार का मोह स्वसन्मुख सावधानीरूप विवेक से नाश को प्राप्त होता है। इसलिये स्वपर के विशेष विवेक के लिये विशेषता पूर्वक ध्रुव-अचल स्वरूप में मैं प्रयत्नशील हूँ-निरंतर स्वरूप में सावधान रहता हूँ उसमें अन्तर नहीं आने देता।

आत्मा वस्तु है। उसका चैतन्य स्वरूप-स्वभाव है, उसी के साथ स्वयं का सम्बन्ध है किन्तु किसी कर्म अथवा शरीर के साथ मेरा सम्बन्ध नहीं है और **जो निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है वह तो पृथकता-स्वतंत्रता को बताता है।** मैं चैतन्य वस्तु हूँ, चैतन्यस्वरूप से एकमेकरूप हूँ। अन्य जीव अथवा देव-गुरु-शास्त्र के साथ मेरा कोई भी सम्बन्ध नहीं है - ऐसा जो पहले से ही निर्णय किया था उसे साधकजीव विशेषपने दृढ़ करता हुआ आता है।

जगत में छह द्रव्य हैं, वे सभी द्रव्य उन स्वरूप ही हैं और उनका उनके स्वयं के द्रव्य-गुण से ही सम्बंध है और मेरा स्वकीय मेरे अपने द्रव्य-गुण से ही सम्बंध है - ऐसा पहले से ही स्वपर वस्तु स्वरूप को पृथक-पृथकपने स्वतंत्ररूप से जाने तो ही सुखी होने का उपाय कर सकता है।

सम्यक्पने स्व-पर का विवेक जिसने अंतर में प्राप्त किया है वह जीव पर में सावधानी रूप जो मोह उसका समस्त प्रकार से क्षय करता है। यही पहले और बाद में सुखी होने का उपाय है। पर से कोई जीव सुखी-दुःखी नहीं होता किन्तु अपनी भूल से दुःखी होता है इसलिये भूल रहित - ऐसे अपने चैतन्यरूपी द्रव्यत्व से स्वयं का ही सम्बन्ध है और पर के साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है, पर का उनके लक्षण व स्वरूप के साथ सम्बंध है - ऐसे पृथकतारूप निर्मल विवेक को सम्यक्तया जो प्राप्त करता है उसने ही सुख का मार्ग प्राप्त किया है।

प्रभु! नित्य चैतन्य स्वरूप आत्मा है, चैतन्य तेरा स्वरूप है। चैतन्य भाव और भाववान तू ही है। जानने-देखने के स्वभाव के साथ आत्मद्रव्य का सम्बन्ध है। वर्तमान अवस्था में पर लक्ष्य से जितना राग होता है उसके साथ वास्तव में तेरा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्बन्ध नहीं है। जगत के जितने भी पदार्थ हैं वे ज्ञेय हैं, उनको जाननेवाला मेरा ज्ञान है और जो ज्ञान है वह आत्मा है; इसीतरह दर्शन, सुख, वीर्य आदि निज गुण के साथ गुणी आत्मा का सम्बन्ध है। भाव और भाववान का एकत्व है और पर से पृथकत्व है। अहो! एक-एक गाथा में परिपूर्ण रहस्य आया है। केवलज्ञान में एक समय में सम्पूर्ण (जानने में) आता है और मति-श्रुतज्ञान में एक समय में पूर्ण का स्वीकार वर्तता है।

इसतरह जो विवेक करता है वह जीव मोह का क्षय करता है, इसलिए मैं भी ज्ञानानन्दस्वरूप ज्ञायक में निरंतर सावधान रहता हूँ अर्थात् जिस रास्ते से मोक्ष स्वभाव की प्रगटदशा को प्राप्त किया उसी रास्ते स्व-पर के विवेक के लिए मैं निरंतर प्रयत्नशील हूँ किन्तु पुण्य-पाप व्यवहार में, लौकिक प्रयोजन में थोड़ा भी प्रयत्नशील नहीं हूँ। यहाँ सम्यक्तया स्व-पर के विवेक को प्राप्त होने के लिए कहा है; किसी शास्त्र को पढ़कर मन की धारणा मात्र से सम्यक् विवेक की प्राप्ति नहीं होती।

कोई उपदेश सुनकर मान ले कि अपने पास शास्त्र ज्ञान है अथवा ऐसा विवेक है तो उससे कहते हैं कि - जैसे हाथ में तलवार को पकड़े रखे किन्तु उसका प्रयोग कैसे किया जाता है उसको सम्यक्पने न जाने तो उसका कार्य सिद्ध नहीं होता अपितु स्वयं उसी का ही घात हो जाता है; वैसे ही भेदज्ञान किस तरह है उसे सम्यक् युक्ति, आगम और अनुभव से न जाने तो हित रूप कार्य नहीं होता इसलिये मुमुक्षु स्व-पर के स्वरूप को जिनेश्वरदेव के मार्ग अनुसार जानकर स्वयं के ज्ञानानन्द निज स्वभाव में ही एकमेकपने सावधान रहे तो ही दुःखरहित सुख का उपाय, उसकी प्राप्ति और मोह का क्षय होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचनसार गाथा ९०

अथ सर्वथा स्वपरविवेकसिद्धिरागमतो विधातव्येत्युपसंहरति-

तम्हा जिणमग्गादो गुणेहिं आदं परं च दव्वेसु ।
अभिगच्छदु णिम्मोहं इच्छदि जदि अप्पणो अप्पा ॥९०॥

अब, सब प्रकार से स्वपर के विवेक की सिद्धि आगम से करने योग्य है - ऐसा उपसंहार करते हैं :-

यदि चाहते निर्मोह अपने आत्म को जिन मार्ग से ।
तो करो द्रव्यों मे स्व-पर की भिन्नता उन गुणों से ॥९०॥

अन्वयार्थ :- **(तस्मात्)** इसलिये (स्व-पर के विवेक से मोह का क्षय किया जा सकता है इसलिये) **(यदि)** यदि **(आत्मा)** आत्मा **(आत्मनः)** अपनी **(निर्मोहं)** निर्मोहता **(इच्छति)** चाहता हो तो **(जिनमार्गात्)** जिनमार्ग से **(गुणैः)** गुणों के द्वारा **(द्रव्येषु)** द्रव्यों में **(आत्मनं परं च)** स्व और पर को **(अभिगच्छतु)** जानो (अर्थात् जिनागम के द्वारा विशेष गुणों से - ऐसा विवेक करो कि - अनन्त द्रव्यों में से यह स्व है और यह पर है)।

टीका :- मोह का क्षय करने के प्रति [१]प्रवण बुद्धिवाले बुधजन इस जगत में आगम में कथित अनन्त गुणों में से किन्हीं गुणों के द्वारा-जो गुण [२]अन्य के साथ योग रहित होने से असाधारणता धारण करके विशेषत्व को प्राप्त हुए हैं उनके द्वारा-अनन्त द्रव्यपरम्परा में स्व-पर के विवेक को प्राप्त करो। (अर्थात् मोह का क्षय करने के इच्छुक पंडितजन आगम कथित अनन्त गुणों में से असाधारण और भिन्नलक्षणभूत गुणों के द्वारा अनन्त द्रव्य परम्परा में 'यह स्वद्रव्य हैं और यह परद्रव्य हैं' - ऐसा विवेक करो), जो कि इसप्रकार है :-

---

[१] प्रवण = ढलती हुई; अभिमुख; रत।

[२] कितने ही गुण अन्य द्रव्यों के साथ सम्बन्ध रहित होने से अर्थात् अन्य द्रव्यों में न होने से असाधारण है और इसलिये विशेषणभूत भिन्न-लक्षणाभूत है; उसके द्वारा द्रव्यों की भिन्नता निश्चित की जा सकती है।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

[१]सत् और [२]अकारण होने से स्वतः सिद्ध, अन्तर्मुख और बहिर्मुख प्रकाशवाला होने से स्व-परका ज्ञायक - ऐसा जो यह, मेरे साथ सम्बन्धवाला, मेरा चैतन्य है उसके द्वारा-जो (चैतन्य) समानजातीय अथवा असमानजातीय अन्य द्रव्य को छोड़कर मेरे आत्मा में ही वर्तता है उसके द्वारा-मैं अपने आत्मा को [३]सकल-त्रिकाल में ध्रुवत्व का धारक द्रव्य जानता हूँ। इसप्रकार पृथक्रूप से वर्तमान स्वलक्षणों के द्वारा-जो अन्य द्रव्य को छोड़कर उसी द्रव्य में वर्तते हैं उनके द्वारा-आकाश, धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल और अन्य आत्मा को सकल त्रिकाल में ध्रुवत्व धारक द्रव्य के रूप में निश्चित करता हूँ (जैसे चैतन्य लक्षण के द्वारा आत्मा को ध्रुव द्रव्य के रूप में जाना, उसीप्रकार अवगाह हेतुत्व, गतिहेतुत्व इत्यादि लक्षणों से-जो कि स्व-लक्ष्यभूत द्रव्य के अतिरिक्त अन्य द्रव्यों में नहीं पाये जाते उनके द्वारा-आकाश, धर्मास्तिकाय इत्यादि को भिन्न-भिन्न ध्रुव द्रव्यों के रूप में जानता हूँ) इसलिये मैं आकाश नहीं हूँ, धर्म नहीं हूँ, अधर्म नहीं हूँ, काल नहीं हूँ, पुद्गल नहीं हूँ और आत्मान्तर नहीं हूँ; क्योंकि-मकान के [४]एक कमरे में जलाये गए अनेक दीपकों के प्रकाशों की भाँति यह द्रव्य इकट्ठे होकर रहते हुए भी मेरा चैतन्य निजस्वरूप से अच्युत ही रहता हुआ मुझे पृथक् बतलाता है।

इसप्रकार जिसने स्व-पर का विवेक निश्चित किया है - ऐसे इस आत्मा को विकारकारी मोहांकुरका प्रादुर्भाव नहीं होता।

भावार्थ :- स्व-पर के विवेक से मोह का नाश किया जा सकता है। वह स्व-पर का विवेक, जिनागम के द्वारा स्व-पर के लक्षणों को यथार्थतया जानकर किया जा सकता है॥९०॥

---

[१] सत् = अस्तित्ववाला; सत्रूप; सत्तावाला।

[२] अकारण = जिसका कोई कारण न हो - ऐसा अहेतुक, (चैतन्य सत् और अहेतुक होने से स्वयं ही सिद्ध है।)

[३] सकल = पूर्ण; समस्त; निरवशेष (आत्मा कोई काल को बाकी रखे बिना सम्पूर्ण तीनोंकाल ध्रुव रहता - ऐसा द्रव्य है।)

[४] जैसे किसी एक कमरे में अनेक दीपक जलाये जायें तो स्थूलदृष्टि से देखनेपर उनका प्रकाश एक दूसरे में मिला हुआ मालूम होता है किन्तु सूक्ष्मदृष्टि से विचारपूर्वक देखनेपर वे सब प्रकाश भिन्न-भिन्न ही है; (क्योंकि उनमें से एक दीपक बुझ जाने पर उस दीपक का प्रकाश नष्ट होता है; अन्य दीपकों के प्रकाश नष्ट नहीं होते) उसीप्रकार जीवादिक अनेक द्रव्य एक ही क्षेत्र में रहते हैं फिर भी सूक्ष्मदृष्टि से देखनेपर वे सब भिन्न-भिन्न ही हैं, एकमेक नहीं होते।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गाथा ९० पर प्रवचन

अब सर्वप्रकार से पूर्ण स्व-पर के विवेक की सिद्धि सम्यक् युक्ति और आगम प्रमाण ज्ञान द्वारा करने योग्य है - ऐसा उपसंहार करते हैं:-

पर के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है - ऐसा जाने तो पर का ग्रहण-त्याग मेरे से हो ही नहीं सकता - ऐसा निर्णय होता है। छूटना अर्थात् मुक्ति। मुक्ति अर्थात् पर द्रव्य और पुण्य-पाप के साथ मेरा सम्बन्ध नहीं - ऐसे मुक्तस्वरूप की बात सुनने पर मुक्तस्वरूप की बात जिसे अच्छी लगती हो उसे ही उसका उपाय अच्छा लगता है। श्रीमद् जी ने भी कहा है कि -

अेम विचारी अंतरे, शोधे सद्गुरु योग ।
काम एक आत्मार्थ नुं, बीजो नहिं मन रोग ।।

यहाँ भी आचार्य देव कहते हैं कि - हे जीव! यदि तुझे निर्मोहता चाहिये हो तो तू सर्वज्ञ-वीतराग द्वारा जाने हुए और कहे हुए जिनमार्ग द्वारा गुण सहित द्रव्यों का स्वरूप जान-भाव द्वारा भाववान को जान। वर्ण-गंध-स्पर्श-रूप भाव द्वारा परमाणु-पुद्गल को जान अथवा इनका सम्बन्ध त्रिकाल इन्हीं के साथ है वैसे ही तेरे ज्ञानादि गुणों का सम्बन्ध तेरी आत्मा के साथ ही है।

मोह का क्षय करने की ओर जिसकी बुद्धि है - ऐसे ज्ञातास्वभाव सन्मुख ढलती बुद्धिवाले बुधजन इस जगत में-आगम में कहे गए अनन्त गुणों में से किन्ही गुणों द्वारा कि जो गुण अन्य द्रव्य के साथ योग-सम्बन्ध रहित होने से (ज्ञानादि चैतन्यमय गुण है उनको) असाधारणत्व धारण करके आत्मा के साथ रहे हैं। जो गुण स्वलक्षणरूप से विशेषत्व को प्राप्त हुए हैं, इनके द्वारा-उस स्वभाव साधन द्वारा स्वभाववान को पकड़ो (ग्रहण करो)। छह द्रव्य के समूहरूप जगत् है उसमें अनन्त द्रव्य संतति में से स्वगुण द्वारा स्व-पर के विवेक को प्राप्त करो।

असाधारण गुण द्वारा गुणी का पर से पृथकत्व जाना जा सकता है। अनन्त आत्मा और पुद्गल, धर्मास्तिकाय आदि पदार्थ हैं उनमें से अपना चैतन्यरूप स्वलक्षण द्वारा स्वयं के आत्मा को ग्रहण करके उसे ध्रुवपने अंगीकार करो। चैतन्यता अर्थात् जानना-देखनापना, वह त्रिकालसत् है। यह जानने-देखने का

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गुण अनादि-अनन्त सत् है, सत् होने से अकारण है, अहेतुक है अर्थात् उसे किसी ने नहीं किया है। सत् अकारणीय होने से वह चैतन्य लक्षण स्वतः सिद्ध अन्तर्मुख और बहिर्मुख तत्त्वों को प्रकाशित करनेवाला होने से स्व-पर का ज्ञायक - ऐसा जो यह मेरे साथ सम्बंधवाला मेरा चैतन्य निरंतर मेरे में ही वर्तता है।

मेरा चैतन्य (दर्शन-ज्ञान-गुण) वह विशेष गुण है, उसके द्वारा मेरे चैतन्य स्वरूप जैसी जातिवाली अन्य अनन्त आत्माएं, और अन्य अनन्त अचेतन द्रव्य हैं उन्हें अपने से भिन्नरूप जानकर तथा जो अनन्त सर्वज्ञ सिद्ध परमात्मा हैं उनको भी निजगुण द्वारा पृथक जानकर, मेरे चैतन्य द्रव्य के साथ पर वस्तुओं का कोई सम्बन्ध नहीं है - ऐसा सर्वप्रथम निर्णय करो। वे उनके गुण द्वारा उनके स्वरूप को धारण करके उनमें, उनमें से वर्तते हैं और मैं सर्वप्रकार से मेरे गुण द्वारा मेरे स्वरूप को धारण करके मेरे में ही वर्तता हूँ - ऐसा होने से एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ भी कार्य नहीं कर सकता।

हाथ-पैर का चलना अथवा नहीं चलना वह आत्मा के आधीन नहीं है। घोड़े से टांगा नहीं चलता और शरीर के पैरों को जीव नहीं चला सकता। अन्य अनन्त आत्माएं-एकेन्द्रिय से सिद्ध परमात्मा पर्यंत जितनी भी आत्माएं हैं वे सभी मेरे आत्मा के समान ही एक जाति की हैं, फिर वे तीनो ही काल मेरे आत्मा से पृथक ही हैं और असमान जाति पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल वे सभी मेरे से भिन्नरूप होने से उन छहों द्रव्यों के साथ मेरा कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

स्व-स्वामी सम्बन्ध, कर्ता-कर्म सम्बन्ध, आधार-आधेय सम्बन्ध - ऐसा एकत्व बतानेवाला किसी भी प्रकार का सम्बन्ध पर द्रव्य के साथ कभी भी नहीं है, मेरे ज्ञानादि गुणों के साथ ही मेरा सम्बन्ध है इसलिए अन्य द्रव्यों के साथ माने हुए सम्बन्ध को छोड़कर ज्ञान दर्शन स्वभाव द्वारा मैं मेरे आत्मा को सम्पूर्णरूप तीनो ही काल निश्चल ध्रुवत्व को धारण करता हुआ स्वद्रव्य को धारण करता हुआ स्वद्रव्य जानता हूँ।

देखो ! इसका नाम सम्यग्दर्शन और धर्म है। इसप्रकार पर से पृथकपने वर्तते स्व-लक्षण द्वारा कि जो स्व-लक्षण अन्य द्रव्य को छोड़कर (मात्र) उसी द्रव्य में वर्तते हैं - ऐसे असाधारण गुणरूपी स्वलक्षण द्वारा लक्ष्य रूप स्वचैतन्य को

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ग्रहण करके उसको ही एकमेकपने स्वीकार करता हूँ इसका नाम अपूर्व धर्म क्रिया है। इसप्रकार स्वद्रव्य से एकत्व और पर से पृथकत्व निश्चित करनेवाले को ही धर्म अथवा सुख उत्पन्न होता है।

अपनी आत्मा को कैसा जाने तो सत्य का स्वीकार और धर्म होगा ? वह यहाँ कहते हैं। ज्ञान और ज्ञान के साथ सुखादि अनन्त गुण सहित आत्मा है। आत्मा वस्तु सत् है उसका ज्ञान गुण भी सत् है सत् होने से अकारण-स्वतःसिद्ध स्व-पर का ज्ञायक है। उसे पर से पृथक कैसे जानना ? कि मेरे साथ सम्बन्धवाला जानने देखने रूप चैतन्य उसके द्वारा चेतन, अचेतन जो सर्व पर द्रव्य हैं उनको छोड़कर मेरे आत्मा में ही वह लक्षण वर्तता है।

ज्ञान गुण मेरे आत्मा के साथ ही सम्बन्ध रखता है, मेरा कोई भी गुण पर के साथ किंचित मात्र भी सम्बन्ध नहीं रखता। अनन्त पर द्रव्य हैं, वे उनके गुणों के साथ सम्बन्ध रखते हैं किन्तु पर के साथ नहीं। जैसे-लाखों शक्कर के डिगले हैं उनमें प्रत्येक डिगले में पुद्गल के स्पर्शादि अनन्त गुण हैं वे अन्य पुद्गल परमाणु के साथ अथवा किसी जीवादि के साथ सम्बन्ध नहीं रखते क्योंकि जगत् की प्रत्येक वस्तुएं भिन्न-भिन्न हैं।

ज्ञान की स्व-पर प्रकाशक स्वभाव शक्ति के कारण निश्चित करता हूँ कि अपना सम्बन्ध स्व द्रव्य के साथ और पर का सम्बन्ध उनके गुणों के साथ है। रागादि भी ज्ञेय हैं - ऐसा वस्तु स्वरूप तीनों ही काल सर्व अकारणीय स्वतः सिद्ध-स्वतंत्र है और ज्ञान भी वैसा ही है इसमें धर्म प्राप्त करने के लिए क्या आया कि-पर से पृथकत्व और स्वरूप से एकत्वपना जानकर ज्ञान को स्वसन्मुख करें, स्वद्रव्य के साथ एकता करे तो भ्रम और दुःख रहित पृथकत्व की-मुक्ति की श्रद्धा-ज्ञान और चारित्रदशारूप धर्म होता है।

प्रत्येक द्रव्य सदा ही अपने में वर्तता होने से वह पर की अपेक्षा नहीं रखता। जिनने ज्ञान स्वभाव का सम्बंध तीनोंकाल के लिये अपनी आत्मा के साथ स्वीकार किया है, जहाँ पराश्रय की श्रद्धा दूर हो गई है उसका नाम सम्यग्दर्शन और धर्म है; धर्म है वही सुख है ज्ञान का सम्बंध मेरी आत्मा के साथ अनादि-अनन्त है जो किसी भी काल में मुझ से पृथक नहीं होता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विश्व में अनंतानंत द्रव्य हैं जो सदा ही पृथक-पृथक अनन्त हैं। अनन्त, अनन्तरूप रहकर स्वयं उनके कारण अवस्थायें बदलती हैं किन्तु किसी अन्य के कारण से वे टिकते अथवा बदलते हों ऐसा उनमें कोई भी द्रव्य पराधीन नहीं है। एक-एक द्रव्य में अनन्त-अनन्त गुण हैं और प्रत्येक समय में अनन्त कार्य (अनन्त गुण की अनन्त पर्यायों का परिणमन) वे सभी स्वतंत्ररूप से किया करते हैं जिसके लिये उन्हें अन्य किसी की जरूरत नहीं पड़ती।

निश्चित स्वलक्षण द्वारा एक द्रव्य की पृथकता-स्वतंत्रता सिद्ध होते ही सर्वद्रव्यों की तीनोंकाल के लिये स्वतंत्रता सिद्ध हो जाती है। कर्म, शरीर, मन, वाणी आदि अन्य सभी संयोग उनकी समय-समय होनेवाली अवस्थारूप कार्यपने वर्तते हैं क्योंकि वे उनके पृथक लक्षण द्वारा उनके अस्तित्व में वर्तते हैं। अनेक हैं तो वे अनेक रहकर वर्तते हैं अथवा एक होकर? यदि वे एक होकर कार्य करें तो उनमें पृथकता नहीं रहती। जैसे दो उंगली और एक लकड़ी तीनों मिलकर एक काम नहीं करते। यदि तीनों तीनरूप रहकर वर्तते हैं तो ही प्रत्येक की पृथकता- स्वतंत्रता प्रसिद्ध होती है।

अनन्तों के भिन्न-भिन्न कार्य हैं कोई अन्य उनका करनेवाला नहीं है। अज्ञानी को भ्रम है कि पर के द्वारा, पर का कार्य होगा; किन्तु ऐसा नहीं है क्योंकि प्रत्येक पदार्थ अपने स्वलक्षणरूप निज शक्तिरूप सामर्थ्य द्वारा पृथक-पृथक वर्तन कर रहे हैं। अन्य सभी द्रव्य अपने-अपने द्रव्य में ही वर्तते हैं।

लकड़ी का टुकड़ा स्थूल दृष्टिवाले को एकवस्तु भाषित होता है, किन्तु ऐसा नहीं है क्योंकि उसमें अनेक रजकण-पुद्गल द्रव्य हैं, जो यहाँ भी अपनी पृथकता रखकर अपने गुण द्वारा अपने में ही वर्तते हैं; अपना लक्षण निरंतर अपने में ही रखकर, अपने में ही वर्तते हैं। ज्ञानी जीव तीनों ही काल ध्रुवत्व धारण किये हुए द्रव्यों के स्वरूप को इसतरह दृढ़पने निर्णय करते हैं।

शरीर की सम्हाल रखूँ, उसे ऐसे चलाऊँ, यह मान्यता भ्रम है क्योंकि शरीर तो हड्डी, चमड़े की धूल है; संयोगरूप से देखे तो यह एक जैसा दिखाई देता है किन्तु उसके वियोग का काल आनेपर प्रत्येक पृथक-पृथक हो जाएगा। छहों द्रव्य उनके लक्षण से अपृथक और पर से पृथकत्व द्वारा समस्त प्रकार से अपने ध्रुवत्व को धारण करके द्रव्यरूप से हैं - ऐसा धर्मी जीव निर्णय करते हैं। जैसा अनंत सर्वज्ञों

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ने दृढ़रूप से जाना है वैसा ही धर्मी जीव दृढ़रूप से निश्चित करते हैं।

जैसे चैतन्य लक्षण द्वारा आत्मा को सर्व अन्य जीवादि द्रव्यों से भिन्नरूप, पर से पृथक और स्व से एकत्वरूप जाना है वैसे ही अवगाहना हेतुत्व, गति हेतुत्व, स्थिति हेतुत्व, वर्तना हेतुत्व जिनके लक्षण हैं कि जो स्व लक्षणरूप निज-निज द्रव्य के सिवाय अन्य द्रव्यों में कभी नहीं वर्तते। उनके द्वारा आकाश आदि द्रव्यों को नित्य स्वतंत्र भिन्न-भिन्न द्रव्यरूप से जानता हूँ इसलिये मैं छह द्रव्यरूप नहीं हूँ। अन्य अनंत आत्माएं हैं, वे भी उनकेरूप से हैं किन्तु वे मेरेरूप से कभी नहीं है। पिता एवं पुत्र एक नहीं है तथा वे एक होकर काम करनेवाले भी नहीं हैं इसलिये पिता का जीव और पुत्र का जीव परस्पर कोई सम्बंध धारण नहीं करता फिर भी अज्ञानी मोह से उनमें एकत्व मानता है।

राग की निरर्थकता और ज्ञान की स्वहित में सार्थकता है। पुत्रादि पर पदार्थ को बचाने का राग आता है किन्तु उस राग की सामर्थ्य पर पदार्थ को रखने अथवा मिटाने के लिये समर्थ नहीं है, इसलिये राग में पर का कार्य करने की ताकत नहीं है और स्वलक्षणरूप चैतन्य का काम करने की भी राग में ताकत नहीं है। स्व आश्रित श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र का कार्य राग द्वारा (पराश्रितरूप व्यवहार रत्नत्रय का राग हो तो भी) नहीं हो सकता इसलिये राग-द्वेष-मोह आत्महित के लिये निरर्थक हैं। और ज्ञान, स्व-पर की पृथकता निश्चित करके स्वहित करने में सार्थक है।

स्वलक्षण द्वारा तीनों काल के लिये-पृथकत्व जाना जा सकता है। ज्ञानी स्वयं को पर से पृथक ध्रुवपने रहकर स्वयं में वर्तन करनेवाला है; इसप्रकार वह स्व में एकत्व का निर्णय करता है वैसे ही जगत में अनन्त सर्व पदार्थ समस्त तीनोंकाल में ध्रुवत्व धारण करते हुए उनके लक्षण में रहकर उन्हीं में वर्तन कर रहे हैं किन्तु मेरे में नहीं, मेरे से वे नहीं, उनसे मैं नहीं, मेरे आधार से वे कोई भी नहीं हैं - ऐसा निर्णय करता है और इसतरह ज्ञान द्वारा स्वस्थ वर्तता हुआ जानता है कि स्व-पर के विवेक से स्व-सन्मुख ज्ञातापने की दृढ़ता द्वारा धर्म होता है अर्थात् इस विधि से ही मोक्षस्वरूप की श्रद्धा और एकाग्रतारूप मोक्ष का उपाय उसकी प्राप्ति करके सुखी हो सकता है। सर्व पदार्थों से भिन्नता, पृथकत्व, मुक्तपना वर्तमान में भी है, भूतकाल में भी था और भविष्य काल में भी पृथकत्व ही रहेगा; इसप्रकार वर्तमान

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वलक्षण द्वारा निर्णय किया जा सकता है।

मेरी आत्मा का संसारी अथवा सिद्ध किसी भी आत्मा के साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं है। यहाँ तेरे नजदीक में रहनेवाला जो तेरा शरीर उसके साथ भी तेरा सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि प्रत्येक पुद्गल परमाणु अपने-अपने स्व-लक्षण द्वारा पृथक-पृथक उनकी सत्ता में वर्तते हैं इसलिए मैं किसी पर द्रव्यरूप नहीं हूँ, क्योंकि एक कमरे में में जलाये गए अनेक दीपक के प्रकाश के समान इस जगत्रूपी कमरे में छहों द्रव्य (अनन्त जीव-अजीव पदार्थ) एक क्षेत्र अवगाहन रूप इकट्ठे रहने पर भी मेरा चैतन्य निज स्वरूप से अच्युत ही रहता हुआ, मुझे नित्य स्व-लक्षण द्वारा पृथक जानने में आता है। मेरा चैतन्य मुझे सदा ही पर से पृथक रूप ज्ञात होता है।

इसप्रकार ज्ञान का और आत्मा का, आत्मा केसाथ एकत्व और पर से पृथकत्व का निर्णय करते ही स्वसन्मुखता रूप मुक्ति का उपायरूप धर्म होता है। इस तरह जिनने स्व-पर का विवेक निश्चित किया है - ऐसे आत्मा को विकार करनेवाला मोह का अंकुर उत्पन्न नहीं होता। मैंने शरीर का ध्यान नहीं रखा इसलिए रोग हो गया, दवा, डॉक्टर आदि साधन नहीं मिले इसलिए मेरी माँ मर गई, पुण्य के कारण मैं सुखी हुआ इत्यादि प्रकार से पर के साथ एकताबुद्धि करनेवाला मोह उसका पर से पृथकत्व करनेवाले विवेक द्वारा नाश होता है।

भावार्थ पर प्रवचन :- स्व-पर के विवेक से पर में सावधानी रूप मोह का नाश किया जा सकता है। स्व-पर का विवेक कैसा है कि पर के साथ सम्बन्ध होने की मिथ्यामान्यता को नष्ट करनेवाले को ऐसा भेदज्ञान जिनागम द्वारा स्व-पर के लक्षण से यथार्थपने पहिचानने से किया जा सकता है। स्व-पर का विवेक भावभासनरूप होना चाहिए, उसके द्वारा मोह का नाश होता है और वह भेदज्ञान जिनागम द्वारा स्व-पर के यथार्थ लक्षण को यथार्थ रूप से पहचानने से किया जा सकता है।

यह ज्ञानतत्त्व का अधिकार है। तत्त्व अर्थात् स्वरूप-सार; आत्मा ज्ञानस्वभावी है। वह 'स्व' को जानते हुए 'पर' को जैसे हैं वैसे जाने, ऐसी शक्तिवाला है। छहों द्रव्य स्वतंत्र हैं - ऐसी दृष्टि हो तो वह पर के साथ सम्बन्ध नहीं मान सकता। मैं तो सदा ही स्व के साथ सम्बन्ध रखकर जाननेवाला हूँ किन्तु पर के

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

साथ नहीं। सर्वज्ञ भगवान ने अनन्त जीव-अजीव पदार्थ देखे हैं। छहों द्रव्य का स्वरूप ऐसा ही है अन्य प्रकार नहीं। उन प्रत्येक का भिन्न-भिन्न स्वरूप यथार्थ ज्ञान द्वारा जानना चाहिए। उसके बिना स्व-सन्मुख शुद्ध ज्ञाता स्वभाव का अनुभव नहीं हो सकता।

वस्तुतत्त्व की यथार्थता और उसके अनुसार श्रद्धा जैन मार्ग में ही है। जैनमत के सिवाय अन्य किसी भी मत में अंशमात्र भी वस्तु का स्वरूप यथार्थ नहीं है। सनातन जैनमार्ग में से श्वेताम्बरमत जैन के नाम से कल्पित रचना से नया हुआ है, उसमें वस्तुतत्त्व से हजारों बातों में विरुद्धता है। वे छह द्रव्य में से काल द्रव्य को नहीं मानते। गुण को भी वास्तव में नहीं मानते तथा देव-गुरु-शास्त्र, निश्चय-व्यवहार और पदार्थ के स्वरूप को भी अन्यथा मानते हैं।

सनातन मूल (दिगम्बर जैन) मार्ग में ही त्रिकाल अबाधित - ऐसा सच्चा तत्त्व है। गुरु (मुनि) निर्ग्रन्थ निष्परिग्रही, नग्न दिगम्बर मुनि होते हैं, किन्तु यदि कोई वस्त्रादि रखकर मुनि पद मनावे उसके देव-गुरु-शास्त्र और तत्त्व सभी खोटे हैं। इसप्रकार परीक्षा करना चाहिए। वस्तु स्वभाव अनुसार कड़क श्रद्धा जैन मार्ग में ही है।

एक समय का विकृतभाव है, उससे रहित पूर्ण वस्तु मौजूद है। विकृतभाव वस्तु में नहीं है ऐसा यथार्थ निर्णय किया कि वह मुक्त हो गया। विकृतभाव से भेद करना, यही करने योग्य है। बाकी सब पृथक् ही हैं।

- पूज्य गुरुदेवश्री

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचनसारगाथा ९१

अथ जिनोदितार्थश्रद्धानमन्तरेण धर्मलाभो न भवतीति प्रतर्कयति-

सत्तासंबद्धेदे सविसेसे जो हि णेव सामण्णे ।
सद्दहदि ण सो समणो सत्तो धम्मो ण संभवदि ॥९१॥

अब, न्यायपूर्वक ऐसा विचार करते हैं कि - जिनेन्द्रोक्त अर्थों के श्रद्धान बिना धर्म लाभ (शुद्धात्म अनुभवरूप धर्म प्राप्ति) नहीं होता :-

श्रद्धा करे सत्ता सहित सविशेष अर्थों की नहीं ।
श्रामण्य में वह श्रमण नहिं तो धर्म भी उसके नहीं ॥९१॥

अन्वयार्थ :- **(यः हि)** जो (जीव) **(श्रामण्ये)** श्रमणावस्था में **(एतान् सत्ता संबद्धान् सविशेषान्)** इन [1]सत्तासंयुक्त [2]सविशेष पदार्थों की **(न एव श्रद्दधाति)** श्रद्धा नहीं करता, **(सः)** वह **(श्रमणः न)** श्रमण नहीं है; **(ततः धर्मः न संभवति)** उससे धर्म का उद्भव नहीं होता (अर्थात् उस श्रमणाभास के धर्म नहीं होता।)

टीका :- जो (जीव) इन द्रव्यों को कि जो (द्रव्य) [3]सादृश्य-अस्तित्त्व के द्वारा समानता को धारण करते हुए स्वरूप-अस्तित्त्व के द्वारा समानता को धारण करते हुए स्वरूप-अस्तित्त्व के द्वारा विशेषयुक्त है उन्हें-स्व-पर के भेदपूर्वक न जानता हुआ और श्रद्धा न करता हुआ यों ही (ज्ञान-श्रद्धा के बिना) मात्र श्रमणता से (द्रव्यमुनित्व से) आत्मा का दमन करता है वह वास्तव में श्रमण नहीं है, इसलिये जैसे जिसे रेती और स्वर्णकणों का अन्तर ज्ञात नहीं है, उसे धूल के धोने से-उसमें से स्वर्णलाभ नहीं होता, इसीप्रकार उसमें से (-श्रमणाभास में से) [4]निरूपराग आत्मतत्त्व की उपलब्धि (प्राप्ति) लक्षणवाले धर्मलाभ का उद्भव नहीं होता।

---

[1] सत्तासंयुक्त = अस्तित्त्ववाले। [2] सविशेष = विशेषसहित; भेदवाले; भिन्न-भिन्न। [3] अस्तित्त्व दो प्रकार का है :- सादृश्य-अस्तित्त्व और स्वरूप-अस्तित्त्व। सादृश्य-अस्तित्त्व की अपेक्षा से सर्व द्रव्यों में समानता है, और स्वरूप-अस्तित्त्व की अपेक्षा से समस्त द्रव्यों में विशेषता है। [4] निरूपराग = उपराग (-मलिनता, विकार) रहित।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भावार्थ :- जो जीव द्रव्यमुनित्व का पालन करता हुआ भी स्व-पर के भेद सहित पदार्थों की श्रद्धा नहीं करता, वह निश्चय-सम्यक्त्वपूर्वक परम सामायिक संयमरूप मुनित्व के अभाव के कारण मुनि नहीं है; इसलिये, जैसे जिसे रेती और स्वर्णकण का विवेक नहीं है - ऐसे धूल को धोनेवाले को, चाहे जितना परिश्रम करने पर भी, स्वर्ण की प्राप्ति नहीं होती, उसीप्रकार जिसे स्व और पर का विवेक नहीं है - ऐसे उस द्रव्यमुनि को, चाहे जितनी द्रव्यमुनित्व की क्रियाओं का कष्ट उठानेपर भी, धर्म की प्राप्ति नहीं होती ।।९१।।

ॐ ॐ ॐ

गाथा ९१ पर प्रवचन

अब त्रिलोकीनाथ सर्वज्ञदेव कथित पदार्थों की श्रद्धा बिना स्व-सन्मुखता रूप धर्म का लाभ नहीं होता। सर्वज्ञ कथित आप्त, आगम और पदार्थ का स्वरूप जाने बिना तथा मिथ्यामत - पक्ष के तत्त्व की श्रद्धा छोड़े बिना शुद्धात्म अनुभव रूप धर्म की प्राप्ति होती ही नहीं - ऐसा न्यायपूर्वक गाथा ९१ द्वारा विचार करते हैं।

जो जीव श्रमण अवस्था में शुद्धोपयोगरूप आत्मार्थ साधने में प्रवीण मार्ग में, सत्ता सहित भिन्न-भिन्न पदार्थों को नहीं मानता वह श्रमण नहीं-साधु नहीं इसलिये उनमें से धर्म उत्पन्न होता ही नहीं। वस्तु स्वभावरूप धर्म स्ववस्तु के आश्रय से होता है। प्रत्येक पदार्थ पर से पृथक और स्वरूप से एकत्वरूप ही वर्तता है - ऐसी अन्तरदृष्टि और एकाग्रता द्वारा निर्मल पर्यायरूप धर्म होता है।

जो जीव इन द्रव्यों की कि - जो द्रव्य सादृश्य अस्तित्त्व के द्वारा समानता को धारण करते हुए भी छहों द्रव्य एक समान और एक आकाश के क्षेत्र में समानपने अवगाहनता को धारण करते हैं। प्रत्येक द्रव्य सदा ही अपने भिन्न-भिन्न अस्तित्त्वरूप स्वरूप अस्तित्त्व के द्वारा पर से भेद सहित ही है। तीनोंकाल ऐसा ही है तो भी उनको स्व-पर के विभाग पूर्वक नहीं मानता और ऐसे का ऐसा ही श्रद्धा-ज्ञान की यथार्थता बिना, मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी मुनिपने द्वारा आत्मा को दमन करता है; वह वास्तव में श्रमण नहीं अपितु श्रमणाभास है; जिससे वह अनन्त संसारी रहता है। व्यवहार करते-करते कभी तो धर्म हो जाएगा और व्रत-तप, उपवासादि

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बाह्यक्रिया-काण्ड को वह चारित्र और साधुपना मानता है किन्तु वैसा जैनमार्ग में नहीं है।

नग्न सत्य कड़क लगता है, इसलिये यदि सत्य-असत्य का भेद न करे अथवा शर्माए तो सत्य समझ में नहीं आता। साधु तो निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान और निर्विकल्पपने आत्मज्ञान में एकाग्र-लीन रहकर सहजानंद दशा में झूलनेवाले नग्न दिगम्बर भावलिंगी मुनि होते हैं। इससे विपरीत यदि कोई वस्त्र रखकर मुनिपद माने तो वह तत्त्व का घोर विरोध करनेवाला होने से निगोद में जाता है - ऐसा संतो ने-सर्वज्ञों ने कहा है।

वर्तमान में तो सम्पूर्ण मूल बात में भेद (अंतर) हो गया है और जैन के नाम से बहुत फेरफार हो गई है। अन्य मत में तो सत्य नहीं किन्तु श्वेताम्बरमत जो नया हुआ है उसने भगवान के नाम से विरुद्ध तत्त्व कहकर मिथ्यामार्ग चलाया है। उसमें एक अंश मात्र भी सत्यता नहीं है। जिसकी एक तत्त्व में भूल है, उसकी उसके साथ सभी में भूल होती ही है।

किसी व्यक्ति के प्रति विरोध नहीं होना चाहिये, किन्तु उक्तमान्यतावाला मिथ्यामती है ऐसा निर्णय भी न करे तो उसे सत्य की दृढ़ता नहीं हो सकती। वर्तमान में तो दिगम्बर धर्म जो कि प्राचीन ही है उसमें भी सत्य समझे बिना-मुनिपद का वेश लेकर अपने को साधुपद में मान लेते हैं, वे भी मिथ्यादृष्टि ही हैं।

दृढ़ता से सत्य-असत्य का विवेक करने में शर्म रखे तो सत्य समझ में नहीं आ सकता। श्री कुन्दकुन्द आचार्य पंचमहाव्रतधारी भावलिंगी संत थे। उनके द्वारा कहे हुए वचन, सर्वज्ञ-वीतराग के समान ही प्रमाणभूत हैं इनसे थोड़ा भी विरुद्ध कहे वे मिथ्यादृष्टि हैं और वे वस्तुतत्त्व का विरोध करनेवाले हैं।

जो वस्तुतत्त्व के विरोध में खड़ा है वह कष्ट को ही सहन करता है। वह भले ही सच्ची परम्परा के व्यवहार को मानता हो-नग्न दिगम्बर हो उसीको ही द्रव्यलिंगी मुनि कहा है। वह भी पराश्रय में धर्म-हित मानने से अंतरंग में सहजानंद का अनुभव नहीं करता किन्तु वृथा ही क्लेश-कष्ट ही सहता है। आर्तध्यान द्वारा आत्मा को दुःख देता है-हनन करता है, क्योंकि वह स्वाश्रित स्वानुभव की शान्ति को प्राप्त नहीं होता इसलिए अपने ही अपराध से कष्ट सहन करता है। यह बात प्रारम्भिक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भूमिका में ही समझने जैसी है। स्व-पर की पहचान कैसे करना ? हित-अहित और उसका कारण क्या है ? यह पहले निर्णय करने की बातें है क्योंकि विवेक बिना धर्म समझ में भी नहीं आ सकता तो उत्पन्न कहाँ से होगा।

प्रश्न :- मिथ्यादृष्टि को उसके द्रव्यचारित्र व नैगमनय से साधु कहा जाय अथवा नहीं ?

समाधान :- नहीं, क्योंकि सम्यक् ज्ञान में नय होता है इसलिए मिथ्यादृष्टि को कोई भी नय नहीं होता। अपवाद मार्ग में वस्त्र-पात्र सहित साधुपद होता है - ऐसा माननेवाला अनन्त पवित्र संतों का विरोध करता है। वीतरागता का विरोध करता है। यहाँ तो जो सन्त नग्न दिगम्बर मुनि हैं, जिन्होंने स्वभाव के उग्र आलम्बन द्वारा तीन कषाय (चौकड़ी) का अभाव किया है, जो बारबार छटवें-सातवें गुणस्थान में वर्तते हैं, फिर भी उन्हें क्षणिक भेद का आदर नहीं होता - वे कहते हैं कि धर्म विवेक से उत्पन्न होता है। जैनमार्ग में वीतराग दृष्टि और वीतराग चारित्र के बिना किसी भी प्रकार से धर्म मानने में नहीं आया है।

द्रव्यलिंगी को स्व-पर क्या है ? भेदज्ञान का प्रयोजन क्या है ? हित किसमें है और किस तरह होता है ? उसका भान नहीं है इसलिए वह भले ही अट्ठाईस मूलगुणों का पालन करनेवाला दिगम्बर मुनि ही क्यों न हो, तो भी वह श्रमणाभास है; उसे निमित्त और विकल्प से भिन्न चैतन्यमात्र स्वरूप में एकाग्रता क्या है उसका अनुभव वह नहीं कर सकता।

जैसे धूल और स्वर्ण के रजकणों के अन्तर को जिसने नहीं जाना है ऐसे धूलधोया (सुनारों के पास की नालियों में से मिट्टी को धोकर स्वर्ण कण ढूंढनेवाले) को स्वर्ण लाभ नहीं होता; वैसे ही श्रवणाभास में से निरुपराग आत्मतत्त्व की प्राप्ति नहीं होती अर्थात् निर्विकारी ज्ञानानन्दमय आत्मत्व की प्राप्ति जिसका लक्षण है - ऐसा धर्म लाभ उसे प्रगट नहीं होता। अन्य मत में तो धर्म का व्यवहार भी नहीं है किन्तु जैन के द्रव्यलिंगी को भी अंशमात्र भी धर्म नहीं होता और निश्चयधर्म के बिना व्यवहार भी नहीं होता।

एक परमाणु भी दूसरे परमाणु से और अनन्त पर पदार्थों से उनके गुणों और पर्यायों से तीनोंकाल भिन्नरूप रहता है और भिन्नपने अपनी अवस्था को प्रगट करता है -

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ऐसा माने तो उसे सर्वज्ञ कथित छह द्रव्यों का व्यवहार ज्ञान हुआ कहा जायगा।

इसतरह जीव-अजीव आदि प्रत्येक द्रव्य निरंतर समय-समय स्वयं से ही स्वयं का, कार्य कर रहे हैं इसप्रकार जो स्व-पर के विभाग को जाने वह जीव स्वसन्मुख होकर निर्विकार सहजानंद के अनुभव को प्राप्त कर सकता है।

आत्मा ज्ञायकस्वरूप है वह अन्तर में एकाग्रदृष्टि और लीनता द्वारा निरुपराग परमानंद को प्राप्त करता है, किन्तु परसन्मुखदृष्टि अथवा निमित्त तथा शुभराग-विकार सन्मुख जिसका झुकाव है वह भले ही द्रव्यलिंगी मुनि हो फिर भी उसेमें अंश मात्र भी धर्म की प्राप्ति नहीं होती और निश्चय वीतराग भावरूप धर्म के बिना उसके अकेले शुभरागरूप व्यवहार को व्यवहार नहीं कहा जाता क्योंकि वह व्यवहाराभास है।

भावार्थ पर प्रवचन :- जो जीव नग्न दिगम्बर होकर २८ मूलगुण सहित द्रव्यमुनिपना पालन करता हो, फिर भी स्वपर की पृथकता सहित पदार्थों का श्रद्धान नहीं करता अर्थात् प्रत्येक तत्त्व की पृथक-पृथक सत्ता को स्वीकार नहीं करता वह जीव स्वाश्रय दृष्टि रहित होनेसे उसे निश्चय सम्यक्त्वपूर्वक परम सामायिक संयमरूप मुनित्व का अभाव है अर्थात् वह मुनि नहीं है।

जिसप्रकार, जिसे धूल और स्वर्णकण का विवेक (ज्ञान) नहीं है - ऐसे धूल धोया को चाहे जितनी भी मेहनत करने पर स्वर्ण की प्राप्ति नहीं होती; उसीप्रकार जिसे स्व-पर का विवेक नहीं है - ऐसे जीव भले ही द्रव्य लिंगी मुनि होकर चाहे जितने भी कष्ट सहन करे - बाईस परीषह, पंचमहाव्रत आदि क्रिया सम्बन्धी कष्ट उठावे, फिर भी उनको पराश्रयदृष्टि होने से इसमें से अंशमात्र भी वीतराग भावरूप धर्म होता ही नहीं।

क्रियाकांड में समता रखे तो राग की मंदता होगी। विपरीत अभिप्राय रहित और स्वसंवेदन सहित वीतराग दृष्टि हुए बिना-अंशमात्र भी राग के अभावरूप धर्म होता ही नहीं। पर लक्ष्य से भले ही राग मंद हो जावे किन्तु राग का अभाव नहीं होता। वास्तव में तो स्वद्रव्य के आलम्बनरूप समता वही धर्म है और पुण्य-पापरूप विषमता वह अधर्म है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रवचनसार गाथा ९२

अथ 'उवसंपयामि सम्मं जत्तो णिव्वाणसंपत्ती' इति प्रतिज्ञाय 'चरित्तं खलु धम्मो धम्मो जो सो समो त्ति णिद्दिट्ठो' इति साम्यस्य धर्मत्वं निश्चित्य 'परिणमदि जेण दव्वं तक्कालं तम्मयं त्ति पण्णत्तं, तम्हा धम्मपरिणदो आदा धम्मो मुणेयव्वो' इति यदात्मनो धर्मत्वमासूत्रयितुमुपक्रान्तं, यत्प्रसिद्धये च 'धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि सुद्धसंपओगजुदो पावदि णिव्वाणसुहं' इति निर्वाणसुखसाधनशुद्धोपयोगोऽधिकर्तुमारब्धः, शुभाशुभोपयोगौ च विरोधिनौ निर्ध्वस्तौ, शुद्धोपयोगस्वरूपं चोपवर्णितं, तत्प्रसादजौ चात्मनो ज्ञानानन्दौ सहजौ समुद्योतयता संवेदनस्वरूपं सुखस्वरूपं च प्रपञ्चितम् तदधुना कथं कथमपि शुद्धोपयोगप्रसादेन प्रसाध्य परमनिस्पृहामात्मतृप्तां पारमेश्वरीप्रवृत्तिमभ्युपगतः कृतकृत्यतामवाप्य नितान्तमनाकुलो भूत्वा प्रलीनभेदवासनोन्मेष स्वयं साक्षाद्धर्म एवास्मीत्यवतिष्ठते -

जो णिहदमोहदिट्ठी आगमकुसलो विरागचरियम्हि।
अब्भुट्ठिदो महप्पा धम्मो त्ति विसेसिदो समणो ॥९२॥

---

[१]'उवसंपयामि सम्मं जत्तो णिव्वाणसंपत्ती' इस प्रकार (पाँचवी गाथा में) प्रतिज्ञा करके, [२]'चरित्तं खलु धम्मो धम्मो जो सो समो त्ति णिद्दिट्ठो' इसप्रकार (७ वीं गाथा में) साम्यका धर्मत्व (साम्य ही धर्म है) निश्चित करके [३]'परिणमदि जेण दव्वं तक्कालं तम्मयं त्ति पण्णत्तं, तम्हा धम्मपरिणदो आदा धम्मो मुणेयव्वो' इस प्रकार (८ वीं गाथा में) जो आत्मा का धर्मत्व कहना प्रारम्भ किया और [४]जिसकी सिद्धी के लिए [५]'धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि सुद्धसंप-ओगजुदो पावदि

---

१. अर्थ - मैं साम्य को प्राप्त करता हूँ, जिससे निर्वाण की प्राप्ति होती है। २. अर्थ - चारित्र वास्तव में धर्म है वह साम्य है ऐसा (शास्त्रों में) कहा है। ३. अर्थ - द्रव्य जिस काल में, जिस भावरूप परिणमित होता है उस काल में उस-मय है ऐसा (जिनेन्द्रदेव ने) कहा है; इसलिए धर्मपरिणत आत्मा को धर्म जानना चाहिए। ४. जिसकी सिद्धी कि लिए = आत्मा को धर्मरुप बनवाने का जो कार्य साधना के लिए। ५. अर्थ - धर्मपरिणत स्वरूपवाला आत्मा यदि शुद्ध उपयोग में युक्त हो तो मोक्ष के सुख को पाता है।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

णिव्वाणसुहं' इस प्रकार (११ वीं गाथा में) निर्वाण सुख के साधनभूत शुद्धोपयोग का अधिकार प्रारम्भ किया, विरोधी शुभाशुभ उपयोग को नष्ट किया (-हेय बताया) शुद्धोपयोग का स्वरूप वर्णन किया, शुद्धोपयोग के प्रसाद से उत्पन्न होने वाले ऐसे आत्मा के सहज ज्ञान और आनन्द को समझाते हुए ज्ञान के स्वरुप का और सुख के स्वरूप का विस्तार किया, उसे (-आत्मा के धर्मत्व को) अब किसी भी प्रकार शुद्धोपयोग के प्रसाद से [१]सिद्ध करके, [२]परम निस्पृह आत्मतृप्त (ऐसी) पारमेश्वरी प्रवृत्ति को प्राप्त होते हुए, कृतकृत्यता को प्राप्त करके अत्यन्त अनाकुल होकर, जिनके [३]भेदवासना की प्रगटता का प्रलय हुआ है, ऐसे होते हुए, (आचार्य भगवान) 'मैं स्वयं साक्षात् धर्म ही हूँ' इस प्रकार रहते हैं, (- ऐसे भाव में निश्चल स्थित होते हैं) :-

दृगमोह से जो रहित आगम कुशल चरित विराग में।
आरूढ़ हैं वे ही महात्मा श्रमण धर्म कहा उन्हें ॥९२॥

अन्वयार्थ :- (यः आगमकुशलः) जो आगम में कुशल हैं, **(निहतमोहदृष्टिः)** जिसकी मोहदृष्टि हत हो गई है और **(विरागचरिते अभ्युत्थितः)** जो वीतरागचारित्र में आरूढ़ है, **(महात्मा श्रमणः)** उस महात्मा श्रमण को **(धर्मः इति विशेषितः)** (शास्त्र में) 'धर्म' कहा है।

टीका :- यह आत्मा स्वयं धर्म हो, यह वास्तव में मनोरथ है। उसमें विघ्न डालनेवाली एक [४]बहिर्मोहदृष्टि ही है। और वह (बहिर्मोहदृष्टि) तो [५]आगमकौशल्य तथा आत्मज्ञान से नष्ट हो जाने के कारण अब मुझ में पुनः उत्पन्न नहीं होगी।

इसलिये वीतरागचारित्ररूप से प्रगटता को प्राप्त (-वीतरागचारित्ररूप पर्याय में परिणत) मेरा यह आत्मा स्वयं धर्म होकर, समस्त विघ्नों का नाश हो जाने से सदा निष्कंप ही रहता है। अधिक विस्तार से बस होओ! जयवंत वर्तो

१. सिद्ध करके - साधकर (आत्मा को धर्मरूप रचने का जो कार्य साधना था उस कार्य को महापुरुषार्थ करके शुद्धोपयोग द्वारा आचार्य भगवान ने सिद्ध किया।) २. पर की स्पृहासे रहित और आत्मा में ही तृप्त, निश्चय रत्नत्रय में लीनतारूप प्रवृत्ति। ३. भेदवासना - भेदरूप वृत्ति; विकल्प-परिणाम। ४. बहिर्मोहदृष्टि = बहिर्मुख ऐसी मोहदृष्टि। (आत्मा को धर्मरूप होने में विघ्न डालनेवाली एक बहिर्मोहदृष्टि ही है।) ५. आगमकौशल्य = आगम में कुशलता-प्रवीणता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

[१]स्याद्वादमुद्रित जैनेन्द्र शब्दब्रह्म; जयवंत वर्तो [२]शब्दब्रह्ममूलक आत्मतत्त्वोपलब्धि कि जिसके प्रसाद से, अनादि संसार से बंधी हुई मोहग्रंथि तत्काल ही छूट गई है, और जयवंत वर्तो परम वीतरागचारित्रस्वरूप शुद्धोपयोग कि जिसके प्रसाद से यह आत्मा स्वयमेव धर्म हुआ है।।९२।।

ॐ ॐ ॐ

गाथा ९२ पर प्रवचन

अब, प्रवचनसार में आचार्यदेव धर्म का स्वरूप समझाते हुए क्रमशः गाथाओं में किस तरह साररूप वस्तु गूंथी है वह कहते हैं। पांचवी गाथा में प्रतिज्ञा करके सातवी गाथा में साम्य का-समता का धर्मत्व निश्चित करके ८वीं गाथा में आत्मा का धर्मपना कहना प्रारम्भ करके और उसकी सिद्धि केलिये ११ वीं गाथा में निर्वाण सुख के साधनरूप शुद्धोपयोग का अधिकार प्रारम्भ किया है।

आत्मा की मुक्ति का साधन एक शुद्धोपयोग ही है। जितनी पर की ओर एकाग्रता होती है वह शुभ और अशुभ परिणाम हैं - वे सभी धर्म के विरुद्ध भाव हैं; इसके विपरीत आत्मा के अन्तरंग में-ज्ञान में एकाग्र होकर निर्विकारी अतीन्द्रिय आनन्द में लीनता द्वारा ही शुभाशुभ उपयोग का अभाव होता है।

इसप्रकार शुद्धोपयोग के स्वरूप का वर्णन किया और शुद्धोपयोग के प्रसाद से उत्पन्न - ऐसे आत्मा के सहज ज्ञान और आनन्द को समझाते हुए केवलज्ञान के स्वरूप का और सुख के स्वरूप का विस्तार (से वर्णन) किया गया। उस आत्मा का धर्मपना अब जैसे हो वैसा करके, किन्तु वीतराग मार्ग के अनुसार, शुद्धोपयोग के प्रसाद द्वारा सिद्ध किया है।

ज्ञान और सुख का स्वरूप ऐसा ही है अन्य प्रकार का नहीं - ऐसा सिद्ध किया है। मुनिराज स्वयं साक्षात् मोक्षमार्ग हैं। **'मोक्षमार्ग ना प्रणेता अमे आ ऊभा छे'** (मोक्षमार्ग के प्रणेता हम यह खड़े हैं)। हम अनुभव करके कह रहे हैं कि - ऐसा ही मुनिमार्ग होता है। छटवें, सातवें गुणस्थान में बारम्बार झूलते हुए

---

१. स्याद्वादमुद्रित जैनेन्द्र शब्दब्रह्म-स्याद्वाद की छापवाला जिनेन्द्र द्रव्यश्रुत। २. शब्दब्रह्ममूलक-शब्दब्रह्म जिसका मूल कारण है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शुद्धोपयोगरूप का अनुभव करके कह रहे हैं कि मोक्षमार्ग के प्रणेता हम यह खड़े हैं। परमेश्वर की विद्या को प्राप्त करके अत्यन्त मध्यस्थ होकर सर्व पुरुषार्थ में सारभूत होने से जो आत्मा को अत्यन्त हिततम है ऐसी मोक्षलक्ष्मी को ही निरन्तर उपादेयरूप निर्णय किया है।

यहाँ कहते हैं कि हम शुद्धोपयोग के ही प्रसाद द्वारा आत्मा के धर्मत्व का निर्णय करके-साधकर परम निष्पृह आत्मतृप्त - ऐसी पारमेश्वरी प्रवृत्ति को प्राप्त होते हुए हैं, जिनने भेद वासना (भेद विकल्प का झुकाव) का प्रलय किया है (वर्तमान काल में तो - ऐसे यथार्थ मुनि दिखाई नहीं देते-यदि मुनिपद न पाल सके तो उसकी श्रद्धा तो कर-किन्तु जो यथार्थ मुनिमार्ग है उसका विरोध न कर)। ऐसे मुनि परमेष्ठीपद में स्थित होते हुए, स्वयं आचार्य भगवान कहते हैं कि- 'मैं स्वयं साक्षात् धर्म ही हूँ।'

शुद्धोपयोगरूप साधन कहो अथवा वीतराग भावरूप मुनिपना कहो अथवा धर्म कहो। आचार्यदेव कहते हैं कि मैं ही धर्म हूँ अर्थात् मेरा आत्मा ही साक्षात् धर्मरूप से परिणमित हुआ है। देखो ! अनुभवी को केवलज्ञान लेनेवाला चारित्र कैसा होता है ? उसका अनुभव करके कहता हूँ।

जो साक्षात् साम्य-समता अर्थात् वीतरागतारूप हुए हैं वे संत कहते हैं कि पहले पांचवी गाथा में जो हमने प्रतिज्ञा की थी कि- 'मैं साम्य को-धर्म को अंगीकार करता हूँ और कहता हूँ।' सो उस बात का यहाँ तक विस्तार करके ९२ वीं गाथा में उसका वर्णन पूर्ण किया है।

सम्यक्दृष्टि जीव भी धर्मरूप से परिणमित होता है। निचली भूमिका में जो शुभाशुभ भाव होते हैं वे गौण हैं, क्योंकि वे तो बन्धन का ही कारण हैं, किन्तु मुक्ति का किंचितमात्र भी कारण नहीं है; इसलिये पहले से ही निर्णय करना चाहिये कि धर्म तो पुण्य-पाप और शुभ व्यवहार के विकल्प रहित है।

शुद्ध उपादान के लक्ष्य से शुद्धोपयोगी धर्म की प्राप्ति होती है और इस धर्मरूप स्वयं आत्मा ही परिणमित होता है, जिसमें साक्षात् धर्म का दर्शन होता है; इसी शुद्धोपयोगरूप साधकदशा का नाम मुनिपना है। नग्न दिगम्बर मुनि को स्वभाव के उग्र आलम्बन द्वारा तीन कषाय के अभावपूर्वक परम समता होती है, उन निर्ग्रन्थ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मुनि में साक्षात् समतामय साम्य धर्म का-वीतरागता का दर्शन होता है और यही धर्म का दर्शन है। यह बाहर में नहीं होता; बाहर में तो अट्ठाईस मूलगुण, नग्न शरीरादि होते हैं, किन्तु उनके आधार से धर्म नहीं होता।

मुनि कहते हैं कि - वीतराग भावरूप निश्चय रत्नत्रयरूप धर्म एक ही प्रकार का है और उसरूप परिणमित हुए हम साक्षात् धर्म हैं-धर्म की मूर्ति हैं। इसप्रकार स्वानुभवप्रत्यक्ष से साक्षात् मोक्षमार्ग की धर्म मूर्ति हैं वे ही मुनि हैं। अकषाय आनन्द स्वभाव की ओर का झुकाव बढ़ गया है इसलिये अब उन्हें विकल्प में रुकने (अटकने) रूप भेद वासना प्रगट नहीं होती। ऐसा साक्षात् चारित्र धर्म गृहस्थदशा में नहीं होता किन्तु सम्यग्दर्शन और उससे सहित श्रावकपना होता है।

शुभ परिणाम से सम्यक्त्व नहीं होता। पंचम गुणस्थान भी शुभ के आधार से नहीं है और मुनिदशा भी निरालम्बन वीतरागदशा में होती है। परमानन्द में लीन मुनीश्वर, अन्तरंग प्रवृत्ति द्वारा आत्मतृप्ति को प्राप्त हुए हैं; अन्दर में अतीन्द्रिय आनन्द की डकार से तृप्ति प्राप्त करते हैं इसलिये शांतरस में-अनुपम आनन्द में वर्तते हुए कृत्य-कृत्य हुए हैं, इसलिये उन मुनियों को भेदवासना की प्रगटता का नाश हुआ है। वे तीन कषाय रहित, अभेद स्वरूप में शुद्धोपयोग में वर्तते हैं इसलिये पुण्य-पाप के विकल्प में अथवा भेद में नहीं वर्तते। उन्हें अकषाय आनन्द स्वभाव की ओर का झुकाव बढ़ गया है इसलिये महाव्रतादिक विकल्प के भेद और उस ओर का झुकाव मुनि को छूट गया है। जो अट्ठाइस मूलगुण के शुभ विकल्प हैं और नग्न दिगम्बर मुद्रा है वह ज्ञेय है। उस ओर लक्ष्य जाता है फिर भी वह अत्यन्त गौण है।

स्वभाव की ओर के झुकाव की अधिकता-मुख्यता होने से, अस्थिरता का शुभाशुभ विकल्प भी गौण है। विकल्पों की गंधरूप वासना का उत्पन्न होना उन्हें नहीं होता। आहार-पानी लेना अथवा नहीं लेना वह धर्म नहीं है। उन्हें आत्मा ग्रहण कर सकता है अथवा छोड़ सकता है - ऐसा मान ले तो वह मिथ्यात्व है। अट्ठाइस मूलगुण, बाईस परिषह के विकल्प आते हैं यह बात सही है किन्तु 'मैं उसरूप परिणमित हुआ हूँ' - ऐसा मुनि नहीं मानते। सम्यक्दृष्टि गृहस्थ भी - ऐसा नहीं मानते कि-'मैं रागरूप परिणमित होनेवाला हूँ।'

धर्म बाह्य में अथवा देह की क्रिया में नहीं होता अपितु पराश्रय रहित

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अकेले ज्ञानानन्दमय आत्मा के आश्रय से होनेवाला निर्विकारी परिणाम ही धर्म है। जो सर्वज्ञ कथित हो वही आगम है और पूर्वापर दोषरहित सत् शास्त्र हैं - ऐसे आगमज्ञान में आचार्य कुशल हैं। समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय, षट्खण्डागम, जयधवल, महाबन्ध आदि जिनागम कहलाते हैं।

जिनकी स्व-पर में मूढ़तारूप मोहदृष्टि नष्ट हो गई है और जो वीतरागचारित्र में आरूढ़ हैं ऐसे उन महात्मा-श्रमणों को शास्त्र में साक्षात् धर्म कहा गया है। मुनि तो साक्षात् धर्म हैं और चौथे गुणस्थान के सम्यक्दृष्टि भी धर्मात्मा हैं; वे धर्म-अधर्म व हित-अहितरूप भावों के स्वरूप को बराबर (यथार्थ) जानते हैं और धर्म स्वरूप की भावना भाते हैं। उन्हें चारित्र में साक्षात् वीतरागदशा नहीं हुई है इसलिये उनको चारित्र में साक्षात् धर्म नहीं है अपितु आंशिक स्वरूपाचरण चारित्र है।

सम्यक्दृष्टि जीव को चौथे गुणस्थान से ही साक्षात् धर्म स्वरूप होने का मनोरथ (भावना) होता है किन्तु पुण्य तथा संयोग मिलाने का मनोरथ नहीं होता। चौथे गुणस्थान के पहले ऐसा मनोरथ यथार्थतया नहीं होता। यह आत्मा स्वयं धर्म हो यही वास्तव में मनोरथ है। इस मनोरथरूप स्व-सन्मुखता की भावना सम्यक्दृष्टि को होती है। यह आत्मा स्वयं धर्मरूप होता है किन्तु शरीर अथवा राग धर्मरूप नहीं होते; इसलिये शुभ से, पुण्य से, भगवान की वाणी से, निरोग शरीरादि से धर्म होता होगा - ऐसा वे नहीं मानते।

प्रश्न :- भगवान के नाम का जाप करें और भावसहित शुभराग की प्रवृत्ति करें तब तो धर्म होगा न ?

उत्तर :- नहीं। क्योंकि वह भी शुभ विकल्प पुण्य-आश्रव ही हैं, उससे बन्ध होता है इसलिये उसकी भावना ज्ञानी कभी नहीं करते क्योंकि शुद्धोपयोग ही धर्म है और उस धर्म का कारण तो धर्मरूप से परिणमित हुआ आत्मा है। पुण्य-पाप के भावरूप मैं नहीं होऊंयह मनोरथ सम्यक्त्व प्राप्त किये हुए जीव का है। अंतरंग में सम्यक्दृष्टित्व प्रगट करना वह धर्म के होने में साधक है और मिथ्यादृष्टिपना ही बाधक है।

मुनि कहते हैं कि पहले से ही शुद्धोपयोग धर्मपने परिणमित होने का हमारा मनोरथ था। आत्मा को धर्मरूप (परिणमित) होने में विघ्न करनेवाली

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बहिरदृष्टिरूप मोहदृष्टि है, किन्तु कोई कर्म का उदय विघ्न करनेवाला हो - ऐसा नहीं है। व्यवहार पहले होना चाहिये अथवा मंदकषाय हो तो सम्यक्त्व हो इसप्रकार परसन्मुख व मंदकषाय के सन्मुख जिनकी दृष्टि है उनको संयोग और विकार की दृष्टि होती है; यह दृष्टि ही अधर्मरूप-हीनरूप बहिर्दृष्टि है।

दूसरा कोई मुझे धर्म प्राप्त करा देगा अथवा केवली तीर्थंकर-संत मुझे धर्म प्राप्त करा देंगे - ऐसा धर्मी नहीं मानते। इसलिये कहा है कि यह आत्मा स्वयमेव धर्मरूप होता है किन्तु उस रूप नहीं होने में अर्थात् उसमें विघ्नरूप होने में स्वयं की भूल ही कारण है; इसलिये कहा है कि परसन्मुखदृष्टि बाहर से माने अथवा मनावे वह बहिर्मोहदृष्टि-बहिरात्मा है।

प्रथम सही निर्णय करने में ज्ञान का झुकाव होना चाहिये उसके बदले पहले यह क्रिया करो, पर की दया पालो, पुण्य करो इसप्रकार बाह्यलक्षणों के करने से धर्म बतावे तो उन्हें सर्वज्ञ कथित व्यवहारज्ञान क्या है इसकी खबर नहीं है; वे तो बाहर से धर्म माननेवाले बहिरात्मा हैं। कोई तो ईश्वर को अपने हित-अहित का कर्ता मानते हैं और कोई पुण्य से, संयोग से, देव-गुरु-शास्त्र आदि से हमारा हित होगा - ऐसा मानते हैं अतः वे द्रोनों ही पराधीन दृष्टिवाले और बाह्यदृष्टि ही हैं।

आत्मा को धर्मरूप होने में विघ्न करनेवाला मोहदृष्टि ही है, इसमें सम्यक्-एकान्त है। आत्मा को अपनी भूल से नुकसान होता है और कभी किसी पर से नुकसान होता है - ऐसा मानना वह मिथ्याएकान्त है। एकसमय में ज्ञायक स्वभावी पूर्ण तत्त्व है उसे भूलकर मिथ्यादृष्टि बाह्य से धर्म मानता है।

मैंने इतने व्रत-उपवास किये, इन संयोगों को मिलाया, मैं एकान्त क्षेत्र में रहूँ, विरागियों के संघ में रहूँ, पंच नमस्कार मंत्र का जाप करूँ इत्यादि प्रकार से बाह्य झुकाव से अज्ञानी लाभ मानता है; इसप्रकार उसे स्वयं रागरूप-अधर्मरूप होने का मनोरथ है; जिसमें वह निरंतर मोह-राग-द्वेष की पुष्टि करता है और उसमें लाभ देखता है; इसप्रकार बाह्य दृष्टिवान सदा मोह को ही पुष्ट करता है।

यह मिथ्याशल्य कैसे नष्ट होती है ?

आगम-कौशल्य तथा आत्मज्ञान से ही मिथ्याशल्य नष्ट होती है। आगम से मोह नष्ट होता है - ऐसा यहाँ नहीं कहा है क्योंकि, धर्मरूप से स्वयं हो सकता है - ऐसा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जिसका मनोरथ हो, वह आगम से मोह दूर होता है - ऐसा कैसे माने ? इसलिये मोह को हनन करनेवाले ज्ञान में प्रवीण हो। स्व-पर क्या है ? नवतत्त्व, देव-गुरु-शास्त्र, हेय-उपादेय तत्त्वों के ज्ञान में जो चतुर हैं, वे मोह को नष्ट करनेवाले हैं। मोहरूप नहीं होनेवाले ही धर्मरूप होनेवाले हैं और वे ही आगम ज्ञान में कुशल-प्रवीण हैं।

इसलिये धर्मी जीव अपने अप्रतिहतभाव से पूर्ण धर्मरूप होने के अधिकारी हैं। अप्रतिहत अर्थात् नित्यस्वभाव के अवलम्बन से जो अपूर्व भाव आया है वह पीछे हटनेवाला नहीं है। इन्हें इस भाव को बढ़ाकर क्षायिक भाव लेना है। पंचमकाल है ना ? किन्तु जब आत्मा ही स्वयं धर्मरूप हुआ हो तो वहाँ केवली से पूछने के लिये नहीं जाना पड़ता।

तथा धर्मी को ऐसी शंका नहीं होती कि - सम्यक्त्व तो हुआ है लेकिन यदि गिर गया तो ! जहाँ शंका है वहाँ वह धर्मरूप परिणमित हुआ आत्मा नहीं है। जिनकी आगम कौशल्यता तथा आत्मज्ञान से मोहदृष्टि नष्ट हो जाने से अब वह मुझे फिर से उत्पन्न होनेवाली नहीं है। धर्मी जीव यहाँ साक्षात् अप्रतिहत भाव से निःसंदेहता की प्रसिद्धि करते हैं। धर्मी के पास ढीली-ढाली (शिथिलता की) बातें नहीं होती।

कोई कहे कि सम्यक्त्व प्राप्त होने के बाद यदि कदाचित् मुझे अर्द्ध-पुद्गल परावर्तनकाल जितना अनन्त संसार बाकी (शेष) हो तो ! सर्वज्ञ भगवान ने यदि मेरे लिये ऐसा देखा होगा तो ! - ऐसा माननेवाला धर्मरूप से परिणमित ही नहीं हुआ है क्योंकि जिसकी रुचि होती है उसके लिये लम्बे समय की इच्छा करे तो इसका अर्थ यही है कि उसे उसकी रुचि ही नहीं है। यदि मुझे अनन्त भव करना बाकी हो तो ! - ऐसी बात धर्म परिणति में नहीं होती।

कुन्दकुन्द आचार्य संत कहते हैं कि अप्रतिहत भाव से यह आत्मा ही स्वयं धर्मरूप से परिणमित हुआ है इसलिये मुझे फिर से मोहदृष्टि उत्पन्न होनेवाली ही नहीं है, इसलिये वीतराग चारित्ररूप से प्रगट पर्याय में परिणमित हुआ मेरा आत्मा स्वयं धर्म होकर (देखो ! मुनियों की निर्ग्रन्थ चारित्रवंतदशा-भावलिंगी मुनि परमेश्वर की दशा) मेरा यह आत्मा, स्वयं साक्षात् चारित्र धर्म होकर समस्त विघ्न का नाश हो जाने से सदा ही निष्कम्प ही रहता है। शास्त्रादि के विकल्प उठते हैं वे गौण हैं। बारम्बार ज्ञानानन्द में डुबकी मारकर वे अतीन्द्रिय आनन्द में लीन हो जाते

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हैं और निश्चल स्वभाव में निर्विकारपने निश्चलता का ही अनुभव करते हैं।

अन्तर्मुखदृष्टि द्वारा ही बहिर्मुखदृष्टि नष्ट की जाती है। आत्मा ज्ञानस्वरूप है उसे यथार्थतया समझना यह उपादान है और वीतराग सर्वज्ञ प्रणीत आगम (शास्त्र) वह निमित्त है, उसकी यहाँ बात कही गई है। धर्मी जीव को ही आगम कौशल्य निपुण कहा है। उन्होंने आगम कथित स्व-पर का व आत्मा का अपने अन्तर्मुखज्ञान द्वारा यथार्थ निर्णय किया है।

आगम में ऐसा कहा है कि बहिर्मुख दृष्टि को नष्ट करने का उपाय पराश्रय रहित अन्तर्मुख दृष्टि है - ऐसा जानकर वह उपाय करने पर ही मोह की गांठ नष्ट हो जाती है; इसके अलावा कोई दूसरी विधि वस्तुदर्शन में नहीं है। निर्मोही-निष्कम्प स्वभाव के आश्रय से निष्कम्पदशा होती है।

तीर्थंकर परमात्मा की वाणी में - ऐसा आया है कि पुण्य-पाप और देहादि निमित्त के लक्ष्य से सम्यक्त्व नहीं होता और मिथ्यात्व नहीं जाता; इसलिये विपरीत दृष्टि छोड़ और स्व-सन्मुखता द्वारा स्वभाव में एकता की दृष्टि, स्वभाव में एकता करनेवाला ज्ञान और आचरण यही मोक्ष का मार्ग है।

आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द, निर्मल श्रद्धा-ज्ञान के साथ ही वर्तता है। आचार्य देव कहते हैं कि इसीतरह हमारा आत्मा भी साक्षात् धर्मरूप हुआ है- धर्मरूप ही परिणमित होता है - समस्त विघ्न का नाश किया है इसलिये मेरा आत्मा सदा ही निष्कम्प ही रहता है। अतः अति विस्तार से बस होओ ! जयन्तवर्तो- स्याद्वाद मुद्रित जिनेन्द्र शब्दब्रह्म। **स्याद्वाद् अर्थात् यथार्थ वस्तु अनेकान्त स्वरूप है, उसे बतानेवाली सम्यक् अपेक्षा।**

(१) आत्मा अपने गुणपर्यायरूप तो है किन्तु परवस्तु के गुण-पर्यायरूप नहीं है। स्व-रूप है किन्तु पर-रूप नहीं।

(२) एक आत्मा के अनन्त गुण हैं, उसमें से एक गुण दूसरे गुणरूप नहीं होता, एक गुण दूसरे गुण के आधीन नहीं अपितु स्वद्रव्य के आश्रय से हैं।

(३) एक गुण की त्रिकालवर्ती अनन्त पर्यायें हैं, उनमें से एक पर्याय दूसरी पर्यायरूप नहीं होती और एक पर्याय में से दूसरी पर्याय नहीं आती।

(४) विभाव है वह एक समयमात्र का है किन्तु वह त्रिकाली स्वभाव में

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं है, इसका नाम स्याद्वाद् है।

स्यात् अर्थात् सम्यक् प्रकार से, एक अपेक्षा से कहना - सर्वथा नहीं। जैसे कि आत्मा है वह अपनी अपेक्षा है किन्त पर से नहीं। पर की अपेक्षा से आत्मा अथवा आत्मा के गुण पर्याय हैं - ऐसा मानना वह मिथ्यात्व भाव, एकान्त और मिथ्या अनेकान्त है। दया-दान के परिणाम शुभराग हैं-विकार हैं। राग रागपने है किन्तु निर्विकारपने नहीं। परस्पर विरुद्ध भाव को विरुद्धपने सत् मानना उसका नाम स्याद्वाद है।

एकवस्तु को सिद्ध करना हो तो वह उसके स्वरूप में स्वपने ही है किन्तु परपने नहीं। ऐसे स्याद्वाद् की मुद्रा (चिह्न) वाला जिनेन्द्र का शब्दब्रह्म-वचन है वही वचन निर्बाध व्यापकपने सर्व पदार्थ के स्वरूप को बतानेवाला है इसलिये वही एक जगत में जयवंतवर्तो अन्य अज्ञानियों की वाणी निर्दोष नहीं है। भगवान की वाणी, जैसा वस्तुस्वरूप है वैसा तीनोंकाल यथार्थतया बतानेवाली है, इसलिये वह जयवन्तवर्तो।

इसप्रकार शब्दब्रह्म प्रसन्नता दर्शाता है क्योंकि हमारा आत्मा ज्ञानस्वभावरूप है, वह क्षणिक विभावरूप नहीं। तू स्वरूप से है किन्तु पररूप से नहीं। प्रत्येक वस्तु उनके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में रहकर उनके स्वतंत्र कारण-कार्यरूप वर्तती है किन्तु पर के द्वारा उनका होना और वर्तना (परिणमन) नहीं होता - ऐसा सम्यक् प्रकार से माने, अनुभव करे उसे मोह का सर्व प्रकार से क्षय होता ही है। यह वचन वीतराग का ही है इसप्रकार धर्मी जीव स्वयं को आशीर्वाद देते हैं।

परद्रव्य के आश्रय से राग होता है किन्तु वीतरागता नहीं होती। स्वद्रव्य के आश्रय से ही वीतरागरूप धर्म होता है किन्तु पराश्रय से अथवा राग से कभी भी धर्म नहीं होता। **द्रव्य स्वभाव सदा ही निर्मल स्वरूप है।** वर्तमान में जो रागदशा है उसमें धर्म नहीं है। द्रव्य स्वभाव में अधर्म नहीं है किन्तु जो स्व को भूलता है तो उसकी वर्तमान पर्याय में अधर्म है। जिससमय सम्यग्दर्शन आदि धर्मपर्याय होती है उसीसमय मिथ्यात्वरूप अधर्म नहीं रहता।

पूर्णज्ञान में अपूर्णज्ञान की नास्ति है। जो त्रिकालवेत्ता हुए हैं- वे सर्वज्ञ हैं; वे किसी को सम्पूर्णरूप से न जाने - ऐसा नहीं हो सकता। केवलज्ञान-सर्वज्ञता वह

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

एक समय की पर्याय है। एक समय जो पर्याय हुई है वह दूसरे समय में नहीं होती। एक समय की केवलज्ञान पर्याय के आधार से दूसरे समय की पर्याय नहीं आती - ऐसा कथन वीतराग मार्ग की कसौटीरूप स्याद्वाद चिह्न है।

उपादान की योग्यता के साथ भूमिका अनुसार कैसे निमित्त होते हैं और कैसे नहीं होते उनकी मर्यादा के नियम को न माने वह जिनवचनों को नहीं है।

वज्रकाय शरीर है अथवा अमुक क्षेत्र-काल है, इसलिये केवलज्ञान हुआ है - ऐसा माने अथवा सर्वज्ञ होने के बाद उनको क्रमिक उपयोग बतावे वह वीतराग वचन नहीं है। केवलज्ञान और चारित्र में अखण्डता हुई है फिर भी कोई उनकी वाणी को अल्पज्ञ के समान क्रमिक, खण्ड-खण्ड माने तो उसे पूर्ण वीतरागता और पूर्ण सर्वज्ञता में क्या होता है और क्या नहीं होता उसकी खबर नहीं है।

जिन्हें भाव निर्ग्रन्थता द्वारा तीन कषाय का अभाव हुआ है उन्हें निमित्तरूप वस्त्र-पात्रादि का सम्बन्ध बतावे तो वह जिनवचन नहीं। केवलज्ञान होनेपर रोग हो और उन्हें औषधि, आहार आदि लेना पड़े - ऐसा जिनवचन नहीं होता, अपितु पूर्वापर विरोध रहित प्रत्येक वस्तुस्थिति को अस्ति-नास्तिपने से उनकी यथार्थ मर्यादा में निश्चितपने बतावे किन्तु अयथार्थपने न बतावे वही वाणी शब्दब्रह्मरूप से जयवंत वर्तती है।

वे निमित्त तो सच्चे हैं किन्तु यहाँ उपादान में सच्चे होनेपर जयवंत वर्तते हैं यह यहाँ बताते हैं। मैं सादि-अनन्त स्वभाव की अस्ति में वर्तन करनेवाला हूँ - ऐसा कहकर भाव स्वस्ति जयवंत वर्तती है। उन जिन वचनों में स्वभाव सन्मुखदृष्टि और स्थिरता से धर्म की शुरुवात और मुनिपना कहा है किन्तु किसी अन्य विधि से उनका होना नहीं कहा। राग-द्वेष, पाप-पुण्य से भिन्न स्वभाव है उसे माननेवाला जयवंत वर्तता है।

वीतराग के ऐसे आगम को जिसने निमित्तरूप नहीं माना हो अथवा जो धर्म समझता है उसे सच्चे ज्ञानी का उपदेश ही निमित्त होता है - ऐसा जिसका ज्ञान स्वीकार नहीं करता उसे तो अभी व्यवहार पात्रता भी नहीं है। जो आगम में अनेकान्त स्वरूप की निश्चित बात कही है उसी आगम को धर्मी निमित्तरूप मानता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

व्यवहार, निमित्तादि जो भूमिका अनुसार होते हैं वे ही होते हैं - ऐसा होने पर भी कोई उनसे विरुद्ध माने तो उसमें धर्म की श्रद्धा का अस्तित्व ही नहीं है तथा इन निमित्तों से धर्म होता है - ऐसा जो मानता है तो उसमें भी धर्म का अस्तित्व नहीं है। धर्म तो वीतराग भावरूप एक ही प्रकार का है, वह पुण्य-पापरूप नहीं है अपितु स्व-आश्रय से ही धर्म है पराश्रय से नहीं। व्यवहार-व्यवहाररूप से है इसलिये उससे (व्यवहार से) धर्म नहीं है।

मिथ्या अभिप्रायरूप विरोधी भावों का नाश करके ज्ञातास्वभाव को ज्ञातास्वभावरूप ही दर्शाया है - ऐसे अनेकान्त स्वरूप को बतानेवाला शब्दब्रह्म जिसमें निमित्त है - ऐसी आत्मतत्त्व की अनुभूति कि जिसके प्रसाद से अनादि संसार से बंधी हुई मोह ग्रन्थी तुरन्त ही छूट जाती है।

आगम रहस्य के पारगामी आचार्य की कथनी तो देखो! एक-एक शब्द में व्यापक एक-एक न्याय से सभी पदार्थों को समझाते हैं। इस आत्मा का एकत्व अन्य अनन्त आत्माओं के साथ नहीं है तथा वह अनन्त परमाणुरूप भी नहीं है। आत्मा में अनन्त गुण हैं उनमें एक गुण दूसरे गुणरूप नहीं है। लोकालोक ज्ञेय है - ''मैं ज्ञान हूँ''। ज्ञान, ज्ञान से है किन्तु वह ज्ञेय अथवा राग से नहीं है। पूर्व पर्याय से वर्तमान पर्याय नहीं है। जिसने ऐसा भावभासनरूप ज्ञान किया है उसने ही शब्दब्रह्म को जयवंत माना है।

सम्यग्दर्शन है वह अपने सम्यकूपने से है, किन्तु वह पुण्य, व्यवहार अथवा निमित्त से नहीं है क्योंकि वे स्वयं उनसे हैं। निमित्त कैसा होता है और कैसा नहीं होता उसका ज्ञान कराने के लिये निमित्त से कथन होता है किन्तु निमित्त से कार्य नहीं होता।

कहा भी है कि-

सद्‌गुरु न उपदेश पण, समजाय न जिनरूप।
समज्याविन उपकार स्यो, समज्यो जिन स्वरूप।।

स्याद्वाद चिह्नवाली निर्बाधवाणी जयवंत है। अनेकांत स्वरूप को बतानेवाले ज्ञानी अनन्तबार मिले किन्तु स्वयं यथार्थ को नहीं समझे तो वह किसका निमित्त कहा जाय? और भाव भासनरूप से समझे बिना उपकार किसका? चौदहराजू लोक, चौदह पूर्व, छह द्रव्य, नवतत्त्व, देव-गुरु-शास्त्र का यथार्थ स्वरूप जैसा जहां है उसे समझाने में समर्थ जिन वचनरूप आगम ही है। उस

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आगमज्ञान में प्रवीण आचार्य कहते हैं कि ज्ञान, ज्ञान से है-राग से नहीं। ज्ञानभाव निग्रंथ है और रागभाव सग्रंथ है; ज्ञानभाव से ज्ञान है किन्तु रागभाव से ज्ञान नहीं है।

आनन्द निराकुल स्वभाव है, वह दु:खरूप नहीं है; राग निमित्त आदि को उन-उन प्रकार के अस्तित्व को और अन्य से नास्तिरूप से ज्ञान जाननेवाला है इसप्रकार वह स्व-पर का ज्ञाता हुआ। इसमें पुण्य-पाप की दृष्टि छूट गई और ज्ञाता की दृष्टि हुई है।

इसतरह यह आत्मा शुद्धात्म तत्त्व का अनुभव करनेवाला धर्मरूप से परिणमित होनेवाला हुआ है; जिनवाणी और ज्ञानी का उपदेश ज्ञानी का अंतरंग अभिप्राय उसमें मूल निमित्त है, इसलिये निरन्तर मोह की नास्ति और निष्कम्प स्वभाव की अस्तिरूप ज्ञान हुआ है; इसतरह शब्दब्रह्म की स्वस्ति हो-जयवंत हो।

ऐसे निर्मल ज्ञान, वचन और साक्षात् धर्मरूप होने की विधि को जाननेवाला ही चारित्रवंत हो सकता है। साक्षात् वीतराग चारित्रवंत हुए आचार्य देव कहते हैं कि - परम वीतराग चारित्ररूप शुद्धोपयोग जयवंत वर्तो क्योंकि उसके कारण से ही आत्मा साक्षात् धर्मरूप हुआ है।

कथनरूप विकल्प होते हैं, किन्तु विकल्प को तोड़नेवाला ज्ञायक स्वभाव साक्षात् धर्ममय हुआ है, इसलिये क्षण-क्षण में सातवां गुणस्थान आता है। इसतरह साक्षात् शुद्धोपयोग के कारण से आत्मा निर्मलानन्द धर्मरूप हुआ है। छठवें गुणस्थान में शुभ व्यवहार आता है, किन्तु उसके कारण यह शुद्धोपयोगरूप नहीं हुआ है।

जिनवाणी निर्मल किसके लिये कहलाती है कि जब स्वयं शुद्धोपयोग हुआ तब वहाँ कहा कि जयवंत वर्तो। परम वीतराग चारित्र स्वरूप यह शुद्धोपयोग कि जिस शुद्धोपयोग के प्रसाद से यह आत्मा स्वयं ही धर्मरूप हुआ है। आचार्यदेव अल्पकाल में केवलज्ञान प्रगट करनेवाले हैं। सादि-अनन्त स्वरूप में एकता की अखण्डता जयवंत वर्तना चाहिए - ऐसा यहाँ से आचार्य देव जाहिर (प्रगट) करते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(अब श्लोक द्वारा ज्ञानतत्त्व - प्रज्ञापन अधिकार की पूर्णाहुति की जाती है।)

श्लोक ५

(मन्दाक्रांता छन्द)

आत्मा धर्मः स्वयमिति भवन् प्राप्य शुद्धोपयोगं
नित्यानंदप्रसरसरसे ज्ञानतत्त्वे निलीय ।
प्राप्स्यत्युच्चैरविचलतया निष्प्रकम्पप्रकाशां
स्फूर्जज्ज्योतिः सहजविलसद्रत्नदीपस्य लक्ष्मीम् ॥५॥

अर्थ :- इसप्रकार शुद्धोपयोग को प्राप्त करके आत्मा स्वयं धर्म होता हुआ अर्थात् स्वयं धर्मरूप परिणमित होता हुआ नित्य आनन्द के प्रसाद से सरस (अर्थात् जो शाश्वत आनन्द के प्रसाद से रस युक्त) - ऐसे ज्ञानतत्त्व में लीन होकर, अत्यंत अविचलता के कारण, दैदीप्यमान ज्योतिमय और सहजरूप से विलसित (स्वभाव से सही प्रकाशित) रत्न दीपक की निष्कंप-प्रकाशमय शोभा को पाता है। (अर्थात् रत्नदीप की भाँति स्वभाव से ही निष्कंपतया अत्यंत प्रकाशित होता-जानता रहता है)।

ॐ ॐ ॐ

कलश ५ पर प्रवचन

इसतरह शुद्धोपयोग को प्राप्त करके धर्म होता हुआ अर्थात् स्वयं धर्मरूप परिणमित होता हुआ नित्य आनन्द के प्रसाद से सरस - ऐसे ज्ञान तत्त्व में लीन होकर निर्मलानंद चैतन्य की शोभा को प्राप्त करते हैं। अन्यमती चाहे जितने वैरागी अथवा त्यागी जैसे दिखाई दें, वस्त्र -पात्र रखकर मुनिपना माने-मनावें किन्तु उनको अंशमात्र भी मोह का अभाव नहीं है और ज्ञानानन्द की शोभा भी नहीं है अपितु मोह की मलिनता है।

कोई कहता है कि - आत्मज्ञान हुआ है फिर चाहे जैसा खान-पान, भोग हो उसमें क्या ?

जो ऐसा मानता है तो उसने ज्ञान को नहीं माना और वह धर्मरूप नहीं हुआ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। जिनको विषय की वृत्ति (स्वभाव के आश्रय से) नष्ट हो गई है उन्हें स्त्री संग नहीं होता वैसे भी जिन्हें तीन कषाय के अभाव सहित निर्ग्रन्थ मुनिदशा प्रगट हुई है उन्हें वस्त्रादि रखने का राग नहीं होता।

श्रद्धा में ममत्व का त्याग तो चौथे गुणस्थान से होता है किन्तु कोई वस्त्र रखकर भी ऐसा माने कि हमें मूर्छा नहीं है और हम मुनि हैं तो उसने नव कोटि त्याग के स्वरूप को नहीं जाना है और मुनिदशा में कितना राग और कितने (किन) निमित्तों का अभाव होता है, उसे उसकी भी खबर नहीं है।

सम्यग्ज्ञानरूप आत्मा हो जाए और वह आंशिक परमानंद सुख के स्वाद को प्राप्त न हो अथवा शंकादि दोष की अस्ति हो - ऐसा नहीं होता। यदि कोई कहे कि - हम धर्मरूप तो हुए हैं किन्तु हमें अतीन्द्रिय आनन्द नहीं आया; तो उसने धर्म किया ही नहीं है।

आचार्यदेव कहते हैं कि हमें साक्षात् धर्म हुआ है। परमानन्द स्वरूप में एकाग्र हुआ वहाँ आत्मा में शुद्धोपयोग के प्रसाद से अमृत आनन्द का फव्वारा उछला है; इन्हें चारित्र और शुद्धोपयोग द्वारा धर्म परिणत हुए आत्मा कहा जाता है।

अन्यमती भी नग्न रहते हैं, यहाँ उनकी बात नहीं की है, अपितु जैन के नाम से भी नग्न मुनिवेष धारण कर ले तो भी वे भावलिंगी मुनि नहीं है। यहाँ तो जो निर्विकल्प शाश्वत आनन्द के विस्तार में पड़े हैं उसके अवलम्बन से उसमें लीन रहा ही करते हैं सहज यथाजातरूप जितेन्द्रिय हैं; उनको अंतर में सरस सहज आनन्द प्रगट होता है, वे निरंतर आनन्द के प्रसार से सरस लीनता के आनन्द में वर्तते हैं।

यह तो वीतराग निर्ग्रन्थ मुनिमार्ग है - ऐसे ज्ञानतत्त्व में लीन होकर अत्यंत अविचलपने के कारण दैदीप्यमान ज्योतिवाले और सहजपने विलसते स्वभाव से ही प्रकाशित होनेवाले रत्न दीपक के समान निष्कम्पतया अत्यंत प्रकाशित करता ही रहता है-जाना करता है। अब श्लोक द्वारा ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन और ज्ञेयतत्त्व प्रज्ञापन दोनो की संधि बतायी जाती है।

(अब श्लोक द्वारा ज्ञानतत्त्व-प्रज्ञापन नामक प्रथम अधिकारकी और ज्ञेयतत्त्व प्रज्ञापन नामक दूसरे अधिकार की संधि बतायी जाती है।)

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

श्लोक ६

(मन्दाक्रांता छन्द)

निश्चित्यात्मन्यधिकृतमिति ज्ञानतत्त्वं यथावत्
तत्सिद्ध्यर्थं प्रशमविषयं ज्ञेयतत्त्वं बुभुत्सुः ।
सर्वानर्थान् कलयति गुणद्रव्यपर्याययुक्त्या
प्रादुर्भूतिर्न भवति यथा जातु मोहाँकुरस्य ।।६।।

अर्थ :- आत्मारूपी अधिकरण में रहनेवालो अर्थात् आत्मा के आश्रित रहनेवाले ज्ञानतत्त्व का इसप्रकार यथार्थतया निश्चय करके, उसकी सिद्धि के लिये (केवलज्ञान प्रगट करने के लिये) प्रशम के लक्ष्य से (-उपशम प्राप्त करने के हेतुसे) ज्ञेयतत्त्व को जानने का इच्छुक (जीव) सर्व पदार्थों को द्रव्य-गुण-पर्याय सहित जानता है, जिससे कभी मोहांकुरकी किंचित्‌मात्र भी उत्पत्ति न हो।

श्लोक ६ पर प्रवचन

आत्मारूपी आधार में रहे हुए ज्ञानतत्त्व का इसतरह यथार्थ निश्चय करे कि ज्ञान है वह ज्ञानस्वभावी इस आत्मा के ही आधार से रहा है किन्तु पुण्य, व्यवहार अथवा शास्त्रादि के आधार से नहीं। आत्मा और ज्ञान एक ही वस्तु है अलग नहीं - ऐसे ज्ञानतत्त्व का यथार्थतया निर्णय करके केवलज्ञान की सिद्धि के लिये (केवलज्ञान प्रगट करने के लिये) प्रशम के लक्ष्य से (वीतरागता ही प्राप्त करने के प्रयोजन से) किन्तु मानादि अथवा संसार के प्रयोजन के लिये नहीं अपितु मात्र मुमुक्षुपने मोक्षमार्ग और केवलज्ञानदशा प्रगट करने के लिये जो ज्ञेयतत्त्व जानने का इच्छुक जीव है वह सर्व पदार्थों को द्रव्य-गुण-पर्याय सहित जानता है कि जिससे मोह का थोड़ा सा भी कण उत्पन्न नहीं होता। सर्वज्ञ कथित द्रव्य-गुण-पर्याय की पारमेश्वरी व्यवस्था निश्चित है। उसमें द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप ऐसा ही है किन्तु अन्य प्रकार से उसकी बिल्कुल भी उत्पत्ति नहीं होती। इसप्रकार अनेकांतमय वस्तु स्थिति जिनमार्ग में ही है - अन्यत्र नहीं।

इसप्रकार (श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत) श्री प्रवचनसार शास्त्र की श्रीमद् अमृतचंद्राचार्य विरचित तत्त्वदीपिका नामक टीका में ज्ञानतत्त्व-प्रज्ञापन नामक प्रथम श्रुतस्कंध समाप्त हुआ। ●

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परिशिष्ट

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का उपाय

(प्रवचनसार शास्त्र की ८० वीं गाथा पर पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी का यह प्रवचन श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट सोनगढ़ से सन् १९७२ में प्रकाशित "सम्यग्दर्शन" (प्रथम भाग) पृष्ठ ५३ से ९७ से लिया गया है। इसमें द्रव्य-गुण-पर्याय सम्बंधी सूक्ष्म एवं गम्भीर रहस्योद्घाटन होने के कारण इसे यहाँ अविकलरूप से दिया गया है। आशा है पाठकगण इसका भरपूर लाभ लेंगे।)

आचार्यदेव कहते हैं कि - मैं शुद्धोपयोग की प्राप्ति के लिये कटिबद्ध हुआ हूँ; जैसे पहलवान (योद्धा) कमर बाँधकर लड़ने के लिये तैयार होता है, उसीप्रकार मैं अपने पुरुषार्थ के बल से मोहमल्लका नाश करने के लिये कमर कसकर तैयार हुआ हूँ।

मोक्षाभिलाषी जीव अपने पुरुषार्थ के द्वारा मोह के नाश करने का उपाय विचारता है। भगवान के उपदेश में पुरुषार्थ करने का कथन है। भगवान पुरुषार्थ के द्वारा मुक्ति को प्राप्त हो चुके हैं और भगवान ने जो उपाय किया वही उपाय बताया है, यदि जीव वह उपाय करे तो ही उसे मुक्ति हो अर्थात् पुरुषार्थ के द्वारा सत्य उपाय करने से ही मुक्ति होती है, अपने आप नहीं होती।

यदि कोई कहे कि "केवली भगवान ने तो सब कुछ जान लिया है कि कौनसा जीव कब मुक्त होगा और कौन जीव मुक्त नहीं होगा; तो फिर भगवान पुरुषार्थ करने की क्यों कहते हैं?" तो ऐसा कहनेवाले की बात मिथ्या है। भगवान ने तो पुरुषार्थ का ही उपदेश दिया है, भगवान के केवलज्ञान का निर्णय भी पुरुषार्थ के द्वारा ही होता है। जो जीव भगवान के कहे हुये मोक्षमार्ग का पुरुषार्थ करता है उसे अन्य सर्व साधन स्वयं प्राप्त हो जाते हैं।

अब, ८०-८१-८२ इन तीन गाथाओं में बहुत सुन्दर बात आती है। जैसे माता अपने इकलौते पुत्र को हृदय का हार कहती है उसीप्रकार ये तीनों गाथाएं हृदय का हार हैं। यह मोक्ष की माला के गुंफित मोती हैं; ये तीनों गाथाएं तो तीन रत्न

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

(श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र) के सदृश हैं। उनमें पहली ८० वीं गाथा में मोह के क्षय करने का उपाय बतलाते हैं :-

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्त गुणत्त पज्जयत्तेहिं ।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं ॥८०॥

अर्थ :- जो अरहंत को द्रव्यरूपसे, गुणरूपसे और पर्यायरूपसे जानता है, वह (अपने) आत्मा को जानता है और उसका मोह अवश्य नाश को प्राप्त होता है।

इस गाथा में मोह की सेना को जीतने के पुरुषार्थ का विचार करते हैं। जहाँ मोह के जीतने का पुरुषार्थ किया वहाँ अरहंतादि निमित्त उपस्थित होते ही हैं। जहाँ उपादान जागृत हुआ वहाँ निमित्त तो होता ही है। काल आदि निमित्त तो सर्व जीव के सदा उपस्थित रहते हैं, जीव स्वयं जिसप्रकार का पुरुषार्थ करता है उसमें काल को निमित्त कहा जाता है। जब कोई जीव शुभभाव करके स्वर्ग में जाय तो उस जीव के लिये वह काल स्वर्ग का निमित्त कहलाता है। यदि दूसरा जीव उसी समय पाप करके नरक में जाय तो उसके लिये उसी काल को नरक का निमित्त कहा जाता है, और कोई जीव उसी समय स्वरूप समझकर स्थिरता करके मोक्ष प्राप्त करे तो उस जीव के लिये वही काल मोक्ष का निमित्त कहलाता है। निमित्त तो हमेशा विद्यमान है, किन्तु जब स्वयं अपने पुरुषार्थ के द्वारा अरहंत के स्वरूप का और अपने आत्मा का निर्णय करता है तब क्षायिक सम्यक्त्व अवश्य प्रगट होता है और मोह का नाश होता है।

जिसने अरहंत भगवान के द्रव्य गुण पर्याय के स्वरूप को जाना है वह जीव अल्पकाल में मुक्ति का पात्र हुआ है, अरहंत भगवान आत्मा हैं, उनमें अनंत गुण हैं, उनकी केवलज्ञानादि पर्याय है उसके निर्णय में आत्मा के अनंतगुण और पूर्ण पर्याय की सामर्थ्य का निर्णय आ जाता है, उस निर्णय के बल से अल्पकाल में केवलज्ञान प्राप्त हो जाता है - इसमें संदेह को कहीं स्थान नहीं है। यहाँ इस गाथा में क्षायिक सम्यक्त्व की ध्वनि है।

''जो अर्हंत को द्रव्यरूप में गुणरूप में और पर्यायरूप में जानता है वह'' इस कथन में जाननेवाले के ज्ञानकी महत्ता समाविष्ट है। अरहंत को जाननेवाले ज्ञान

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

में मोहक्षय का उपाय समाविष्ट कर दिया है, जिस ज्ञान ने अर्हंत भगवान के द्रव्य-गुण-पर्याय को अपने निर्णय में समावेश किया है उस ज्ञान ने परमार्थतः कर्म का और विकार का अपने में अभाव स्वीकार किया है; अर्थात् द्रव्य से, गुण से और पर्याय से परिपूर्णता का सद्भाव निर्णय में प्राप्त किया है। 'जो जानता है' इसमें जाननेवाली तो वर्तमान पर्याय है। निर्णय करनेवाले ने अपनी ज्ञानपर्याय में पूर्ण द्रव्य-गुण-पर्याय का अस्तिरूप में निर्णय किया है और विकार का निषेध किया है; ऐसा निर्णय करनेवाले की पूर्ण पर्याय किसी पर के कारण से कदापि नहीं हो सकती, क्योंकि उसने अरहंत के समान अपने पूर्ण स्वभाव का निर्णय कर लिया है। जिसने पूर्ण स्वभाव का निर्णय कर लिया है उसने क्षेत्र, कर्म अथवा काल के कारण मेरी पर्याय रुक जायगी, ऐसी पुरुषार्थहीनता की बात को उड़ा दिया है। द्रव्य-गुण-पर्याय से पूर्ण स्वभाव का निर्णय करने के बाद पूर्ण पुरुषार्थ करना ही शेष रह जाता है; कहीं भी रुकने की बात नहीं रहती।

यह मोहक्षय के उपाय की बात है। जिसने अपने ज्ञान में अरहंत के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाना है उसके ज्ञान में केवलज्ञान का हार गुंफित होगा, उसकी पर्याय केवलज्ञान की ओर की ही होगी।

जिसने अपनी पर्याय में अर्हंत के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाना है उसने अपने आत्मा को जान लिया है उसका मोह अवश्य क्षय को प्राप्त होता है, यह बात कितनी खूबी के साथ कही है। वर्तमान में इस क्षेत्र में क्षायिक सम्यक्त्व नहीं है तथापि 'मोहक्षय को प्राप्त होता है' यह कहने में अंतरङ्ग का इतना बल है कि जिसने इस बात का निर्णय किया उसे वर्तमान में भले ही क्षायिक सम्यक्त्व न हो तथापि उसका सम्यक्त्व इतना प्रबल और अप्रतिहत है कि उसमें क्षायिकदशा प्राप्त होने तक बीच में कोई भंग नहीं पड़ सकता। सर्वज्ञ भगवान का आश्रय लेकर भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं कि जो जीव द्रव्य-गुण-पर्याय के द्वारा अरहंत के स्वरूप का निर्णय करता है वह अपने आत्मा को ही वैसा जानता है और वह जीव क्षायिक सम्यक्त्व के ही मार्गपर आरूढ़ है; हम अपूर्ण अथवा ढीली बात नहीं करते।

पंचमकाल के मुनिराज ने यह बात कही है और पंचमकाल के जीवों के लिये मोहक्षय का उपाय इसमें बताया है। सभी जीवों के लिये एक ही उपाय है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पंचमकाल के जीवों के लिये कोई दूसरा उपाय नहीं है। जीव तो सभी काल में परिपूर्ण ही है, तब फिर उसे कौन रोक सकता है ? कोई नहीं रोकता। भरतक्षेत्र अथवा पंचमकाल कोई भी जीव को पुरुषार्थ करने से नहीं रोकता। कौन कहता है कि पंचमकाल और भरतक्षेत्र से मुक्ति नहीं है। आज भी यदि कोई महाविदेह क्षेत्र में से ध्यानस्थ मुनि को उठाकर यहाँ भरतक्षेत्र में रख जाय तो पंचमकाल और भरतक्षेत्र के होनेपर भी वे मुनि पुरुषार्थ के द्वारा क्षपक श्रेणी को लगाकर केवलज्ञान और मुक्ति को प्राप्त कर लेंगे। इससे यह सिद्ध हुआ कि मोक्ष किसी काल अथवा क्षेत्र के द्वारा नहीं रुकता। पंचमकाल में भरतक्षेत्र में जन्मा हुआ जीव उस भव से मोक्ष को प्राप्त नहीं होता, इसका कारण काल अथवा क्षेत्र नहीं है; किन्तु वह जीव स्वयं ही अपनी योग्यता के कारण मंद पुरुषार्थी है। इसलिये बाह्य निमित्त भी वैसे ही प्राप्त होते हैं। यदि जीव स्वयं तीव्र पुरुषार्थ करके मोक्ष प्राप्त करने के लिये तैयार हो जाय तो उसे बाह्य में भी क्षेत्र इत्यादि अनुकूल निमित्त प्राप्त हो ही जाते हैं अर्थात् काल अथवा क्षेत्र की ओर देखने को आवश्यकता नहीं रहती किंतु पुरुषार्थ की ओर ही देखना पड़ता है। पुरुषार्थ के अनुसार धर्म होता है। काल अथवा क्षेत्र के अनुसार धर्म नहीं होता।

जो अरहंत को जानता है वह अपने आत्मा को जानता है अर्थात् जैसे द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप अरहंत हैं, उसी स्वरूप मैं हूँ। अरहंत के जितने द्रव्य-गुण-पर्याय हैं उतने ही द्रव्य-गुण-पर्याय मेरे हैं। **अरिहंत को पर्यायशक्ति परिपूर्ण है तो मेरी पर्याय की शक्ति भी परिपूर्ण ही है, वर्तमान में उस शक्ति को रोकनेवाला जो विकार है वह मेरा स्वरूप नहीं है।**

इसप्रकार जो जानता है उसका मोह 'खलु जादि लयं' अर्थात् निश्चय से क्षय को प्राप्त होता है, यही मोहक्षय का उपाय है।

टीका :-"जो वास्तव में अरिहंत को द्रव्यरूप में, गुणरूप में और पर्यायरूप में जानता है वह वास्तव में आत्मा को जानता है क्योंकि दोनों में निश्चय से कोई अंतर नहीं है;" यहाँ पर वास्तव में जानने की बात कही है। मात्र धारणा के रूप में अरिहन्त को जानने की बात यहाँ नहीं ली गई है क्योंकि वह तो शुभराग है। वह जगत की लौकिक विद्या के समान है उसमें आत्मा की विद्या नहीं है। वास्तव में

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जाना हुआ तो तब कहलायेगा जबकि अरिहन्त भगवान के द्रव्य-गुण-पर्याय के साथ अपने आत्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय को मिलाकर देखे कि जैसा अरिहन्त का स्वभाव है वैसा ही मेरा स्वभाव है। यदि ऐसे निर्णय के साथ जाने तो वास्तव में जाना हुआ कहलायेगा। इस प्रकार जो वास्तव में अपने आत्मा को जानता है और उसे सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है।

अरहन्त भगवान को जानने में सम्यग्दर्शन आ जाता है। स्वामि कार्तिकेयानुप्रेक्षा में कहा है कि ''णादं जिणेण णियदं......'' यहाँ यह आशय है कि जिनेन्द्रदेव ने जो जाना है उसमें कोई अंतर नहीं आ सकता; इतना जानने पर अरिहन्त के केवलज्ञान का निर्णय अपने में आ गया। वह यथार्थ निर्णय सम्यग्दर्शन का कारण होता है। सर्वज्ञदेव ने जैसा जाना है वैसा ही होता है, इस निर्णय में जिनेन्द्रदेव के और अपने केवलज्ञान की शक्ति की प्रतीति अंतर्निहित है। अरिहन्त के समान ही अपना परिपूर्ण स्वभाव समझ में आ गया है; अब मात्र पुरुषार्थ के द्वारा उसरूप परिणमन करना ही शेष रह गया है।

सम्यग्दृष्टि जीव अपने पूर्ण स्वभाव की भावना करता हुआ अरिहन्त के पूर्ण स्वभाव का विचार करता है कि जीव को जिस द्रव्य-क्षेत्र-काल भाव से जैसा होना श्री अरिहन्तदेव ने अपने ज्ञान में जाना है वैसा ही होगा, उसमें किंचित्‌मात्र भी फर्क नहीं होगा ऐसा निर्णय करनेवाले जीव ने मात्र ज्ञानस्वभाव का निर्णय किया कि वह अभिप्राय से संपूर्ण ज्ञाता हो गया, उसमें केवलज्ञान-सन्मुख का अनंत पुरुषार्थ आ गया।

केवलज्ञानी अरिहंत प्रभुका जैसा भाव है वैसा अपने ज्ञान में जो जीव जानता है वह वास्तव में अपने आत्मा को जानता है; क्योंकि अरिहंत के और इस आत्मा के स्वभाव में निश्चयतः कोई अंतर नहीं है। अरिहन्त के स्वभाव को जाननेवाला जीव अपने वैसे स्वभाव की रुचि से यह यथार्थतया निश्चय करता है कि वह स्वयं भी अरिहंत के समान ही है। अरिहंतदेव का लक्ष्य करने में जो शुभराग है उसकी यह बात नहीं है। किन्तु जिस ज्ञान ने अरिहंत का यथार्थ निर्णय किया है उस ज्ञान की बात है। निर्णय करनेवाला ज्ञान अपने स्वभाव का भी निर्णय करता है और उसका मोह क्षय को अवश्य प्राप्त होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रवचनसार के दूसरे अध्याय की ६५ वीं गाथा में कहा है कि - "जो अरिहंत को, सिद्ध को तथा साधु को जानता है और जिसे जीवों पर अनुकम्पा है उनके शुभरागरूप परिणाम है" इस गाथा में अरिहंत के जाननेवाले के शुभराग कहा है। यहाँ मात्र विकल्प से जानने की अपेक्षा से बात है, यह जो बात है सो शुभ विकल्प की बात है जबकि यहाँ तो ज्ञानस्वभाव के निश्चय सहित बात है। अरिहंत के स्वरूप को विकल्प के द्वारा जाने, किन्तु मात्र ज्ञानस्वभाव का निश्चय न हो तो वह प्रयोजनभूत नहीं है और ज्ञानस्वभाव के निश्चय के साथ अरिहंत की ओर का विकल्प भी राग है, उस राग में शक्ति नहीं किन्तु जिसने निश्चय किया है उस ज्ञान की ही अनन्त शक्ति है और वह ज्ञान ही मोहक्षय करता है। **उस निर्णय करनेवाले ने केवलज्ञान की परिपूर्ण शक्ति को अपनी पर्याय की स्व-पर प्रकाशक शक्ति में समाविष्ट कर लिया है, मेरे ज्ञान की पर्याय इतनी शक्तिसंपन्न है कि निमित्त की सहायता के बिना और परके लक्ष्य बिना केवलज्ञानी अरिहंत के द्रव्य-गुण-पर्याय को समा लेती है - निर्णय में ले लेती है।**

वाह! पंचमकाल के मुनि ने केवलज्ञान के भावामृत को प्रवाहित किया है। पंचमकाल में अमृत की प्रबल धारा बहा दी है। स्वयं केवलज्ञान प्राप्त करने की तैयारी है, इसलिये आचार्य भगवान् भाव का मंथन करते हैं, वे केवलज्ञान की ओर के पुरुषार्थ की भावना के बल से कहते हैं कि मेरी पर्याय से शुद्धोपयोग के कार्यरूप में केवलज्ञान ही आंदोलित हो रहा है। बीच में जो शुभ विकल्प आता है उस विकल्प की श्रेणी को तोड़कर शुद्धोपयोग की अखण्ड श्रेणी को ही अंगीकार करता हूँ। केवलज्ञान का निश्चय करने की शक्ति विकल्प में नहीं किन्तु स्वभाव की ओर के ज्ञान में है।

अरिहन्त भगवान आत्मा हैं। अरिहन्त भगवान के द्रव्य, गुण, पर्याय और इस आत्मा के द्रव्य, गुण, पर्याय में निश्चय से कोई अन्तर नहीं है और द्रव्य, गुण, पर्याय से अरिहन्त का स्वरूप स्पष्ट है - परिपूर्ण है, इसलिये जो जीव द्रव्य, गुण, पर्याय से अरिहन्त को जानता है वह जीव आत्मा को ही जानता है और आत्मा को जानने पर उसका दर्शनमोह अवश्य क्षय को प्राप्त होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यदि देव, गुरु के स्वरूप को यथार्थतया जाने तो जीव के मिथ्यात्व कदापि न रहे। इस संबंध में मोक्षमार्ग प्रकाशक में कहा है कि मिथ्यादृष्टि जीव, जीव के विशेषणों को यथावत् जानकर बाह्य विशेषणों से अरिहंत देव के माहात्म्य को मात्र आज्ञानुसार मानता है अथवा अन्यथा भी मानता है। यदि कोई जीव के (अरिहन्त के) यथावत् विशेषणों को जान ले तो वह मिथ्यादृष्टि न रहे।

- (सस्ती ग्रन्थमाला देहली से प्रकाशित मोक्षमार्ग प्रकाशक पृ. ३२५)

इसीप्रकार गुरुके स्वरूप के संबंध में कहते हैं - सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकतारूप मोक्षमार्ग ही मुनिका यथार्थ लक्षण है, उसे नहीं पहचानता। यदि उसे पहचान ले तो वह मिथ्यादृष्टि कदापि न रहे।

इसीप्रकार शास्त्र के स्वरूप के सम्बन्ध में कहते हैं - यहाँ तो अनेकांतरूप सच्चे जीवादि तत्त्वों का निरूपण है तथा सच्चा रत्नत्रयमोक्षमार्ग बताया है। इसलिये यह जैन शास्त्रों की उत्कृष्टता है, जिसे वह नहीं जानता। यदि इसे पहचान ले तो वह मिथ्यादृष्टि न रहे। - (मोक्षमार्ग प्रकाशक पृ. ३२९)

तीनों में एक ही बात कही है कि यदि उसे पहचान ले तो मिथ्यादृष्टि न रहे। इसमें जो पहिचानने की बात की है वह यथार्थ निर्णयपूर्वक जानने की बात है। यदि देव, गुरु, शास्त्र को यथार्थतया पहचान ले तो उसे अपने आत्मा की पहचान अवश्य हो जाय और उसका दर्शनमोह निश्चय से क्षय हो जाय।

यहाँ 'जो द्रव्य, गुण, पर्याय से अरिहन्त को जानता है उसे...' ऐसा कहा है, किन्तु सिद्ध को जानने को क्यों नहीं कहा ? इसका कारण यह है कि यहाँ शुद्धोपयोग को अधिकार चल रहा है। शुद्धोपयोग से पहले अरिहंत पद प्रकट होता है, इसलिये यहाँ अरिहन्त को जानने की बात कही गई है और फिर जानने में निमित्तरूप सिद्ध नहीं होते किन्तु अरिहन्त निमित्तरूप होते हैं तथा पुरुषार्थ की जागृति से अरिहंत दशा के प्रगट हो जाने पर अघातिया कर्मों को दूर करने के लिये पुरुषार्थ नहीं है, अर्थात् प्रयत्न से केवलज्ञान-अरिहन्त दशा प्राप्त की जाती है, इसलिये यहाँ अरिहन्त की बात कही है। वास्तव में तो अरिहन्त का स्वरूप जान लेने पर समस्त सिद्धों का स्वरूप भी उसमें आ ही जाता है।

अरिहन्त के द्रव्य, गुण, पर्याय की भाँति ही अपने आत्मा के

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वरूप को जानकर शुद्धोपयोग की श्रेणी के द्वारा जीव अरिहन्त पदको प्राप्त होता है। जो अरिहन्त के द्रव्य, गुण, पर्यायस्वरूप को जानता है उसका मोह नाश को अवश्य प्राप्त होता है। यहाँ 'जो जाणदि' अर्थात् 'जो जानता है' - ऐसा कहकर ज्ञान का पुरुषार्थ सिद्ध किया है। जो ज्ञान के द्वारा जानता है उसका मोह क्षय हो जाता है किन्तु जो ज्ञान के द्वारा नहीं जानता उसका मोह नष्ट नहीं होता।

यहाँ यह कहा है कि जो अरिहन्त को द्रव्यसे-गुणसे-पर्यायसे जानता है वह अपने आत्मा को जानता है और उसका मोह अवश्य क्षय हो जाता है।

अरिहन्त को द्रव्य, गुण, पर्याय से कैसे जानना चाहिये और मोह क्योंकर नष्ट होता है यह आगे चल कर कहा जायेगा।

पहले कहा जा चुका है कि जो अरिहन्त को द्रव्यरूपसे, गुणरूपसे और पर्यायरूपसे जानता है वह अपने आत्मा को जानता है और उसका मोह अवश्य क्षयको प्राप्त होता है। अरिहन्त को द्रव्य, गुण, पर्याय रूप से किसप्रकार जानना चाहिये और मोह का नाश कैसे होता है यह सब यहाँ कहा जायेगा।

श्री प्रवचनसारकी गाथा ८०-८१-८२ में संपूर्ण शास्त्र का सार भरा हुआ है। इसमें अनन्त तीर्थंकरों के उपदेश का रहस्य समा जाता है। आचार्य प्रभुने ८२ वीं गाथा में कहा है कि ८०-८१ वीं गाथा में कथित विधि से ही समस्त अरिहन्त मुक्त हुये हैं। समस्त तीर्थंकर इसी उपाय से पार हुये हैं और भव्य जीवों को इसीका उपदेश दिया है। वर्तमान भव्य जीवों के लिये भी यही उपाय है। मोह का नाश करने के लिये इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं है।

जिन आत्माओं को पात्र होकर अपनी योग्यता के पुरुषार्थ के द्वारा स्वभाव को प्राप्त करना है और मोहका क्षय करना है उन आत्माओं को क्या करना चाहिये ? यह यहाँ बताया गया है। पहले तो अरिहन्त को द्रव्य-गुण-पर्याय से जानना चाहिये। भगवान अरिहन्त का आत्मा कैसा था; उनके आत्मा के गुणों की शक्ति-सामर्थ्य कैसी थी और उनकी पूर्ण पर्याय का क्या स्वरूप है - इसके यथार्थ भाव को जो निश्चय करता है वह वास्तव में अपने ही द्रव्य, गुण, पर्यायस्वरूप का निश्चय करता है। अरिहन्त को जानते हुये यह प्रतीति करता है कि "ऐसा ही पूर्ण स्वभाव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है, ऐसा ही मेरा स्वरूप है," अरिहन्त के आत्मा को जानने पर अपना आत्मा किस प्रकार जाना जाता है, इसका कारण यहाँ बतलाते हैं। 'वास्तव में जो अरिहन्त को जानता है वह निश्चय ही अपने आत्मा को जानता है क्योंकि दोनों में निश्चय से कोई अन्तर नहीं है।' **अरिहन्त के जैसे द्रव्य, गुण, पर्याय हैं वैसे ही इस आत्मा के द्रव्य, गुण, पर्याय हैं। वस्तु, उसकी शक्ति और उसकी अवस्था जैसी अरिहन्तदेव के है वैसी ही मेरे भी है।** इसप्रकार जो अपने पूर्ण स्वरूप की प्रतीति करता है वही अरिहन्त को यथार्थतया जानता है। यह नहीं हो सकता कि अरिहन्त के स्वरूप को तो जाने और अपने आत्मा के स्वरूप को न जाने।

यहाँ स्वभाव की तुलना करके कहते हैं कि अरिहन्त का और अपना आत्मा समान ही है, इसलिये जो अरिहन्त को जानता है वह अपने आत्मा को अवश्य जानता है और उसका मोह क्षय हो जाता है। यहाँ पर "जो अरिहन्त को जानता है वह अपने आत्मा को जानता है" इसप्रकार अरिहन्त के आत्मा के साथ ही इस आत्मा को क्यों मिलाया है, दूसरे के साथ क्यों नहीं मिलाया ? "जो जगत् के आत्माओं को जानता है वह निजको जानता है" ऐसा नहीं कहा परन्तु "जो अरिहन्त के आत्मा को जानता है वह अपने आत्मा को जानता है" ऐसा कहा है, इसे अब अधिक स्वरूप में कहते हैं - **"अरिहन्त का स्वरूप अंतिम तापमान को प्राप्त स्वर्ण के स्वरूप की भाँति परिस्पष्ट (सब तरह से स्पष्ट) है; इसलिये उसका ज्ञान होने पर सर्व आत्मा का ज्ञान हो जाता है।"**

जैसे अन्तिम ताप से तपाया हुआ सोना बिल्कुल खरा होता है उसी प्रकार भगवान अरिहन्त का आत्मा द्रव्य, गुण, पर्याय से संपूर्णतया शुद्ध है। आचार्यदेव कहते हैं कि हमें तो आत्मा का शुद्ध-स्वरूप बतलाना है, विकार आत्मा का स्वरूप नहीं है आत्मा विकार रहित शुद्ध पूर्ण स्वरूप है यह बताना है और इस शुद्ध आत्मस्वरूप के प्रतिबिंब समान श्री अरिहन्त का आत्मा है, क्योंकि वह सर्व प्रकार शुद्ध है। अन्य आत्मा सर्व प्रकार शुद्ध नहीं हैं। द्रव्य, गुण की अपेक्षा से सभी शुद्ध हैं किंतु पर्याय से शुद्ध नहीं हैं, इसलिये उन आत्माओं को न लेकर अरिहन्त के ही आत्मा को लिया है, उस शुद्ध स्वरूप को जो जानता है वह अपने आत्मा को जानता है और उसका मोह क्षय हो जाता है। अर्थात् यहाँ आत्मा के शुद्ध स्वरूप को

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जानने की ही बात है। आत्मा के शुद्ध स्वरूप को जानने के अतिरिक्त मोहक्षय का कोई दूसरा उपाय नहीं है। सिद्ध भगवान के भी पहले अरिहंत दशा थी इसलिये अरिहंत के स्वरूप को जानने पर उनका स्वरूप भी ज्ञात हो जाता है। अरिहन्त दशा पूर्वक ही सिद्धदशा होती है।

द्रव्य-गुण तो सदा शुद्ध ही हैं किंतु पर्याय की शुद्धि करनी है; पर्याय की शुद्धि करने के लिये यह जान लेना चाहिये कि द्रव्य, गुण, पर्याय की शुद्धता का स्वरूप कैसा है ? अरिहन्त भगवान का आत्मा द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों प्रकार से शुद्ध है और अन्य आत्मा पर्याय की अपेक्षा से पूर्ण शुद्ध नहीं है इसलिये अरिहन्त को स्वरूप जानने का कहा है। जिसने अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय स्वरूप को पदार्थ जाना है उसे शुद्ध स्वभाव की प्रतीति हो गई है अर्थात् उसकी पर्याय शुद्ध होने लगी है और उसका दर्शनमोह नष्ट हो गया है।

सोने में सौ टंच शुद्ध दशा होने की शक्ति है, जब अग्नि के द्वारा ताव देकर उसकी ललाई दूर की जाती है तब वह शुद्ध होता है और इसप्रकार ताव दे-देकर अंतिम आँच से वह संपूर्ण शुद्ध किया जाता है और यही सोने का मूलस्वरूप है वह सोना अपने द्रव्य-गुण-पर्याय की पूर्णता को प्राप्त हुआ है। इसीप्रकार अरिहन्त का आत्मा पहले अज्ञानदशा में था फिर आत्मज्ञान और स्थिरता के द्वारा क्रमशः शुद्धता को बढ़ाकर पूर्णदशा प्रगट की है। अब वे द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों से पूर्ण शुद्ध हैं और अनंतकाल इसीप्रकार रहेंगे। उनके अज्ञान का, राग-द्वेष का और भव का अभाव है। इसीप्रकार अरिहन्त के आत्मा को, उनके गुणों को और उनकी अनादि-अनंत पर्यायों को जो जानता है वह अपने आत्मा के यथार्थ स्वरूप को जानता है और उसका मोह अवश्य क्षय को प्राप्त होता है। अरिहन्त को आत्मा परिस्पष्ट है - सब तरह से शुद्ध है। उन्हें जानकर ऐसा लगता है कि अहो ! यह तो मेरे शुद्ध स्वभाव का ही प्रतिबिम्ब है, मेरा स्वरूप ऐसा ही है। इसप्रकार यथार्थतया प्रतीति होनेपर शुद्धसम्यक्त्व अवश्य ही प्रगट होता है।

अरिहन्त का आत्मा ही पूर्ण शुद्ध है। गणधरदेव मुनिराज इत्यादि के आत्माओं की पूर्ण शुद्धदशा नहीं है इसलिये उन्हें जानने पर आत्मा के पूर्ण शुद्ध स्वरूप का ध्यान नहीं आता। अरिहन्त भगवान के आत्मा को जानने पर अपने

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा के शुद्ध स्वरूप का ज्ञान अनुमानप्रमाण के द्वारा होता है और इसीलिये शुद्ध स्वरूप की जो विपरीत मान्यता है वह क्षय को प्राप्त होती है। "अहो! आत्मा का स्वरूप तो ऐसा सर्व प्रकार शुद्ध है, पर्याय में जो विकार है सो भी मेरा स्वरूप नहीं है। अरिहन्त जैसी ही पूर्णदशा होने में जो कुछ शेष रह जाता है वह मेरा स्वरूप नहीं है, जितना अरिहन्त में है उतना ही मेरे स्वरूप में है" **इसप्रकार अपनी प्रतीति हुई अर्थात् अज्ञान और विकार का कर्तृत्व दूर होकर स्वभाव की ओर लग गया और स्वभाव में द्रव्य-गुण-पर्याय की एकता होने पर सम्यग्दर्शन हो गया।** अब उसी स्वभाव के आधार से पुरुषार्थ के द्वारा राग-द्वेष का सर्वथा क्षय करके अरिहन्त के समान ही पूर्णदशा प्रगट करके मुक्त होगा। इसलिये अरिहन्त के स्वरूप को जानना ही मोहक्षय का उपाय है।

यह बात विशेष समझने योग्य है, इसलिये इसे अधिक स्पष्ट किया जा रहा है। अरिहंत को लेकर बात उठाई है, अर्थात् वास्तव में आत्मा के पूर्ण शुद्धस्वभाव की ओर से ही बात का प्रारम्भ किया है। अरिहन्त के समान ही इस आत्मा का पूर्ण शुद्धस्वभाव स्थापित करके उसे जानने की बात कही है। पहले, जो पूर्ण शुद्धस्वभाव को जाने उसके धर्म होता है किंतु जो जानने का पुरुषार्थ ही न करे उसके तो कदापि धर्म नहीं होता। अर्थात् यहाँ ज्ञान और पुरुषार्थ दोनों साथ ही हैं तथा सत् निमित्त के रूप में अरिहन्तदेव ही हैं, वह बात भी इससे ज्ञात हो गई।

चाहे सौ टंची सोना हो, चाहे पचास टंची हो, दोनों का स्वभाव समान है किन्तु दोनों की वर्तमान अवस्था में अन्तर है। पचास टंची सोने में अशुद्धता है, उस अशुद्धता को दूर करने के लिये उसे सौ टंची सोने के साथ मिलाना चाहिये। यदि उसे ७५ टंची सोने के साथ मिलाया जाय तो उसका वास्तविक शुद्ध स्वरूप ख्याल में नहीं आयेगा और वह कभी शुद्ध नहीं हो सकेगा। यदि सौ टंची सोने के साथ मिलाया जाय तो सौ टंची शुद्ध करने का प्रयत्न करे, किंतु यदि ७५ टंची सोने को ही शुद्ध सोना मान ले तो वह कभी शुद्ध सोना प्राप्त नहीं कर सकेगा। इसीप्रकार आत्मा का स्वभाव तो शुद्ध ही है किन्तु वर्तमान अवस्था में अशुद्धता है। अरिहन्त और इस आत्मा के बीच वर्तमान अवस्था में अन्तर है। वर्तमान अवस्था में जो अशुद्धता है उसे दूर करना है इसलिये अरिहन्त भगवान के पूर्ण शुद्ध द्रव्य-गुण-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पर्याय के साथ मिलान करना चाहिये कि 'अहो ! यह आत्मा तो केवलज्ञानस्वरूप है, पूर्ण ज्ञान-सामर्थ्य है और किंचित्मात्र भी विकारवान् नहीं है; मेरा स्वरूप भी ऐसा ही है, मैं भी अरिहन्त जैसे ही स्वभाववंत हूँ' ऐसी प्रतीति जिसने की उसे निमित्तों की ओर नहीं देखना होता, क्योंकि अपनी पूर्णदशा अपने स्वभाव के पुरुषार्थ में से आती है, निमित्त में से नहीं आती; तथा पुण्य-पाप की ओर अथवा अपूर्णदशा की ओर भी नहीं देखना पड़ता क्योंकि वह आत्मा का स्वरूप नहीं है; **बस ! अब अपने द्रव्य-गुण की ओर ही पर्याय की एकाग्रतारूप क्रिया करनी होती है। एकाग्रता करते-करते पर्याय शुद्ध हो जाती है।** ऐसी एकाग्रता कौन करता है ? जिसने पहले अरिहन्त के स्वरूप के साथ मिलान करके अपने पूर्ण स्वरूप को ख्याल में लिया हो वह अशुद्धता को दूर करने के लिए शुद्ध स्वभाव की एकाग्रता का प्रयत्न करता है, किन्तु जो जीव पूर्ण शुद्ध स्वरूप को नहीं जानता और पुण्य-पाप को ही अपना स्वरूप मान रहा है वह जीव अशुद्धता को दूर करने का प्रयत्न नहीं कर सकता, इसलिये सबसे पहले अपने शुद्ध स्वभाव को पहचानना चाहिये। इस गाथा में आत्मा के शुद्ध स्वभाव को पहचानने की रीति बताई गई है।

''अरिहन्त का स्वरूप सर्व प्रकार स्पष्ट है, जैसी वह दशा है वैसी ही इस आत्मा की दशा होनी चाहिए। ऐसा निश्चय किया अर्थात् यह जान लिया कि जो अरिहन्त दशा में नहीं होते वे भाव मेरे स्वरूप में नहीं हैं - और इसप्रकार विकारभाव और स्वभाव को भिन्न-भिन्न जान लिया; इसप्रकार जिसने अरिहन्त का ठीक निर्णय कर लिया और यह प्रतीति कर ली कि मेरा आत्मा भी वैसा ही है उसका दर्शनमोह नष्ट होकर उसे क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है।

ध्यान रहे कि यह अपूर्व बात है, इसमें मात्र अरिहन्त की बात नहीं है किन्तु अपने आत्मा को एकमेक करने की बात है। अरिहन्त का ज्ञान करने वाला तो यह आत्मा है। अरिहन्त की प्रतीति करने वाला अपना ज्ञानस्वभाव है। जो अपने ज्ञान स्वभाव के द्वारा अरिहन्त की प्रतीति करता है उसे अपने आत्मा की प्रतीति अवश्य हो जाती है। और फिर अपने स्वरूप की ओर एकाग्रता करते-करते केवलज्ञान हो जाता है। इसप्रकार सम्यग्दर्शन से प्रारम्भ करके केवलज्ञान प्राप्त करने तक का

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अप्रतिहत उपाय बता दिया गया है। ८२ वीं गाथा में कहा गया है कि समस्त तीर्थंकर इसी विधि से कर्मका क्षय करके निर्वाण को प्राप्त हुये हैं और यही उपदेश दिया है। जैसे अपना मुँह देखने के लिये सामने स्वच्छ दर्पण रखा जाता है उसीप्रकार यहाँ आत्मस्वरूप को देखने के लिए अरिहन्त भगवान को आदर्शरूप में (आदर्श का अर्थ दर्पण है) अपने समक्ष रखा है। तीर्थंकरों का पुरुषार्थ अप्रतिहत होता है, उनका सम्यक्त्व भी अप्रतिहत होता है, और श्रेणी भी अप्रतिहत होती है और यहाँ तीर्थंकरों के साथ मिलान करना है इसलिये तीर्थंकरों के समान ही अप्रतिहत सम्यग्दर्शन की बात ली गई है। मूल सूत्र में ''मोहो खलु जादि तस्स लयं'' कहा गया है, उसी में से यह भाव निकलता है।

अरिहन्त और अन्य आत्माओं के स्वभाव में निश्चय से कोई अंतर नहीं है अरिहन्त का स्वरूप अंतिम शुद्ध दशारूप है इसलिये अरिहन्त का ज्ञान करने पर समस्त आत्माओं के शुद्ध स्वरूप का भी ज्ञान हो जाता है। स्वभाव से सभी आत्मा अरिहन्त के समान हैं। परन्तु पर्याय में अन्तर है। यहाँ तो सभी आत्माओं को अरिहन्त के समान कहा है, अभव्यको भी अलग नहीं किया। अभव्य जीव का स्वभाव और शक्ति भी अरिहन्त के समान ही है। **सभी आत्माओं का स्वभाव परिपूर्ण है, किन्तु अवस्था में पूर्णता प्रगट नहीं है, यह उनके पुरुषार्थ का दोष है, वह दोष पर्याय का है स्वभाव का नहीं।** यदि स्वभाव को पहचाने तो स्वभाव के बल से पर्याय का दोष भी दूर किया जा सकता है।

भले ही जीवों की वर्तमान में अरिहन्त जैसी पूर्ण दशा प्रगट न हुई तो तथापि आत्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय की पूर्णता का स्वरूप कैसा होता है यह स्वयं वर्तमान में निश्चित कर सकता है।

जब तक अरिहन्त केवली भगवान जैसी दशा नहीं होती तब तक आत्मा का पूर्ण स्वरूप प्रगट नहीं होता। अरिहन्त के पूर्ण स्वरूप का ज्ञान करने पर सभी आत्माओं का ज्ञान हो जाता है, सभी आत्मा अपने पूर्ण स्वरूप को पहचानकर जबतक पूर्णदशा को प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करते तब तक वे दुःखी रहते हैं। सभी आत्मा शक्तिस्वरूप से तो पूर्ण ही हैं किंतु यदि व्यक्तदशारूप में पूर्ण हों तो सुख प्रगट हो। जीवों को अपनी ही अपूर्णदशा के कारण दुःख है, वह दुःख दूसरे के

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कारण से नहीं है इसलिये अन्य कोई व्यक्ति जीव का दुःख दूर नहीं कर सकता, किन्तु यदि जीव स्वयं अपनी पूर्णता को पहिचाने तभी उसका दुःख दूर हो, इससे मैं किसी का दुःख दूर नहीं कर सकता और अन्य कोई मेरा दुःख दूर नहीं कर सकता ऐसी स्वतन्त्रता की प्रतीति हुई और पर का कर्तृत्व दूर करके ज्ञातारूप में रहा; यही सम्यग्दर्शन का अपूर्व पुरुषार्थ है।

पूर्ण स्वभाव के अज्ञान के कारण ही अपनी पर्याय में दुःख है उस दुःख को दूर करने के लिये अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय का अपने ज्ञान के द्वारा निर्णय करना चाहिए। शरीर, मन, वाणी, पुस्तक, कर्म यह सब जड़ हैं - अचेतन हैं, वे सब आत्मा से बिल्कुल भिन्न हैं; जो राग-द्वेष होता है वह भी वास्तव में मेरा नहीं है, क्योंकि अरहन्त भगवान की दशा में राग-द्वेष नहीं है। राग के आश्रय से भगवान की पूर्णदशा नहीं हुई। भगवान की पूर्णदशा कहाँ से आई ? उनकी पूर्णदशा उनके द्रव्य-गुण के आधार से आई है। जैसे अरिहन्त की पूर्णदशा उनके द्रव्य-गुण के आधार से प्रगट हुई है वैसे ही मेरी पूर्णदशा भी मेरे द्रव्य-गुण के ही आधार से प्रगट होती है। विकल्प का या पर का आधार मेरी पर्याय को भी नहीं है। "अरिहन्त जैसी पूर्णदशा मेरा स्वरूप है और अपूर्णदशा मेरा स्वरूप नहीं है" ऐसा मैंने जो निर्णय किया है वह निर्णयरूप दशा मेरे द्रव्य-गुण के ही आधार से हुई है। इसप्रकार जीव का लक्ष्य अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय से हटकर अपने द्रव्य-गुण-पर्याय की ओर जाता है और वह अपने स्वभाव को प्रतीति में लेता है। **स्वभाव को प्रतीति में लेनेपर स्वभाव की ओर पर्याय एकाग्र हो जाती है अर्थात् मोह को पर्याय का आधार नहीं रहता और इसप्रकार निराधार हुआ मोह अवश्य क्षयको प्राप्त होता है।**

सर्व प्रथम अरिहन्त का लक्ष्य होता तो है किंतु बाद में अरिहन्त के लक्ष्य से भी हटकर स्वभाव की श्रद्धा करने पर सम्यग्दर्शन दशा प्रगट होती है। सर्वज्ञ अरिहन्त भी आत्मा हैं और मैं भी आत्मा हूँ, ऐसी प्रतीति करने के बाद अपनी पर्याय में सर्वज्ञ से जितनी अपूर्णता है उसे दूर करने के लिये स्वभाव में एकाग्रता का प्रयत्न करता है।

अरिहन्त को जानने पर जगत के समस्त आत्माओं का निर्णय हो गया कि

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जगत् के जीव अपनी-अपनी पर्याय से ही सुखी-दुःखी हैं। अरिहन्त प्रभु अपनी पूर्ण पर्याय से ही स्वयं सुखी हैं इसलिये सुख के लिये उन्हें अन्न, जल, वस्त्र इत्यादि किसी पदार्थ की आवश्यकता नहीं होती और जगत् के जो जीव दुःखी हैं वे अपनी पर्याय के दोष से ही दुःखी हैं। पर्याय में मात्र रागदशा जितना ही अपना स्वभाव मान बैठे हैं और सम्पूर्ण स्वभाव को भूल गये हैं इसलिये वे राग का ही संवेदन करके दुःखी होते हैं, किंतु किसी निमित्त के कारण से अथवा कर्मों के कारण दुःखी नहीं हैं, और न अन्न, वस्त्र इत्यादि के न मिलने से दुःखी हैं; दुःख का कारण अपनी पर्याय है और दुःख को दूर करने के लिये अरिहन्त को पहचानना चाहिये। अरिहंत के द्रव्य, गुण, पर्याय को जानकर उन्हीं के समान अपने को मानना चाहिये कि मैं मात्र रागदशा वाला नहीं हूँ किन्तु मैं तो रागरहित परिपूर्ण ज्ञानस्वभाव वाला हूँ, मेरे ज्ञान में दुःख नहीं हो सकता; **इसप्रकार जो अपने को द्रव्य-गुण स्वभाव से अरिहन्त के समान ही माने तो वर्तमान राग पर से अपने लक्ष्य को हटाकर द्रव्य-गुण स्वभाव पर लक्ष्य करे और अपने स्वभाव की एकाग्रता करके पर्याय के दुःख को दूर करे, ऐसा होने से जगत् के किसी भी जीव के पराधीनता नहीं है।** मैं किसी अन्य जीव का अथवा जड़ पदार्थ का कुछ भी नहीं कर सकता। सम्पूर्ण पदार्थ स्वतन्त्र हैं, मुझे अपनी पर्याय का उपयोग अपनी ओर करना है, यहाँ सुख का उपाय है। इसके अतिरिक्त जगत् में अन्य कोई सुख का उपाय नहीं है।

मैं देश आदि के कार्य कर डालूं, ऐसी मान्यता भी बिल्कुल मिथ्या है। इस मान्यता में तो तीव्र आकुलता का दुःख है। मैं जगत् के जीवों के दुःख को दूर कर सकता हूँ, ऐसी मान्यता निजको ही महान दुःख का कारण है। पर को दुःख या सुख देने के लिये कोई समर्थ नहीं है। जगत् के जीवों को संयोग का दुःख नहीं है किन्तु अपने ज्ञानादि स्वभाव की पूर्ण दशा को नहीं जाना इसी का दुःख है। यदि अरिहंत के आत्मा के साथ अपने आत्मा का मिलान करे तो अपना स्वभाव प्रतीति में आये। अहो! अरिहंतदेव किसी बाह्य संयोग से सुखी नहीं किन्तु अपने ज्ञान इत्यादि की पूर्ण दशा से ही वे संपूर्ण सुखी हैं। इसलिये सुख आत्मा का ही स्वरूप है, इसप्रकार स्वभाव को पहिचानकर राग-द्वेष रहित होकर परमानन्द दशा को प्रगट करे।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अरिहंत के वास्तविक स्वरूप को नहीं जाना इसलिये अपने स्वरूप को भी नहीं जाना और अपने स्वरूप को नहीं जाना, इसलिये यह सब भूल होती है।

मुझे परिपूर्ण स्वतंत्र सुखदशा चाहिये है, सुख के लिये जैसी स्वतंत्र दशा होनी चाहिये वैसी पूर्ण स्वतंत्र दशा अरिहन्त के है और अरिहंत के समान ही सबका स्वभाव है इसलिये मैं भी वैसा ही पूर्ण स्वभाववाला हूँ, इसप्रकार अपने स्वभाव की प्रतीति भी उन्हीं के साथ मिलाकर बात कही गई है। जिसने अपने ज्ञान में यह निश्चय किया उसने सुख के लिये पराधीन दृष्टि की अनंत उथलपुथल को शमन कर दिया है। पहले अज्ञान से जहाँ तहाँ उथलपुथल करता था कि रुपये-पैसे में से सुख प्राप्त कर लूं, राग में से सुख ले लूं, देव-गुरु-शास्त्र से सुख प्राप्त कर लूं अथवा पुण्य करके सुख पा लूं - इसप्रकार परके लक्ष्य से सुख मानता था, यह मान्यता दूर हो गई है और मात्र अपने स्वभाव को ही सुख का साधन माना है; ऐसी समझ होने पर सम्यग्दर्शन होता है।

सम्यक्त्व कैसे होता है यह बात इस गाथा में कही गई है। भगवान अरिहन्त के न तो किंचित् पुण्य है और न पाप, वे पुण्य-पाप रहित हैं, उनके ज्ञान, दर्शन, सुख में कोई कमी नहीं है; इसीप्रकार मेरे स्वरूप में भी पुण्य-पाप अथवा कोई कमी नहीं ऐसी प्रतीति करने पर द्रव्यदृष्टि हुई। अपूर्णता मेरा स्वरूप नहीं है, इसलिये अब अपूर्ण अवस्था की ओर देखने की आवश्यक्ता नहीं रही किंतु पूर्ण शुद्ध दशा प्रगट करने के लिये स्वभाव में ही एकाग्रता करने की आवश्यक्ता रही। शुद्ध दशा बाहर से प्रगट होती है या स्वभाव में से ? स्वभाव से प्रगट होनेवाली अवस्था को प्रगट करने के लिये स्वभाव में ही एकाग्रता करनी है। इतना जान लेने पर यह धारणा दूर हो जाती है कि किसी भी अन्य पदार्थ की सहायता से मेरा कार्य होता है वर्तमान पर्याय में जो अपूर्णता है वह स्वभाव की एकता के पुरुषार्थ के द्वारा पूर्ण करना है, अर्थात् मात्र ज्ञान में ही क्रिया करनी है; यहाँ प्रत्येक पर्याय में सम्यक् पुरुषार्थ का ही काम है।

किसी को यह शंका हो सकती है कि अभी तो अरिहन्त नहीं हैं तब फिर अरिहन्त को जानने की बात किसलिये की गई है ? उनके समाधान के लिये कहते हैं कि - यहाँ अरिहन्त की उपस्थिति की बात नहीं है किन्तु अरिहन्त का स्वरूप जानने

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

की बात है। अरिहन्त की साक्षात् उपस्थिति हो तभी उनका स्वरूप जाना जा सकता है - ऐसी बात नहीं है। अमुक क्षेत्र की अपेक्षा से अभी अरिहन्त नहीं हैं किन्तु उनका अस्तित्व अन्यत्र महाविदेह क्षेत्र इत्यादि में तो अभी भी है। अरिहन्त भगवान साक्षात् अपने सन्मुख विराजमान हों तो भी उनका स्वरूप ज्ञान के द्वारा निश्चित होता है। वहाँ अरिहन्त तो आत्मा हैं, उनके द्रव्य-गुण अथवा पर्याय दृष्टिगत नहीं होते तथापि ज्ञान के द्वारा उनके स्वरूप का निर्णय होता है, और यदि वे दूर हों तो भी ज्ञान के द्वारा ही उनका निर्णय अवश्य होता है। जब वे साक्षात् विराजमान होते हैं तब भी अरिहन्त का शरीर दिखाई देता है। क्या वह शरीर अरिहन्त का द्रव्य, गुण अथवा पर्याय है ? क्या दिव्यध्वनि अरिहन्त का द्रव्य, गुण अथवा पर्याय है ? नहीं। यह सब तो आत्मा से भिन्न है। चैतन्यस्वरूप आत्मा द्रव्य उसके ज्ञान-दर्शनादिक गुण और उसकी केवलज्ञानादि पर्याय अरिहन्त है। यदि उस द्रव्य-गुण-पर्याय को यथार्थतया पहचान लिया जाय तो अरिहन्त के स्वरूप को जान लिया कहलायेगा। साक्षात् अरिहन्त प्रभु के समक्ष बैठकर उनकी स्तुति करे, परन्तु यदि उनके द्रव्य-गुण-पर्याय के स्वरूप को न समझे तो वह अरिहन्त के स्वरूप की स्तुति नहीं कहलायेगी।

क्षेत्र की अपेक्षा से निकट में अरिहन्त की उपस्थिति हो या न हो, इसके साथ कोई संबंध नहीं है, किन्तु अपने ज्ञान में उनके स्वरूप का निर्णय है या नहीं, इसी के साथ संबंध है। क्षेत्रापेक्षा से निकट में ही अरिहन्त भगवान विराजमान हों परन्तु उस समय यदि ज्ञान के द्वारा स्वयं उनके स्वरूप का निर्णय न करे तो उस जीव को आत्मज्ञान नहीं हो सकता और उसके लिये तो अरिहन्त बहुत दूर हैं। और वर्तमान में क्षेत्र की अपेक्षा से अरिहन्त भगवान निकट नहीं हैं तथापि यदि अपने ज्ञान के द्वारा अभी भी अरिहन्त के स्वरूप का निर्णय करे तो आत्मा की पहिचान हो और उसके लिए अरिहन्त भगवान बिल्कुल निकट ही उपस्थित हैं। यहाँ क्षेत्र की अपेक्षा से नहीं किन्तु भाव की अपेक्षा से बात है। यथार्थ समझ का संबंध तो भाव के साथ है।

यहाँ यह कहा गया है कि अरिहन्त कब हैं और कब नहीं। महाविदेह क्षेत्र में अथवा भरतक्षेत्र में चौथे काल में अरिहन्त की साक्षात् उपस्थिति के समय भी जिन आत्माओं ने द्रव्य-गुण-पर्याय से अपने ज्ञान में अरिहन्त के स्वरूप का यथार्थ निर्णय नहीं किया, उन जीवों के लिये तो उस समय भी अरिहंत की उपस्थिति नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

के बराबर है और भरतक्षेत्र में पंचमकाल में साक्षात् अरिहन्त की अनुपस्थिति में भी जिन आत्माओं ने द्रव्य, गुण, पर्याय से अपने ज्ञान में अरिहन्त के स्वरूप का निर्णय किया है उनके लिये अरिहन्त भगवान् मानों साक्षात् विराजमान हैं।

समवशरण में भी जो जीव अरिहन्त के स्वरूप का निर्णय करके आत्मस्वरूप को समझे हैं उन जीवों के लिये ही अरिहन्त भगवान् निमित्त कहे गये हैं, किंतु जिनने निर्णय नहीं किया उनके लिये तो साक्षात् अरिहन्त भगवान् निमित्त भी नहीं कहलाये। आज भी जो अरिहन्त का निर्णय करके आत्मस्वरूप को समझते हैं उनके लिये उनके ज्ञान में अरिहन्त भगवान् निमित्त कहलाते हैं। वहाँ भी आत्मा को हाथ में लेकर नहीं दिखाते।

जिसकी दृष्टि निमित्त पर है वह क्षेत्र को देखता है कि वर्तमान में इस क्षेत्र में अरिहन्त नहीं हैं। हे भाई! अरिहन्त नहीं हैं किंतु अरिहन्त का निश्चय करनेवाला तेरा ज्ञान तो है? जिसकी दृष्टि उपादान पर है वह अपने ज्ञान के बल से अरिहन्त का निर्णय करके क्षेत्रभेद को दूर कर देता है। अरिहन्त तो निमित्त हैं। यहाँ अरिहंत का निर्णय करनेवाले ज्ञान की महिमा है। मूल सूत्र में ''जो जाणदि'' कहा है अर्थात् जाननेवाला ज्ञान मोहक्षय का कारण है किंतु अरिहंत तो अलग ही हैं, वे इस आत्मा का मोहक्षय नहीं करते। मोहक्षय का उपाय अपने पास है।

समवसरण में बैठनेवाला जीव भी क्षेत्रकी अपेक्षा से अरिहन्त से तो दूर ही बैठता है अर्थात् क्षेत्र की अपेक्षा से तो उसके लिये भी दूर ही हैं और यहाँ भी क्षेत्र से अधिक दूर हैं,किन्तु क्षेत्रकी अपेक्षा से अन्तर पड़ जाने से भी क्या हुआ? जिसने भाव में अरिहन्त को अपने निकट कर लिया है उसके लिये वे सदा निकट ही विराजते हैं। और जिसने भाव में अरिहन्त को दूर किया है उसके लिये दूर हैं। क्षेत्र की दृष्टि से निकट हों या न हों इससे क्या होता है? यहाँ तो भाव के साथ मेल करके निकटता करनी है। अहो! अरिहन्त के विरह को भुला दिया है, तब फिर कौन कहता है कि अभी अरिहन्त भगवान नहीं हैं?

यह पंचमकाल के मुनि का कथन है, पंचमकाल में मुनि हो सकते हैं। जो जीव अपने ज्ञान के द्वारा अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानता है उसका दर्शनमोह नष्ट हो जाता है। जो जीव अरिहन्त के स्वरूप का भी विपरीत रूप से

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मानता हो और अरिहन्त का यथार्थ निर्णय किये बिना उनकी पूजा-भक्ति करता हो उसके मिथ्यात्व का नाश नहीं हो सकता। जिसने अरिहन्त के स्वरूप को विपरीत माना उसने अपने आत्मस्वरूप को भी विपरीत ही माना है और इसलिये वह मिथ्यादृष्टि है। यहाँ मिथ्यात्व के नाश करने का उपाय बताते हैं; जिनके मिथ्यात्व का नाश हो गया है उन्हें समझाने के लिये यह बात नहीं है किन्तु जो मिथ्यात्व नाश करने के लिये तैयार हुये हैं उन जीवों के लिये यह कहा जा रहा है। वर्तमान में भी अपने पुरुषार्थ के द्वारा जीव के मिथ्यात्व का नाश हो सकता है इसलिये यह बात कही है, अतः समझ में नहीं आता - इस धारणा को छोड़कर समझने का पुरुषार्थ करना चाहिये।

यद्यपि अभी क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता किंतु यह बात यहाँ नहीं की गई है। आचार्यदेव कहते हैं कि जिसने अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानकर आत्मस्वरूप का निर्णय किया है वह जीव क्षायिक सम्यक्त्व की श्रेणी में ही बैठा है इसलिये हम अभी से उसके दर्शन-मोह का क्षय कहते हैं। भले ही अभी साक्षात् तीर्थंकर नहीं हैं तो भी ऐसे बलवत्तर निर्णय के भाव से कदम उठाया है कि साक्षात् अरिहन्त के पास आकर क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करके क्षायिक श्रेणी के बल से मोह का सर्वथा क्षय करके केवलज्ञान-अरिहन्तदशा को प्रगट कर लेंगे। यहाँ पुरुषार्थ की ही बात है, वापिस होने की बात है ही नहीं।

अरिहन्त का निर्णय करने में संपूर्ण स्वभाव प्रतीति में आ जाता है। अरिहन्त भगवान के जो पूर्ण निर्मल दशा प्रगट हुई है वह कहाँ से हुई है ? जहाँ थी वहाँ से प्रगट हुई है या जहाँ नहीं थी वहाँ से प्रगट हुई है ? स्वभाव में पूर्ण शक्ति थी इसलिये स्वभाव के बल से वह दशा प्रगट हुई है, स्वभाव तो मेरे भी परिपूर्ण है, स्वभाव में न्यूनता नहीं है। बस ! इस यथार्थ प्रतीति में द्रव्य-गुण की प्रतीति हो गई और द्रव्य-गुण की ओर पर्याय झुकी तथा आत्मा के स्वभावसामर्थ्य की दृष्टि हुई एवं विकल्प की अथवा पर की दृष्टि हट गई। इसप्रकार इसी उपाय से सभी आत्मा अपने द्रव्य-गुण-पर्याय पर दृष्टि करके क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त होते हैं और इसी प्रकार सभी आत्माओं का ज्ञान होता है; सम्यक्त्व का दूसरा कोई उपाय नहीं है।

अनंत आत्मायें हैं; उनमें अल्प काल में मोक्ष जाने वाले या अधिक काल

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

के पश्चात् मोक्ष जानेवाले सभी आत्मा इसी विधि से कर्म-क्षय करते हैं। पूर्ण दशा अपनी विद्यमान निज शक्ति में से आती है और शक्ति की दृष्टि करने पर परका लक्ष्य टूटकर स्व में एकाग्रता का ही भाव रहने पर क्षायिक सम्यक्त्व होता है।

यहाँ धर्म करने की बात है। कोई आत्मा परद्रव्य का तो कुछ कर ही नहीं सकता। जैसे अरिहन्त भगवान सब कुछ जानते हैं परन्तु परद्रव्य का कुछ भी नहीं करते। इसीप्रकार यह आत्मा भी ज्ञाता-स्वरूपी है, ज्ञानस्वभाव की प्रतीति ही मोहक्षय का कारण है। क्षणिक विकारी पर्याय में राग का कर्त्तत्व माने तो समझना चाहिये कि उस जीव ने अरिहन्त के स्वरूप को नहीं माना। ज्ञान में अनन्त परद्रव्य का कर्तृव्य मानना ही महा अधर्म है। और ज्ञान में अरिहन्त का निर्णय किया कि अनन्त परद्रव्य का कर्तृत्व हट गया, यही धर्म है। ज्ञान में से पर का कर्तृत्व हट गया इसलिये अब ज्ञान में ही स्थिर होना होता है और पर के लक्ष्य से जो विकारभाव होता है उसका कर्तृत्व भी नहीं रहता। मात्र ज्ञातारूप से रहता है, यही मोहक्षय का उपाय है। जिसने अरिहन्त के स्वरूप को जाना वह सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा है और वह जैनी है। जैसा जिनेन्द्र अरिहन्त का स्वभाव है वैसा ही अपना स्वभाव है - ऐसा निर्णय करना सो जैनत्व है और फिर स्वभाव के पुरुषार्थ के द्वारा वैसी पूर्ण दशा प्रगट करना सो जिनत्व है। अपना निज स्वभाव जाने बिना जैनत्व नहीं हो सकता।

जिसने अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जान लिया उसने यह निश्चय कर लिया है कि मैं अपने द्रव्य-गुण-पर्याय की एकता के द्वारा राग के कारण से जो पर्याय की अनेकता होती है उसे दूर करूंगा तभी मुझे सुख होगा। इतना निश्चय किया कि उसकी यह सब विपरीत मान्यतायें छूट जाती हैं कि मैं पर का कुछ कर सकता हूँ अथवा विकार से धर्म होता है। अब स्वभाव के बल से स्वभाव में एकाग्रता करके स्थिर होना होता है तब फिर उसके मोह कहाँ रह सकता है? मोह का क्षय हो ही जाता है। मेरे आत्मा में स्वभाव के लक्ष्य से जो निर्मलता का अंश प्रगट हुआ है वह निर्मल दशा बढ़ते बढ़ते किस हद तक निर्मलरूप में प्रगट होती है? जो अरिहन्त के बराबर निर्मलता प्रगट होती है वह मेरा स्वरूप है, यदि यह जान ले तो अशुद्ध भावों से अपना स्वरूप भिन्न है - ऐसी शुद्ध स्वभाव की प्रतीत करके दर्शन-मोह का उसी समय क्षय कर दे अर्थात् वह सम्यग्दृष्टि हो जाय, इसलिये

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अरिहन्त भगवान के स्वरूप का द्रव्य-गुण-पर्याय के द्वारा यथार्थ निर्णय करने पर आत्मा की प्रतीति होती है और यही मोह क्षय का उपाय है।

अब आगे द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप बताया जायगा और यह बताया जायगा कि द्रव्य-गुण-पर्याय को किस प्रकार जानने से मोहक्षय होता है।

(जो जीव अरिहन्त को द्रव्य-गुण-पर्यायरूप से जानता है वह अपने आत्मा को जानता है और उसका मोह अवश्य क्षय को प्राप्त होता है। अरिहन्त का स्वरूप सर्वप्रकार शुद्ध है इसलिये शुद्ध आत्मस्वरूप के प्रतिबिम्ब समान श्री अरिहन्त का आत्मा है। अरिहन्त जैसा ही इस आत्मा का शुद्ध स्वभाव स्थापित करके उसे जानने की बात कही है। यहाँ मात्र अरिहन्त की ही बात नहीं है किन्तु अपने आत्मा की प्रतीति करके उसे जानना है, क्योंकि अरिहन्त में और इस आत्मा में निश्चय कोई अंतर नहीं है। जो जीव अपने ज्ञान में अरिहन्त का निर्णय करता है उस जीव के भाव में अरिहन्त भगवान साक्षात् विराजमान रहते हैं, उसे अरिहन्त का विरह नहीं होता। इसप्रकार अपने ज्ञान में अरिहन्त की यथार्थ प्रतीति करने पर अपने आत्मा की प्रतीति होती है और उसका मोह अवश्य क्षय को प्राप्त होता है। यह पहिले कहे गये कथन का सार है। अब द्रव्य, गुण, पर्याय का स्वरूप विशेष रूप से बताते हैं, उसे जानने के बाद अन्तरंग में किस प्रकार की क्रिया करने से मोह क्षयको प्राप्त होता है, यह बताते हैं।)

जो जीव अपने पुरुषार्थ के द्वारा आत्मा को जानता है उस जीव का मोह अवश्य क्षय को प्राप्त होता है - ऐसा कहा है, किंतु यह नहीं कहा कि मोहकर्म का बल कम हो तो आत्मा को जानने का पुरुषार्थ प्रगट हो सकता है, क्योंकि मोहकर्म कहीं आत्मा को पुरुषार्थ करने से नहीं रोकता। जब जीव अपने ज्ञान में सच्चा पुरुषार्थ करता है तब मोह अवश्य क्षय हो जाता है। जीव का पुरुषार्थ स्वतन्त्र है, 'पहले तू ज्ञान कर तो मोह क्षयको प्राप्त हो,' इसमें उपादान से कार्य का होना सिद्ध किया है; किंतु 'पहले मोह क्षय हो तो तुझे आत्मा का ज्ञान प्रगट हो' इसप्रकार निमित्त की ओर से विपरीत को नहीं लिया है, क्योंकि निमित्त को लेकर जीव में कुछ भी नहीं होता।

अब यह बतलाते हैं कि अरिहन्त भगवान के स्वरूप में द्रव्य-गुण-पर्याय किसप्रकार है। **"वहाँ अन्वय द्रव्य है, अन्वय का विशेषण गुण है, अन्वय**

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

के व्यतिरेक (भेद) पर्याय हैं'' (गाथा ८० टीका) शरीर अरिहन्त नहीं है किंतु द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप आत्मा अरिहन्त है। अनन्त अरिहन्त और अनन्त आत्माओं का द्रव्य-गुण-पर्याय से क्या स्वरूप है यह इसमें बताया है।

द्रव्य :- यहाँ मुख्यता से अरिहन्त भगवान के द्रव्य-गुण-पर्याय की बात है। अरिहन्त भगवान के स्वरूप में जो अन्वय है सो द्रव्य है। 'जो अन्वय है सो द्रव्य है' इसका क्या अर्थ है? जो अवस्था बदलती है वह कुछ स्थिर रहकर बदलती है। जैसे पानी में लहरें उठती हैं वे पानी और शीतलता को स्थिर रखकर उठती हैं; पानी के बिना यों ही लहरें नहीं उठने लगतीं, इसीप्रकार आत्मा में पर्यायरूपी लहरें (भाव) बदलती रहती हैं, उनके बदलने पर एक-एक भाव के बराबर आत्मा नहीं है किंतु सभी भावों में लगातार स्थिर रहने वाला आत्मा है। त्रिकाल स्थिर रहनेवाले आत्मद्रव्य के आधार से पर्यायें परिणमित होती हैं। जो पहले और बाद के सभी परिणामों में स्थिर बना रहता है वह द्रव्य है। परिणाम तो प्रति समय एक के बाद एक नये-नये होते हैं। सभी परिणामों में लगातार एकसा रहने वाला द्रव्य है। पहिले भी वही था और बाद में भी वही है - इसप्रकार पहिले और बाद का जो एकत्व है सो अन्वय है, और जो अन्वय है सो द्रव्य है।

अरिहन्त के सम्बन्ध में - पहले अज्ञान दशा थी, फिर ज्ञानदशा प्रकट हुई, इस अज्ञान और ज्ञान दोनों दशाओं में जो स्थिररूप में विद्यमान है वह आत्मद्रव्य है। जो आत्मा पहिले अज्ञानरूप था वही अब ज्ञानरूप है। इसप्रकार पहले और बाद के जोड़रूप जो पदार्थ है वह द्रव्य है। पर्याय पहले और पश्चात् की जोड़रूप नहीं होती, वह तो पहिले और बाद की अलग अलग (व्यतिरेकरूप) होती है और द्रव्य पूर्वपश्चात् के सम्बन्धरूप (अन्वयरूप) होता है। जो एक अवस्था है वह दूसरी नहीं होती और जो दूसरी अवस्था है वह तीसरी नहीं होती, इसप्रकार अवस्था में पृथक्त्व है; किन्तु जो द्रव्य पहले समय में था वही दूसरे समय में है और जो दूसरे समय में था वही तीसरे समय में है, इसप्रकार द्रव्य में लगातार सादृश्य है।

जैसे सोने की अवस्था की रचनाएँ अनेक प्रकार की होती हैं, उसमें अंगूठी के आकार के समय कुण्डल नहीं होता और कुण्डलरूप आकार के समय कड़ा नहीं होता, इसप्रकार प्रत्येक पर्याय के रूप में पृथक्त्व है, किन्तु जो सोना अंगूठी के रूप

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

में था वही सोना कुण्डल के रूप में है और जो कुण्डल रूप में था वही कड़े के रूप में है। सभी प्रकारों में सोना तो एक ही है, किस आकार-प्रकार में सोना नहीं है ? सभी अवस्थाओं के समय सोना है। इसीप्रकार अज्ञानदशा के समय साधक दशा नहीं होती, साधक दशा के समय साध्य दशा नहीं होती - इसप्रकार प्रत्येक पर्याय का पृथकत्व है; किन्तु जो आत्मा अज्ञान दशा में था वही साधक दशा में है और जो साधक दशा में था वही साध्य दशा में है। **सभी अवस्थाओं में आत्मद्रव्य तो एक ही है । किस अवस्था में आत्मा नहीं है ? सभी अवस्थाओं में निरन्तर साथ रहकर गमन करने वाला आत्मद्रव्य है।**

पहले और पश्चात् जो स्थिर रहता है वह द्रव्य है। अरिहन्त भगवान का आत्मा स्वयं ही पहिले अज्ञान दशा में था और अब वही सम्पूर्ण ज्ञानमय अरिहन्त दशा में भी है। इसप्रकार अरिहन्त के आत्मद्रव्य को पहचानना चाहिये। यह पहचान करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि अभी अपूर्ण दशा होने पर भी मैं ही पूर्ण अरिहन्त दशा में भी स्थिर होऊँगा; इससे आत्मा को त्रैकालिकता लक्ष्य में आती है।

गुण :- 'अन्वयका जो विशेषण है सो गुण है;' पहले द्रव्य की व्याख्या (परिभाषा) की, अब गुण की परिभाषा करते हैं। कड़ा, कुण्डल और अंगूठी इत्यादि सभी अवस्थाओं में रहनेवाला सोना द्रव्य है - यह तो कहा है, परंतु यह भी जान लेना चाहिये कि सोना कैसा है। सोना पीला है, भारी है, चिकना है - इसप्रकार पीलापन, भारीपन और चिकनापन यह विशेषण सोने के लिये लागू किये गये हैं इसलिये वह पीलापन आदि सोने का गुण है; इसीप्रकार अरिहन्त की पहले की और बाद की अवस्था में जो स्थिर रहता है वह आत्मद्रव्य है - यह कहा है, परन्तु यह भी जान लेना चाहिये कि आत्मद्रव्य कैसा है ? आत्मा ज्ञानरूप है, दर्शनरूप है, चारित्ररूप है; इसप्रकार आत्मद्रव्य के लिये ज्ञान, दर्शन और चारित्र विशेषण लागू होते हैं, इसलिये ज्ञान आदि आत्मद्रव्य के गुण हैं। द्रव्य की शक्ति को गुण कहा जाता है। आत्मा चेतन द्रव्य है और चैतन्य उसका विशेषण है। परमाणु में जो पुद्गल है सो द्रव्य है और वर्ण, गन्ध इत्यादि उसके विशेषण-गुण हैं। वस्तु में कोई विशेषण तो होता ही है, जैसे मिठास गुड़का विशेषण है। इसप्रकार आत्मद्रव्य का विशेषण क्या है ? अरिहन्त भगवान आत्मद्रव्य किस प्रकार हैं ?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यह पहले कहा जा चुका है। अरिहन्त में किंचित् मात्र भी राग नहीं है और परिपूर्ण ज्ञान है अर्थात् ज्ञान आत्मद्रव्य का विशेषण है।

यहाँ मुख्यता से ज्ञान की बात कही है, इसीप्रकार दर्शन, चारित्र, वीर्य, अस्तित्व इत्यादि जो अनन्त गुण हैं वे सब आत्मा के विशेषण हैं। अरिहन्त आत्मद्रव्य हैं और उस आत्मा में अनन्त सहवर्ती गुण हैं, वैसा ही मैं भी आत्मद्रव्य हूँ और मुझमें वे सब गुण विद्यमान हैं। इसप्रकार जो अरिहन्त के आत्मा को द्रव्य-गुणरूप में जानता है वह अपने आत्मा को भी द्रव्य-गुणरूप में जानता है। वह स्वयं समझता है कि द्रव्य-गुण के जान लेने पर अब पर्याय में क्या करना चाहिये, और इसलिये उसके धर्म होता है। द्रव्य-गुण तो जैसे अरिहन्त के हैं वैसे ही सभी आत्माओं के सदा एकरूप हैं। **द्रव्य-गुण में कोई अंतर नहीं है, अवस्था में संसार मोक्ष है।** द्रव्य-गुण में से पर्याय प्रगट होती है, इसलिये अपने द्रव्य-गुण को पहिचानकर उस द्रव्य-गुण में पर्याय का जैसा - आकार प्रकार स्वयं बनाना है वैसा ही कर सकता है।

इसप्रकार द्रव्यरूप से और गुणरूप से आत्मा की पहिचान कराई है। इसमें जो गुण है वह द्रव्य की पहिचान कराने वाला है।

पर्याय :- 'अन्वय के व्यतिरेक को पर्याय कहते हैं' - इनमें पर्यायों की परिभाषा बताई है। द्रव्य के जो भेद हैं सो पर्याय हैं। द्रव्य तो त्रिकाल है, उस द्रव्य को क्षण क्षण के भेद से (क्षणवर्ती अवस्था से) लक्ष्य में लेना सो पर्याय है। पर्याय का स्वभाव व्यतिरेकरूप है अर्थात् एक पर्याय के समय दूसरी पर्याय नहीं होती। गुण और द्रव्य सदा एकसाथ होते हैं, किन्तु पर्याय एक के बाद दूसरी होती है। अरिहन्त भगवान के केवलज्ञान पर्याय है तब उनके पूर्व की अपूर्ण ज्ञानदशा नहीं होती। वस्तु के जो एक-एक समय के भिन्न-भिन्न भेद हैं सो पर्याय है। कोई भी वस्तु पर्याय के बिना नहीं हो सकती।

आत्मद्रव्य स्थिर रहता है और उसकी पर्याय बदलती रहती है। द्रव्य और गुण एकरूप हैं, उनमें भेद नहीं है किन्तु पर्याय में अनेक प्रकार से परिवर्तन होता है इसलिये पर्याय में भेद है। **पहले द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप भिन्न-भिन्न बताकर फिर तीनों का अभेद द्रव्य में समाविष्ट कर दिया है। इसप्रकार**

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

द्रव्य-गुण-पर्याय की परिभाषा पूर्ण हुई।

प्रारम्भिक कर्त्तव्य

अरिहन्त भगवान के द्रव्य-गुण-पर्याय को भलीभाँति जान लेना ही धर्म है। अरिहन्त भगवान के द्रव्य, गुण, पर्याय को जानने वाला जीव अपने आत्मा को भी जानता है। उसे जाने बिना दया, भक्ति, पूजा, तप, व्रत, ब्रह्मचर्य या शास्त्राभ्यास इत्यादि सब कुछ करने पर भी धर्म नहीं होता और मोह दूर नहीं होता। इसलिये पहले अपने ज्ञान के द्वारा अरिहन्त भगवान के द्रव्य-गुण-पर्याय का निर्णय करना चाहिये, यही धर्म करने के लिए प्रारम्भिक कर्तव्य है।

पहले द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप बताया है। अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानने वाला जीव अपने द्रव्य-गुण-पर्यायमय आत्मा को जान लेता है - यह बात अब यहाँ कही जाती है।

''सर्वतः विशुद्ध भगवान अरिहंत में (अरिहंत के स्वरूप को ध्यान में रखकर) जीव तीनों प्रकार के समय को (द्रव्य-गुण-पर्यायमय निज आत्मा को) अपने मन के द्वारा जान लेता है।'' (गाथा ८० की टीका)

अरिहंत भगवान का स्वरूप सर्वतः विशुद्ध है अर्थात् वे द्रव्य से गुण से और पर्याय से सम्पूर्ण शुद्ध हैं इसलिये द्रव्य-गुण-पर्याय से उनके स्वरूप को जानने पर उस जीव की समझ में यह आ जाता है कि अपना स्वरूप द्रव्य से, गुणसे, पर्यायसे कैसा है।

इस आत्मा का और अरिहंत का स्वरूप परमार्थतः समान है, इसलिये जो अरिहंत के स्वरूप को जानता है वह अपने स्वरूप को जानता है और जो अपने स्वरूप को जानता है उसके मोह का क्षय हो जाता है।

सम्यक्त्व सन्मुख दशा

जिसने अपने ज्ञान के द्वारा अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को लक्ष्य में लिया है उस जीव को अरिहंत का विचार करने पर परमार्थ से अपना ही विचार आता है। अरिहन्त के द्रव्य-गुण पूर्ण हैं और उनकी अवस्था सम्पूर्ण ज्ञानमय है, सम्पूर्ण विकार रहित है, ऐसा निर्णय करने पर यह प्रतीति होती है कि अपने द्रव्य-गुण पूर्ण हैं और उनकी अवस्था संपूर्ण ज्ञानरूप, विकार रहित होनी चाहिए।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जैसे भगवान अरिहन्त हैं वैसा ही मैं हूँ, इसप्रकार अरिहन्त को जानने पर स्व समय को मन के द्वारा जीव जान लेता है। यहाँ तक अभी अरिहन्त के स्वरूप के साथ अपने स्वरूप की समानता करता है, अर्थात् अरिहंत के लक्ष्य से अपने आत्मा के स्वरूप का निश्चय करना प्रारम्भ करता है। यहाँ परलक्ष्य से निर्णय होने के कारण यह कहा है कि मन के द्वारा अपने आत्मा को जान लेता है। **यद्यपि यहाँ विकल्प है तथापि विकल्प के द्वारा जो निर्णय कर लिया है उस निर्णयरूप ज्ञान में से ही मोक्षमार्ग का प्रारम्भ होता है।** मनके द्वारा विकल्प से ज्ञान किया है तथापि निर्णय के बल से ज्ञान में से विकल्प को अलग करके स्वलक्ष्य से ठीक समझकर मोह का क्षय अवश्य करेगा - ऐसी शैली है। जिसने मन के द्वारा आत्मा का निर्णय किया है उसकी सम्यक्त्व के सन्मुख दशा हो चुकी है।

अरिहन्त के साथ समानता

अब यह बतलाते हैं कि अरिहन्त को द्रव्य-गुण-पर्याय से जाननेवाला जीव द्रव्य-गुण-पर्याय स्वरूप अपने आत्मा को किस प्रकार जान लेता है। अरिहन्त को जाननेवाला जीव अपने ज्ञान में द्रव्य-गुण-पर्याय का इस प्रकार विचार करता है -

'यह चेतन है ऐसा जो अन्वय सो द्रव्य है, अन्वय के आश्रित रहनेवाला जो 'चैतन्य' विशेषण है सो गुण है और एक समय की मर्यादावाला जिसका काल परिमाण होने से परस्पर अप्रवृत्त जो अन्वय व्यतिरेक हैं (एक दूसरे में प्रवृत्त न होनेवाले जो अन्वय के व्यतिरेक हैं) सो पर्याय हैं, जो कि चिद् विवर्तन की (आत्मा के परिणमन की) ग्रन्थियाँ हैं। (गाथा ८० की टीका)

पहले अरिहन्त भगवान को सामान्यतया जानकर अब उनके स्वरूप को लक्ष्य में रखकर द्रव्य-गुण-पर्याय से विशेषरूप में विचार करते हैं। "यह अरिहन्त आत्मा है" इसप्रकार द्रव्य को जान लिया। ज्ञान को धारण करनेवाला जो सदा रहनेवाला द्रव्य है सो वही आत्मा है। इसप्रकार अरिहन्त के साथ आत्मा की सदृश्यता बताई है।

चेतन द्रव्य आत्मा है, आत्मा चैतन्यस्वरूप है; चैतन्य गुण आत्मद्रव्य

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

के आश्रित है, सदा स्थिर रहनेवाले आत्मद्रव्य के आश्रय से ज्ञान रहता है, द्रव्य के आश्रय से रहनेवाला होने से ज्ञान गुण है। अरिहन्त के गुण को देखकर यह निश्चय करता है कि स्वयं अपने आत्मा के गुण कैसे हैं, जैसा अरिहन्त का स्वभाव है वैसा ही मेरा स्वभाव है।

द्रव्य-गुण त्रैकालिक हैं, उसके प्रतिक्षणवर्ती जो भेद हैं सो पर्याय है। पर्याय की मर्यादा एक समय मात्र की है। एक ही समय की मर्यादा होती है इसलिये दो पर्याय कभी एकत्रित नहीं होती। पर्यायें एक दूसरे में अप्रवृत्त हैं, एक पर्याय दूसरी पर्याय में नहीं आती इसलिये पहली पर्याय के विकाररूप होने पर भी मैं अपने स्वभाव से दूसरी पर्याय को निर्विकार कर सकता हूँ। इसका अर्थ यह है कि विकार एक समय मात्र के लिये है और विकार रहित स्वभाव त्रिकाल है। पर्याय एक समय मात्र के लिये ही होती है यह जान लेने पर यह प्रतीति हो जाती है कि विकार क्षणिक है। इसप्रकार अरिहन्त के साथ समानता करके अपने स्वरूप में उसे मिलाता है।

चेतन की एक समयवर्ती पर्यायें ज्ञान की ही गांठें हैं। पर्याय का सम्बन्ध चेतन के साथ है। वास्तव में राग चेतन की पर्याय नहीं है क्योंकि अरिहन्त की पर्याय में राग नहीं है। जितना अरिहन्त की पर्याय में होता है उतना ही इस आत्मा की पर्याय का स्वरूप है।

पर्याय प्रति समय की मर्यादा वाली है। एक पर्याय का दूसरे समय में नाश हो जाता है इसलिये एक अवस्था में दूसरी अवस्था नहीं आती, किन्तु द्रव्य में से ही पर्याय आती है, इसलिये पहिले द्रव्य का स्वरूप बताया है। पर्याय में जो विकार है सो स्वरूप नहीं है किन्तु गुण जैसी ही निर्विकार अवस्था होनी चाहिये इसलिये बाद में गुण का स्वरूप बताया है। राग अथवा विकल्प में से पर्याय प्रगट नहीं होती क्योंकि पर्याय एक दूसरे में प्रवृत्त नहीं होती। पर्याय को चिद् विवर्तन की ग्रन्थि क्यों कहा है ? पर्याय स्वयं तो एक समय मात्र के लिये है परन्तु एक समय की पर्याय से त्रैकालिक द्रव्य को जानने की शक्ति है। एक ही समय की पर्याय में त्रैकालिक द्रव्य का निर्णय समाविष्ट हो जाता है। पर्याय की ऐसी शक्ति बताने के लिए उसे चिद् विवर्तन की ग्रन्थि कहा है।

अरिहन्त को केवलज्ञान दशा होती है, जो केवलज्ञान दशा है सो चिद्

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विवर्तन की वास्तविक ग्रन्थि है। जो अपूर्ण ज्ञान है सो स्वरूप नहीं है। केवलज्ञान होनेपर एक ही पर्याय में लोकालोक का पूर्ण ज्ञान समाविष्ट हो जाता है, मति-श्रुत पर्याय में भी अनेकानेक भावों का निर्णय समाविष्ट हो जाता है।

यद्यपि पर्याय स्वयं एक समय की है तथापि उस एक समय में सर्वज्ञ के परिपूर्ण द्रव्य-गुण-पर्याय को अपने ज्ञान में समाविष्ट कर लेती है। **संपूर्ण अरिहन्त का निर्णय एक समय में कर लेने से पर्याय चैतन्य की गांठ है।**

अरिहन्त की पर्याय सर्वतः सर्वथा शुद्ध है। यह शुद्ध पर्याय जब ख्याल में ली तब उस समय निज के वैसी पर्याय वर्तमान में नहीं है तथापि यह निर्णय होता है कि - मेरी अवस्था का स्वरूप अनंत ज्ञान शक्तिरूप सम्पूर्ण है, रागादिक मेरी पर्याय का मूल स्वरूप नहीं है।

इसप्रकार अरिहंत के लक्ष्य से द्रव्य-गुण-पर्याय स्वरूप अपने आत्मा को शुभ विकल्प के द्वारा जाना है। इसप्रकार द्रव्य-गुण-पर्याय के स्वरूप को एक ही साथ जान लेनेवाला जीव बाद में क्या करता है और उसका मोह कब नष्ट होता है यह अब कहते हैं।

अब, इसप्रकार त्रैकालिक को भी (-त्रैकालिक आत्मा को भी) एक काल में समझ लेनेवाला वह जीव, जैसे मोतियों को झूलते हुए हार में अन्तर्गत माना जाता है, उसीप्रकार चिद्विवर्तों का चेतन में ही संक्षेपण (अन्तर्गत) करके, तथा विशेषणविशेष्यता की वासना का अन्तर्धान होने से-जैसे सफेदी को हार में अन्तर्हित किया जाता है, उसीप्रकार चैतन्य को चेतन में ही अन्तर्हित करके, जैसे मात्र हार को जाना जाता है, उसीप्रकार केवल आत्मा को जानने पर, उसके उत्तरोत्तर क्षण में कर्ता-कर्म-क्रिया का विभाग क्षय को प्राप्त होता जाता है इसलिये निष्क्रिय चिन्मात्र भाव को प्राप्त होता है; और इसप्रकार मणि की भाँति जिसका निर्मल प्रकाश अकम्परूप से प्रवर्तमान है - ऐसे उस (चिन्मात्र भाव को प्राप्त) जीव के मोहान्धकार निराश्रयता के कारण अवश्यमेव प्रलय को प्राप्त होता है।

- (गाथा ८० की टीका)

द्रव्य-गुण-पर्याय का यथार्थ स्वरूप जान लेनेपर जीव त्रैकालिक द्रव्य को एक काल में निश्चित कर लेता है। आत्मा के त्रैकालिक होनेपर भी जीव उसके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

त्रैकालिक स्वरूप को एक ही काल में समझ लेता है। अरिहंत को द्रव्य-गुण-पर्याय से जान लेनेपर अपने में क्या फल प्रगट हुआ है यह बतलाते हैं। त्रैकालिक पदार्थ को इसप्रकार लक्ष्य में लेता है कि जैसे अरिहन्त भगवान त्रिकाली आत्मा हैं वैसा ही मैं त्रिकाली आत्मा हूँ। त्रिकाली पदार्थ को जान लेने में त्रिकाल जितना समय नहीं लगता। किन्तु वर्तमान एक पर्याय के द्वारा त्रैकालिक का ख्याल हो जाता है - उसका अनुभव हो जाता है। क्षायिक सम्यक्त्व कैसे होता है। इसकी यह बात है। प्रारम्भिक क्रिया यही है। इसी क्रिया के द्वारा मोह का क्षय होता है।

जीव को सुख चाहिये है। इस जगत में संपूर्ण स्वाधीन सुखी श्री अरिहन्त भगवान हैं। इसलिये 'सुख चाहिये है' का अर्थ यह हुआ कि स्वयं भी अरिहन्त दशारूप होना है। **जिसने अपने आत्मा को अरिहन्त जैसा माना है वही स्वयं अरिहन्त जैसी दशारूप होने की भावना करता है।** जिसने अपने को अरिहन्त जैसा माना है उसने अरिहन्त के समान द्रव्य-गुण-पर्याय के अतिरिक्त अन्य सबको अपने आत्मा में से निकाल दिया है। (यहाँ पहले मान्यता-श्रद्धा करने की बात है) परद्रव्य का कुछ करने की मान्यता, शुभराग से धर्म होने की मान्यता तथा निमित्त से हानि लाभ होने की मान्यता दूर हो गई है, क्योंकि अरिहन्त के आत्मा के यह सब कुछ नहीं है।

द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप जानने के बाद क्या करना चाहिये?

अरिहन्त के स्वरूप को द्रव्य-गुण-पर्यायरूप से जाननेवाला जीव त्रैकालिक आत्मा को द्रव्य-गुण-पर्यायरूप से एक क्षण में समझ लेता है। बस! यहाँ आत्मा को समझ लेने तक की बात की है वहाँ तक विकल्प है, विकल्प के द्वारा आत्मलक्ष्य किया है, **अब उस विकल्प को तोड़कर द्रव्य-गुण-पर्याय के भेद को छोड़कर अभेद आत्मा का लक्ष्य करने की बात कहते हैं।** इस अभेद का लक्ष्य करना ही अरिहन्त को जानने का सच्चा फल है और जब अभेद का लक्ष्य करता है तब - उसी क्षण मोह का क्षय हो जाता है।

जिस अवस्था के द्वारा अरिहन्त को जानकर त्रैकालिक द्रव्य का ख्याल किया उस अवस्था में जो विकल्प होता है वह अपना स्वरूप नहीं है, किन्तु जो ख्याल किया है वह अपना स्वभाव है। ख्याल करनेवाला

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

जो ज्ञान है वह सम्यक्ज्ञान की जाति का है, किन्तु अभी पर का लक्ष्य है इसलिये यहाँ तक सम्यक्दर्शन प्रगटरूप नहीं है। अब उस अवस्था को पर लक्ष से हटाकर स्वभाव में संकलित करता है - भेद का लक्ष्य छोड़कर अभेद के लक्ष्य से सम्यक्दर्शन को प्रगटरूप करता है। जैसे मोती का हार झूल रहा हो तो उस झूलते हुये हार को लक्ष्य में लेनेपर उसके पहिले से अन्त तक के सभी मोती उस हार में ही समाविष्ट हो जाते हैं और हार तथा मोतियों का भेद लक्ष्य में नहीं आता। यद्यपि प्रत्येक मोती पृथक-पृथक है किन्तु जब हार को देखते हैं तब एक एक मोती का लक्ष्य छूट जाता है। परन्तु पहिले हार का स्वरूप जानना चाहिये कि हार में अनेक मोती हैं और हार सफेद है, इसप्रकार पहिले हार, हार का रंग और मोती इन तीनों का स्वरूप जाना हो तो उन तीनों को झूलते हुये हार में समाविष्ट करके हार को एकरूप से लक्ष्य में लिया जा सकता है मोतियों का जो लगातार तारतम्य है सो हार है। प्रत्येक मोती उस हार का विशेष है और उन विशेषों को यदि एक सामान्य में संकलित किया जाय तो हार लक्ष्य में आता है। **हार की तरह आत्मा के द्रव्य-गुण-पर्यायों को जानकर पश्चात् समस्त पर्यायों को और गुणों को एक चैतन्य द्रव्य में ही अन्तर्गत करने पर द्रव्य का लक्ष्य होता है और उसी क्षण सम्यक्दर्शन प्रगट होकर क्षय हो जाता है।**

यहाँ झूलता हुआ अथवा लटकता हुआ हार इसलिये लिया है कि वस्तु कूटस्थ नहीं है किन्तु प्रति समय झूल रही है अर्थात् प्रत्येक समय में द्रव्य में परिणमन हो रहा है। जैसे हार के लक्ष्य से मोती का लक्ष छूट जाता है उसी प्रकार द्रव्य के लक्ष्य से पर्याय का लक्ष्य छूट जाता है। पर्यायों में बदलनेवाला तो एक आत्मा है, बदलनेवाले के लक्ष्य से समस्त परिणामों को उसमें अंतर्गत किया जाता है। **पर्याय की दृष्टि से प्रत्येक पर्याय भिन्न भिन्न है किन्तु जब द्रव्य की दृष्टि से देखते हैं तब समस्त पर्यायें उसमें अंतर्गत हो जाती हैं। इस प्रकार आत्मद्रव्य को ख्याल में लेना ही सम्यग्दर्शन है।**

प्रथम आत्मद्रव्य के गुण और आत्मा की अनादि-अनन्त काल की पर्याय, इन तीनों का वास्तविक स्वरूप (अरिहंत के स्वरूप के साथ सादृश्य करके) निश्चित किया हो तो फिर **उन द्रव्य-गुण-पर्याय को एक परिणमित होते हुए**

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

द्रव्य में समाविष्ट करके द्रव्य को अभेद रूप से लक्ष में लिया जा सकता है। पहिले सामान्य-विशेष (द्रव्य-पर्याय) को जानकर फिर विशेषों को सामान्य में अंतर्गत किया जाता है; किन्तु जिसने सामान्य विशेष का स्वरूप न जाना हो वह विशेष को सामान्य में अंतर्लीन कैसे करे?

पहिले अरिहंत जैसे द्रव्य-गुण-पर्याय से अपने आत्मा को लक्ष में लेकर पश्चात् गुण-पर्यायों को एक द्रव्य में संकलित किया है आत्मा को स्वभाव में धारण कर रखा है। जहाँ आत्मा को स्वभाव में धारण किया वहाँ मोह को रहने का स्थान नहीं रहता अर्थात् मोह निराश्रयता के कारण उसी क्षण क्षय को प्राप्त होता है। पहिले अज्ञान के कारण द्रव्य-गुण-पर्याय के भेद करता था इसलिये उन भेदों के आश्रय से मोह रह रहा था किंतु जहाँ द्रव्य-गुण-पर्याय को अभेद किया वहाँ द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद दूर हो जाने से मोह क्षय को प्राप्त होता है। द्रव्य-गुण-पर्याय की एकता ही धर्म है और द्रव्य-गुण-पर्याय के बीच भेद ही अधर्म है।

पृथक् पृथक् मोती विस्तार है, क्योंकि उनमें अनेकत्व है और सभी मोतियों के अभेद रूप में जो एक हार है सो संक्षेप है। जैसे पर्याय के विस्तार को द्रव्य में संकलित कर दिया उसीप्रकार विशेष्य-विशेषणपने की वासना को भी दूर करके, गुण को भी द्रव्य में ही अन्तर्हित करके मात्र आत्मा को ही जानना और इसप्रकार आत्मा को जाननेपर मोह का क्षय हो जाता है। पहिले यह कहा था कि 'मन के द्वारा जान लेता है' किन्तु वह जानना विकल्प सहित था; और यहाँ जो जानने की बात कही है वह विकल्प रहित अभेद का जानना है। इस जानने के समय पर का लक्ष्य तथा द्रव्य-गुण-पर्याय के भेद का लक्ष्य छूट चुका है।

यहाँ (मूल टीका में) द्रव्य, गुण, पर्याय को अभेद करने से संबंधित पर्याय और गुण के क्रम से बात की है। पहले कहा है कि **'चिद्-विवर्तों को चेतन में ही संक्षिप्त करके'** और फिर कहा है कि **'चैतन्य को चेतन में ही अंतर्हित करके'** यहाँ पर पहले कथन में पर्याय को द्रव्य के साथ अभेद करने की बात है और दूसरे में गुण को द्रव्य के साथ अभेद करने की बात है। इसप्रकार पर्याय को और गुण को द्रव्य में अभेद करने की बात क्रम से समझाई है; किंतु अभेद का लक्ष करने पर वे क्रम नहीं होते। जिस समय अभेद द्रव्य की ओर ज्ञान झुकता है उसी समय पर्याय

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भेद और गुण भेद का लक्ष्य एक साथ दूर हो जाता है; समझाने में तो क्रम से ही बात आती है।

जैसे झूलते हुए हार को लक्ष में लेते समय ऐसा विकल्प नहीं होता कि 'यह हार सफेद है' अर्थात् उसकी सफेदी को झूलते हुए हार में ही लोप कर दिया जाता है, इसीप्रकार आत्मद्रव्य में 'यह आत्मा और ज्ञान उसका गुण अथवा आत्मा ज्ञानस्वभावी है' - ऐसे गुण-गुणी भेद की कल्पना दूर करके **गुण को द्रव्य में ही अदृश्य करना चाहिए।** मात्र आत्मा को लक्ष्य में लेनेपर ज्ञान और आत्मा के भेद सम्बन्धी विचार लोप हो जाते हैं; गुण-गुणी भेद का विकल्प टूटकर एकाकार चैतन्य स्वरूप का अनुभव होता है। यही सम्यग्दर्शन है।

हार में पहले तो मोती का मूल्य उसकी चमक और हार की गुथाई को जानता है पश्चात् मोती का लक्ष्य छोड़कर 'यह हार सफेद है इसप्रकार गुण-गुणी के भेद से हार को लक्ष में लेता है और फिर मोती, उसकी सफेदी और हार इन तीनों के संबंध के विकल्प छूटकर-मोती और उसकी सफेदी को हार में ही अदृश्य करके मात्र हार का ही अनुभव किया जाता है; इसीप्रकार पहिले अरिहंत का निर्णय करके द्रव्य-गुण-पर्याय के स्वरूप को जाने कि ऐसी पर्याय मेरा स्वरूप है, ऐसे मेरे गुण हैं और मैं अरिहन्त जैसा ही आत्मा हूँ। इसप्रकार विकल्प के द्वारा जानने के बाद पर्याय के अनेक भेद का लक्ष्य छोड़कर "मैं ज्ञान स्वरूप आत्मा हूँ" इसप्रकार गुण-गुणी भेद के द्वारा आत्मा को लक्ष में ले और फिर द्रव्य-गुण-पर्याय संबंधी विकल्पों को छोड़कर मात्र आत्मा का अनुभव करने के समय वह गुण-गुणी भेद भी गुप्त हो जाता है अर्थात् ज्ञान गुण आत्मा में ही समाविष्ट हो जाता है, इसप्रकार केवल आत्मा का अनुभव करना सो सम्यग्दर्शन है।

"हार को खरीदनेवाला आदमी खरीदते समय हार तथा उसकी सफेदी और उसके मोती इत्यादि सबकी परीक्षा करता है परन्तु बाद में सफेदी और मोतियों को हार में समाविष्ट करके, उनके उपर का लक्ष्य छोड़कर केवल हार को ही जानता है। यदि ऐसा न करे तो हार को पहिनने की स्थिति में भी सफेदी इत्यादि विकल्प रहने से वह हार को पहिनने के सुख का संवेदन नहीं कर सकेगा।" (गुजराती-प्रवचनसार, पृष्ठ ११९ फुटनोट) इसीप्रकार आत्म स्वरूप को समझनेवाला समझते

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

समय तो द्रव्य-गुण-पर्याय इन तीनों के स्वरूप का विचार करता है परन्तु बाद में गुण और पर्याय को द्रव्य में ही समाविष्ट करके-उनके उपर का लक्ष छोड़कर मात्र आत्मा को ही जानता है। यदि ऐसा न करे तो द्रव्य का स्वरूप ख्याल में आने पर भी गुण पर्याय सम्बन्धी विकल्प रहने से द्रव्य का अनुभव नहीं कर सकेगा।

हार आत्मा है, सफेदी ज्ञान गुण है और मोती पर्याय हैं। इसप्रकार दृष्टांत और सिद्धांत का सम्बन्ध समझना चाहिये। द्रव्य-गुण-पर्याय के स्वरूप को जानने के बाद मात्र अभेद स्वरूप आत्मा का अनुभव करना ही धर्म की प्रथम क्रिया है। इसी क्रिया से अनन्त अरिहन्त तीर्थंकर क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त करके केवलज्ञान और मोक्षदशा को प्राप्त हुए हैं। वर्तमान में भी मुमुक्षुओं के लिये यही उपाय है और भविष्य में जो अनन्त तीर्थंकर होंगे वे सब इसी उपाय से होंगे।

सर्व जीवों को सुखी होना है, सुखी होने के लिये स्वाधीनता चाहिये, स्वाधीनता प्राप्त करने के लिये सम्पूर्ण स्वाधीनता का स्वरूप जानना चाहिये। संपूर्ण स्वाधीन अरिहन्त भगवान हैं, इसलिये अरिहन्त का ज्ञान करना चाहिये। जैसे अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय हैं वैसे ही अपने हैं। अरिहन्त के रागद्वेष नहीं हैं, वे न तो अपने शरीर का कुछ करते हैं और न पर का ही कुछ करते हैं। उनके दया अथवा हिंसा के विकारी भाव नहीं होते, वे मात्र ज्ञान ही करते हैं; इसीप्रकार मैं भी ज्ञान करनेवाला ही हूँ, अन्य कुछ मेरा स्वरूप नहीं है। वर्तमान में मेरे ज्ञान में कचाई है वह मेरी अवस्था के दोष के कारण से है, **अवस्था का दोष भी मेरा स्वरूप नहीं है।** इसप्रकार पहिले भेदके द्वारा निश्चित करना चाहिये किन्तु बाद में भेद के विचार को छोड़कर मात्र आत्मा को जानने से स्वाधीनता का उपाय प्रगट होता है।

द्रव्य-गुण-पर्याय के स्वरूप को जानने का फल

पर्यायों को और गुण को एक द्रव्य में अन्तर्लीन करके केवल आत्मा को जानने पर उस समय अन्तरंग में क्या होता है सो अब कहते हैं :- **"केवल आत्मा को जानने पर उसके उत्तरोत्तर क्षण में कर्ता-कर्म-क्रिया का विभाग क्षय होता जाता है इसलिये निष्क्रिय चिन्मात्र भाव को प्राप्त होता है।"**

द्रव्य-गुण-पर्याय के भेद का लक्ष्य छोड़कर अभेद स्वभाव की ओर झुकने पर कर्ता-कर्म-क्रिया के भेद का विभाग क्षय होता है। और जीव निष्क्रिय

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चिन्मात्र भाव को प्राप्त होता है - यही सम्यग्दर्शन है।

मैं आत्मा हूँ, ज्ञान मेरा गुण है और यह मेरी पर्याय है - ऐसे भेद की क्रिया से रहित; पुण्य-पाप के विकल्प से रहित निष्क्रिय चैतन्यभाव का अनुभव करने में अनन्त पुरुषार्थ है, अपना आत्मबल स्वोन्मुख होता है। कर्ता-कर्म-क्रिया के भेद का विभाग क्षय को प्राप्त होता है। पहिले विकल्प के समय मैं कर्ता हूँ और पर्याय मेरा कार्य है इसप्रकार कर्ता-कर्मका भेद होता था, **किन्तु जब पर्याय को द्रव्य में ही मिला दिया तब द्रव्य और पर्याय के बीच कोई भेद नहीं रहा अर्थात् द्रव्य कर्ता और पर्याय उसका कार्य है ऐसे भेद का अभेद के अनुभव के समय क्षय हो जाता है।**

पर्यायों को और गुणों को अभेदरूप से आत्मद्रव्य में ही समाविष्ट करके परिणामी, परिणाम और परिणति (कर्ता-कर्म और क्रिया) को अभेद में समाविष्ट करके अनुभव करना सो अनन्त पुरुषार्थ है और यही ज्ञान का स्वभाव है। भंग-भेद में जाने पर ज्ञान और वीर्य कम होते जाते हैं और अभेद का अनुभव करने पर उत्तरोत्तर क्षण में कर्ता-कर्म-क्रिया का विभाग क्षय होता जाता है। वास्तव में तो जिस समय अभेद स्वभाव की ओर झुकते हैं उसी समय कर्ता-कर्म-क्रिया का भेद टूट जाता है तथापि यहाँ 'उत्तरोत्तर क्षण में क्षय होता जाता है' ऐसा कहा है ? क्योंकि **अनुभव करने के समय पर्याय द्रव्य की ओर अभिन्न हो जाती है यदी वह सर्वथा अभिन्न हो जाए तो उसी समय केवलज्ञान हो जाय,** परन्तु जिस समय अभेद के अनुभव की ओर ढलता है उसी क्षण से प्रत्येक पर्याय में भेद का क्रम टूटने लगता है और अभेद का क्रम बढ़ने लगता है। जब पर की ओर लक्ष्य था तब पर के लक्ष्य से उत्तरोत्तर क्षण में भेदरूप पर्याय होती थी अर्थात् प्रतिक्षण पर्याय हीन होती जाती थी, और जब पर का लक्ष्य छोड़कर निज में अभेद के लक्ष्य से एकाग्र हो गया तब निज लक्ष्य से उत्तरोत्तर क्षण में पर्याय अभिन्न होने लगी अर्थात् प्रतिक्षण पर्याय की शुद्धता बढ़ने लगी। जहाँ सम्यग्दर्शन हुआ कि क्रमशः प्रत्येक पर्याय में शुद्धता की वृद्धि होकर केवलज्ञान ही होता है बीच में शिथिलता अथवा विघ्न नहीं आ सकता। सम्यक्त्व हुआ सो हुआ, अब उत्तरोत्तर क्षण में द्रव्य-पर्याय के बीच के भेद को सर्वथा तोड़कर केवलज्ञान को प्राप्त किए

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बिना नहीं रुकता।

ज्ञानरूपी अवस्था के कार्य में अनन्त केवलज्ञानियों का निर्णय समा जाता है, प्रत्येक पर्याय की ऐसी शक्ति है। जिस ज्ञान की पर्याय ने अरिहन्त का निर्णय किया उस ज्ञान में अपना निर्णय करने की शक्ति है। पर्याय की शक्ति चाहे जितनी हो तथापि वह पर्याय क्षणिक है। एक के बाद एक अवस्था का लक्ष्य करने पर उसमें भेद का विकल्प उठता है। क्योंकि अवस्था में खण्ड है इसलिये उसके लक्ष्य से खण्ड का विकल्प उठता है। अवस्था के लक्ष में अटकने वाला वीर्य और ज्ञान दोनों रागवाले हैं। जब पर्याय का लक्ष छोड़कर भेद के राग को तोड़कर अभेद स्वभाव की ओर वीर्य को लगाकर वहाँ ज्ञान की एकाग्रता करता है तब निष्क्रिय चिन्मात्र भाव का अनुभव होता है, यह अनुभव ही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है।

यहाँ चिन्मात्र भाव को 'निष्क्रिय' कहने का कारण क्या है ?

यद्यपि वहाँ परिणति रूप क्रिया तो है तथापि खण्डरूप-रागरूप क्रिया का अनुभव नहीं है। कर्ता-कर्म और क्रिया का भेद नहीं है तथा कर्ता-कर्म-क्रिया सम्बन्धी विकल्प नहीं है इस अपेक्षा से 'निष्क्रिय' कहा गया है परन्तु अनुभव के समय अभेदरूप से परिणति तो होती रहती है। पहिले जब पर लक्ष्य से द्रव्य पर्याय के बीच भेद होते थे तब विकल्परूप क्रिया थी किन्तु निज द्रव्य के लक्ष्य से एकाग्रता करने पर द्रव्य-पर्याय के बीच का भेद टूटकर दोनों अभेद हो गए, इस अपेक्षा से चैतन्यभाव को निष्क्रिय कहा है। जानने के अतिरिक्त जिसकी अन्य कोई क्रिया नहीं है ऐसे ज्ञानमात्र निष्क्रिय भाव को इस गाथा में कथित उपाय के द्वारा ही जीव प्राप्त कर सकता है।

मोहान्धकार अवश्य नष्ट होता है।

अभेद अनुभव के द्वारा **'चिन्मात्र भाव को प्राप्त करता है'** यह बात अस्ति की अपेक्षा से कही अब चिन्मात्र भाव को प्राप्त करने पर 'मोह नाश को प्राप्त होता है' इसप्रकार नास्ति की अपेक्षा से बात करते हैं। चिन्मात्र भाव को प्राप्ति और मोह का क्षय यह दोनों एक ही समय में होते हैं।

"इसप्रकार जिसका निर्मल प्रकाश मणि (रत्न) के समान अकम्प रूप से प्रवर्तन है ऐसे उस चिन्मात्र भाव को प्राप्त जीव का

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मोहान्धकार निराश्रयता के कारण अवश्य ही नष्ट हो जाता है।''(गाथा ८० की टीका)

यहाँ शुद्ध सम्यक्त्व की बात है इसलिये मणिका दृष्टांत दिया है। दीपका प्रकाश तो प्रकाशित होता रहता है, वह एक समान नहीं रहता, किन्तु मणिका प्रकाश अकम्परूप से सतत प्रवर्तमान रहता है उसका प्रकाश कभी बुझ नहीं जाता; इसीप्रकार अभेद चैतन्यस्वभावी भगवान आत्मा में लक्ष्य करके वहाँ एकाकार रूप से प्रवर्तमान जीव के चैतन्य का अकम्प प्रकाश होने पर मोहान्धकार को रहने का कोई स्थान नहीं रहता इसलिये वह मोहान्धकार निराश्रय होकर अवश्यमेव क्षय को प्राप्त होता है। जब भेद की ओर झुक रहा था तब अभेद चैतन्यस्वभाव का आश्रय न होने से चैतन्य प्रकाश प्रगट नहीं था और अज्ञान आश्रय से मोहान्धकार बना हुआ था, अब अभेद चैतन्य के आश्रय में पर्याय ढल गई है और सम्यग्ज्ञान का प्रकाश प्रगट हो गया है तब फिर मोह किसके आश्रय से रहेगा ? मोह का आश्रय तो अज्ञान था जिसका नाश हो चुका है, और स्वभाव के आश्रय से मोह रह नहीं सकता इसलिये वह अवश्य क्षयको प्राप्त हो जाता है। जब पर्याय का लक्ष्य पर में था तब उस पर्याय में भेद था और उस भेद का मोह को आश्रय था किन्तु जब वह पर्याय निज लक्ष्य की ओर गई तब अभिन्न हो गई और अभेद होने पर मोह को कोई आश्रय न रहा इसलिये वह निराश्रित मोह अवश्य क्षय को प्राप्त होता है।

श्रद्धारूपी सामायिक और प्रतिक्रमण

यहाँ सम्यग्दर्शन को प्रगट करने का उपाय बताया जा रहा है। सम्यग्दर्शन होने पर ऐसी प्रतीति होती है कि पुण्य और पाप दोनों पर के लक्ष्य से-भेद के आश्रय से हैं, अभेद के आश्रय से पुण्य-पाप नहीं है इसलिये पुण्य-पाप मेरा स्वरूप नहीं है, दोनों विकार हैं, यह जानकर पुण्य और पाप दोनों में समभाव हो जाता है, यही श्रद्धारूपी सामायिक है। पुण्य अच्छा है और पाप बुरा है यह मानकर जो पुण्य को आदरणीय मानता है उसके भाव में पुण्य-पाप के बीच विषम भाव है, उसके सच्ची श्रद्धारूपी सामायिक नहीं है। सच्ची श्रद्धा के होने पर मिथ्यात्व भाव से हट जाना ही सर्व प्रथम प्रतिक्रमण है। सबसे बड़ा दोष मिथ्यात्व है और सबसे पहिले उस महादोष से ही प्रतिक्रमण होता है। मिथ्यात्व से प्रतिक्रमण किये बिना किसी जीव के

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

यथार्थ प्रतिक्रमण आदि कुछ नहीं होता।

सम्यग्दर्शन और व्रत-महाव्रत

जब तक अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय का लक्ष्य था तब तक भेद था; जब द्रव्य-गुण-पर्याय के भेद को छोड़कर अभेद स्वभाव की ओर झुका और वहाँ ऐकाग्रता की तब स्वभाव को अन्यथा माननेरूप मोह नहीं रहता और इसलिये मोह निराश्रय होकर नष्ट हो जाता है और इसप्रकार अरिहन्त को जानने वाले जीव के सम्यग्दर्शन हो जाता है।

वस्तुका स्वरूप जैसा हो वैसा माने तो वस्तु स्वरूप और मान्यता दोनों के एक होने पर सम्यक् श्रद्धा और सम्यग्ज्ञान होता है। वस्तु का सच्चा स्वरूप क्या है यह जानने के लिये अरिहन्त को जानने की आवश्यक्ता है, क्योंकि अरिहन्त भगवान द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप से सम्पूर्ण शुद्ध हैं। जैसे अरिहन्त हैं वैसा ही तब तक यह आत्मा न हो तब तक उसकी पर्याय में दोष है-अशुद्धता है।

अरिहन्त जैसी अवस्था तब होती है जब पहले अरिहन्त पर से अपने आत्मा का शुद्ध स्वरूप निश्चित करे। उस शुद्ध स्वरूप में एकाग्रता करके, भेद को तोड़कर, अभेद स्वरूप का आश्रय करके पराश्रय बुद्धि का नाश होता है, मोह दूर होता है और क्षायिक सम्यक्त्व प्रगट होता है। क्षायिक सम्यक्त्व के प्रगट होने पर आंशिक अरिहन्त जैसी दशा प्रगट होती है। और अरिहन्त होने के लिये प्रारंभिक उपाय सम्यग्दर्शन ही है।

अभेद स्वभाव की प्रतीति के द्वारा सम्यग्दर्शन होने के बाद जैसे जैसे उस स्वभाव में एकाग्रता बढ़ती जाती है वैसे वैसे राग दूर हो जाता है, और ज्यों ज्यों राग कम होता जाता है त्यों त्यों व्रत-महाव्रतादिक का पालन होता रहता है; किन्तु अभेद स्वभाव की प्रतीति के बिना कभी भी व्रत या महाव्रतादि नहीं होते। अपने आत्मा का आश्रय लिये बिना आत्मा के आश्रय से प्रगट होनवाली निर्मल दशा (श्रावक दशा मुनि दशा आदि) नहीं हो सकती। और निर्मल दशा के प्रगट हुये बिना धर्म का एक भी अंग प्रगट नहीं हो सकता। अरिहन्त की पहिचान होने पर अपनी पहिचान हो जाती है, और अपनी पहिचान होने पर मोह का क्षय हो जाता है। तात्पर्य यह है कि अरिहन्त की सच्ची पहिचान मोह क्षय का उपाय है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वभाव की निःशंकता

अब आचार्यदेव अपनी निःशंकता की साक्षीपूर्वक कहते हैं कि - **"यदि ऐसा है तो मैंने मोह की सेना को जीतने का उपाय कर लिया है।"** यहाँ मात्र अरिहन्त को जानने की बात नहीं है किन्तु अपने स्वभाव को एकमेक करके यह ज्ञान करने की बात है कि मेरा स्वरूप अरिहन्त के समान ही है। यदि अपने स्वभाव की निःशंकता प्राप्त न हो तो अरिहन्त के स्वरूप का यथार्थ निर्णय नहीं होता। आचार्यदेव अपने स्वभाव की निःशंकता से कहते हैं कि भले ही इस काल में क्षायिक सम्यक्त्व और साक्षात् भगवान अरिहन्त का योग नहीं है तथापि मैंने मोह की सेना को जीने का उपाय प्राप्त कर लिया। "पंचम काल में मोह का सर्वथा क्षय नहीं हो सकता" - ऐसी बात आचार्यदेव ने नहीं की, किन्तु मैंने तो मोहक्षय का उपाय प्राप्त कर लिया है - ऐसा कहा है। भविष्य में मोह क्षय का उपाय मैंने प्राप्त कर लिया है।

अहो ! संपूर्ण स्वरूपी आत्मा का साक्षात् अनुभव है तो फिर क्या नहीं है। आत्मा का स्वभाव ही मोह का नाशक है, और मुझे आत्मस्वभाव की प्राप्ति हो चुकी है। इसलिये मेरे मोह का क्षय होने में कोई शंका नहीं है। आत्मा में सब कुछ है, उसी के बल से दर्शनमोह और चारित्र मोह का सर्वथा क्षय करके, केवलज्ञान प्रगट करके साक्षात् अरिहन्त दशा प्रगट करूँगा। जब तक ऐसी संपूर्ण स्वभाव की निःशंकता का बल प्राप्त नहीं होता तब तक मोह दूर नहीं होता।

सच्ची दया और हिंसा

मोह का नाश करने के लिये न तो पर जीवों की दया पालन करने कहा है और न पूजा, भक्ति करने का ही आदेश दिया है किन्तु यह कहा है कि अरिहन्त का और अपने आत्मा का निर्णय करना ही मोह क्षय का उपाय है। पहले आत्मा की प्रतीति न होने से अपनी अनन्त हिंसा करता था, और अब यथार्थ प्रतीति करने से अपनी सच्ची दया प्रगट हो गई है और स्व हिंसा का महा पाप दूर हो गया है।

उपसंहार

पुरुषार्थ की प्रतीति

पहले हार के दृष्टांत से द्रव्य, गुण, पर्याय का स्वरूप बताया है। जैसे हार

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

में मोती एक के बाद दूसरा क्रमशः होता है, उसी प्रकार द्रव्य में एक के बाद दूसरी पर्याय होती है। जहाँ सर्वज्ञ का निर्णय किया कि वहाँ त्रिकाली क्रमबद्ध पर्याय का निर्णय हो जाता है। केवलज्ञानगम्य त्रिकाल अवस्थायें एक के बाद दूसरी होती ही रहती हैं। वास्तव में तो मेरे स्वभाव में जो क्रमबद्ध अवस्था है उसी को केवलज्ञानी ने जाना है। (इस अभिप्राय के बल का झुकाव स्वभाव की ओर है), ऐसा जिसने निर्णय किया है उसी ने अपने स्वभाव की प्रतीति की है। जिसे स्वभाव की प्रतीति होती है उसे अपनी पर्याय की शंका नहीं होती। क्योंकि वह जानता है कि अवस्था तो मेरे स्वभाव में से क्रमबद्ध आती है, कोई पर द्रव्य मेरी अवस्था को बिगाड़ने में समर्थ नहीं है। ज्ञानी को ऐसी शंका कदापि नहीं होती कि ''बहुत से कर्मों का तीव्र उदय आया तो मैं गिर जाऊँगा।'' जहाँ पीछे गिरने की शंका है वहाँ स्वभाव की प्रतीति नहीं है, और जहाँ स्वभाव की प्रतीति है वहाँ पीछे गिरने की शंका नहीं होती। जिसने अरिहंत जैसे ही अपने स्वभाव का विश्वास करके क्रमबद्ध पर्याय और केवलज्ञान को स्वभाव में अन्तर्गत किया है उसे क्रमबद्ध पर्याय में केवलज्ञान होता है।

जो दशा अरिहन्त भगवान को प्रगट हुई है वैसी ही दशा मेरे स्वभाव में है। अरिहन्त को जो दशा प्रगट हुई वह उनके अपने स्वभाव में से ही प्रगट हुई है। मेरा स्वभाव भी अरिहन्त जैसा है। उसी में से मेरी शुद्ध दशा प्रगट होगी। जिसे अपनी अरिहन्त दशा की ऐसी प्रतीति नहीं होती उसे अपने सम्पूर्ण द्रव्य की ही प्रतीति नहीं होती। यदि द्रव्य की प्रतीति हो तो द्रव्य की क्रमबद्धदशा विकसित होकर जो अरिहन्त दशा प्रगट होती है उसकी प्रतीति होती है।

मेरे द्रव्य में से अरिहन्त दशा आने वाली है, उसमें पर का कोई विघ्न नहीं है। कर्मका तीव्र उदय आकर मेरे द्रव्य की शुद्ध दशा को रोकने के लिये समर्थ नहीं है। क्योंकि मेरे स्वभाव में कर्म की नास्ति ही है। जिसे ऐसी शंका है कि 'आगे जाकर यदि तीव्र कर्मका उदय आया तो गिर जाऊँगा' उसने अरिहन्त स्वीकार नहीं किया है। अरिहन्त अपने पुरुषार्थ के बल से ही कर्म का क्षय करके पूर्ण दशा को प्राप्त हुये हैं। उसीप्रकार मैं भी अपने पुरुषार्थ के बल से ही कर्म का क्षय करके पूर्णदशा को प्राप्त होऊँगा बीच में कोई विघ्न नहीं है।

जो अरिहंत की प्रतीति करता है वह अवश्य अरिहंत होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com